

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

हिन्दीभाष्यसमन्वितम्



शिवोपदिष्ट पूजा-पद्धतिसहित शैव-शाक्त-वैष्णव-गाणपत्य-
सौर-कार्त्तवीर्यादि मन्त्रों का दक्षिण-वाममार्गानुसारि
साङ्गोपाङ्ग विवेचन एवं कार्त्तवीर्य-दीपदानविधि-
प्रतिपादक सर्वातिशायी तान्त्रिक ग्रन्थ



हिन्दीभाष्यकारः

श्री कपिलदेव नारायण 'स्वरूपावस्थित'



पुस्तक परिचय



महाकालेनयत्प्रोक्तम्पञ्चमीमुक्तिसाधनम्।
सर्वेषांम्मेरुतां यातन्तत्तन्त्रं मेरुसञ्ज्ञितम्॥

जो यह महाकाल द्वारा कहा गया पञ्चमीमुक्ति साधन जहाँ मध्यमणि की तरह गुम्फित है वह तन्त्र मेरुतन्त्र के नाम से जाना जाता है।

कलियुग में मनुष्य अल्पायु होता है। वह केवल शिश्नोदर परायण रहता है ऐसे में मृत्यु के उपरांत वह प्रेत योनि में ही भटकता रहता है। ऐसे कलियुग के पशुओं के उत्थान के लिए भगवान महाकाल ने मुक्ति के साधनों को तन्त्र के मध्यमणि या मेरु की तरह गुम्फित कर दिया है। भगवान शिव के द्वारा भगवती गौरी व देवों को कैलाश पर्वत पर यह उपदिष्ट है। इसमें तंत्र साधना के समस्त पक्षों का सम्यक् वर्णन है।

सामान्यतया दक्षिणमार्गीय ग्रन्थ वाममार्गीय ग्रन्थों की व वाममार्गीय ग्रन्थ दक्षिणमार्गीय ग्रन्थों की निंदा करते नजर आते हैं, लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ दक्षिणमार्ग व वाममार्ग दोनों को बराबर महत्त्व देते हुए दोनों साधना पक्षों का वर्णन किया है। यह इस ग्रन्थ के महाकाल प्रोक्त होने का प्रमाण है।

इस ग्रन्थ में दीक्षा प्रकरण से प्रारंभ कर मंत्र पुरश्चरण, देवता पूजन व प्रयोगों का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में दशमहाविद्या साधना, अन्य भगवती के स्वरूपों की साधना, शिव, विष्णु, सूर्य व गणेश साधना के साथ-साथ नवग्रह साधना का विधान है। इन सब विषयों का एक स्थान पर साधकों को हस्तामलकवत् प्राप्त होना परमेश्वर की कृपा है। आशा है कि साधक इस महद्ग्रन्थ से लाभान्वित हो इष्टाराध्य की साधना करेंगे।

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

525



श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

तृतीयो भागः * 15–22 प्रकाशः

भाषाभाष्यकारः

स्वरूपावस्थित

श्री कपिलदेव नारायण

संस्कर्त्ता

आचार्य श्रीनिवास शर्मा



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

मेरुतन्त्रम् (तृतीय भाग)
पृष्ठ : 16+460
ISBN : 978-93-89665-15-4 (Set)

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : +91 542-2335263; 2335264
email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण 2021 ई०
मूल्य : ₹5000.00 (1-5 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : +91 11-23286537
email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

●

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

●

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

प्रस्तावना

परमकारुणिक परमेश्वर के अपार संसार में विद्यमान अनेक दु:ख-परम्पराओं से मानवों की रक्षा के लिये तत्तत् ऋषियों द्वारा षडङ्ग वेद, दर्शन, आयुर्वेद, उपवेद, पुराण आदि का आविर्भाव किया गया। उनमें पारलौकिक एवं इहलौकिक फल-साधक प्रभूत दुर्लभ अनुष्ठानों के होते हुये भी अल्पायु लोगों के लिये वे शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले नहीं थे; इसीलिये जगत् के कल्याण की कामना से जगदम्बा उमा के द्वारा अल्पायु जनों के कल्याणार्थ चिन्तित होकर जिज्ञासा प्रकट किये जाने पर भगवान् शंकर ने सर्वोत्तम तन्त्रशास्त्र का प्रतिपादन किया। फिर भी 'तन्त्राणां गहनो गति:' इस उक्ति के अनुसार तन्त्र अपने-आपमें अतिशय गूढ़ अर्थ को समाहित रखने वाला शास्त्र है। 'तन्त्र' शब्द का शाब्दिक अर्थ है—तनोति तन्यते वेति तन्त्रम्। शास्त्रों में तन्त्र का लक्षण इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रनिर्णय एव च।
देवतानाञ्च संस्थानं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम्॥
तथैवाश्रमधर्मञ्च विप्रसंस्थानमेव च।
संस्थानञ्चैव भूतानां यन्त्राणाञ्चैव निर्णयः॥
उत्पत्तिर्विबुधानाञ्च तरूणां कल्पसंज्ञितम्।
संस्थानं ज्योतिषाञ्चैव पुराणस्थानमेव च॥
कोशस्य कथनञ्चैव व्रतानां परिभाषणम्।
शौचाशौचस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम्॥
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च।
व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम्॥
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्रमित्यभिधीयते।

अर्थात् जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्त्रनिर्णय, देवताओं का संस्थान, तीर्थ, आश्रम धर्म, विप्रसंस्थान, भूतसंस्थान, यन्त्रनिर्णय, देवताओं की उत्पत्ति, वृक्षों की कल्प-संज्ञात्व, ज्योतिषसंस्थान, पुराणसंस्थान, कोशकथन, व्रतकथन, शौच-अशौच, स्त्री-पुरुष-लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार, अध्यात्म-वर्णन इत्यादि विषयों का विवेचन रहता है, वह शास्त्र 'तन्त्र' शब्द से अभिहित होता है। मनुष्य की समस्त दैवी साधनायें तन्त्र पर ही अवलम्बित होती हैं; यत: समस्त साधनाओं के गूढ़ रहस्य तन्त्रशास्त्र में ही प्रस्फुटित होते हैं। इसमें स्थूलतम साधन-प्रणाली से लेकर अतिगुह्य मन्त्रशास्त्र एवं अतिगुह्यतर योग-साधनादि के समस्त

क्रियाकौशलों का सांगोपांग विवेचन रहता है। यद्यपि तन्त्रों में समाहित दार्शनिक तत्त्व भी अतीव सूक्ष्म हैं, तथापि वे प्रचलित दर्शनशास्त्रों के समान भाषाजाल से जटिल भाष्यों, टीकाओं, नानाविध मत-मतान्तरों एवं विविध वादों द्वारा दुर्बोध्य नहीं हैं; फिर भी साम्प्रदायिक साधनसंकेतज्ञान से सर्वथा शून्य जनों के लिये तन्त्रोक्त साधनजाल में प्रविष्ट होना कथमपि सम्भव नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य की प्रकृति सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक-भेद से तीन प्रकार की होती है, उसी प्रकार यह तन्त्रशास्त्र भी सात्त्विक, राजसिक, तामसिक भेद से त्रिविध होता है। साथ ही इसकी साधनप्रणाली भी तदनुरूप गुणभेद से तीन प्रकार की व्याख्यात होती है। फलितार्थ यह है कि जो साधक जिस प्रकृति से ओत-प्रोत होता है एवं जैसी उसकी रुचि होती है, तदनुरूप साधनपथ को अंगीकार करके ही वह अपने इस नश्वर जीवन को सार्थक बनाने में समर्थ होता है। जिस प्रकार देवस्वरूप अथवा दैवी गुणयुक्त जीवों की जननीरूपा शक्ति है, उसी प्रकार असुर गुणयुक्त अथवा असुरों की भी जननीरूपा शक्ति ही है। यही कारण है कि देवता एवं असुर दोनों ही उसकी उपासना में प्रवृत्त रहते हैं, दोनों ही अपने-अपने स्वभावानुरूप उपासना की प्रणाली का अवलम्ब ग्रहण करते हैं और साधना की प्रकृति के अनुसार ही साधनफल को अवाप्त करते हैं। यही कारण है कि शास्त्र में दोनों ही साधन-प्रणालियाँ विवेचित रहती हैं।

वेदों का अनुसरण करते हुये साधनपथ पर अग्रसर होने वाले साधक साधारणत: पाँच उपासक-सम्प्रदायों में विभक्त हैं—गाणपत्य, सौर, शाक्त, वैष्णव एवं शैव। लोक की अज्ञानतावश ये लोग अलग-अलग देवताओं के उपासक कहे जाते हैं अथवा अपने को देवविशेष का उपासक उद्घोषित करते हैं। वस्तुत: वे सभी एक ही विश्वतोमुख भगवान् की अलग-अलग पाँच भावों में उपासना करने वाले होते हैं। स्पष्ट है कि समस्त देव-देवियों में भेदकल्पना जीव की अल्पज्ञता का ही द्योतक है। पद्मपुराण में स्वयं श्रीभगवान् ने कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशा वैष्णवा: शक्तिपूजका:।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भ: सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा भिन्न: क्रीडार्थं भुवनेऽखिले।

साधकश्रेष्ठ पुष्पदन्त भी कहते हैं कि वेद, सांख्य, योग, पाशुपत, वैष्णवमत-प्रभृति भिन्न-भिन्न भावों में तुम्हारी ही उपासना करते हैं। मनुष्य अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कोई सरल, कोई वक्र, नानाविध मार्गों का अवलम्बन कर एकमात्र तुम्हें ही लक्ष्य कर चलते हैं। जिस प्रकार नाना नदियों का पथ विभिन्न होते हुये भी सब एक ही समुद्र में आकर गिरती हैं, उसी प्रकार जिस-किसी मार्ग से होकर जायँ, अन्त में सब कोई भगवान् के चरणतल में ही पहुँचते हैं—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

यही कारण है कि जीव को उपदिष्ट करते हुये शास्त्र भी कहते हैं कि—

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः।
या काली सैव कृष्णः स्याद्यः कृष्णः सैव कालिका॥
देवदेवीं समुद्दिश्य न कुर्यादन्तरं क्वचित्।
तत्तद्भेदो न मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत्॥

अर्थात् जो ब्रह्म हैं, वही हरि हैं और जो हरि हैं, वही महेश्वर हैं। जो काली हैं, वही कृष्ण हैं और जो कृष्ण हैं, वही काली हैं। देव-देवी को लक्ष्य कर कभी भी अपने मन में भेद उत्पन्न होने देना उचित नहीं है। देवता के चाहे कितने भी नाम और रूप हों, सभी एक ही हैं और यह जगत् भी शिव-शक्तिमय ही है। इसी अभिप्राय से श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में भी कहा गया है कि—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि पञ्चदेवता उस एक ही विश्वतोमुख भगवान् के स्फुरणमात्र हैं, फिर भी मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपने उपास्य देवता का ग्रहण नहीं कर सकता; करना उचित भी नहीं है। शास्त्रविधि के अनुसार ही समस्त कार्य होने आवश्यक होते हैं; अतः सद्गुरु ही जीव की प्रकृति का विचार करके उसके उपास्य देवता को निर्दिष्ट करने में समर्थ होता है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों की जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रसों में आसक्ति होती है, उसी प्रकार जीव की भी प्राक्तन कर्म और स्वभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओं में आसक्ति होती है; साथ ही अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही किसी जीव की पुरुषदेवता के प्रति तो किसी जीव की स्त्री-देवता के प्रति तथा उन देवताओं के विविध वर्णों के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इन समस्त विषयों का किञ्चित् भी विचार न करके मात्र देवता का नाम-जप एवं रूप-ध्यान करने वाले साधक को शुभ फल की कथमपि प्राप्ति नहीं होती। यही कारण है कि तन्त्रशास्त्र में इस विषय में प्रभूत विचारों और सिद्धान्तों का वर्णन समुपलब्ध होता है।

तन्त्रमतानुसार देवी की उपासना ही एकमात्र शक्ति की उपासना नहीं है। शक्ति के उपासक गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव और शाक्त सभी हैं। उनके अनुसार पुरुष निर्गुण है और निर्गुण की उपासना नहीं होती। उपास्य देवता के पुरुष होने

पर भी वास्तव में वहाँ उसकी शक्ति की ही उपासना होती है। शक्ति ही हमारे ज्ञान का विषय होती है। शक्तिमान अथवा पुरुष तो ज्ञानातीत सत्तामात्र है; अत: वह किसी भी समय किसी के भी बोध का विषय नहीं होता। वेद एवं तन्त्र में ब्रह्म को सच्चिदानन्द-स्वरूप कहा गया है। इस सच्चिदानन्द में सत् अंश पुरुष अथवा निर्गुण भाव तथा चित् एवं आनन्द अंश गुणयुक्त भाव अर्थात् प्रकृति है और इसी प्रकृति के द्वारा हमें पुरुष का परिचय प्राप्त होता है।

पुरुष और प्रकृति का विचारक ही सांख्य शास्त्र है। यहाँ दु:ख के आत्यन्तिक विनाश को ही मुक्ति कहा गया है। सुख-दु:ख आदि बुद्धि आदि के ही स्वभाव हैं और स्वभाव कथमपि नष्ट नहीं हो सकता। अत: बुद्धि के अतिरिक्त किसी सत्ता को स्वीकार न करने से दु:ख आदि से मुक्तिलाभ असम्भव है; यही कारण है कि बुद्धि के अतिरिक्त सुख-दु:खादि से विरहित एक अतिरिक्त वस्तु अथवा आत्मा को अंगीकार करना पड़ता है और वह आत्मा ही सुख-दु:खादि से रहित निर्गुण पुरुष है। बुद्धि आदि के सुख-दु:खादि धर्म पुरुष में आरोपित होते हैं। इस आरोपित सुख-दु:खादि धर्म के अपगत होने पर ही जीव को मुक्ति-लाभ होता है। बुद्ध्यादि स्वयं में अचेतन पदार्थ हैं और चेतन के सान्निध्य में आने पर ही इनकी प्रवृत्ति देखी जाती है। बुद्धि आदि समस्त जड़ पदार्थ भोग्य पदार्थ हैं; परन्तु भोक्ता के बिना भोग्य सिद्ध नहीं होता। भोग्य पदार्थ का मात्र अनुभव होता है और जो अनुभव करता है या भोग करता है, वही पुरुष है।

सांख्यमत से पुरुष के संयोग द्वारा अचेतन बुद्धि आदि चेतन के समान हो जाते हैं तथा बुद्धि आदि के संयोग से अकर्ता पुरुष कर्ता के समान हो जाता है। सांख्य के पुरुष एवं प्रकृति पारस्परिक साहाय्य के विना संसारी रचना में स्वयं कथमपि समर्थ नहीं होते; किन्तु इसमें भगवदिच्छा का भी कोई प्रयोजन नहीं होता। लेकिन यह सांख्य-सिद्धान्त तन्त्र, उपनिषत् अथवा पुराण-सम्मत नहीं है। गीता के अनुसार भगवान् पुरुषोत्तम ही चरम तत्त्व हैं तथा प्रकृति एवं पुरुष इनकी शक्तिमात्र है। तन्त्रोक्त प्रकृति सांख्योक्त प्रकृति के समान जड़ नहीं है; अपितु वह पूर्ण चैतन्यमयी है। तन्त्रमत से शिव साक्षात् परब्रह्म हैं; न कि जाग्रदवस्थाभिमानी, स्वप्नावस्थाभिमानी एवं सुषुप्त्यवस्थाभिमानी पुरुषविशेष। उनके दो विभाव हैं— सगुण एवं निर्गुण। माया से उपहित परब्रह्म ही सगुण है और माया से अनुपहित होने पर वही निर्गुण कहलाता है। निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप में आने पर ही उसकी कृपा समझ में आती है, उसकी प्रसन्नता का ज्ञान होता है। इसीलिये शास्त्रों में गुणमयी ब्रह्ममूर्ति की उपासना का आदेश है। यह मूर्ति किसी के द्वारा कल्पित नहीं है; अपितु साधकों के कल्याण के लिये ब्रह्म स्वयमेव अपनी रूपकल्पना करता है।

यही अरूप का रूप है और रूप होने पर भी वह शुद्ध चिन्मात्र है। सगुण भाव में शक्ति सुप्रकट रहती है और निर्गुण अवस्था में ब्रह्मशक्ति ब्रह्म में तल्लीन रहती है।

प्रकृति के साथ ब्रह्म का अविनाभाव सम्बन्ध है अर्थात् प्रकृति के विना ब्रह्म नहीं रहता और ब्रह्म के विना प्रकृति नहीं रहती। तिल में तेल के समान प्रकृति ब्रह्म में सदा अनुलिप्त, अभेद्य सम्बन्ध से रहती है। यह प्रकृति जब उसमें तल्लीन रहती है तब वह ब्रह्म निर्गुण कहलाता है। तब वह केवल चिन्मात्र, मन-बुद्धि से अतीत एवं समाधि से बोधगम्य होता है। प्रकृति जब उसमें जागृत हो जाती है तब वह केवल बोधमात्र या शून्यमात्र नहीं रह पाता। तब वह जड़ातीत होते हुये भी जड़मध्य में आकर प्रकाशित होता है। इस प्रकटभाव को ही भगवत्कृपा या अनुग्रहभाव कहा जाता है। उस समय मानों चैतन्य और कर्तृत्व दोनों ही उसमें एक साथ दिखाई पड़ते हैं और इसीलिये कहीं-कहीं निर्गुण ब्रह्म को केवल चैतन्यमात्र कहा गया है एवं इसके कर्तृत्व-भोक्तृत्व को अस्वीकार किया गया है; परन्तु पुरुष प्रकृति से समन्वित होने पर ही सगुण ब्रह्म के नाम से अभिहित होता है। उस समय उसमें चैतन्य और कर्तृत्व दोनों वर्तमान रहते हैं; किन्तु इस अवस्था का अभाव होने पर पुन: उसका ईश्वरत्व नहीं रह जाता। ईश्वरत्व के स्थायी भाव में प्रकृति-पुरुषयुक्त भाव ही अनादि है—यही तन्त्र स्वीकार करता है।

तत्र में आध्यात्मिक मार्ग के उपायरूप से चार प्रकार के मार्गों का उल्लेख किया गया है—पश्वाचार, वीराचार, दिव्याचार एवं कौलाचार। इनमें वेदाचार, वैष्णवाचार एवं शंवाचार में उपदिष्ट आचार का अवलम्बन कर जो साधना की जाती है, वही पश्वाचार होता है। वीर-साधन के विषय में पञ्चतत्त्वों को अपरिहार्य बतलाया गया है; लेकिन कलिकाल के मनुष्यों के लोभी एवं शिश्नोदर-परायण होने के कारण पञ्चतत्त्वों के प्रति उनकी अपरिहार्य आसक्ति को देखते हुये उनके द्वारा साधना सम्भव ही नहीं है। धीर व्यक्ति बार-बार विषय-सेवन करते हुये भी मुकुन्दपदारविन्द से पृथक् नहीं होते। वह हजारो कर्मों में लगे रहने पर भी मुख्य लक्ष्य को कभी विस्मृत नहीं करते। जो साधक संसार के समस्त कर्मों में लिप्त रहते हुये भी गोविन्द को कभी नहीं भूलते, वे ही यथार्थ धीर होते हैं और वे धीर ही यथार्थ वीर साधक होते हैं। वे वीर साधक जिस प्रकार अपने मस्तक पर अग्नि रखकर दोनों हाथों में तलवार लेकर अपने विविध रूप से अंग-सञ्चालन के द्वारा खेल दिखलाते हैं, उसी प्रकार तन्त्रोक्त वीर साधक भी विमुग्धकारिणी वस्तु लेकर साधना करते हैं; फिर भी वे वस्तुयें कभी-भी उन्हें लक्ष्यभ्रष्ट नहीं करतीं। दिव्य भाव के साधक वीरभाव की अपेक्षा अधिक उच्चावस्था-सम्पन्न पुरुष होते हैं, उनको नीचा दिखला सकने की शक्ति किसी सांसारिक वस्तु में नहीं होती। दिव्य भावापन्न

साधक नरदेव होते हैं। वे निरन्तर सन्तोषी, द्वन्द्वसहिष्णु, रागद्वेष-विवर्जित, क्षमाशील एवं समदर्शी होते हैं। वीरसाधकों के समान उनको अपनी असाधारण शक्ति के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती। उनका हृदय सर्वदा प्रशान्त रहता है, उसमें लेशमात्र भी उद्वेग या आशंका नहीं रहती।

कौलाचार अत्यन्त ही जटिल विषय है; परन्तु तन्त्र में इसकी अत्यधिक प्रशंसा की गई है। इसकी साधना वीराचार के ही समान होती है; किन्तु इसमें वीरता प्रदर्शित करने की अपेक्षा वीर बनने की साधना पर ही विशेष लक्ष्य रखा जाता है। कुलाचार में भी पञ्चतत्त्वों का व्यवहार प्रचलित तो अवश्य है; परन्तु वह मत्स्य-मांसासक्त व्यक्ति को संयमपथ में लाने की एक चेष्टामात्र है। जो साधनहीन पुरुष पञ्च मकारों में निमग्न हैं, उनके उस घोर नशे को उतारने के लिये, उन्हें और भी उच्चतर दिव्य मद का मार्ग दिखलाने के लिये जीवों के प्रति भगवान् सदाशिव की अद्भुत करुणा इस साधना में प्रकाशित होती है। कुलाचार के अनुवर्ती होने पर बुद्धि शीघ्र ही निर्मल हो जाती है तथा बुद्धि की निर्मलता से जगज्जननी आद्या के चरणकमल में स्थिर बुद्धि उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि बुद्धि को निर्मल और ब्रह्ममुखी बनाने के लिये ही भोग के द्वारा मोक्ष का द्वार खोलना इस साधना का उद्देश्य है। भगवान् ने इस जगत् की प्रत्येक वस्तु को इस कुशलता से बनाया है कि उनके व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होने से उनसे अमृत की प्राप्ति हो सकती है और व्यवहारदोष से उन्हीं से विष भी उत्पन्न हो सकता है। कुलाचार जीवों के भवबन्धन को नष्ट करने की ही चेष्टा करता है। जीव के मद्यपायी होने अथवा लम्पट बनाने के उद्देश्य से शास्त्रविधि की रचना नहीं हुई है। स्त्री के द्वारा कुलाचार का साधन होता है; फिर भी उस स्त्री को भोग की वस्तु नहीं समझा जाता। उसे साक्षात् इष्टदेवी-स्वरूपिणी समझे बिना कोई भी मनुष्य तन्त्रोक्त साधना में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। चण्डीस्तव में कहा भी है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।

स्पष्ट है कि तन्त्र पञ्चमकारों को साधारण दृष्टि से नहीं देखता; अपितु बुद्धि की मलिनता के कारण हम स्वयं तन्त्रों को पवित्रभाव से नहीं देख सकते। तन्त्रोक्त साधना में अतिशीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। जो सिद्धिलाभ के लिये समुत्सुक रहते हैं, वे ही तन्त्रोक्त प्रणाली से साधन करने में अग्रसर हो सकते हैं; लेकिन जिस प्रकार थोड़े दिनों में ही इससे साधनसिद्धि प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार इसमें उसी परिमाण में साधना की उत्कटता भी अत्यधिक होती है। तन्त्रोक्त साधना के स्थान और काल के विषय में विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह जीव के

साधारण भाव में स्थित चित्त के द्वारा हो ही नहीं सकती। सर्वप्रथम तो साधना का स्थान ही इतना भयंकर बताया गया है कि वहाँ दिन में भी एकाकी जाने में भय होता है। विखरे हुये नरकंकाल, नरमुण्ड एवं विच्छिन्न कंकालराशि से समन्वित, दुर्गन्ध से परिपूर्ण एवं श्रृगालों के भयोत्पादक रुदन अथवा चिल्लाहट वाले निर्जन श्मशानभूमि में अमावास्या के घोर अन्धकार में मृत शरीर के वक्ष:स्थल पर आसीन होने की कल्पना से ही सामान्य मनुष्य जब अचेत होने की स्थिति में पहुँच जाता है, तो फिर वहाँ पर बैठकर साधना करना सम्भव है अथवा नहीं, यह स्वयं विचारणीय है। स्पष्ट है कि जिनका इस मार्ग में अनुराग नहीं है, जिन्हें उक्त वस्तुओं से यथेष्ट घृणा है, उनके लिये यह मार्ग कदापि श्रेयस्कर नहीं है। जीव के रुचिभेद से भिन्न-भिन्न भावमय उपास्य देवता और उनकी साधनप्रणाली में भेद होते हुये भी चाहे जिस मार्ग का अवलम्ब ग्रहण न किया जाय, साधक के लिये लक्ष्य स्थान पर पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होती तथा समस्त साधनाओं के चरम लक्ष्यभूत भगवान् भी पृथक्-पृथक् नहीं होते। अतएव साधना की प्रणाली चाहे जो भी हो, भगवत्प्राप्ति के विषय में कोई वैलक्षण्य नहीं घटता। पद्मपुराण में कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशाः वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा॥

तन्त्र में साधक के बाह्य भाव का उल्लेख करके उसके अन्तर्भाव को जागृत करने के लिये संकेत किया गया है। महादेव पार्वती से कहते हैं कि हे प्रिये! तेज ही आद्य तत्त्व, पवन द्वितीय तत्त्व, जल तृतीय तत्त्व, पृथिवी चतुर्थ तत्त्व एवं जगदाधार आकाश पञ्चम तत्त्व है। हे कुलेश्वरि! कुलधर्म के आचार तथा पञ्चतत्त्व जिस साधक को इस प्रकार विज्ञात हैं, वह निश्चय ही जीवन्मुक्त है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये—

आद्यतत्त्वं विद्धि तेजो द्वितीयं पवनं प्रिये।
अपस्तृतीयं जानीहि चतुर्थं पृथिवी शिवे॥
पञ्चमं जगदाधारं वियद्विद्धि वरानने।
इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि कुलं तत्त्वानि पञ्च च॥
आचारं कुलधर्मस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।

तन्त्रों में कुल का स्वरूप इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

न कुलं कुलमित्याहुः कुलं ब्रह्म सनातनम्।

स्पष्ट है कि तन्त्रशास्त्र में 'कुल' शब्द से वंशपरम्परा अभिप्रेत नहीं है; अपितु सनातन ब्रह्म ही 'कुल' शब्द-वाच्य है। इस ब्रह्म को वास्तविक रूप से जानकर जो पुरुष मोहशून्य अथवा निर्विकार हो सकते हैं; वे ही कुलतत्त्वज्ञ

कहलाने के अधिकारी होते हैं। जो इस साधना के साधक हैं, वे ही कुलसाधक अथवा कौल कहलाते हैं। इस प्रकार तन्त्र का कुलतत्त्व कोई सहज बात नहीं है, न ही कौल बनना कोई सामान्य बात है। तन्त्र में कहा भी है—

कुलं कुण्डलिनी शक्तिरकुलं तु महेश्वरः।

अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति ही 'कुल' शब्दगम्य है और महेश्वर ही 'अकुल' शब्द से अभिप्रेत हैं। ध्यातव्य है कि कुण्डलिनी तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर साधक ब्रह्मज्ञ हो जाता है और यही तन्त्रोक्त साधना का मर्मस्थान है। कुण्डलिनी ही जीवतत्त्व या मुख्य प्राण है। यही यथार्थतः अध्यात्म या परा प्रकृति है तथा जगत् को यही धारण करती है। योगी लोग इसी को प्राणशक्ति कहते हैं—

प्राणो हि भगवानीशः प्राणो विष्णुः पितामहः।
प्राणेन धार्यते लोकः सर्वं प्राणमयं जगत्॥

अर्थात् प्राण ही ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक है, प्राण ही जगत् को धारण करने वाला है। समस्त जगत् ही प्राणमय है। जो महाशक्ति ब्रह्मरूप से विकसित होकर स्थूल से स्थूलतर जगदादि रूप में परिणत होती है, वह विश्व की मूल या आदि शक्ति बीज ही प्राण या कुण्डलिनी है। राधा के वक्षःस्थल पर स्थित पुरुष ही श्रीकृष्ण अथवा पुरुषोत्तम हैं। श्रीकृष्ण को जानने के लिये सर्वप्रथम राधा को जानना आवश्यक है। वैष्णवों का कथन है कि श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिये राधिका के अनुगत होकर भजन करना होगा, यही परम सत्य है। योगी एवं तन्त्रोक्त उपासक भी यही कहते हैं कि कुण्डलिनी ही चैतन्य शक्ति है और उसकी कृपा के विना कोई भी शुद्ध चैतन्य या निर्गुण ब्रह्म को नहीं जान सकता।

तन्त्र के छः प्रयोगों के साधन में हमारी मनोवृत्ति कैसी रहती है, इसका कतिपय सांकेतिक शब्दों द्वारा भली-भाँति निदर्शन होता है। वे शब्द हैं—नमः, स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुम् और फट्। अन्तःकरण की शान्त अवस्था में 'नमः' का प्रयोग होता है। समस्त दुर्धर्ष, घातक एवं अपकारी शक्तियाँ विनय के समक्ष नत हो जाती हैं। जो मनुष्य यथाशक्ति परोपकार में रत रहकर दूसरों के हित के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है, वह अपने शत्रुओं की समस्त विरोधभावनाओं को हटाकर उन पर पूर्ण अधिकार कर लेता है। 'वषट्' अन्तःकरण की उस वृत्ति का लक्ष्य कराता है, जिसमें अपने शत्रुओं के सम्बन्धियों का अनिष्ट-साधन करने अथवा उनका प्राणहरण करने की भावना रहती है। 'वौषट्' अपने शत्रुओं के हृदयों में एक-दूसरे के प्रति द्वेष उत्पन्न करने का सूचक है। 'हुम्' बल तथा अपने शत्रुओं को स्थानच्युत करने के निमित्त क्रोध का ज्ञापक है एवं 'फट्' अपने शत्रु के प्रति शस्त्रप्रयोग को अभिव्यक्त करता है। मन्त्रों की भाँति यन्त्र भी अनेक होते हैं। वे यन्त्र

भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्रों के संकेत होते हैं। बहुत से यन्त्र प्रकृति के चरित्र का रहस्य बतलाते हैं और कई यन्त्र ऐसे होते हैं, जो मनुष्यों तथा जानवरों के चरित्र का निरूपण करते हैं। तन्त्रशास्त्र में मन्त्रों एवं यन्त्रों का विशद् विवेचन उपलब्ध होता है। इसीलिये तन्त्रशास्त्र का माहात्म्य प्रदर्शित करते हुये कहा गया है—

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिस्तथा।
नदीनाञ्च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः॥
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां राज्ञाभिद्रो यथा वरः।
देवीनाञ्च यथा दुर्गा वर्णानां ब्राह्मणो यथा॥
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्।
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मितम्॥
कीर्त्तनं देवदेवस्य हरस्य मतमेव च।
पावनं श्रद्दधानानामिह लोके परत्र च॥

प्राचीनतम तन्त्रग्रन्थों में रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त एवं अश्वक्रान्त—तीनों में चौंसठ-चौंसठ ग्रन्थ दृगोचर होते हैं। इस प्रकार कुल एक सौ बयानबे ग्रन्थों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। उनमें से रथक्रान्त तन्त्रग्रन्थों में मेरुतन्त्र का स्थान छठा है। इसके सम्बन्ध में ग्रन्थ के प्रथम प्रकाश में भगवान् शिव का कथन है कि—

महाकालेन यत्प्रोक्तं पञ्चमी मुक्तिसाधनम्।
सर्वेषां मेरुतां यातं तत्तन्त्रं मेरुसंज्ञितम्॥

महाकाल ने जिस पाँचवीं मुक्तिसाधन का कथन किया है, उनमें मेरुतन्त्र सुमेरु पर्वत के समान सर्वोच्च है। ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, सूर्य, गौरी आदि देव-देवियों तथा गंगा, यमुना आदि नदियों; साथ ही अन्यान्य उपास्य देवों के मन्त्र, यन्त्र, न्यास, ध्यान, पीठ, शक्ति आवरणार्चन विधियों एवं वैदिक मन्त्रविधियों का भी प्रतिपादक शिव-पार्वती-संवादरूप यह महनीय ग्रन्थ पैंतीस प्रकाशों में विभाजित है। शिव द्वारा उपदिष्ट एक सौ आठ तन्त्रों में सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित होने के कारण ही यह 'मेरुतन्त्र' के नाम से अभिहित है। जलन्धर से भयभीत देवताओं और ऋषियों के लिये भगवान् शिव ने इसका उपदेश किया था। यह महनीय ग्रन्थ लगभग पन्द्रह हजार श्लोकों में निबद्ध है। इस ग्रन्थ में ज्ञान, योग, क्रिया तथा चर्या—इन चारो अंगों के साथ-साथ मन्त्रों के रहस्यात्मक प्रभाव का भी विवेचन किया गया है। यन्त्र-मन्त्र का इसमें विशद् वर्णन है। क्रियाविभाग में मूर्ति एवं यन्त्रपूजन के विधान प्रमुख हैं। चर्याविभाग में दैनिक आचार के साथ-साथ व्रत, उत्सव एवं सामाजिक अनुष्ठानों के विस्तृत विवरण हैं। तर्पण और दीपदान के विधान भी इस ग्रन्थ में विवेचित हैं। इसके अनुसार साधना करके आर्त्त,

जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—चारो प्रकार के श्रेष्ठ कर्मी अपने मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। गीता के सातवें अध्याय के सोलहवें श्लोक में कहा गया है कि मनुष्य की ईश्वर या ईश्वरीय सत्ता-सम्पन्न वस्तुओं के प्रति अभिरुचि के चार प्रमुख कारण हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

अर्थात् भरतवंशियों में श्रेष्ठ हे अर्जुन! चार प्रकार के उत्तम कर्म वाले लोग मेरा अर्चन-पूजन करते हैं, वे हैं—अत्यन्त संकट में पड़ा हुआ, जिज्ञासु अर्थात् यथार्थ ज्ञान का इच्छुक, अर्थार्थी अर्थात् सांसारिक सुखों का अभिलाषी एवं ज्ञानी। इन चार कारणों में से अन्तिम अर्थात् ज्ञानी के अतिरिक्त प्रथम तीन कारण तो ऐसे हैं कि उनसे कोई बचा ही नहीं है। कुछ केवल पीड़ित हैं, कुछ केवल जिज्ञासु हैं तो कुछ केवल अर्थार्थी हैं। इन कष्टों के शमन-हेतु मनीषियों द्वारा अनेक मार्गों का विवेचन किया गया है, जिनमें तन्त्रसाधना श्रेष्ठ है और उनमें भी मेरुतन्त्र श्रेष्ठ है। प्रकृत ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता यह है कि यह ग्रन्थरत्न उक्त चारो ही कारणों का समाधान करने वाला है।

प्रस्तुत संस्करण

तन्त्र-साधना हेतु परमोपयोगी यह महनीय ग्रन्थ जो अद्यावधि उपलब्ध है, वह पूर्णतः संस्कृत वाङ्मय में मूलमात्र है। वर्तमान में अल्पज्ञ पाठकों के संस्कृत भाषा-ज्ञान में पूर्णतः दक्ष न होने के कारण अभीष्ट होते हुये भी वे ग्रन्थ-तात्पर्य को अंगीकार करने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे, यही कारण है कि यह ग्रन्थ प्रचलन में नहीं था। ग्रन्थ की अनिवार्यता एवं ग्रन्थोक्त अनुष्ठानों की उपयोगिता को हृदयंगम करते हुये चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के अप्रतिम स्वत्त्वाधिकारी गोलोकवासी नवनीतदास जी गुप्त की सतत् प्रेरणा के परिणामस्वरूप इस महनीय ग्रन्थ को भाषाभाष्य से समन्वित करने का दुरूह कार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका; यह स्वर्गीय गुप्त जी की उत्कट अभिलाषा एवं उनके अनुवर्ती श्री नवीन एवं नीरज जी के सतत् उत्साहवर्धन का ही प्रतिफल है। आशा एवं विश्वास है कि यह संस्करण अध्येताओं के लिये ग्रन्थ के गूढ़ अर्थ को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

श्रीनिवास शर्मा

●

विवेच्य विषय

इस तृतीय भाग में पञ्चदश से लेकर द्वाविंश प्रकाश तक निबद्ध है। इसके पन्द्रहवें प्रकाश में वैदिक यन्त्रों का विवेचन किया गया है। इस क्रम में गायत्री, सरस्वती एवं त्रैयम्बक यन्त्रों का उद्धार बतलाकर गुरुत्याग की विधि निरूपित की गई है। इसके बाद गायत्री आदि त्रिशक्ति का यन्त्रोद्धार प्रदर्शित कर वारुण यन्त्र का उद्धार बतलाया गया है। साथ ही प्रकाशान्त में गणेश के मन्त्र एवं यन्त्र का उद्धार प्रदर्शित किया गया है।

इस प्रकाश में यह बतलाया गया है कि कलियुग में वेद के विना ब्राह्मणों की, स्मृति के विना क्षत्रियों की एवं पुराणों के विना वैश्यों की गति नहीं होती। साथ ही शूद्रों के लिये तन्त्र ही एकमात्र गति-प्रदायक है। कलियुग में तृष्णा सर्वोपरि होती है और यही कारण है कि समस्त जगत् दुःख में निमग्न रहता है। वैदिक कर्मों में संलग्न ब्राह्मण कलि में साक्षात् ब्रह्मस्वरूप होता है और वैदिक कर्मों से रहित ब्राह्मण ब्रह्मराक्षस होता है।

सोलहवें प्रकाश में दक्षिणाम्नाय में पठित गणपति-मन्त्रों को विवेचित किया गया है। सर्वप्रथम विघ्नहर्त्ता विघ्नराज के मन्त्रानुष्ठान की विधि प्रदर्शित की गई है। इसके बाद लक्ष्मीगणपति, शक्तिगणपति एवं हरिद्रागणपति का मन्त्र प्रदर्शित करते हुये उसके अनुष्ठान की विधि प्रदर्शित की गई है।

सत्रहवें प्रकाश में ऊर्ध्वाम्नाय में कथित गणपतिमन्त्रों का कथन किया गया है। इसमें गणपति मन्त्रों का कथन करने के उपरान्त गणेश के पूजन यन्त्र की निर्माण-विधि को स्पष्टतया प्रतिपादित करने के बाद गणेशमन्त्रकल्प एवं गणेश-तर्पण का निरूपण किया गया है। इसके पश्चात् काममन्त्र का उद्धार बतलाकर प्राणाग्निहोत्र का कथन किया गया है। तत्पश्चात् वाग्वादिनी मन्त्र, दुर्गा का बीजस्वरूप मन्त्र, गणेश द्वारा उपासित लक्ष्मी-मन्त्र, नित्यक्लिन्ना-मन्त्र तथा गणेश द्वारा सेवित महाकृत्या-मन्त्र का उद्धार एवं तत्तत् मन्त्रों की उपासना का फल प्रदर्शित करने के उपरान्त प्रकाशान्त में समस्त उपद्रवों की विनाशिका महाशान्ति का विवेचन किया गया है।

अट्ठारहवें प्रकाश में पूर्वाम्नाय में पठित गणपतिमन्त्रों का विवेचन किया गया है। इसमें सर्वप्रथम विरिविघ्नेश गणपति के मन्त्र का उद्धार बतलाने के बाद मन्त्रोपासना की विधि एवं उससे प्राप्त होने वाले फल का कथन किया गया है। इसके बाद शक्तिविनायक के मन्त्र का फल-प्रदर्शनपूर्वक सविधि उद्धार बतलाया

गया है। आगे भुवनेश्वरी शक्ति के मन्त्र को प्रदर्शित करते हुये उसकी उपासना-विधि बतलाने के उपरान्त वक्रतुण्ड गणेश के मन्त्र का उद्धार बतलाकर उसके जप-उपासना आदि की विधि विवेचित करते हुये साधक को उसके उपासना के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फल का कथन किया गया है। अन्त में वक्रतुण्ड-गायत्री का कथन करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

उन्नीसवें प्रकाश में पश्चिमाम्नाय में कथिन गणपतिमन्त्रों का प्रकाशन किया गया है। इसमें बतलाया गया है कि काशी में महागणपति के अंश-स्वरूप चौंसठ विनायक विद्यमान हैं। वे सभी सिद्धि प्रदान करने वाले हैं एवं आठ आवरणों में वर्तमान हैं। उनमें से काशी के बाहर एक योजन की परिधि में एक आवरण के आठ गणेश संस्थित हैं। काशी की सीमा पर अवस्थित उन आठ विनायकों के मन्त्रों का उद्धार बतलाते हुये उन मन्त्रों की उपासना-विधि निरूपित की गई है। इसके बाद कूष्माण्ड-विनायक का साधन प्रदर्शित कर पञ्चमुख गजानन के मन्त्र का सविधि विवेचन किया गया है। तदनन्तर विघ्नराज का मन्त्र बतलाकर मोदकप्रिय गणेश का मन्त्र विवेचित किया गया है। इसके बाद चित्रकन्या की साधन-विधि विवेचित करने के उपरान्त गणेश के इक्कीस मन्त्रों का सविधि निरूपण करने के बाद प्रकाशान्त में राजमातङ्गी की साधन-विंधि निरूपित की गई है।

बीसवें प्रकाश में उत्तराम्नाय में पठित गणपतिमन्त्रों का विवेचन किया गया है। साथ ही इसमें उच्छिष्टगणेश का मन्त्र भी सविधि विवेचित है। उत्तराम्नायोक्त गणपतिमन्त्रों के विवेचन के उपरान्त इस प्रकाश में वाम-दक्षिण मार्ग का निर्णय करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

इक्कीसवें प्रकाश में सूर्यमन्त्रों का कथन करते हुये दक्षिणाम्नाय में कथित सूर्यमन्त्रों का सविधि विवेचन करने के उपरान्त सूर्य के अन्य मन्त्रों का भी सविधि विवेचन किया गया है।

बाईसवें प्रकाश में नवग्रह मन्त्रों का प्रकाशन किया गया है। इसमें प्रथमत: चन्द्रमा का बीजमन्त्र एवं उसके जप आदि की विधि प्रदर्शित है। तदनन्तर क्रमश: भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु के मन्त्रों का उद्धार बतलाते हुये उनके जप आदि की विधि प्रदर्शित की गई है। तत्पश्चात् ग्रहमातृका-साधन की विधि प्रतिपादित करते हुये क्रमश: सूर्यमाता पिङ्गला, चन्द्रमाता मङ्गला, भौममाता भ्रामरी, बुधमाता भद्रिका, गुरुमाता धान्या, शुक्रमाता सिद्धा, शनिमाता उल्का, राहुमाता सङ्कटा एवं केतुमाता विकटा का साधन प्रदर्शित करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

●

विषयानुक्रमणी

॥ श्रीः ॥

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

पञ्चदशः प्रकाशः

(वैदिकयन्त्रकथनप्रकाशः)

गायत्र्यादियन्त्रोद्धारधारणादीनां निरूपणम्

श्रीदेव्युवाच

मन्त्राः श्रुता मया देव वेदोक्ताः कलिसिद्धिदाः ।
यन्त्राणि श्रोतुमिच्छामि वाञ्छितार्थप्रदानि तु ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा—हे देव! कलियुग में सिद्धि प्रदान करने वाले वेद-प्रोक्त मन्त्रों को मैंने सुना; अब अभीप्सित कामना को पूर्ण करने वाले यन्त्रों को सुनना चाहती हूँ।।१।।

श्रीशिव उवाच

वेदान् विना ब्राह्मणानां गतिरन्या न विद्यते ।
स्मृतिर्गतिर्नृपाणां च पुराणानि विशान्तथा ॥२॥
शूद्राणां चापि तन्त्राणि कलिदोषवशान्मतिः ।
सर्वेषामुपरि तृष्णा तेन दुःखं प्रजायते ॥३॥
वेदकर्मरतो विप्रः कलौ ब्रह्मा न संशयः ।
वेदकर्मविहीनस्तु विज्ञेयो ब्रह्मराक्षसः ॥४॥
त्रिकालसन्ध्योपासी च गुरुभक्तिपरायणः ।
अनध्यायेष्वपाठी च गुरून् स्वांश्च कृपावतः ।
वशीकृत्य सुसेवेतानिशमध्यायतत्परः ॥५॥

परान्नभोजरहितः त्यक्तशूद्रपरिग्रहः।
विना जपं विना पूजां कृतमात्रेण सिध्यति।
तत्कार्यं वैदिकैर्मन्त्रैर्नान्यस्य तु कदाचन ॥६॥

शिव बोले—वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मणों की कोई दूसरी दूसरी गति नहीं है। राजाओं की गति स्मृतियों में, वैश्यों की पुराणों में एवं शूद्रों गति तन्त्रों में होती है। कलि-जन्य दोष के कारण मन में तृष्णा का स्थान सबसे ऊपर होने के फलस्वरूप दुःख की उत्पत्ति होती है। वैदिक कर्मों में निरन्तर लगा हुआ विप्र कलियुग में साक्षात् ब्रह्मा ही होता है; इसमें कोई संशय नहीं है। वैदिक कर्मों से रहित विप्र को तो साक्षात् ब्रह्मराक्षस ही जानना चाहिये।

तीनों कालों में सन्ध्योपासना करने वाला, गुरु की भक्ति में रत रहने वाला, अनध्याय के दिनों में वेदपाठ न करने वाला, गुरुओं का कृपाप्राप्त, अपनी समस्त इन्द्रियों को नियन्त्रित करके बराबर स्वाध्याय का सेवन करने वाला, परान्न-भोजन न करने वाला, शूद्र के परिग्रह का त्याग करने वाला विप्र जप और पूजा से रहित होता हुआ भी उद्योग-मात्र से कार्य को सिद्ध कर लेता है। उसका वह कार्य वैदिक मन्त्रों द्वारा ही सिद्ध होता है; न कि दूसरे किसी उपाय द्वारा।।२-६।।

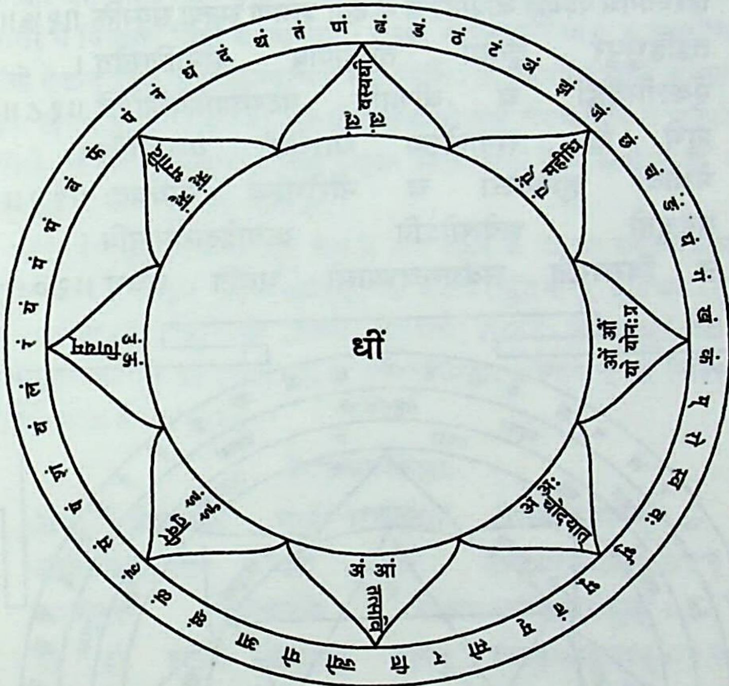
गायत्रीयन्त्रोद्धारः

अथादौ सम्प्रवक्ष्यामि गायत्रीयन्त्रमुत्तमम्।
पद्ममष्टदलं कुर्य्याद् ह्रींकारं कर्णिकास्थितम् ॥७॥
द्वौ द्वौ स्वरौ दिग्विदिशं प्रतिपत्रं समालिखेत्।
किञ्जल्केषु तदग्रेषु गायत्र्यर्णांस्त्रिशस्त्रिशः ॥८॥
तद्बहिर्वृत्तयुगलान्तरालेषु समालिखेत्।
ककाराद्यांस्तथोमापोज्योतीरसोमृतं ब्रह्म ॥९॥
भूर्भुवः सुवरोमिति गायत्रीयन्त्रमुच्यते।
सुवर्णे वापि लोहे वा कृत्वा हस्ते तु बन्धयेत् ॥१०॥
अनायासाद्धवेदाप्तिर्धर्म्मे च रमते मनः।
अविच्छिन्नो भवेद्वंशः कीर्त्तिस्तस्य विवर्धते।

गायत्री-यन्त्र—अब सर्वप्रथम सर्वोत्कृष्ट गायत्री यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। अष्टदल कमल का निर्माण करके उसकी मध्यकर्णिका में 'ह्रीं' लिखने के बाद उसके आठों पत्रों में दो-दो स्वरों को लिखना चाहिये। तत्पश्चात् पत्रों के अग्रभाग में गायत्री मन्त्र के तीन-तीन अक्षरों को लिखकर उसके बाहर दोनों वृत्तों के अन्तराल में

क से ह तक के व्यञ्जन वर्णों के साथ-साथ शिरोमन्त्र को भी लिखना चाहिये। यही गायत्री यन्त्र कहा जाता है।

इस यन्त्र को सुवर्ण अथवा लोहे में बनवाकर भुजा में बाँधना चाहिये। इसे धारण करने से अनायास ही (धन की) प्राप्ति होती है और मन धर्म में रमण करता है। उसका वंश अविच्छिन्न रहता है एवं उसकी कीर्त्ति बढ़ती है।।७-१०।।



सरस्वतीयन्त्रोद्धारः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सरस्वत्या महाद्भुतम् ।।११।।
यन्त्रं मेधाकरन्तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत् ।
तत्कर्णिकायां षट्कोणे ससाध्यं प्रणवं लिखेत् ।
तस्य मध्ये कोणषट्के वाग्भवं बीजमालिखेत् ।।१२।।
यश्छन्दसामृषभो विभुश्छन्दोभ्योध्यमुतात्सम्बभूव ।
स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु अमृतस्य देवधारणो भूयासम् ।।१३।।
एतस्याः पञ्चवर्णास्तु लिखेदष्टदलेषु च ।
दलेषु मन्त्रवर्णान् वा बहिर्वृत्तचतुष्टयम् ।।१४।।

कुर्यात्तदन्तर्वीथ्योस्तु द्वयोश्चापि ऋचाद्वयम् ।
क्रमाल्लेख्यं बहिर्वृत्तं मातृकार्णैः प्रपूरयेत् ॥१५॥
शरीरं मे विचक्षणं जिह्वा मे मधुमत्तमा ।
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमसीमहि ॥१६॥
यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्ति ॥१७॥
तद्बहिर्भूपुरं कृत्वा तत्कोणेषु समालिखेत् ।
ऐंक्लींसौंह्रीं च बीजानि पटस्वर्णादिनिर्मिते ॥१८॥
शुभे दिने समालेख्य धारयेद्यो यथाविधि ।
मेधावी श्रुतिधारा च नीरोगश्च प्रियंवदः ॥१९॥
बहुश्रुतो भवेत्सोऽपि क्रमाद्वेदागमानपि ।
न विस्मरति सर्वज्ञस्त्वभ्यासो भवति ध्रुवम् ॥२०॥

सरस्वती-यन्त्र—अब मैं सरस्वती के अत्यन्त अद्भुत मेधाकर यन्त्र को कहता हूँ। अष्टदल कमल बनाकर उसके षट्कोणकर्णिका में साध्य के साथ 'ॐ' लिखे। षट्कोणों में वाग्भव बीज 'ऐं' लिखे। तदनन्तर 'यश्छन्दसामृषभो विभुश्छन्दोभ्योध्य-मुतात्सम्बभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु अमृतस्य देवधारणो भूयासम्।' इस ऋचा के चालीस वर्णों में से पाँच-पाँच वर्णों को आठो पत्रों में लिखे। तत्पश्चात् कमलपत्रों के बाहर चार वृत्त बनावे। उन वृत्तों के मध्य की तीन वीथियों में से पहली दो वीथियों में 'शरीरं मे विचक्षणं जिह्वा मे मधुमत्तमा। मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमसीमहि।' एवं 'यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः। हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्ति।' इन दोनों मन्त्रों को तथा तीसरी वीथि में मातृकावर्णों को लिखे। तदनन्तर उसके बाहर भूपुर बनाकर उसके कोणों में 'ऐं क्लीं सौं ह्रीं' बीजों को लिखने से यन्त्र पूर्ण हो जाता है।

जो साधक इस यन्त्र को शुभ दिन में सोने आदि के पत्र पर सम्यक् प्रकार से लिखकर विधि के अनुसार धारण करता है, वह मेधावी (बुद्धिमान), श्रुतिधारा (सुनकर धारण करने वाला), नीरोग और प्रियंवद (मधुरभाषी) होता है। वह बहुश्रुत होता हुआ भी वेदों और आगमों को भूलता नहीं है; अपितु निरन्तर अभ्यास से वह निश्चित ही सर्वज्ञ हो जाता है।।११-२०।।

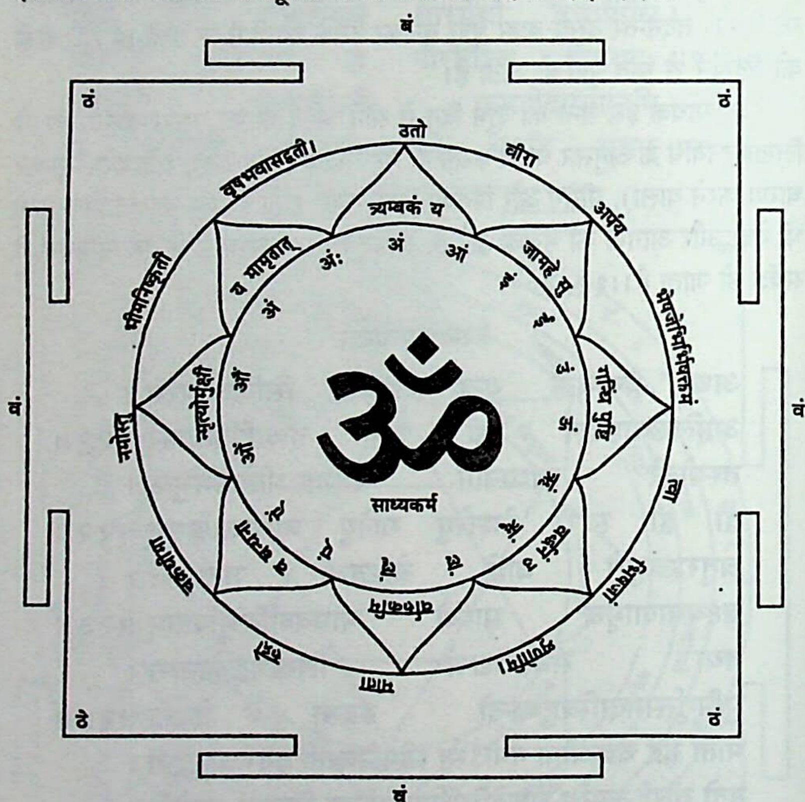
त्रैयम्बकयन्त्रोद्धारः

अथ त्रैयम्बकं यन्त्रं वक्ष्यते सिद्धिकृत्परम्।
आलिख्याष्टदलं पद्मं तारं तत्कर्णिकान्तरे ॥२१॥
तस्योदरे साध्यनाम साधकाभीष्टकर्मयुक्।
द्वौ द्वौ स्वरौ केशरेषु गलेषु त्र्यम्बकाक्षरान् ॥२२॥
चतुरश्चतुरो बाह्ये वेष्टितव्यं जनाक्षरैः।
वक्ष्यमाणामृचं साध्यो नामवर्णविभूषिताम् ॥२३॥
तया संवेष्टयेद्यन्त्रं लिखेत्तद्वृत्तदन्तरा।
मुनिर्गृत्समदास्त्रिष्टुप्छन्दो रुद्रस्तु देवता ॥२४॥
माता रुद्रे चक्रधीमा नमोऽस्तु भीमनिष्कृती वृषभवासद्वती।
उतो वीरां अर्प्यय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां श्रृणोमि ॥२५॥
भूपुराद्येषु ठं बीजं दिक्षु बं बीजमेव च।
एतत्त्रैयम्बकं यन्त्रं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥२६॥

त्रैयम्बक-यन्त्र—अब परम सिद्धिप्रद त्रैयम्बक यन्त्र कहा जा रहा है। अष्टदल

कमल बनाकर उसकी कर्णिका में 'ॐ' लिखकर उस ॐ के उदर में साध्य का नाम एवं साधक का अभीष्ट कर्म लिखना चाहिये। तदनन्तर केसरों में दो-दो स्वरों को लिखने के उपरान्त दलों में त्र्यम्बक मन्त्र के चार-चार अक्षरों को लिखने के पश्चात् साध्य के नामाक्षर-सहित 'माता रुद्रे चक्रधीमा नमोऽस्तु भीमनिष्कृती वृषभवासद्वती। उतो वीरां अर्प्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां श्रृणोमि।' के पैंतालीस अक्षरों से कमलदलों को वेष्टित कर देना चाहिये। उक्त ऋचा के ऋषि गृत्समद, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता रुद्र कहे गये हैं।

तदनन्तर भूपुर के कोणों में ठं बीज और दिशाओं में वं बीज लिखना चाहिये। इस त्रैयम्बक यन्त्र को यत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये।।२१-२६।।



आयुरारोग्यसौभाग्यधर्मार्थसुखमोक्षदम् ॥२७॥
किमत्र बहुनोक्तेन वाञ्छितार्थं परां श्रियम्।
लभते नात्र सन्देहो यन्त्रस्यास्य प्रभावतः ॥२८॥

यह यन्त्र आयु, आरोग्य, सौभाग्य, धर्म, अर्थ, सुख एवं मोक्ष को प्रदान करने वाला कहा गया है। बहुत कहने से क्या लाभ; इस यन्त्र के प्रभाव से साधक आकांक्षित मनोरथ के साथ-साथ महती श्री सम्पदा को भी प्राप्त करता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये।।२७-२८।।

एकोनपञ्चषट्कोष्ठे फलके ब्रह्मशाखिनः ।
तत्र मध्यमकोष्ठे तु ससाध्यं ह्रीं समालिखेत् ॥२९॥
पूजयेत्परया भक्त्या घृताक्तांस्तिलतण्डुलान् ।
मासाष्टकेन हुत्वा तु सिद्धिर्भवति भूयसी ॥३०॥
आयुष्कामो हुनेद्देव्यामृतमष्टोत्तरं शतम् ।
स्वजन्मदिवसेऽब्देऽस्मिन्नपमृत्युं जयत्यसौ ।
सर्वपापक्षयश्चैव चित्तशान्तिः प्रजायते ॥३१॥

पलाश के पटरे पर चौंसठ कोष्ठों को बनाकर उसके मध्य कोष्ठ में साध्यनाम-सहित 'ह्रीं' लिख्कर अतिशय भक्ति-पूर्वक उसका पूजन करके घृतसिक्त तिल एवं तण्डुल से आठ मास-पर्यन्त हवन करने वाले को महती सिद्धि की प्राप्ति होती है। आयु की कामना वाले को प्रत्येक वर्षगत अपने जन्मदिवस पर देव्यामृत (गिलोय?) से एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये; ऐसा करने वाला साधक अपमृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। साथ ही इससे समस्त पापों का क्षय हो जाता है एवं चित्तशान्ति प्राप्त होती है।।२९-३१।।

पलाशकुसुमैरष्टशतं हुत्वा द्विजर्षभः ।
ब्रह्मतेजोमयस्तस्य भाति देहोऽतिभास्वरः ॥३२॥
ब्रह्मवृक्षसमिद्भिस्तु कुसुमैर्बाकुलाशतैः ।
घृताक्तैरष्टसाहस्रहोमात् पातकनाशनम् ॥३३॥
अनेनैवानुवाकेन यः कुर्य्यादघमर्षणम् ।
सर्वपापक्षयस्तस्य वर्षमध्ये प्रजायते ॥३४॥

पलाश के फूलों से एक सौ आठ बार हवन करने वाला द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मतेज से युक्त हो जाता है और उसका शरीर अतिशय दीप्तिमान होकर प्रकाशित होता है। पलाश की समिधा एवं बकुल के एक सौ फूलों को घृतसिक्त करके उनसे एक हजार आठ बार हवन करने से पापों का विनाश होता है। इस अनुवाक से जो अघमर्षण करता है, एक वर्ष के भीतर उसके समस्त पापों का क्षय हो जाता है।।३२-३४।।

आदित्याभिमुखो यस्तु ह्यष्टाविंशतिसङ्ख्यया।
स्थित्वा जपेत्तदा तस्य गङ्गास्नानफलं भवेत् ॥३५॥
आत्मार्थं वा परार्थं वा जानुदघ्ने जले जपेत्।
सर्वग्रहकृता दोषा न तं पीडयितुं क्षमाः ॥३६॥

सूर्य की ओर मुख करके जो इसका अट्ठाईस बार जप करता है, उसे गंगास्नान का फल प्राप्त होता है। अपने लिये या दूसरों के लिये घुटने तक जल में खड़े होकर जो जप करता है, उसको अथवा जिसके लिये जप किया जाता है, उसे समस्त ग्रहों के प्रभाववश होने वाले दोष पीड़ित करने में समर्थ नहीं हो पाते।।३५-३६।।

कुङ्कुमेन्दुसमायुक्तं चन्दनं स्थापयेत्पुरः ॥३७॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वाभिषिञ्चेत्कुशकूर्चकैः।
रुग्णं तदा विनश्येत्तु ग्रहोपग्रहदूषणम् ॥३८॥
भूतप्रेतपिशाचादिभूतबाधादि तत्क्षणात्।
अपस्मारादयो रोगा वन्ध्या चेल्लभते सुतम्।
कुमारी पतिमाप्नोति कन्यार्थ्याप्नोति कन्यकाम् ॥३९॥

कुंकुम एवं कपूर-मिश्रित चन्दन को अपने सामने रखकर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके कुशगुच्छों द्वारा उससे अभिषेक करने से ग्रहों एवं उपग्रहों के दोष-स्वरूप उत्पन्न रोग; भूत, प्रेत, पिशाचादि से उत्पन्न बाधायें एवं अपस्मार आदि रोग तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं; वन्ध्या स्त्री पुत्र प्राप्त करती है; कुमारी कन्या को पति प्राप्त होता है और अविवाहित पुरुष को कन्या की प्राप्ति होती है।।३७-३९।।

नाभिमात्रजले स्थित्वा ह्युदयास्तमये जपेत्।
अष्टौ सहस्राणि तदा महावृष्टिर्नगैर्दिनैः ॥४०॥
वञ्जुलस्य समिद्भिस्तु हुनेदष्टसहस्रकम्।
दुग्धाक्ताभिर्महावृष्टिः सप्ताहात्तु प्रजायते।
घृतेन हवनं कार्यमेवं सर्वसुखाप्तये ॥४१॥

नाभि-पर्यन्त जल में खड़े होकर आठ दिनों तक प्रतिदिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक आठ हजार मन्त्रजप करने से महावृष्टि होती है। वंजुल की समिधा को घृतसिक्त करके आठ हजार हवन करने से एक सप्ताह के भीतर भारी वर्षा होती है। इसी प्रकार समस्त सुखों की प्राप्ति के लिये केवल घृत से हवन करना चाहिये।।४०-४१।।

पञ्चर्चस्यानुवाकस्य वक्ष्यमाणस्य देवता।
कृत्या छन्दस्त्वनुष्टुप्स्यान्मुनिः प्रत्यङ्गिरा मतः ॥४२॥

यो मे करालि प्रद्वारे योगारे यो निवेशने।
ये मे केशा नखेनैव रञ्जने दन्तधावने ॥४३॥
प्रतिसहस्त्रतिधावकुमार इव पितृगृहान्।
मूर्द्धानमेषां स्फोट्य पदमेषां कुलाञ्जलिः ॥४४॥
एतेन संजस नूनवेमधुनग्नेसनासः।
आविर्धतानुच्छो विधं भूत्रैवस्यमस्यदनं परमस्य ॥४५॥
ये नोऽरविन्दश्चरितासो अग्ने जहुर्मर्त्यासो अमृतं वदन्तः।
तेषां चायूँष्यर्चिषा जातवेदः शुष्कं तुष्टं क्षमभिसंदस्व ॥४६॥
रुद्रस्वरूपे रुद्रेशि कृष्णवर्णे भयंकरि।
देवि देवि महादेवि महाशत्रुर्विनश्यतु ॥४७॥
स्पृष्ट्वाश्वत्थस्य वृक्षं तु चाष्टोत्तरशतं जपेत्।
शनैश्चरदिने चायुरारोग्यैश्वर्य्यमाप्नुयात् ॥४८॥

मूल में पठित 'यो मे करालि.........महाशत्रुर्विनश्यतु'—इन पाँच ऋचाओं वाले अनुवाक के ऋषि प्रत्यङ्गिरा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। शनिवार के दिन पीपल के वृक्ष को स्पर्श करके जो इन पाँच ऋचाओं का एक सौ आठ बार जप करता है, वह आयु, आरोग्य एवं ऐश्वर्य प्राप्त करता है।।४२-४८।।

संस्मृत्य च मुनिच्छन्दोदेवतादि ततः परम्।
न्यासश्चापि प्रकर्त्तव्यो मन्त्राणामिति निर्णयः ॥४९॥
खं फड् जहि मम कृत्ये विधूमाग्निसमप्रभे।
देवि देवि महादेवि मम शत्रुर्विनश्यतु ॥५०॥
आदौ पादेन चार्धेन नामयुक्तेन चाचरेत्।
षडङ्गान्यङ्गुलिन्यासं वक्ष्ये नामान्यनुक्रमात् ॥५१॥
कृष्णाम्बरे च हृदये सिंहवाहिनि शीर्षके।
महाबले शिखायां च महाभैरवि वर्म्मणि ॥५२॥
सर्वकृत्योच्छेदिनीति नेत्रयोरीरितं सुराः।
तथा सर्वपरोन्मुक्तमन्त्रच्छेदिन्यथास्त्रके ॥५३॥
आत्मरक्षां च दिग्बन्धं भूतशुद्ध्यस्त्रसंस्थितिम्।
सर्वांश्च मातृकान्यासान् पूर्वमेव समाचरेत् ॥५४॥

मन्त्रों के ऋषि, छन्द, देवता आदि का स्मरण करने के पश्चात् उनका न्यास करना

चाहिये, यही विधि है। मन्त्र है—खं फड् जहि मम कृत्ये विधूमाग्निसमप्रभे। देवि देवि महादेवि मम शत्रुर्विनश्यतु। इस ऋचा के पहले अर्द्धपाद में शत्रु का नाम जोड़ कर जप करना चाहिये। अब करन्यास एवं अङ्गन्यास को क्रमशः कहा जा रहा है। वह इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ ह्रीं कृष्णाम्बरे अंगुष्ठाभ्यां नमः। हृदयाय नमः।

ॐ ह्रीं सिंहवाहिनि तर्जनीभ्यां नमः। शिरसे स्वाहा।

ॐ ह्रीं महाबले मध्यमाभ्यां नमः। शिखायै वषट्।

ॐ ह्रीं महाभैरवि अनामिकाभ्यां नमः। कवचाय हुम्।

ॐ ह्रीं सर्वकृत्योच्छेदिनि कनिष्ठाभ्यां नमः। नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ ह्रीं सर्वपरोन्मुक्तमन्त्रच्छेदिनि करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अस्त्राय फट्।

इस प्रकार करन्यास एवं अंगन्यास करने के उपरान्त आत्मरक्षा, दिग्बन्धन, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा एवं समस्त मातृकान्यासों को पूर्ववत् कर चाहिये।।४९-५४।।

पठेदादौ च गायत्रीं पश्चादेनम्मनुं जपेत्।
ततः पठेज्जातवेदं पुनर्गायत्रिकां पठेत्।।५५।।
पुनर्मूलं ततस्तामग्निवर्णां तपसेत्यृचम्।
गायत्रीपूर्वकं मूलमग्रे त्वं पारयेति च।।५६।।
पुनस्तामृचिकां मूलं विश्वानरो दुर्जुहोति।
गायत्रीपूर्वकं मूलं यजनाजिनमित्यृचम्।।५७।।
अनेन तु प्रकारेण सहस्रान्नियुतावधि।
जपेन्मन्त्रं तारतम्ये कामनाया विचार्य्य च।।५८।।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति सर्वथा।
प्रयोगस्य विधौ कामः सिद्ध्यत्येव न संशयः।।५९।।

सर्वप्रथम गायत्री का पाठ करने के बाद 'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।' मन्त्र का जप करना चाहिये। तदनन्तर 'जातवेदसे सुनवाम सोमम्' मन्त्र को पढ़कर पुनः गायत्री मन्त्र का पाठ करना चाहिये। पुनः 'त्र्यम्बकं यजामहे' को पढ़कर 'तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्। दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये सुतर सितरसे नमः।' इस ऋचा का पाठ करना चाहिये। पुनः गायत्री (तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्) के साथ मूल मन्त्र (त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। ऊर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्) पढ़ने के पश्चात् 'त्वं पारयानव्य' मन्त्र पढ़कर पुनः क्रमशः पूर्वोक्त 'तामग्निवर्णां',

'त्र्यम्बकं यजामहे' को पढ़ने के बाद 'विश्वानर दुर्जुहोति' मन्त्र को पढ़ना चाहिये। इसके बाद पुनः गायत्री-सहित मूल मन्त्र को पढ़कर 'यजनाजिनम्' ऋचा का पाठ करना चाहिये। इस प्रकार अपनी कामना के अनुरूप विचार करके एक हजार से लेकर एक लाख तक की संख्या में मन्त्रजप करना चाहिये। इस विधि का पालन करने वाला साधक जो-जो कामनायें करता है, उन्हें वह अवश्य प्राप्त करता है। विधिपूर्वक प्रयोग करने से कामना अवश्य सिद्ध होती है; इसमें कोई संशय नहीं है।।५५-५९।।

पञ्चर्चस्यानुवाकस्य प्रयोगाः पूर्वमीरिताः ।
पञ्चर्चाभिश्च पञ्चाङ्गं पञ्चम्या पुनरस्त्रकम् ।।६०।।
सर्वत्रापि जपस्यादौ चाष्टोत्तरशतं जपेत् ।
इमामृचं न वै सोऽपि बाध्यते मदनादिकैः ।।६१।।
उत्कामदन्तु स्तोमाः कृणुश्च रोषे आद्रिवः ।
अवब्रह्म द्विषो जहि ।।६२।।
स्वेच्छादयोऽत्र दुष्टाश्च धर्मविघ्नं प्रकुर्वते ।
स्वास्थ्येन जपतस्तस्य शत्रुनाशोऽस्ति तत्र च ।।६३।।

पाँच ऋचाओं वाले इस अनुवाक के प्रयोगों को पूर्व में ही कह दिया गया है। इन पाँचों ऋचाओं से पंचाङ्गन्यास एवं पाँचवीं से अस्त्रन्यास करना चाहिये। सभी अनुष्ठानों में जप के पूर्व इन ऋचाओं का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। 'उत्कामदन्तु स्तोमाः कृणुश्च रोषे आद्रिवः। अवब्रह्म द्विषो जहि।' इस ऋचा के प्रभाव से वह साधक कामदेव अदि द्वारा बाधित नहीं होता। यहाँ पर स्वेच्छा आदि दोष होते हैं, जो धर्मपालन में विघ्न करते हैं। उस स्थिति में स्वस्थ मन से जप करने पर शत्रुओं का विनाश अवश्य होता है।।६०-६३।।

ग्रन्थिकर्णे विरूपाक्षि स्तम्बस्तनि महोदरि ।
जहि शत्रूंस्त्रिशूलेन कुप्यस्व पिब शोणितम् ।।६४।।
अङ्गिरास्तु मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप्कृत्या च देवता ।
समस्तरोगनाशार्थं नियोगो नन्दिवृद्धये ।।६५।।

'ग्रन्थिकर्णे विरूपाक्षि स्तम्बस्तनि महोदरि। जहि शत्रूंस्त्रिशूलेन कुप्यस्व पिब शोणितम्।' इस मन्त्र के ऋषि अङ्गिरा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। समस्त रोगों के विनाश एवं आनन्द की वृद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

कुबेरन्ते मुखं रौद्रं नन्दिमानन्दिमावह ।
द्वारं मृत्युं भयं क्रोधं विषं नाशय नोऽक्षरे ।।६६।।

पादैरथ द्वयेनापि कृष्णाम्बरादिनामभिः ।
युक्तैश्च पूर्ववत्कुर्य्यादङ्गुल्यादिषडङ्गकम् ॥६७॥
धार्य्यं पूर्ववदेव स्यादात्मरक्षादिकं तथा ।
गायत्र्यादिमतैस्तत्तु प्रागवत्सन्दर्भितं मतम् ॥६८॥
जपेद्दशशतं चाष्टसहस्रं कार्य्यगौरवात् ।
अवश्यं जायते कार्य्यसिद्धिः पुण्या गिरां त्वियम् ॥६९॥
विक्षिप्तता मनोर्दोषे गुरुदोषे कदर्थिता ।
आधिव्याधी देवदोषे तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥७०॥

'कुबेरन्ते मुखं रौद्रं नन्दिमानन्दिमावह। द्वारं मृत्युं भयं क्रोधं विषं नाशय नोऽक्षरे।' इस मन्त्र के दो पादों को कृष्णाम्बरादि नामों से संयुक्त करके पूर्ववत् करन्यास और अङ्गन्यास करना चाहिये, जो इस प्रकार होता है—

ॐ ह्रीं कुबेरन्ते मुखं कृष्णाम्बरे अंगुष्ठाभ्यां नमः। हृदयाय नमः।
ॐ ह्रीं रौद्रं नन्दि सिंहवाहिनि तर्जनीभ्यां नमः। शिरसे स्वाहा।
ॐ ह्रीं मानन्दिमावह महाबले मध्यमाभ्यां नमः। शिखायै वषट्।
ॐ ह्रीं द्वारं मृत्युं महाभैरवि अनामिकाभ्यां नमः। कवचाय हुम्।
ॐ ह्रीं भयं क्रोधं सर्वकृत्योच्छेदिनि तर्जनीभ्यां नमः। नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ ह्रीं सर्वपरोन्मुक्तमन्त्रच्छेदिनि करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अस्त्राय फट्।

पूर्ववत् गायत्री आदि द्वारा, जो कि पूर्व में कहा गया है, आत्मरक्षादि करके कार्य की गुरुता-लघुता के अनुसार एक हजार से लेकर आठ हजार तक जप करना चाहिये। ऐसा करने से अवश्य ही कार्यसिद्धि होती है; क्योंकि यह पुनीत वाणी है।

जप के समय साधक के मानसिक दोष से विक्षिप्तता, गुरुदोष से कदर्थिता एवं देवदोष से आधि-व्याधि होती है; अतः उक्त स्थिति में जप का परित्याग कर देना चाहिये। देवदोष में यह जप नहीं करना चाहिये।।६६-७०।।

गुरुत्यागविधिः

पूर्वमुक्तो मनुत्यागो गुरुत्यागस्तथोच्यते ।
मन्त्रो यद्देवतायाः स्यात्तिथौ तस्यां भवेद्भुवि ॥७१॥
गुरुत्यागस्य सङ्कल्पं कुर्य्यात्तद्दोषपूर्वकम् ।
गुर्वन्तरं करोमीति नरं वा देवमेव च ॥७२॥
राशिकूटेन संशुद्धं देवताष्टकमध्यतः ।
कुर्य्यादेकं गुरुं तत्र पूर्वाभावे परं परम् ॥७३॥

आपो हि दक्षिणामूर्तिः सूर्य्यश्चन्द्रो हुताशनः।
मन्त्रावरणदेवाश्च जातिदेवः कुलेश्वरः ।।७४।।
देशदेव इमे त्वष्टौ नरो वा लक्षणान्वितः।
गुरोर्युग्मं पूजयित्वा प्रणमेद्दण्डवत्क्षितौ ।।७५।।

गुरु-त्याग-विधि—मन्त्रत्याग की विधि का निरूपण पहले कर दिया गया है; अब गुरु के त्याग की विधि का निरूपण किया जा रहा है। जिस देवता का मन्त्र हो, पृथिवी पर उसी तिथि को गुरुत्याग करना चाहिये। गुरु के दोष का उल्लेख करते हुये गुरुत्याग का संकल्प करना चाहिये। 'दूसरा गुरु बनाता हूँ' यह भी उक्त संकल्प में जोड़ते हुये किसी मनुष्य को अथवा आठ देवताओं में से राशिकूट द्वारा सम्यक् रूपेण शुद्ध किसी देवता को गुरु बनाना चाहिये। वे आठ देवता हैं—दक्षिणामूर्ति, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, मन्त्रावरणदेव, जातिदेव, कुलेश्वर एवं देशदेव। इन आठ देवों अथवा समस्त लक्षणों से समन्वित मनुष्य को गुरु मानकर दोनों गुरुओं का पूजन करने के बाद उन्हें भूमि पर दण्डवत् लेट कर प्रणाम करना चाहिये।।७१-७५।।

देवतानाम सम्प्रोच्य द्रव्यं तन्नामतो यजेत्।
त्रिपर्णस्य पलाशस्य प्राग्रे मुष्टेस्तु दक्षिणे ।।७६।।
प्रादेशप्रमिते चात्र कुशानास्तीर्य्य मूर्द्धनि।
तोयपूर्णं घटं प्राच्यां दुग्धपूर्णन्तु पश्चिमे ।।७७।।
उत्तरे तु सुरापूर्णं क्रमादेतत्प्रकीर्तितम्।
प्राग्गुरोश्चापि चैतन्यं प्रविष्टं नूतने गुरौ।
इति सञ्चिन्त्य शिष्यस्तु वेदिकां कारयेत्सुधीः ।।७८।।

देवता के नाम का उच्चारण करके उनके नाम से उपचारों को समर्पित करते हुये पूजन करना चाहिये। पलाश के तीन पत्तों को दाँयें हाथ से पकड़कर आगे करके एक-एक बित्ते लम्बे कुशों को शिर पर रखना चाहिये। जलपूर्ण कलश को पूर्व दिशा में एवं दुग्धपूर्ण कलश को पश्चिम दिशा में रखना चाहिये। सुरापूर्ण कलश को उत्तर दिशा में स्थापित करना चाहिये। ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि 'पूर्व गुरु भी चैतन्य होकर नये गुरु में प्रविष्ट हो गये हैं' इस प्रकार का चिन्तन करके शिष्य को वेदी का निर्माण करना चाहिये।।७६-७८।।

तत्र मन्त्राक्षरोपेतं यच्च कोणचतुष्टयम्।
विहाय देवीमावाह्य सम्पूज्य हवनं चरेत् ।।७९।।
आज्येन मूलमन्त्रेण सम्पातं यन्त्रके क्षिपेत्।
अष्टोत्तरशतं पश्चात्तद्यन्त्रं निखनेद् भुवि ।।८०।।

गृहग्रामादिराष्ट्राणां रक्षार्थं तत्र तत्र च।
नक्षत्रग्रहराशीनां लोकेशानां बलिं हरेत् ॥८१॥
विहिता यत्र रक्षेयं वर्धन्ते तत्र सम्पदः।
क्षुद्रग्रहमहारोगचौरभूतसरीसृपाः।
अमुना विलयं यान्ति विधिना नात्र संशयः ॥८२॥
जातवेदसमन्त्रस्य यन्त्रमेतदुदीरितम्।
वैदिकैरेव कर्तव्यमन्यथा दुःखदं भवेत् ॥८३॥

उस वेदी के मन्त्राक्षरों से समन्वित चारो कोणों को छोड़कर मध्य में देवी का आवाहन करने के उपरान्त सम्यक् रूप से उनका पूजन करने के बाद मूल मन्त्र के द्वारा गोघृत से एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये। हवन से अवशिष्ट गोघृत को यन्त्र पर ग़िरा देना चाहिये। तदनन्तर उस यन्त्र को गड्ढा खोदकर गृह, ग्रामादि के साथ-साथ राष्ट्र की भी रक्षा के लिये गाड़ देना चाहिये। इसके बाद तत्तत् स्थानों पर नक्षत्र, ग्रह, राशि और लोकपालों को बलि प्रदान करनी चाहिये।

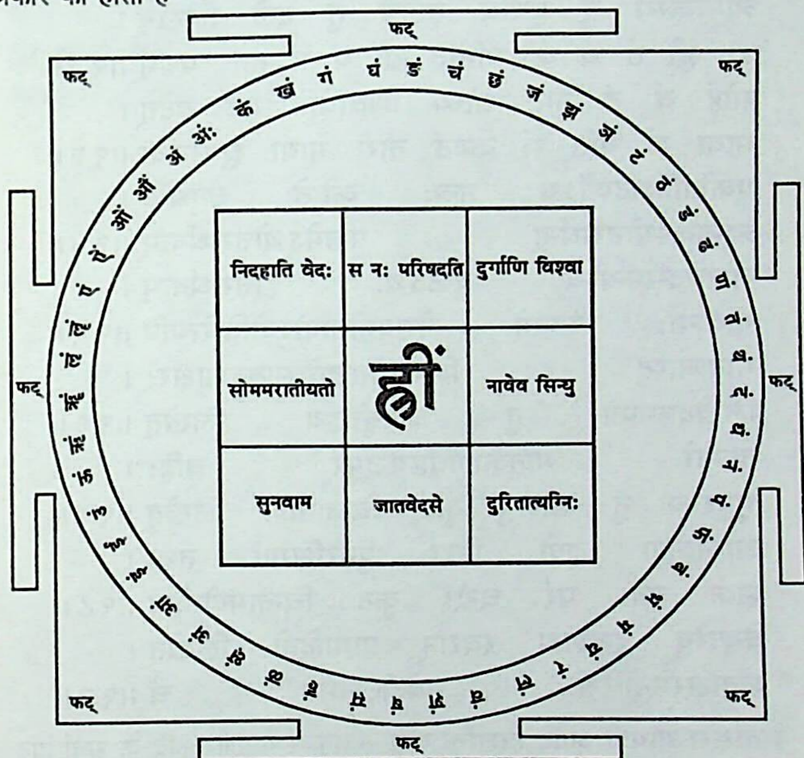
जहाँ इस प्रकार की रक्षा का विधान किया जाता है, निःसन्दिग्ध रूप से वहाँ सम्पदाओं की वृद्धि होती है तथा अशुभ ग्रह, महारोग, चोर, भूत, साँप, बिच्छू आदि नाश को प्राप्त हो जाते हैं।

यह जातवेदस मन्त्र का यन्त्र कहा गया; इस यन्त्र का पूजन वैदिकों को ही करना चाहिये। दूसरों के द्वारा पूजित होने पर यह यन्त्र दुःख प्रदान करने वाला होता है।।७९-८३।।

जातवेदसमन्त्रस्य विपरीतस्य ये सुराः।
अंशैः पादाः समुद्दिष्टास्तेषां यन्त्रं वदाम्यहम् ॥८४॥
नवकोष्ठयुतं कुर्य्याच्चतुरस्त्रं तु मण्डलम्।
ससन्ध्यां विलिखेन्मायां मध्यकोष्ठे त्वधः स्थितात् ॥८५॥
कोष्ठात्क्रमेण मन्त्रस्य लिखेत्पादाष्टकं ततः।
प्रादक्षिण्येन तद्बाह्ये वृत्तयुग्मान्तरे लिखेत् ॥८६॥
मातृकार्णैः सुसंवेष्ट्य बहिर्भूपुरमालिखेत्।
भुवि चास्त्रमिदं यन्त्रं भूतरोगनिवारणम् ॥८७॥
रक्षायुःकीर्तिधीश्रीदं लिखेत् स्वर्णादिपत्रके।
धारयेद्बाहुमूले च कण्ठे वा मस्तकेऽपि वा ॥८८॥

जातवेदस मन्त्र के विपरीत उसके पादांशों के जो देवता कहे गये हैं, उनके यन्त्र

को अब मैं कहता हूँ। नव कोष्ठों से समन्वित चतुरस्र मण्डल बनाकर उसके मध्य कोष्ठ में 'ह्रीं' का अंकन करने के उपरान्त उससे नीचे वाले कोष्ठ से प्रारम्भ करके क्रमषः मन्त्र के आठ पादों को प्रादक्षिण्य क्रम से अंकित करना चाहिये। उसके बाहर दो वृत्त बनाकर दोनों वृत्तों के अन्तराल में मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। उसके बाहर भूपुर बनाकर उसमें अस्त्रमन्त्र को लिखना चाहिये। यन्त्र का स्पष्ट स्वरूप इस प्रकार का होता है—



इस यन्त्र से भूतों एवं रोगों का निवारण होता है; साथ ही यह यन्त्र रक्षा, आयु, कीर्ति एवं लक्ष्मी प्रदान करने वाला होता है। इसे स्वर्ण आदि के पत्र पर लिखकर बाहुमूल में, कण्ठ में अथवा मस्तक पर धारण करना चाहिये।।८४-८८।।

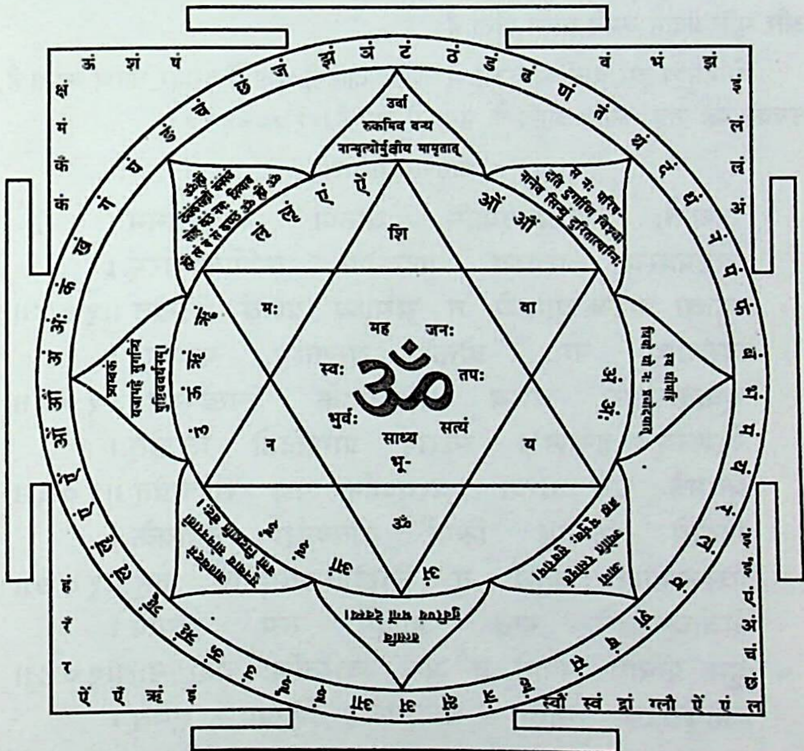
गायत्र्यादित्रिशक्तियन्त्रोद्धारः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गायत्र्यादित्रिशक्तिकम्।
यन्त्रं सर्वार्थदं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत्।।८९।।
तस्य मध्ये तु षट्कोणं तन्मध्ये साध्यसंयुतम्।

लिखेत्तारं ततः कुर्य्यात् सप्तव्याहृतिवेष्टितम् ।
षट्कोणेष्वेव तारादि शिवपञ्चाक्षरस्य तु ॥९०॥
एकैकमक्षरं लेख्यं तदग्रेषु च शुद्धितः ।
पूर्वार्धञ्चैव गायत्र्याः प्रथमे पत्रके लिखेत् ।
जातवेदसमन्त्रस्य पूर्वार्धन्तु द्वितीयके ॥९१॥
त्र्यम्बकस्य तु पूर्वार्धं तृतीये तु दले लिखेत् ।
ॐ ह्रीं ठं चं कं समिति ह्यौं यं मं ततः पचम् ॥९२॥
सोहं वं ठं नमः प्रोच्य शिवायेति पदं वदेत् ।
माया लं येति सं कण्ठं तारो माया ध्रुवस्तथा ॥९३॥
एकोनत्रिंशदर्णोऽयं मन्त्रः कोष्ठे चतुर्थके ।
त्र्यम्बकस्योत्तरार्धन्तु पञ्चमेऽथोत्तरार्धकम् ॥९४॥
जातवेदसमन्त्रस्य षष्ठेऽथो ह्युत्तरार्धकम् ।
गायत्र्याः सप्तमे लेख्यमोमापोज्योतिरित्यपि ॥९५॥
गायत्र्यास्तु शिरस्त्वेतद्भवेत्सप्तदशाक्षरः ।
लिखेदष्टमपत्रे तु बहिर्वृत्तद्वयं लिखेत् ॥९६॥
तदन्तरे मातृकार्णैर्वेष्टयेद्भूपुरं बहिः ।
भूपुरस्य तु कोणेषु कूटं चिन्तामणिं लिखेत् ॥९७॥
अग्निर्ब्रह्मा वृषो निद्रा पुनरक्षिगतं तथा ।
शक्रं ततः परं चन्द्रैः कूटं चिन्तामणेर्महत् ॥९८॥
केशरेषु द्वन्द्वशश्च स्वरान् प्रागादितो लिखेत् ।
शताक्षरमनोर्यन्त्रं भवेदीदृशमेव च ॥९९॥

शताक्षरा गायत्री आदि त्रिशक्ति यन्त्र—अब मैं गायत्री आदि के सर्वार्थप्रद त्रिशक्तियन्त्र को कहता हूँ। एतदर्थ एक अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में षट्कोण बनाने के पश्चात् उस षट्कोण के मध्य में साध्य-युक्त 'ॐ' का अंकन करे उसे सप्त व्याहृतियों (भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं) से चारो ओर से वेष्टित कर देना चाहिये। षट्कोणों में ही आदि में तार (ॐ) समन्वित शिवपञ्चाक्षर मन्त्र (नमः शिवाय) के छः अक्षरों को एक-एक करके लिखना चाहिये। तदनन्तर अष्टदल के प्रथम पत्र में गायत्री मन्त्र का पूर्वार्द्ध, द्वितीय पत्र में जातवेदसमन्त्र का पूर्वार्द्ध, तृतीय पत्र में त्र्यम्बक मन्त्र का पूर्वार्द्ध, चतुर्थ पत्र में 'ॐ ह्रीं ठं चं कं सं मं ह्यौं यं मं पं चं सोहं वं ठं नमः शिवाय ह्रीं लं यं सं कं ठं ॐ ह्रीं' यह उनतीस वर्ण वाला मन्त्र,

पञ्चम पत्र में त्र्यम्बकमन्त्र का उत्तरार्द्ध, षष्ठ पत्र में जातवेदस मन्त्र का उतरार्द्ध, सप्तम पत्र में गायत्री मन्त्र का उत्तरार्ध एवं अष्टम पत्र में गायत्री के सत्रह वर्ण वाले शिरोमन्त्र (आपो ज्योतिरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवु:स्वरोम्) का अंकन करके उसके बाहर दो वृत्त बनाकर दोनों के अन्तराल में मातृकावर्णों का अंकन करना चाहिये। दोनों वृत्तों के बाहर भूपुर बनाकर उसके चारो कोणों में चिन्तामणि कूटों को लिखना चाहिये। ये कूट हैं—१. इं ॠं एं ऐं रं रे हैं। २. कं कँ मं क्षं ऊं शं षं। ३. वं भं झं इं लं ऌं अं। ४. इं ईं एं अं चं छं लं एं ऐं ग्लौं द्रां स्वं स्वौं। तदनन्तर अष्टदल के केशरों में दो-दो स्वरों को पूर्व से प्रारम्भ करके आठो दिशाओं में अंकित करना चाहिये। शताक्षर मन्त्र का यन्त्र इसी प्रकार का होता है।।८९-९९।।



धारयेद्योऽयमारोग्यधराधान्यधनादिकम् ।
लब्ध्वा च निश्चलां लक्ष्मीं स जीवेच्छरदां शतम् ।।१००।।
ताम्रादिपत्रेऽथालिख्य जप्त्वा चाष्टोत्तरं शतम् ।
हुत्वा घृतेन तावत्तु कृत्वा सम्पातमेव च ।।१०१।।

तावद्भूयो जपित्वा च पुरग्रामाकरादिषु।
स्थापितं यन्त्रमेतत्तु गोसत्यारोग्यपुष्टिदम् ॥१०२॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ धारितं यन्त्ररैः सदा।
कुर्य्याच्च रक्षणं तेषां वैरिव्याघ्रादिभीतितः ॥१०३॥

जो इस यन्त्र को धारण करता है, वह आरोग्य, भूमि, धन-धान्य आदि के साथ-साथ अविचल लक्ष्मी को प्राप्त करके सौ वर्षों तक जीवित रहता है। इसे ताम्र आदि के पत्र पर अंकित कराकर एक सौ आठ बार मन्त्रजप करके घृत से एक सौ आठ बार हवन करने के पश्चात् अवशिष्ट घृत का यन्त्र पर सम्पात करने के बाद पुनः जप करके नगर, ग्राम, आकर (खजाना) आदि में स्थापित करने से यह गौ, सत्य, आरोग्य और पुष्टि प्रदान करने वाला होता है।

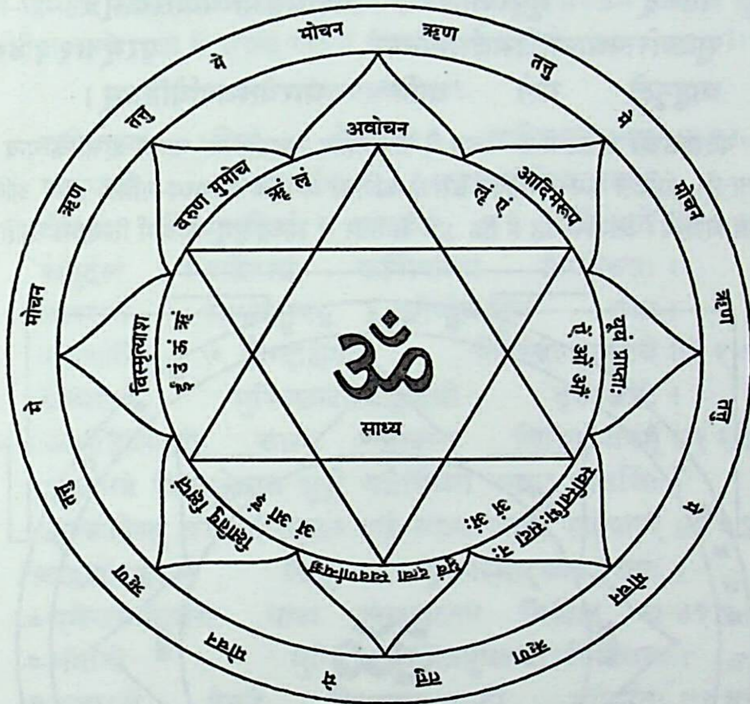
जो मनुष्य इस यन्त्र को कण्ठ में अथवा दाहिनी भुजा में बराबर धारण करता है, उसकी यह शत्रु, व्याघ्र आदि के भयों से रक्षा है।।१००-१०३।।

वारुणयन्त्रोद्धारः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वारुणं यन्त्रमुत्तमम्।
अष्टपत्रस्य पद्मस्य षट्कोणं कर्णिकान्तरम्।
कृत्वा षट्कोणमध्ये तु ससाध्यं प्रणवं लिखेत् ॥१०४॥
वरुणाय नमः प्रोक्तो वरुणस्य षडक्षरः।
एकैकमक्षरं चास्य कोणषट्के लिखेन्मनोः ॥१०५॥
केशरेषु द्वन्द्वशश्च स्वरान् प्रागादितो लिखेत्।
पूर्वपत्रे ध्रुवं दत्त्वा स्वरवर्णान् पञ्च संलिखेत् ॥१०६॥
द्वितीये क्षितिषु क्षिप्तं तोवर्णांश्च तृतीयके।
विस्मृत्यांशं चतुर्थे तु लिखेद्वरुणम्मुमोच तत् ॥१०७॥
अवोचन्पञ्चमे षष्ठे आदिमे रूप इत्यपि।
यूयं प्राप्ताः सप्तमे तु अन्ते स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०८॥
बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा तयोर्मध्ये लिखेद् ध्रुवम्।

वारुण यन्त्र—अब मैं अत्यन्त उत्तम वारुण यन्त्र को कहता हूँ। अष्टदल कमल में षट्कोण एवं कर्णिका बनाकर षट्कोण के मध्य में साध्य-सहित प्रणव (ॐ) लिखने के बाद वरुण के षडक्षर मन्त्र 'वरुणाय नमः' के एक-एक अक्षरों को षट्कोण के छः कोणों में लिखकर केशरों में पूर्व से प्रारम्भ करते हुये दो-दो स्वरों को लिखना चाहिये। तदनन्तर अष्टदल के प्रथम पत्र में 'ॐ ध्रुवं दत्त्वा स्ववर्णान्पञ्च' द्वितीय पत्र

में 'क्षितिषु क्षिप्तं तो', तृतीय पत्र में 'विस्मृत्याशं', चतुर्थ पत्र में 'वरुणं मुमोच', पञ्चम पत्र में 'अवोचन्', षष्ठ पत्र में 'आदिमे रूप', सप्तम पत्र में 'यूयं प्राप्ताः' एवं अष्टम पत्र में 'स्वस्तिभिः सदा नः' लिखना चाहिये। तदनन्तर अष्टदल के बाहर दो वृत्त बनाकर उनके मध्य में 'ध्रुवम्' मन्त्र को लिखना चाहिये।।१०४-१०८।।



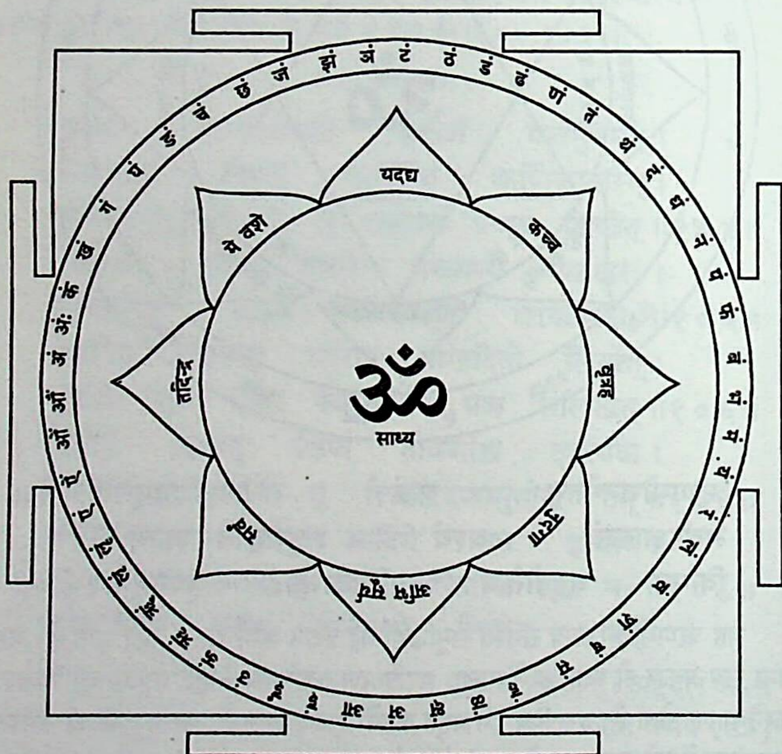
ऋणमोचनमेतत्तु यन्त्रं सर्वसमृद्धिदम् ।।१०९।।
सर्वरक्षाकरं वश्यं शत्रुसङ्घविनाशनम् ।
किमत्र बहुनोक्तेन वाञ्छितार्थप्रदं नृणाम् ।।११०।।

यह ऋणमोचन यन्त्र समस्त समृद्धियों को प्रदान करने वाला कहा गया है। यह यन्त्र सब प्रकार से रक्षा करने वाला, वशीकरण करने वाला एवं शत्रुओं का विनाश करने वाला होता है। इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ है; यह मनुष्यों की समस्त आकांक्षाओं को प्रदान करने वाला होता है।।१०९-११०।।

यदद्यकच्चेति ऋचा यन्त्रं वक्ष्यामि भाग्यदम् ।
कर्णिकायां साध्यगर्भं तारं पत्रेषु चाष्टसु ।।१११।।

यदद्य प्रथमे कच्च द्वितीये नत्रवृत्रह।
चतुर्थे नुदगाग्रे तु अभिसूर्य्याथ षष्ठके ॥११२॥
शर्वन्तु सप्तमे त्विन्द्रमष्टमे च वशे लिखेत्।
बाह्ये वृत्तद्वयं कृत्वा मातृकार्णास्तदन्तरे ॥११३॥
वेष्टयेद् भूपुरेणाथ वश्यसौभाग्यकारकम्।
सुवर्णरत्नधान्यादिसर्वसम्पत्करं परम् ॥११४॥
बाहुमूले गले वापि धारयेत्स्वर्णवेष्टितम्।

यदद्यकच्च ऋचा यन्त्र—अब मैं सौभाग्यप्रद 'यदद्यकच्च' नामक ऋचा के यन्त्र को कहता हूँ। अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका के मध्य में साध्य-गर्भित 'ॐ' अंकित करना चाहिये। आशय यह है कि ॐ के उदर में साध्यनाम या कर्म लिखना चाहिये।



इसके पश्चात् कमल के आठ पत्रों में से प्रथम पत्र में 'यदद्य', द्वितीय पत्र में 'कच्च', तृतीय पत्र में 'वृत्रह', चतुर्थ पत्र में 'नुदगा', पञ्चम पत्र में 'अभिसूर्य', षष्ठ

पत्र में 'शर्वं', सप्तम पत्र में 'इन्द्रं' एवं अष्टम पत्र में 'वशे' लिखकर अष्टदल के बाहर दो वृत्त बनाकर वृत्तों के अन्तराल में मातृकावर्णों को लिखकर उसके बाहर भूपुर बनाकर उसे वेष्टित कर देना चाहिये।

यह श्रेष्ठ यन्त्र वशीकरण करने वाला, सौभाग्य प्रदान करने वाला एवं सुवर्ण-रत्न-धान्यादि समस्त सम्पदाओं को प्रदान करने वाला होता है। इस यन्त्र को सुवर्ण से वेष्टित करके भुजा में अथवा गले में धारण करना चाहिये।।१११-११४।।

गणेशमन्त्रयन्त्रोद्धारः

गणेशस्य प्रियं चैतत्तथा वाग्विभवप्रदम् ।।११५।।
मन्त्रमादौ प्रवक्ष्यामि महासम्पत्तिकारकम् ।
वैदिकं विष्णुगृहिणी भक्तानां तु विशिष्यते ।।११६।।
चतुर्दलं लिखेत्पद्मं कर्णिकायां लिखेत्ततः ।
तारगर्भं साध्यनाम दलेष्वेवेत्यृचं तथा ।
स्वाग्रादि प्राग्दक्षिणेन लिखेद्दलचतुष्टये ।।११७।।
वामदेवो मुनिश्छन्दस्त्रिष्टुब्देवो बृहस्पतिः ।
अभीष्टसिद्धये चास्य मन्त्रस्य विनियोजनम् ।।११८।।
श्वापित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पतेस्तु प्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।११९।।
तद्बाह्येऽष्टदले दिक्षु यूयमस्मादृचोऽङ्घ्रयः ।
एवेन्द्राग्नीत्यृचः पादा लेख्यास्तत्र विदिक्षु च ।।१२०।।
गौतमो मुनिराद्यायास्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निदेवता ।
इन्द्राग्नी देवते त्रिष्टुप्छन्दश्चन्द्रो मुनिर्मतः ।।१२१।।
यूयमस्मान्नवत वस्यो अच्छानि रंहतिभ्यो मरुतो मृगृवानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदाति जयत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।१२२।।
एवेन्द्राग्निपपिवीत्सा सूतस्य विश्वास्मभ्यं सञ्जपतं जनामि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।।१२३।।
तद्बाह्येऽष्टदलं कृत्वा क्रमात्तत्र तु संलिखेत् ।
त्वं सोमेति ऋचो वर्णाश्चोन्पञ्चाङ्गाब्धिशरर्तवः ।।१२४।।
वेदाः षट् षट् तदग्रेषु प्रजायतं ऋचस्तथा ।
लिखेद्वर्णान् वेदपञ्चसप्तसप्तगवेन्द्रषट् ।।१२५।।
अग्निर्मे गौतमः सोमस्त्रिष्टुबग्न्यादयो मताः ।
हिरण्यगर्भकस्त्रिष्टुम्मुन्याद्यास्तदग्रिमे ।।१२६।।

त्वं सोम प्रचिकिन्नो मनीषा त्वं रचिष्ठुमननेषि।
पन्थाम तवप्रणीति पितरो न इन्द्रो देवोद्यरन्नमभजन्त धीराः ॥१२७॥
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
युक्तामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१२८॥
वृत्तद्वयं बहिष्कृत्य तयोर्मध्ये च मातृकाः।
लेख्याः सबिन्दुकास्तस्य वेष्टनाकारतां गताः ॥१२९॥
तद्बहिश्चैव कोणेषु श्रीं-श्रीं-बीजमिदं लिखेत्।

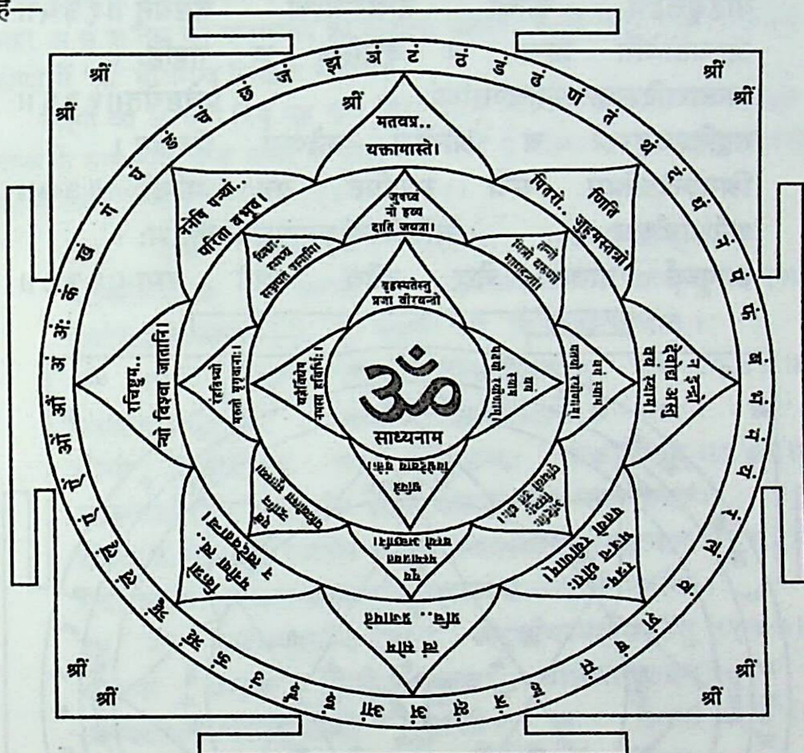
गणेशमन्त्र एवं यन्त्र—अब मैं सर्वप्रथम गणेश को अतिशय प्रिय वैदिक मन्त्र को कहता हूँ, जो कि वाणीरूपी वैभव प्रदान करने के साथ-साथ लक्ष्मी के भक्तों को विशेष रूप से महती सम्पत्ति को भी देने वाला है।

चतुर्दल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में ॐ के गर्भ में साध्यनाम लिखकर उसके चारो दलों में 'श्वापित्रे विश्वदेवाय वृङ्क्षे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पतेस्तु प्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्।' ऋचा के एक-एक पाद को अपने आगे वाले दल से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से लिखना चाहिये। इस ऋचा के ऋषि वामदेव, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता बृहस्पति कहे गये हैं तथा अभीष्टसिद्धि के लिये इस मन्त्र का विनियोग किया जाता है।

तदनन्तर चतुर्दल कमल के बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसकी चारो दिशाओं में 'यूयमस्मान्नवत वस्यो अच्छानि रंहतिभ्यो मरुतो मृगृवानाः। जुषध्वं नो हंव्यदाति जयत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम्।' ऋचा के एक-एक पाद को लिखकर विदिशाओं में 'एवेन्द्राग्निपपिवीत्सा सूतस्य विश्वास्मभ्यं सञ्ज्ञपतं जनामि। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।' ऋचा के चारो पादों को लिखना चाहिये। उपर्युक्त दोनों मन्त्रों में से प्रथम मन्त्र के ऋषि गौतम, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता अग्नि तथा द्वितीय मन्त्र के ऋषि चन्द्र, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता इन्द्राग्नि कहे गये है।

उसके बाहर पुनः अष्टदल बनाकर उसकी उसके आठो दलों में 'त्वं सोम प्रचिकिन्नो मनीषा त्वं रचिष्ठुमननेषि। पन्थाम तवप्रणीति पितरो न इन्द्रो देवोद्यरन्नमभजन्त धीराः।' एवं 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव। युक्तामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।' इन दोनों ऋचाओं के वर्णों को क्रमशः ५, ६, ४, ५, ४, ६, ६, ८ और ४, ५, ६, ६, ५, ५, ६, ६ की संख्या में लिखना चाहिये। उक्त ऋचाओं में प्रथम ऋचा (त्वं सोम प्रचिकिन्नो०) के ऋषि गौतम, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता सोम तथा द्वितीय ऋचा (प्रजापते न) के ऋषि हिरण्यगर्भ, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता अग्नि कहे गये हैं।

पुनः उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उन दोनों के मध्य में बिन्दु-सहित मातृकाओं को वष्टित करने के आकार में लिखना चाहिये। उसके बाहर भूपुर बनाकर उसके कोणों में 'श्रीं श्रीं' इस बीजमन्त्र को लिखना चाहिये। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—

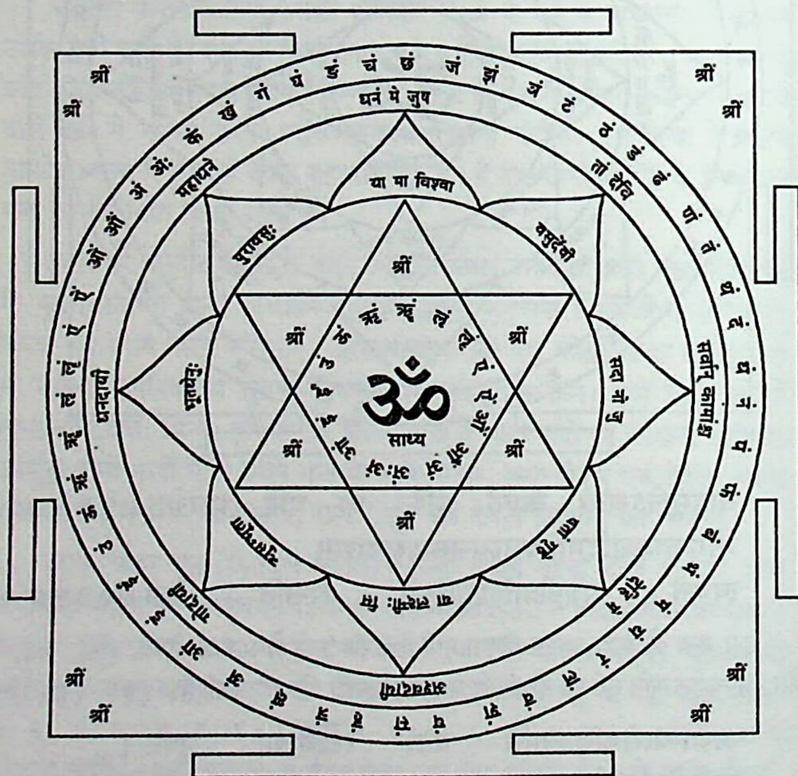


बाहुमूलेऽथवा कण्ठे मूर्ध्नि वा यदि धारयेत् ॥१३०॥
गोगजाश्वादिमहिषसस्यसम्पद्वसुन्धराम् ।
लभते पुत्रपौत्रादिशालिनीं सन्ततिं तदा ॥१३१॥

इस यन्त्र को भुजा, कण्ठ अथवा मूर्धा में धारण करने से साधक को गौ, हाथी, घोड़े, भैंस, धान्ययुक्त भूमि एवं पुत्र-पौत्रादि से समन्वित सन्तति की प्राप्ति होती है।।१३०-१३१।।

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं लक्ष्मीप्रदं सुराः ।
षट्कोणमध्ये साध्यस्य नामयुक्प्रणवं लिखेत् ॥१३२॥
लिखेत्कोणेषु श्रीबीजं बहिरष्टदलं लिखेत् ।
तत्केशरेषु विलिखेद् द्वन्द्वशश्च स्वरान् क्रमात् ॥१३३॥

या लक्ष्मीः सिन्धुसम्भूता भूतधेनुः पुरावसुः ।
या मा विश्वावसुर्देवी सदा नो जुषतां गृहे ॥१३४॥
चतुरश्चतुरो वर्णान् दलेष्वस्या ऋचो लिखेत् ।
बहिर्वृत्तद्वयं कृत्वा तयोरन्तश्च वेष्टयेत् ॥१३५॥
अश्वदायेति ऋचा च वृत्तमेकं च तद्बहिः ।
अकारादिक्षकारान्तवर्णैर्मध्यं प्रवेष्टयेत्॥१३६॥
तद्बहिश्चतुरस्त्रं च श्रीबीजं कोणगं लिखेत् ।
श्रियश्चैतत्प्रियं यन्त्रं स्थापितं यत्र मन्दिरे ॥१३७॥
धनैर्धान्यैश्च विविधैरन्यैश्चाश्वगवादिभिः ।
आपूर्य्य सततं चैव तत्रैव रमते रमा ॥१३८॥



लक्ष्मीप्रद यन्त्र—हे देवताओं! अब मैं दूसरे लक्ष्मीप्रद यन्त्र को कहता हूँ। षट्कोण के मध्य में साध्यनाम से समन्वित प्रणव (ॐ) को लिखकर उसके कोणों

में श्रीं बीज लिखने के पश्चात् उसके बाहर अष्टदल बनाकर उसके केशरों में दो-दो स्वरों को लिखने के बाद 'या लक्ष्मीः सिन्धुसम्भूता भूतधेनुः पुरावसुः। ॥ मा विश्वावसुर्देवी सदा नो जुषतां गृहे।' इस ऋचा के चार-चार वर्णों को उसके आठो दलों में लिखकर उसके बाहर दो वृत्त बनाकर दोनों के अन्तराल में 'अश्वदाय' ऋचा को लिखकर उसके बाहर अ से क्ष तक की मातृकाओं को लिखना चाहिये। उसके बाहर चतुरस्र बनाकर कोणों में 'श्रीं' बीजमन्त्र लिखना चाहिये।

लक्ष्मी को अत्यन्त प्रिय यह यन्त्र जिस घर में स्थापित रहता है, वह घर धन-धान्य के साथ-साथ नाना प्रकार के घोड़ों एवं गौओं से बराबर भरा रहता है एवं उसी घर में लक्ष्मी निवास करती हैं।।१३२-१३८।।

अथ यन्त्रं प्रवक्ष्यामि भारत्याः सर्वकामदम्।
षट्कोणमध्ये प्रणवं साध्यनामाभिगर्भितम्॥१३९॥
पूर्वादिकोणषट्के च ऐं क्लीं सौं विलिखेत्क्रमात्।
सौं क्लीं ऐमथ तद्बाह्ये लिखेदष्टदलं पुनः॥१४०॥
वक्ष्यमाण-ऋचोः पादाँल्लिखेत्प्रतिदले ततः।
सोमो मुनिर्देवता वा त्रिष्टुप्छन्दः प्रकीर्तितम्॥१४१॥
यद्वाग्वदन्त्यपि चेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्ज्जन्दुदुहे पयांसि कश्चित्स्विदस्याः परमञ्जगाम॥१४२॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो नुदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्ज्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपष्टुतैतु॥१४३॥
वृत्तानां पञ्चकं बाह्ये कृत्वा वीथीचतुष्टयम्।
ऋषिर्दीर्घतमास्त्रिष्टुप्छन्दो वाणी च देवता॥१४४॥
चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयां वाचो मनुष्या वदन्ति॥१४५॥
इमामृचं चाद्यवीथ्यां द्वितीयायां लिखेत्ततः।
विश्वामित्रो मुनिस्त्रिष्टुप्छन्दो वाग्देवता मता॥१४६॥
ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय यमदग्निदत्ता।
आसूर्य्यस्य दुहिता तताश्रवो देवेष्वमृतमर्ज्जया॥१४७॥
लिखेदिमामृचं पश्चात्तृतीयायां लिखेदथ।
प्राग्वन्मुन्यादिसर्वासां नियोगो वास्तुसिद्धये॥१४८॥
ससर्परीरभरत्तूपमेभ्योऽधिश्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु।
सापक्ष्या इनव्यमायुर्दधाना यां मे पुलस्तियमदग्नयो ददुः॥१४९॥

मातृकार्णैश्चतुर्थीन्तु वेष्टयित्वाथ तद्बहिः।
भूपुरस्तस्य कोणेषु वाग्भवं बीजमालिखेत् ॥१५०॥

सरस्वती-यन्त्र—अब सरस्वती के सर्वकामप्रद यन्त्र को कहता हूँ। षट्कोण बनाकर उसके मध्य् में साध्यनाम-गर्भित ॐ को अंकित करके छः कोणों में पूर्वकोण से प्रारम्भ करते हुये क्रमशः ऐं क्लीं सौं सौं क्लीं ऐं का अंकन करने के पश्चात् उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके आठो दलों में 'यद्वाग्वदन्त्यपि चेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्दा। चतस्र ऊर्ज्जन्दुदुहे पयांसि कश्चित्स्विदस्याः परमञ्जगाम। एवं 'देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो नुदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्ज्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपष्टुतैतु।' इन दो ऋचाओं के एक-एक पाद को अंकित करना चाहिये। इन दोनों ऋचाओं के ऋषि अथवा देवता सोम और त्रिष्टुप् छन्द कहा गया है।

उसके बाहर पाँच वृत्त से चार वीथियाँ बनाकर प्रथम वीथि में दीर्घतमा ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द एवं वाणी देवता वाली 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयां वाचो मनुष्या वदन्ति।' ऋचा को

लिखना चाहिये। द्वितीय वीथि में विश्वामित्र ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द एवं वाक् देवता वाली 'ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय यमदग्निदत्ता। आसूर्य्यस्य दुहिता तताश्रवो देवेष्वमृतमर्ज्जया।' ऋचा को लिखना चाहिये। तृतीय वीथि में भी पूर्ववत् ऋषि, छन्द एवं देवता वाली 'ससर्परीरभरत्तूपमेभ्योऽधिश्रव: पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु। सापक्ष्या इनव्यमायुर्दधाना यां गे पुलस्तियमदग्नयो ददु:।' ऋचा को लिखना चाहिये। तृतीय वीथि की इस ऋचा का वास्तुसिद्धि-हेतु विनियोग किया जाता है। तदनन्तर चतुर्थ वीथि में मातृकाओं को लिखने के पश्चात् उसके बाहर भूपुर बनाकर उसके कोणों में वाग्भव बीज (ऐं) लिखना चाहियें।।१३९-१५०।।

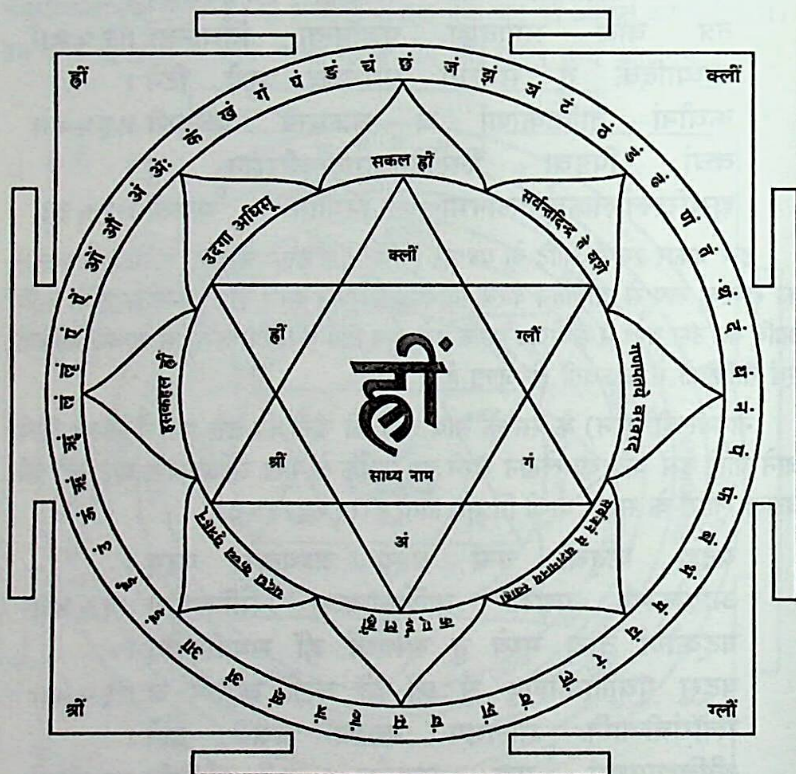
एवं स्वर्णादिके पत्रे लिखेद्वा यन्त्रमुत्तमम्।
तत्र वाचं समावाह्य पूजयित्वा विधानत: ॥१५१॥
ऋष्यादिकं तु संयोज्य धारयेच्च शुभे दिने।
कवीनां तार्किकाणां च चक्रवर्त्ती भवेदसौ ॥१५२॥
वचां पिष्ट्वा लिखेदेतन्नागवल्लीरसेन तु।
द्युसरिल्लोलकल्लोलनिभा निर्याति भारती ॥१५३॥

इस प्रकार स्वर्ण आदि के पत्र पर निर्मित इस उत्तम यन्त्र में वाणी (सरस्वती) का सम्यक् रूप से आवाहन करके विधिपूर्वक पूजन करने के उपरान्त मन्त्रों के ऋषि आदि का उस यन्त्र में संयोजन करके उसे शुभ दिन में धारण करने से साधक कवियों एवं तार्किकों में चक्रवर्ती हो जाता है।

नागवल्ली (पान) के रस के साथ वचा को पीस कर उस द्रव से धारण किये जाने वाले इस यन्त्र का लेखन करने पर साधक के मुख से आकाश एवं नदी की चञ्चल लहरों के सदृश वाणी नि:सृत होती है।।१५१-१५३।।

यदद्य कदृचो यन्त्रं वक्ष्ये वश्यकरं परम्।
अष्टपत्रस्य पद्मस्य कर्णिकायान्तु संल्लिखेत् ॥१५४॥
षट्कोणं तस्य मध्ये तु ससाध्यं ह्रीं समालिखेत्।
षट्सु पूर्वादिकोणेषु अं श्रीं ह्रीं क्लीं क्रमेण च ॥१५५॥
ग्लौंगंबीजानि संलिख्य पद्मस्य प्रथमे दले।
श्रीविद्याप्रथमं कूटं कएईल च ह्रीमिति ॥१५६॥
लिखेद् द्वितीयपत्रे तु यदद्य कच्च वृत्रहन्।
श्रीविद्यायां द्वितीयन्तु लिखेत्कूटं तृतीयके ॥१५७॥
असकदलह्रीमिति तदेतत्परिकीर्त्तितम्।
उदगा अधिसूर्य्येति लिखेत्पत्रे चतुर्थके ॥१५८॥

श्रीविद्यायास्तृतीयं तु कूटं पञ्चमपत्रके।
सकलह्रीमिति प्रोक्तं लिखेत्षष्ठदले पुनः ॥१५९॥
सर्वन्तदिन्द्र ते वशे सप्तमे गणपतये।
वर वरद इदं लेख्यं ततश्चाष्टमपत्रके ॥१६०॥
सर्वजनं मे वशमानय स्वाहेति सँल्लिखेत्।
तद्बहिर्वृत्तयोरन्तर्वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥१६१॥
ततो भूपुरकोणेषु श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौमिति क्रमात्।
लिखेद्धेमपटादौ च हेमसूच्या वशङ्करम् ॥१६२॥

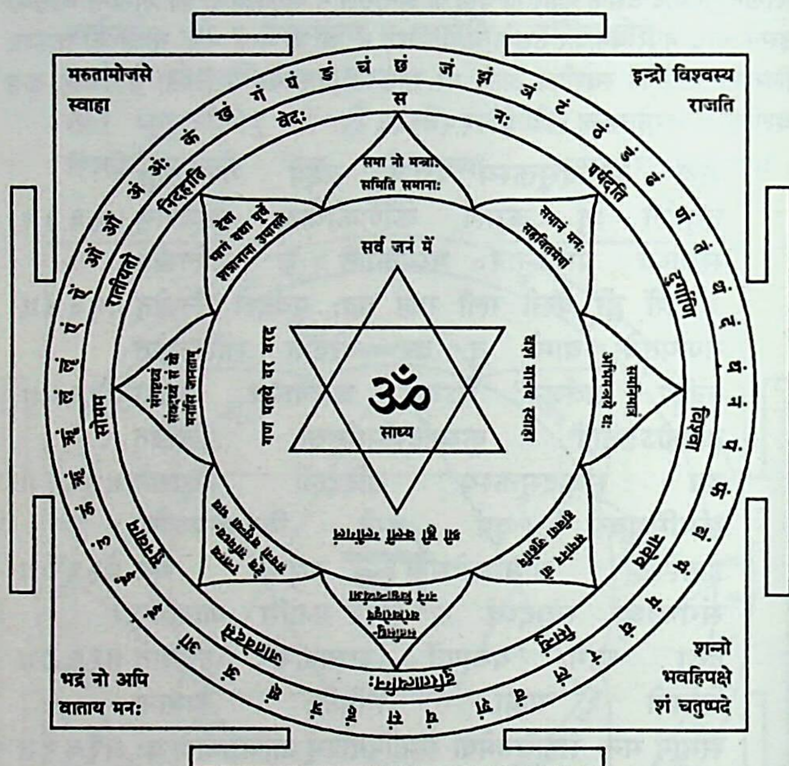


यदद्य कद् ऋचा का वश्यकर यन्त्र—अब मैं यदद्य कद् ऋचा के श्रेष्ठ वश्यकर यन्त्र को कहता हूँ। अष्टदल कमल की कर्णिका में षट्कोण बनाकर उसके मध्य में 'ह्रीं' के गर्भ में साध्यनाम लिखकर छः कोणों में पूर्व से प्रारम्भ करके 'अं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं' इन छः बीजों को लिखना चाहिये। तत्पश्चात् कमल के प्रथम

दल में श्रीविद्या का प्रथम कूट 'कएईलह्रीं', द्वितीय पत्र में 'यदद्य कच्च वृत्रहम्' तृतीय पत्र में श्रीविद्या का दूसरा कूट 'हसकहलह्रीं', चतुर्थ पत्र में 'उदगा अभिसूर्य', पञ्चम पत्र में श्रीविद्या का तृतीय कूट 'सकलह्रीं', षष्ठ पत्र में 'सर्वन्तदिन्द्र ते वशे', सप्तम पत्र में 'गणपतये वरवरद' एवं अन्तिम अष्टम पत्र में 'सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' लिखने के बाद उसके बाहर दो वृत्तों के अन्तराल में मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। इसके बाद भूपुर बनाकर उसके चारो कोणों में 'श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं' बीजों को क्रमशः लिखना चाहिये। स्वर्णपत्र आदि पर सोने की शलाका से लिखा गया यह यन्त्र वशीकरण करने वाला होता है।।१५४-१६२।।

अथ संवादसूक्तस्य यन्त्रं वक्ष्ये गणेशितुः।
चतुर्दले तु कमले कर्णिकायाञ्च षड्दलम् ।।१६३।।
ससाध्यं प्रणवन्तत्र मध्यकोष्ठे च संलिखेत्।
अं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गञ्च ततः पूर्वदले लिखेत् ।।१६४।।
गणपतये याम्ये तु वर वरदेति संल्लिखेत्।
तृतीये सर्वजनं मेऽब्धौ वशमानय स्वाहा ।।१६५।।
तद्बाह्येऽष्टदलं कुर्य्यादर्धमर्धमृचां लिखेत्।
तत्र संवादसूक्तस्य तदिदानीं निगद्यते ।।१६६।।
संसमिद्युवसे वृषं नग्ने विश्वान्यर्य्यया।
इलस्पदे समिध्यसेसनो वसून्या भव ।।१६७।।
संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथापूर्वे सञ्जानाना उपासते ।।१६८।।
समानो मन्त्राः समितिः समाना।
समानं मनः सहवित्तमेषां समानिमात्रम् अभिमन्त्रये वः ।।१६९।।
समानेन वो हविषा जुहोमि समानीव त्र्याकूतिः समाना।
हृदयानि वः समानि वस्तु वो मनो यथावत्सुसहासति ।।१७०।।
एतत्संवादसूक्तस्य मुनिः संवर्त्तनः स्मृतः।
अग्निर्देवस्तथाजायसञ्ज्ञानमितरासु च ।।१७१।।
छन्दस्त्रिष्टुप् तृतीयाया अन्यासां स्यादनुष्टुभम्।
वृत्तत्रयन्तु तद्बाह्ये कृत्वा वीथिद्वयं लिखेत्।
आद्यवीथ्यां जातवेदसे सुनवेत्यृचा पुनः ।।१७२।।
आवेष्टयेन्मातृकार्णैः परवीथीन् प्रवेष्टयेत्।
तद्बहिर्भूपुरं कृत्वा तत्र पादचतुष्टयम् ।।१७३।।

कोणेषु च विकोणेषु लिखेद्यच्च तदुच्यते ॥१७४॥
भद्रं नो अपि वाताय मनः मरुतामोनसे स्वाहा ।
इन्द्रो विश्वस्य राजेति ।
शन्नो भव द्विपदे शञ्चतुष्पदे ॥१७५॥



संवादसूक्त का गणेशयन्त्र—अब मैं संवादसूक्त के गणेशयन्त्र को कहता हूँ। चतुर्दल कमल की कर्णिका में षट्कोण बनाकर उसके मध्य में साध्यगर्भित ॐ लिखने के उपरान्त कमल के पूर्वदल में 'अं श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं', दक्षिण दल में 'गणपतये वरवरद', पश्चिम दल में 'सर्वजनं मे' एवं उत्तर दल में 'वशमानय स्वाहा' लिखना चाहिये। फिर उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके आठो दलों में संवादसूक्त की आधी-आधी ऋचाओं को लिखना चाहिये। संवादसूक्त की चार ऋचायें मूल में 'सतसिद्युवरो' से आरम्भ का 'यथवत्सुसहा सति'-पर्यन्त पठित हैं। इस संवादसूक्त के ऋषि संवर्त्तन, छन्द त्रिष्टुप् (तृतीय ऋचा का) एवं अनुष्टुप् (शेष ऋचाओं का) तथा देवता अग्नि कहे गये हैं।

उसके बाहर तीन वृत्तों का निर्माण करके उनके मध्य दो वीथियाँ बनाकर प्रथम वीथि को 'जातवेदसे सुनवाम' ऋचा से वेष्टित कर द्वितीय वीथि में मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। उसके बाहर भूपुर बनाकर उसके चारो कोणों में क्रमशः 'भद्रं नो अपि वाताय मनः', 'मरुतामोनसे स्वाहा', 'इन्द्रो विश्वस्य राजा' एवं 'शन्नो भव द्विपदे शञ्चतुष्पदे' लिखना चाहिये।।१६३-१७५।।

सङ्घातभेदे मर्त्यानां मैत्रीकरणमुत्तमम्।
जगत्सम्मोहनं वश्यं कान्तिसौभाग्यपुष्टिदम्।।१७६।।

यह यन्त्र मनुष्यों के संघातभेद (समुदाय में मतवैभिन्य) होने पर उत्तम मैत्री कराने वाला, संसार को मोहित करने वाला एवं वशीभूत करने वाला होने के साथ-साथ कान्ति, सौभाग्य एवं पुष्टि प्रदान करने वाला होता है।।१७६।।

गायत्रीभुवनेश्वर्य्या योगयन्त्रमथोच्यते।
लिखेदष्टदलं मध्ये तत्र कोणेषु सँल्लिखेत्।।१७७।।
रमणीयत्रिकोणानि षट्के षड्गुरुमार्गतः।
षट्कोणेऽस्य तु तन्मध्ये साध्यं साधककर्म्मयुक्।।१७८।।
ह्रींबीजमालिखेत्तच्च विलोमाभिः प्रवेष्टयेत्।
त्रिभिर्व्याहृतिभिश्चैवं मन्त्रं मध्येऽथवा पुनः।
त्रिभिर्व्याहृतिभिश्चैवं लिखेन्मनुमथो सुधीः।।१७९।।
त्रिकोणद्वादशदले खंईं बीजद्वयं तथा।
त्रिकोणानां बहिश्चापि लिखेत्पार्श्वद्वये पुनः।।१८०।।
प्रादक्षिण्येन गायत्र्या देवमातुर्विलोमतः।
वर्णद्वयं बिन्दुयुतं लिखेदथ लिखेत्पुनः।।१८१।।
शनिबीजं त्रिकोणानामग्रे तारयुतं लिखेत्।
शृङ्खलाकाररेखाभिरेकैकेनान्तराणि च।।१८२।।
भवत्येवं च षड्बीजं शृङ्खलाद्वितयं बहिः।
वृत्तद्वयं लिखेत्तत्र वीथ्या लेख्यं विलोमतः।।१८३।।
प्रत्यक्षरं बिन्दुयुतं जातवेदसमन्त्रकम्।
वृत्तद्वये तु तद्बाह्ये कुर्याद्वीथीचतुष्टयम्।।१८४।।
मातृकार्णानाद्यवीथ्यां सबिन्दून् वै लिखेत्क्रमात्।
द्वितीयायां विलोमेन कुर्य्याद्बाह्येष्टकोणकम्।।१८५।।

कोणाष्टकेषु तु लिखेच्चिन्तामणिककूटकम् ।
तस्य बाह्ये त्रिशूलानि कुर्यात्षोडशसङ्ख्यया ॥१८६॥
एतद्वेदविदां यन्त्रं सर्वकार्य्यप्रसिद्धिकृत् ।
सर्वसौभाग्यजननं सर्वशत्रुविनाशकृत् ॥१८७॥

गायत्री-भुवनेश्वरीयोगयन्त्र—गायत्री एवं भुवनेश्वरी के योग से बनने वाले यन्त्र को अब कहा जा रहा है। अष्टदल कमल बनाकर उसमें षट्कोण और षट्कोण में त्रिकोण बनाकर उस त्रिकोण के मध्य में साध्य एवं साधक कर्म को 'ह्रीं' बीज के गर्भ में लिखकर उसे तीन व्याहृतियों (भूः भुवः स्वः) से वेष्टित करने के बाद मध्य में विलोम गायत्री मन्त्र लिखना चाहिये। तदनन्तर त्रिकोण के द्वादश दलों में 'खं ईं' इन दो बीजों को लिखकर त्रिकोणों के बाहर दोनों पार्श्वों में भी उक्त बीजों को लिखने के पश्चात् प्रदक्षिणक्रम से विलोम गायत्री के दो-दो वर्णों को बिन्दु-युक्त करके लिखना चाहिये। त्रिकोण के आगे ॐ के साथ शनिबीज 'शं' को शृङ्खलाकार रेखा के समान एक के बाद एक लिखना चाहिये।

इस प्रकार कुल छः बीज हो जाते हैं। उसके बाहर द्वितीय शृङ्खला में दो वृत्त बनाकर उनके अन्तराल में जातवेदस मन्त्र को उसके प्रत्येक अक्षरों में बिन्दु लगाकर विलोमक्रम से लिखने के पश्चात् उसके बाहर चार वीथियों का निर्माण करके पहली वीथि में सबिन्दु मातृकावर्णों को अनुलोमक्रम से एवं दूसरी वीथि में विलोमक्रम से लिखने के बाद उसके बाहर अष्टकोण बनाकर उन आठो कोणों में चिन्तामणिकूटों को लिखना चाहिये। उसके बाहर सोलह त्रिशूलों का निर्माण करना चाहिये। वैदिकों का यह यन्त्र समस्त कार्यों में सिद्धि प्रदान करने वाला, समस्त सौभाग्यों को उत्पन्न करने वाला एवं समस्त शत्रुओं का विनाश करने वाला होता है।।१७७-१८७।।

भुवनेशीमन्त्रपूजा यन्त्रेऽस्मिंश्च परा भवेत् ।
वैदिकैस्तेन कर्तव्या पूजा यन्त्रस्य सिद्धये ॥१८८॥
तद्विधिं सम्प्रवक्ष्यामि स्वर्णादिकृतपत्रके ।
एतद्यन्त्रं वैदिकेन सुलेख्यं कुङ्कुमादिभिः ॥१८९॥
यन्त्रमध्ये यजेद्देवीं कुर्य्याद्वीथित्रयं बहिः ।
आद्यायां तु षडङ्गानि परस्यां दिक्चतुष्टयम् ॥१९०॥
हृल्लेखां गगनां रक्तां पूजयेच्च करालिकाम् ।
तृतीयवीथ्यां ब्राह्मयाद्याः पूजनीया दिगष्टके ॥१९१॥
तद्बाह्ये षोडशदलं कृत्वा तत्र यजेदिमाः ।
करालीं विकरालीं च धूमां सरस्वतीं श्रियम् ॥१९२॥

दुर्गामुखीं तथा लक्ष्मीं श्रुतिस्मृतिश्रियो ह्यपि ।
श्रद्धां मेधां मतिं कान्तिं चार्य्यां तस्य बहिः पुनः ॥१९३॥
द्वात्रिंशद्दलपद्मं तु कृत्वा तत्र यजेदिमाः ।
विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली तथा कुहूः ॥१९४॥
रुद्रवीथ्यां प्रभानन्दाप्यायिनी सिद्धिदा शुभा ।
कालरात्रिर्भद्रकाली महारात्रिः कपालिनी ॥१९५॥
विकृतिर्दण्डमुण्डिन्यौ दुःखण्डा च शिखण्डिनी ।
निशुम्भशुम्भमथनी महिषासुरमर्द्दिनी ॥१९६॥
इन्द्राणी चैव रुद्राणी शङ्करार्धशरीरिणी ।
नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी ।
अम्बिका ह्लादिनी चैव द्वात्रिंशच्छक्तयस्त्विमाः ॥१९७॥

इस यन्त्र में भुवनेशी मन्त्र द्वारा परापूजा की जाती है। यन्त्र की सिद्धि के लिये वैदिकों को यह पूजन करना चाहिये। उसकी विधि को अब मैं सम्यक् रूप से कहता हूँ। वैदिकों द्वारा इस यन्त्र को सोने के पत्र पर कुंकुम आदि से सुन्दर रीति से लिखकर उसके मध्य में देवी का पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर तीन वीथियों का निर्माण करके प्रथम वीथि में षडङ्ग-पूजन करने के बाद द्वितीय वीथि में पूर्व दिशा में हल्लेखा का, दक्षिण में गगना का, पश्चिम दिशा में रक्ता का और उत्तर दिशा में करालिका का एवं तृतीय वीथि की आठो दिशाओं में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये।

उसके बाहर षोड़शदल बनाकर उसमें कराली, विकराली, धूमा, सरस्वती, श्री, दुर्गामुखी, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, श्री, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति एवं आर्या का पूजन करना चाहिये।

पुनः उसके बाहर बत्तीस दल कमल बनाकर उसमें विद्या, ह्रीं, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू, रुद्रवीथि, प्रभा, नन्दा, आप्यायिनी, सिद्धिदा, शुभा, कालरात्रि, भद्रकाली, महारात्रि, कपालिनी, विकृति, दण्डिनी, मुण्डिनी, दुःखण्डा, शिखण्डिनी, निशुम्भशुम्भमथनी, महिषासुरमर्दिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी, अम्बिका और ह्लादिनी—इन बत्तीस शक्तियों का पूजन करना चाहिये।।१८८-१९७।।

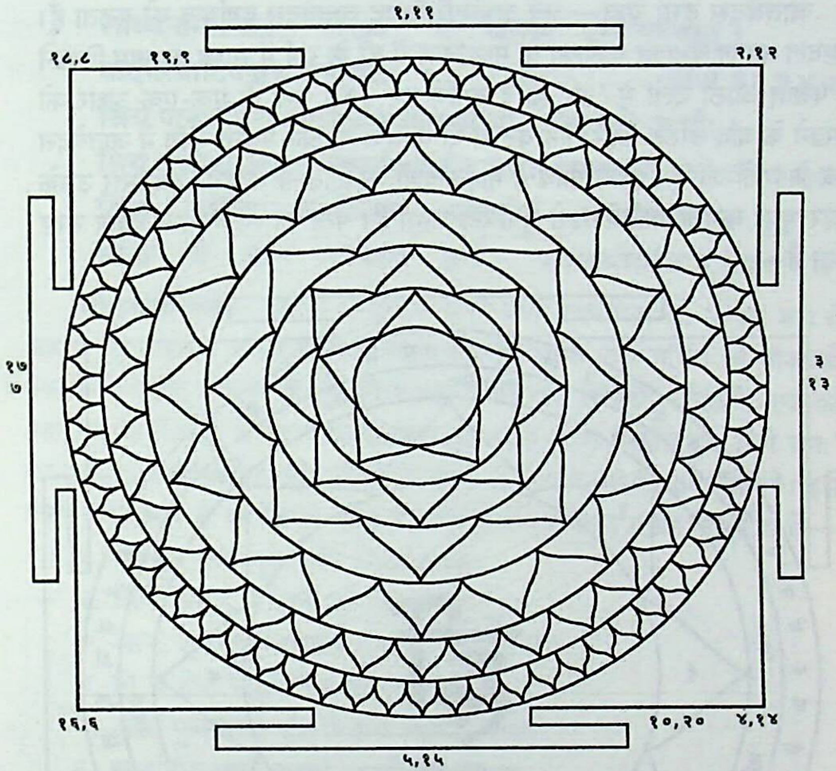
तद्बाह्ये तु चतुष्षष्टिदलं कृत्वा यजेदिमाः ।
पिङ्गलाक्षीं विशालाक्षीं समृद्धिं वृद्धिमेव च ॥१९८॥

श्रद्धां स्वाहां स्वधां मायां निद्रां चैव वसुन्धराम्।
त्रिलोकधात्रीं गायत्रीं सावित्रीं त्रिदशेश्वरीम् ॥१९९॥
सुरूपां बहुरूपां च स्कन्दमात्रच्युतप्रिये।
विमलां श्यामलां पश्चादरुणीमारुणीं तथा ॥२००॥
प्रकृतिं विकृतिं सृष्टिं स्थितिं संहृतिमेव च ॥२०१॥
सन्ध्यां च मातृकां हंसीं सतीं सोमर्द्धिकां पराम्।
देवमातृभगवत्यौ देवकीं कमलासनाम् ॥२०२॥
त्रिमुखीं सप्तकमुखीं सुरासुरविमर्दिनीम्।
लम्बोष्ठीं चार्धमुखिकां बहुशिश्नां कृशोदरीम् ॥२०३॥
रथरेखां शशिरेखां परां गगनवेगिनीम्।
क्षितिवेगां च पातालवेगां च मदनातुराम् ॥२०४॥
अनङ्गां च तथानङ्गमदनानङ्गमेखले।
अनङ्गकुसुमां विश्वरूपां दैत्यभयङ्कराम् ॥२०५॥
अक्षोभ्यां सत्यवादां च तन्द्रारूपां शुचिव्रताम्।
वरदां चापि विश्वेशीं तद्बाह्ये च दिगीश्वरान् ॥२०६॥
तदायुधानां पूजाग्रे प्रोक्तोऽयं पूजने विधिः।
वाञ्छितं काममाप्नोति तान्त्रिकोऽप्यनयेज्यया ॥२०७॥

पुनः उसके बाहर चौंसठ दलों वाला कमल बनाकर इन चौंसठ शक्तियों का पूजन करना चाहिये—

पिंगलाक्षी	गायत्री	प्रकृति	देवमाता	कृशोदरी	अनङ्गकुसुमा
विशालाक्षी	सावित्री	विकृति	भगवती	रथरेखा	विश्वरूपा
समृद्धि	त्रिदशेश्वरी	सृष्टि	देवकी	शशिरेखा	दैत्यभयङ्करा
वृद्धि	सुरूपा	स्थिति	कमलासना	परा	अक्षोभ्या
श्रद्धा	बहुरूपा	संहृति	त्रिमुखी	गगनवेगिनी	सत्यवादा
स्वाहा	स्कन्दमाता	सन्ध्या	सप्तमुखी	क्षितिवेगा	तन्द्रारूपा
स्वधा	अच्युतप्रिया	मातृका	सुरविमर्दिनी	पातालवेगा	शुचिव्रता
माया	विमला	हंसी	असुरविमर्दिनी	मदनातुरा	वरदा
निद्रा	श्यामला	सती	लम्बोष्ठी	अनङ्गा	विश्वेशी
वसुन्धरा	अरुणी	सोमर्द्धिका	अर्धमुखी	अनङ्गमदना	
त्रिलोकधात्री	आरुणी	परा	बहुशिश्ना	अनङ्गमेखला	

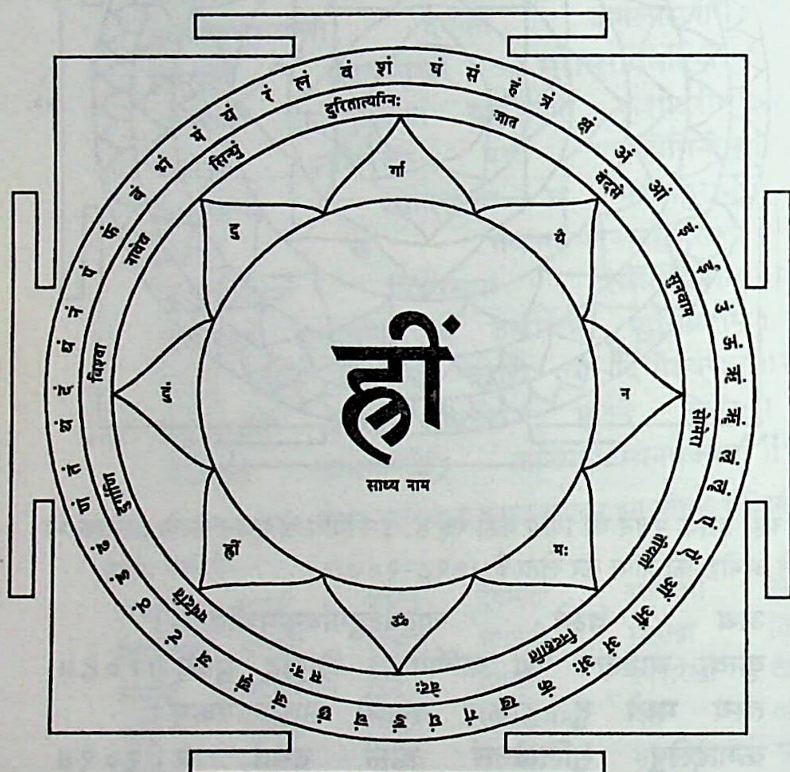
उसके बाहर दिक्पालों का एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।



यही इसके पूजन की विधि कही गई है। इस विधि से पूजन करके तान्त्रिक भी अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है।।१९८-२०७।।

अथ वक्ष्ये जातवेददुर्गायन्त्रमभीष्टदम्।
कृत्वा चाष्टदलं पद्मं कर्णिकायां लिखेद् ध्रुवम्।।२०८।।
तस्य मध्ये तु ह्रींकारं तन्मध्ये साध्यनामकम्।
क्रमाद्दलेषु सुलिखेत्तारं ह्रीमीं तथैव च।।२०९।।
दुर्गायै नम एतस्य मन्त्रस्यैकैकमक्षरम्।
बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा पूर्ववीथ्यां समालिखेत्।।२१०।।
जातवेदसमन्त्रस्य मातृकार्णान् द्वितीयके।
तद्बहिश्चतुरस्रं च दौर्गं यन्त्रमिदं स्मृतम्।।२११।।
अपस्मारमहाभूतक्षुद्रग्रहनिवारणम्।
नृणां विजयदं स्त्रीणां पुत्रदं नात्र संशयः।।२१२।।

जातवेदस दुर्गा यन्त्र—अब अभीष्टसिद्धिप्रद जातवेदस दुर्गायन्त्र को कहता हूँ। अष्टदल कमल बनाकर कर्णिका के मध्यबिन्दु में ह्रीं के गर्भ में साध्य का नाम लिखने के पश्चात् आठो दलों में 'ॐ ह्रीं ईं दुर्गायै नमः' इस मन्त्र के एक-एक अक्षर को लिखने के बाद उसके बाहर तीन वृत्त से दो वीथियाँ बनाकर पहली वीथि में जातवेदस मन्त्र के वर्णों को एवं दूसरी वीथि में मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर भूपुर बनाना चाहिये। इसे दुर्गायन्त्र कहते हैं। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट होता है—



यह यन्त्र अपस्मार (मृगी रोग), महाभूत एवं अशुभ ग्रहों का निवारण करने वाला, मनुष्यों को विजय प्रदान करने वाला तथा स्त्रियों को पुत्र प्रदान करने वाला होता है; इसमें कोई संशय नहीं है।।२०८-२१२।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं श्रीसूक्तजं परम्।
कृत्वाष्टपत्रं कमलं श्रींबीजं कमलान्तरे ।।२१३।।

साध्यनामान्वितं लेख्यं दलेष्वष्टसु सँल्लिखेत् ।
कर्दमेत्यादिपञ्चर्चामर्द्धमर्द्धं दश त्वथ ॥२१४॥
श्रिये जनः श्रिय आनिर्याय श्रियञ्च यो जरितृभ्यो ददाति ।
श्रियं वसाना अमृतत्वमायां भवन्ति सत्या समधास्मे तद्रो ॥२१५॥
श्रिय एवेति ऋचोस्तत्र चतुर्थार्द्धं समालिखेत् ।
श्रीश्च ते इति मन्त्रस्य द्वयोः स्यादर्धमर्धकम् ॥२१६॥

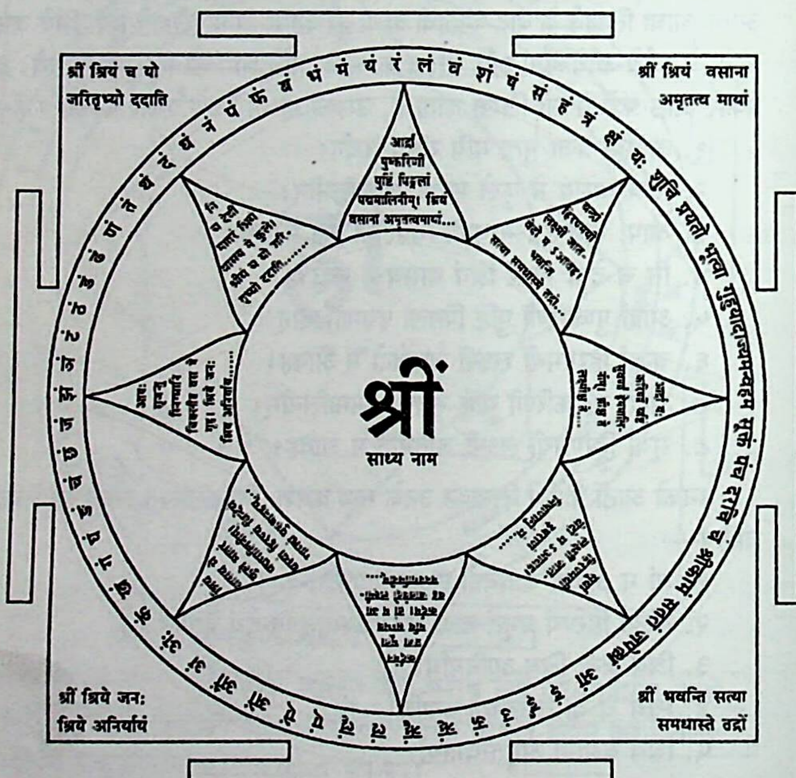
श्रीसूक्तज यन्त्र—अब मैं श्रीसूक्त से बनने वाले उत्तम यन्त्र को सम्यक् रूप से कहता हूँ। अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में साध्य नाम-गर्भित श्रीं वीज को लिखने के पश्चात् दलों में श्रीसूक्त की ग्यारहवीं, बारहवीं, तेरहवीं, चौदहवीं ऋचा को आधा-आधा लिखने के बाद पन्द्रहवीं ऋचा को आधा-आधा लिखते हुये 'श्रिये जनः' ऋचा के चौथे-चौथे भाग और श्रीश्च के आधे-आधे भाग को लिखना चाहिये। इस प्रकार आठ पत्रों में जो लिखा जाता है, उसका प्रारूप निम्न प्रकार का होता है—

१. कर्दमेन प्रजा भूता मयि संभव कर्दम।
२. श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।
३. आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
४. नि च देवी मातरं श्रियं वासय मे कुले।
५. आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।
६. चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।
७. आर्द्रां यः करिणी यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
८. सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह।

इनको आठों पत्रों में लिखकर उनके साथ क्रमशः निम्नलिखित आठों को लिखना चाहिये—

१. तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
२. यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्।
३. श्रिये जनः श्रिय आनिर्याय।
४. श्रियं च यो जरितृभ्यो ददाति।
५. श्रियं वसाना अमृतत्वमायां।
६. भवन्ति सत्या समधास्मे तद्रो।
७. श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
८. इष्णणं निषाणमुं मंऽइषाण सर्व लोकं मं ऽइषाण।।२१३-२१६।।

वृत्तद्वयं तद्बहिश्च कुर्य्यात्प्रथमवीथिकाम्।
वक्ष्यमाण-ऋचा चाद्या मातृकार्णैश्च तत्परा ॥२१७॥
यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
श्रियः पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥२१८॥
तद्बहिश्चतुरस्रं च लिखेच्छ्रीबीजमालिखेत्।
तस्य कोणचतुष्केषु श्रियो मन्त्रं तु वैदिकम् ॥२१९॥
मया यन्त्रमिदं प्रोक्तं धारयेद्यो यथाविधि।
पुत्रारोग्यधराधान्यधनगोसस्यशालिनीम्।
लब्ध्वातिबहुलां लक्ष्मीं जीवेच्च शरदां शतम् ॥२२०॥



उसके बाहर दो वृत्तों को बनाकर उसकी वीथि में 'यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्। श्रियः पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्।' इस ऋचा को लिखने के पश्चात् मातृकावर्णों को लिखना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर भूपुर बनाकर उसके

कोणों में श्रीबीज के साथ वैदिक श्रियोमन्त्र के एक-एक पाद को भी लिखना चाहिये। वह इस प्रकार है—

१. श्रीं श्रिये जनः श्रिय आनिर्याय।

२. श्रीं श्रियं च यो जरितृभ्यो ददाति।

३. श्रीं श्रियं वसानां अमृतत्वमायां।

४. श्रीं भवन्ति सत्या समधास्मे तद्रो।

मेरे द्वारा कथित इस यन्त्र को जो विधिपूर्वक धारण करता है, वह पुत्र, आरोग्य, धान्य, धन, गौ, सस्यशालिनी भूमि के साथ-साथ प्रभूत लक्ष्मी को प्राप्त कर सौ वर्षों तक जीवित रहता है।।२१७-२२०।।

ताम्रपात्रे लिखित्वेदं जपेदष्टोत्तरं शतम्।
अष्टाविंशतिसङ्ख्याकं हुत्वा सम्पातसेचितम्॥२२१॥
संस्थाप्याङ्गणमध्ये तु लक्ष्मीमावाह्य पूजयेत्।
परिवारयुतां लक्ष्मीं बलिदानेन तोषयेत्॥२२२॥
एवं कृते तु तत्स्थाने वर्धन्ते सर्वसम्पदः।
पुत्राः स्त्रियश्च सुहृदो भृत्या धान्यं रथा गजाः।
गावश्च वृषभाः सौख्यं त्वसङ्ख्यन्तत्र जायते॥२२३॥

इस यन्त्र को ताम्रपत्र पर लिखकर श्रीसूक्त का एक सौ आठ बार जप करने के पश्चात् अट्ठाईस बार घी से हवन करने के साथ-साथ अवशिष्ट घृत से यन्त्र को सिक्त कर आँगन के मध्य में स्थापित करके लक्ष्मी का आवाहन करके परिवार-सहित उनका पूजन करने के उपरान्त सबको बलि प्रदान करते हुये लक्ष्मी को प्रसन्न करना चाहिये। ऐसा करने से उस स्थान में सभी सम्पदाओं की वृद्धि होती है। पुत्र, स्त्री, मित्र, दास, धान्य, रथ, हाथी, गाय, बैलों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ अगणित सुखों की प्राप्ति होती है।।२२१-२२३।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रं पौरुषसूक्तजम्।
षट्कोणकर्णिकामध्ये तारं साध्यसमन्वितम्॥२२४॥
सहस्त्रारहुंफडिति वर्णैकैकं दले दले।
स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन लिखेत्तत्रैव सन्धिषु॥२२५॥
षण्नाममन्त्रान् स्वाहान्तानचक्रायेति चादिमः।
विचक्राय सुचक्राय धीचक्राय चतुर्थकः॥२२६॥
सञ्चक्रायेति च ज्वालाचक्रायेति च षष्ठकः।
चतुर्दलं तु कमलं तद्बहिष्केशरेषु च॥२२७॥

चतुर्दिक्षु क्रमाल्लेख्यं क्लीं कृष्ण क्लीं तथाक्षरम्।
वासुदेवस्य मन्त्रस्य त्रीणि त्रीण्यक्षराणि च ॥२२८॥
तत्पत्रेषु लिखेन्मन्त्रं वदेत्तारं तथा नमः।
भगवते वासुदेवायेत्यणुर्द्वादशाक्षरः ॥२२९॥
तद्वाह्येऽष्टदलं पद्मं केशरेष्वस्य सँल्लिखेत्।
एकैकमक्षरं तारो नमो नारायणाय च ॥२३०॥
दलेषु चतुरो वर्णान्नारसिंहमनोर्लिखेत्।
श्रीं ह्रीं श्रीं जयलक्ष्मीति प्रियाय नित्यमुदितम् ॥२३१॥
मनसे लक्ष्मीसितार्धदेहायेति वै वदेत्।
श्रीं ह्रीं श्रीं नमो मन्त्रः स्यान्नृसिंहस्य रदाक्षरः ॥२३२॥

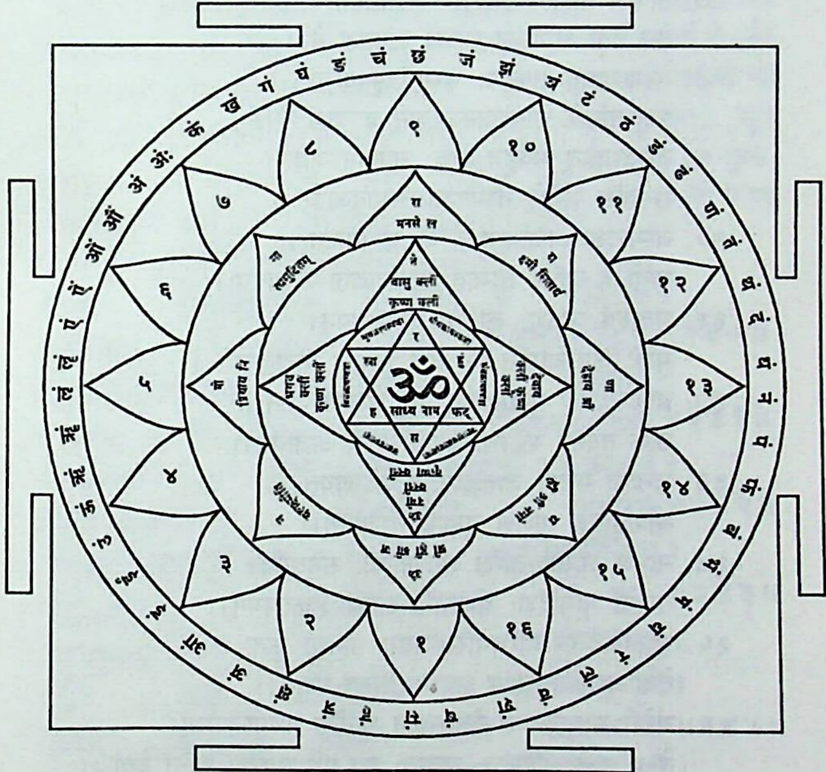
पुरुषसूक्तज यन्त्र—अब पुरुषसूक्त से बनने वाले यन्त्र को कहता हूँ। षट्कोण बनाकर उसके बीच में ॐ के गर्भ में साध्यनाम लिखे। षट्कोण के छः कोणों में 'सहस्रार हुं फट्' का एक-एक अक्षर लिखे। फिर अपने आगे से प्रारम्भ करके षट्कोण की सन्धियों में प्रदक्षिणक्रम से छः नाममन्त्रों को इस प्रकार लिखे—१. चक्राय स्वाहा। २. विचक्राय स्वाहा। ३. सुचक्राय स्वाहा। ४. धीचक्राय स्वाहा। ५. संचक्राय स्वाहा। ६. ज्वालाचक्राय स्वाहा। इसके बाहर चतुर्दल कमल बनाकर उसके चारो दलों के बाहर दिशाओं में क्रमशः क्लीं कृष्ण क्लीं और वासुदेव के द्वादशाक्षर मन्त्र के १२ अक्षरों को तीन-तीन के क्रम से इस प्रकार लिखे—१. क्लीं कृष्ण क्लीं ॐ नमो। २. क्लीं कृष्ण क्लीं भगव। ३. क्लीं कृष्ण क्लीं ते वासु ४ क्लीं कृष्ण क्लीं देवाय। चारो दलों में ॐ नमो भगवते वासुदेवाय लिखे।

उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके केशरों में ॐ' नमो नारायणाय के एक-एक अक्षरों को लिखने के उपरान्त दलों में बत्तीस अक्षरात्मक नृसिंहमन्त्र के चार-चार अक्षरों को लिखना चाहिये। मन्त्र है—श्रीं ह्रीं श्रीं जय लक्ष्मीप्रियाय नित्यमुदितमनसे लक्ष्मीसितार्धदेहाय वै श्रीं ह्रीं श्रीं नमः।।२२४-२३२।।

तद्बहिः षोडशदलं केशरेषु क्रमाल्लिखेत्।
तारं नमो भगवते महासुदर्शनाय च ॥२३३॥
हुं फट् षोडशवर्णोऽयं दलेषु क्रमतो न्यसेत्।
ऋचः पुरुषसूक्तस्य बहिर्वृत्तद्वयं चरेत् ॥२३४॥
तदन्तरालवीथ्यान्तु मातृकार्णैः प्रवेष्टयेत्।
सबिन्दुकैर्बहिस्तस्य भूपुरं तच्चतुर्ष्वपि ॥२३५॥

कोणेषु सुलिखेत्तारं यन्त्रं पौरुषमुच्यते।
सर्वपापहरं पुण्यं पुत्रायुष्कान्तिकीर्त्तिदम् ॥२३६॥

उसके बाहर षोडश दल कमल बनाकर उसके केशरों में 'ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्' इस षोडशाक्षर मन्त्र के एक-एक अक्षरों को लिखने के साथ-साथ पुरुषसूक्त की सोलह ऋचाओं को भी षोडश दलों में क्रमशः लिखकर उसके बाहर दो वृत्त बनाकर दोनों वृत्तों के अन्तराल में अनुस्वार-सहित मातृकावर्णों को लिखने के पश्चात् उसके बाहर भूपुर बनाकर भूपुर के चारो कोणों में 'ॐ' लिखने से पौरुष यन्त्र बन जाता है। यन्त्र का स्पष्ट स्वरूप इस प्रकार का होता है—



उपर्युक्त यन्त्र में अंकानुसार तत्तत् कोष्ठों में निम्न मन्त्रों को रक्खा जायेगा—

१. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।

२. पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।

३. एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।
४. त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि।।
५. तस्माद् विराडजायत विराजो अधि पुरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।।
६. यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।
७. तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये।।
८. तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भूतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये।।
९. तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।
१०. तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः।।
११. यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादावुच्येते।।
१२. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।
१३. चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत।।
१४. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन्।।
१५. सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्।।
१६. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्तः यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

अत्यन्त पवित्र यह यन्त्र समस्त पापों को हरण करने वाला होने के साथ ही पुत्र, आयु एवं कीर्ति प्रदान करने वाला होता है।।२३३-२३६।।

यन्त्रं हैयङ्गवीनेन लिप्त्वा पुरुषसूक्तकम्।
अष्टोत्तरशतं तप्त्वा त्वृतुस्नातां तु भोजयेत् ।।२३७।।

तद्यन्त्रनवनीतं च गर्भं धत्ते तदाङ्गना।
सुपुत्रो जायते वाग्मी सर्वागमविशारदः।
एवं हैयङ्गवीनं च विषार्त्ते सन्निपातिके ॥२३८॥
शूले क्षये च पाण्ड्वादौ नीरुग्भक्षणतो भवेत्।
कुष्ठोपकुष्ठरोगेषु व्रणे भग्ने भगन्दरे।
फिरङ्गशीतलाद्येषु लेखनात् सुखमाप्नुयात् ॥२३९॥

इस पुरुषसूक्त यन्त्र को हैयङ्गवीन (मक्खन) से लिप्त करके एक सौ आठ बार पुरुषसूक्त का जप करके ऋतुस्नाता (रजोदर्शन के पश्चात् स्नान की हुई) स्त्री को मक्खन-सहित खिला देना चाहिये। ऐसा करने से वह स्त्री गर्भवती हो जाती है और उसे सुन्दर पुत्र प्राप्त होता है, जो कि वाग्मी (कुशल वक्ता) और सभी आगमों का ज्ञाता होता है। इस मक्खन-लिप्त यन्त्र का भक्षण करने से विष, सन्निपात, शूल (दर्द), क्षयरोग, पाण्डु रोग आदि से पीड़ित व्यक्ति रोगमुक्त हो जाता है। कुष्ठ, उपकुष्ठ, घाव, अङ्गभङ्ग, भगन्दर, फिरङ्ग, शीतला आदि से ग्रस्तता की स्थिति में इस यन्त्र को लेखन करने से सुख की प्राप्ति होती है।।२३७-२३९।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि क्षेत्रस्य च पतेरिति।
पञ्चर्चस्य च सूक्तस्य यन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥२४०॥
कृत्वाष्टदलपद्मस्य कर्णिकायां तु षड्दलम्।
तन्मध्ये प्रणवं लेख्यं तस्मिन् हुं बीजमालिखेत् ॥२४१॥
साध्यनाम च बीजे लिखेत्कोणेषु चैककम्।
सहस्रारहुंफडस्य चक्रमन्त्रस्य चाक्षरम् ॥२४२॥
षण्नाममन्त्रान्पूर्वोक्तान् लिखेत् षट्कोणसन्धिषु।
चतुरश्चतुरो वर्णांल्लिखेदष्टदले पुनः ॥२४३॥
वराहमन्त्रस्यान्ते तु पत्रके वर्णपञ्चकम्।
तारं नमो भगवते वराहरूपमुच्यते।
ङेऽन्तं व्याहृतयः प्रोक्ताः पतये पदमुच्चरेत् ॥२४४॥
भूपतित्वं मे देहीति दापयान्तेऽग्निगेहिनी।
त्रयस्त्रिंशद्वर्णकोऽयं वराहस्य मनुः स्मृतः ॥२४५॥
तद्बाह्ये षोडशदले चार्धामर्धां लिखेदृचम्।
ऋचस्ता अत्र वक्ष्यामि सावधानतया शृणु ॥२४६॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्च्युतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृडयन्ति ॥२४७॥

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव यजामसि।
गामश्वं योषयित्नवासनो मूलतीदृशे ॥२४८॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्य रिप्यं अत्त्वेनं चरेम ॥२४९॥
शुनं वाहाः शुनं नाराः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा वध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गया ॥२५०॥
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यदि विचक्रथुः।
पयो यमस्ते न मामुपसिञ्चतम् ॥२५१॥
अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा न सुभगा स यथा न सुफलामसि ॥२५२॥
इन्द्रमीतां गृह्णातु तां पूषा नियच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरां समाम् ॥२५३॥
शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥२५४॥
क्षेत्रस्य तु पतिर्देवो वामदेवो मुनिः स्मृतः।
पुलस्त्यर्षिरनुष्टुप् च त्रिष्टुप्छन्दोऽस्ति सूक्तके ॥२५५॥

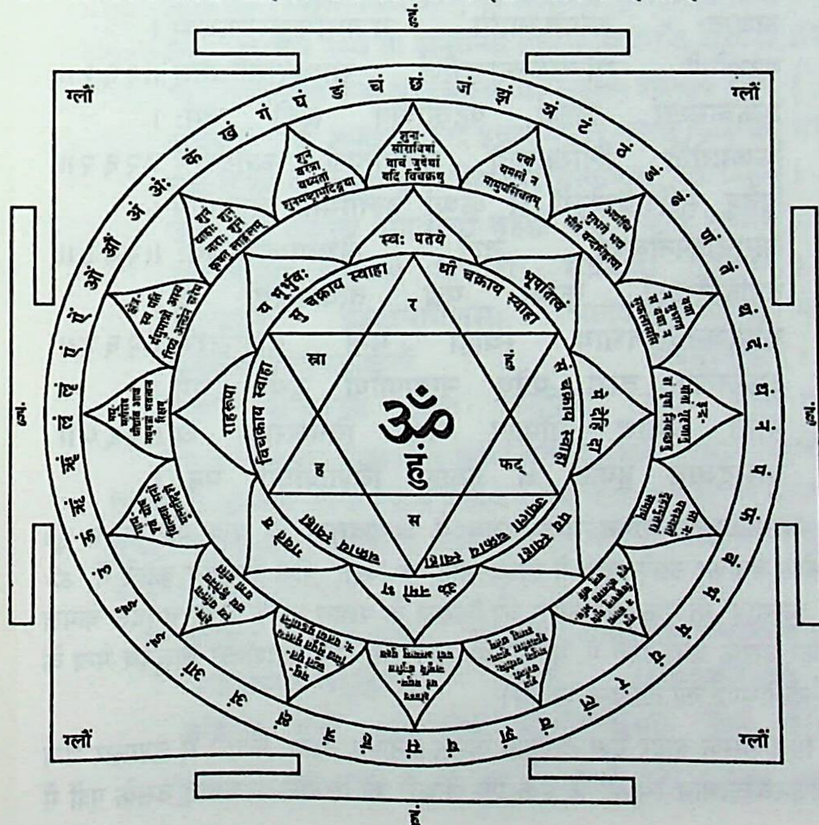
क्षेत्रपाल पंचर्चसूक्त यन्त्र—अब मैं पाँच ऋचाओं वाले क्षेत्रपालसूक्त से बनने वाले सर्वार्थदायक यन्त्र को कहता हूँ। इस यन्त्र को किसी शुभ दिन में आठ दलों वाले कमल का निर्माण करके उसकी कर्णिका में षट्कोण बनाने के पश्चात् उस षट्कोण में प्रणव-सहित साध्यनाम-गर्भित 'हुं' बीज का अंकन करने के उपरान्त षट्कोण के छः कोणों में 'सहस्रार हुं फट्' इस चक्रमन्त्र के एक-एक अक्षरों का अंकन करके षट्कोण की सन्धियों में पूर्वोक्त छः नाममन्त्रों (चक्राय स्वाहा, विचक्राय स्वाहा, सुचक्राय स्वाहा, धीचक्राय स्वाहा, संचक्राय स्वाहा, ज्वालाचक्राय स्वाहा) का अंकन करना चाहिये।

उसके बाहर अष्टदल का निर्माण करके उसके आठो दलों में तैंतीस वर्ण वाले वराहमन्त्र के चार-चार वर्णों को अंकित करते हुये अन्तिम आठवें दल में पाँच वर्णों को अंकित करना चाहिये। वराहमन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमों भगवते वराहरूपाय भूर्भुवःसुवःपतये भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा।' इस मन्त्र को आठो दलों में अंकित करने का क्रम इस प्रकार होगा—१. ॐ नमो भ, २. गवते व, ३. राहरूपा, ४. य भूर्भुवः, ५. सुवः पत, ६. ये भूपति, ७. त्वं मे देहि, ८. दापय स्वाहा।

पुन: उसके बाहर षोडश दल कमल बनाकर उन दलों में आधी-आधी ऋचाओं का अंकन करना चाहिये; उन ऋचाओं को मैं कहता हूँ, सावधान होकर सुनो। 'क्षेत्रस्य पते' से आरम्भ कर 'शुनमस्मासु धत्तम्'-पर्यन्त आठ ऋचायें मूल में पठित हैं। इन ऋचाओं के मुनि वामदेव एवं पुलस्त्य, छन्द अनुष्टुप् एवं त्रिष्टुप् तथा देवता क्षेत्रपति कहे गये हैं।

बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा तत्र वीथीद्वयं भवेत्।
ग्लौंबीजेनाद्यवीथ्यां तु वेष्टयेन्मातृकार्णकैः ॥२५६॥
द्वितीयं भूपुरं तस्य बाह्ये कोणेषु ग्लौमिति।
लिखेद्दिक्षु च हुंबीजं यन्त्रमेतच्छुभे दिने ॥२५७॥

पुन: उसके बाहर तीन वृत्तों को बनाकर उनकी दो वीथियों में से पहली वीथि में 'ग्लौं' बीज एवं दूसरी वीथि में मातृकावर्णों को अंकित करने के उपरान्त उसके बाहर भूपुर का निर्माण करके उसके चारो कोणों में 'ग्लौं' बीज एवं चारो दिशाओं में 'हुं' बीज का अंकन करना चाहिये। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



ताम्रपत्रे समालेख्य स्वर्णसूच्या यथाविधि।
स्थापितं भवने द्वारे क्षेत्रे वा नगरेऽपि वा ॥२५८॥
देशे वा तत्र वर्धन्ते दिनशः सर्वसम्पदः।
गजाश्वधेनुमहिषवृषोष्ट्राश्वतरादिभिः ॥२५९॥
धनधान्यधराशस्यवासोरत्नविभूषणैः।
आह्लादयन्ति विभवैरन्यैश्च स्यात्समागमः ॥२६०॥

इस यन्त्र को ताम्रपत्र पर सोने की शलाका से विधिपूर्वक लिखकर भवन के द्वार पर, क्षेत्र में, नगर में अथवा देश में स्थापित करने से वहाँ दिनोंदिन सभी सम्पत्तियों की वृद्धि होती है। वहाँ के निवासीगण हाथी, घोड़े, गाय, भैंस, बैल, ऊँट, खच्चर आदि के साथ-साथ धन-धान्य, धरा, अन्न, वस्त्र, रत्न, आभूषण आदि वैभवों को प्राप्त कर अत्यन्त आह्लादित रहते हैं और उन्हें नित्य नई नई भोग्य सामग्रियों की प्राप्ति होती रहती है।।२५८-२६०।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यन्त्रमागावसूक्तकम्।
षट्कोणे सुलिखेत्कामबीजं साध्यसमन्वितम् ॥२६१॥
एकैकमक्षरं लेख्यं षट्कोणेषु ध्रुवो नमः।
कृष्णायेति लिखित्वाग्रे कुर्य्यात्पद्मं चतुर्दलम् ॥२६२॥
वृत्तेषु सुलिखेत्क्लीं च कृष्णं क्लीमिति वर्णकान्।
वासुदेवमनोवर्णा दले लेख्यास्त्रयस्त्रयः ॥२६३॥
तद्बहिर्दिग्दलं कृत्वा पद्मं तत्केशरेषु च।
गोपीजनवल्लभाय स्वाहा मन्त्रं दशाक्षरम् ॥२६४॥
आलिख्य तस्य पत्रेषु नखार्णार्णं द्वयं द्वयम्।
माया रमाथ गोपाल ततो विषधराय च ॥२६५॥
वासुदेवाय हुंफट् च स्वाहा विंशार्णको मनुः।

आगावसूक्त-जनित यन्त्र—अब मैं आगावसूक्त के यन्त्र को कहता हूँ। षट्कोण बनाकर उसके मध्य में साध्य-समन्वित 'क्लीं' बीज लिखकर कोणों में 'ॐ नमः कृष्णाय' के एक-एक अक्षर को लिखने के पश्चात् उसके बाहर चतुर्दल कमल बनाकर उसके चारो दलों में 'क्लीं कृष्ण क्लीं' के साथ द्वादशाक्षर वासुदेव मन्त्र के तीन-तीन वर्णों को लिखना चाहिये।

फिर उसके बाहर दश दलयुक्त कमल बनाकर उसके केशरों में दशाक्षर मन्त्र 'गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' के एक-एक अक्षरों को लिखने के पश्चात् उसके पत्रों में

विंशाक्षर मन्त्र 'ह्रीं श्रीं गोपाल विषधराय वासुदेवाय हुं फट् स्वाहा' के दो-दो अक्षरों को लिखना चाहिये।।२६१-२६५।।

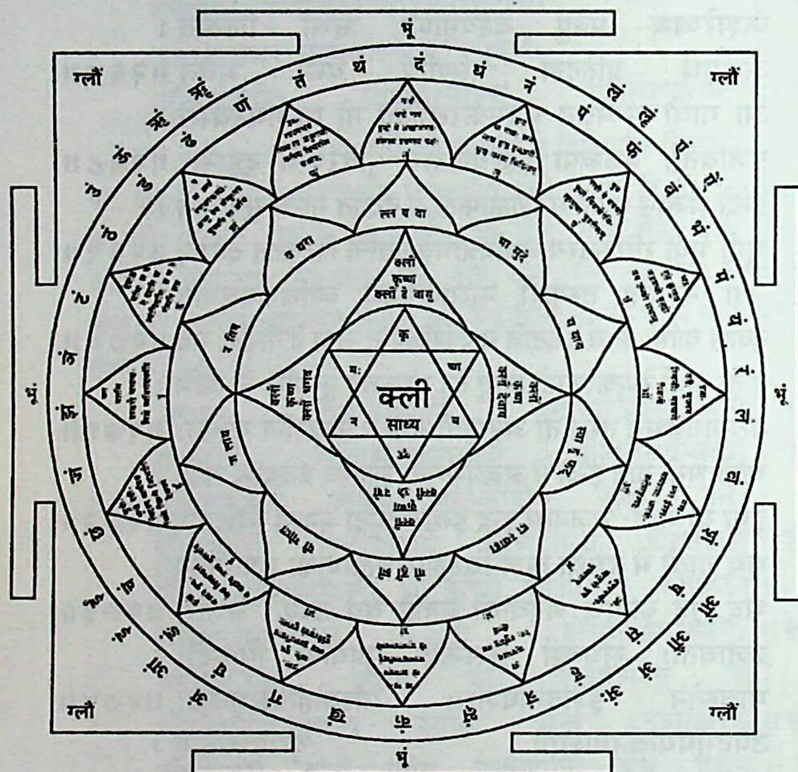
तद्बहिः षोडशदलं कृत्वा तत्र लिखेत्स्वरान् ॥२६६॥
केशरेष्वथ पत्रेषु वक्ष्यमाणा ऋचो लिखेत् ।
अर्धमर्धं प्रतिदलं रमणीयं यथा भवेत् ॥२६७॥
आ गावो अग्मन्नुत भद्रमकरत्सीदतु गो एरणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इहस्यरिंद्राय पूर्विरषसो दुहानाः ॥२६८॥
इन्द्रो यज्वने पृणतेश्च शिक्षत्फलं मे ददाति नस्त्वं मुषायति ।
भूयो भूयो रयिमिदस्य वार्धयन्नभिन्ने खिल्ये निदधाति देवयम् ॥२६९॥
नता नशन्ति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरादधर्षति ।
देवांश्च याभिः स च ते ददाति च ज्योगिताभिः स च ते गोपतिः सह ॥२७०॥
न ता अर्वा रेणुकाकाटो अस्तु तेन संस्कृत्तत्र मुच्यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनुगावो मर्त्तस्य विचरन्ति यज्वनः ॥२७१॥
गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छानागवः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः सजनास इन्द्र इच्छामीधृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥२७२॥
यूयं गावो मे दयथा कृशं चिदश्रीरंचित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहे कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥२७३॥
प्रजावतीः सूयवसं रिसन्तीः सुप्रयाणे पिबन्तीः ।
मावस्तेन ईशतमाघशंसः पारवोहंतीसवृज्याः ॥२७४॥
उपेदमुपयर्त्वनमाशुगो यूयमृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेतः स्युपेन्द्र तव वीर्य्यें ॥२७५॥

फिर उसके बाहर षोडश दल कमल बनाकर उसके केशरों में सोलह स्वरों को लिखने के अनन्तर सोलह पत्रों में वक्ष्यमाण 'आ गावो अग्मन्नुत' से आरम्भ कर 'तव वीर्य्यें'-पर्यन्त आठ ऋचाओं के आधे-आधे भाग को लिखकर अत्यन्त सुन्दर बनाना चाहिये।।२६६-२७५।।

वृत्तद्वयं बहिष्कृत्य तद्वीथ्यां कादिकाँल्लिखेत् ।
अकारान्तांस्तद्बहिश्च भूपुरं सम्यगालिखेत् ॥२७६॥
कोणेषु ग्लौं समालिख्य लिखेद्भूरिति दिक्षु च ।

तत्पश्चात् उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उनकी वीथि में कादि क्षान्त वर्णों को

लिखने के बाद उसके बाहर अकारादि स्वरों को लिखकर उसके बाहर भूपुर का निर्माण करके उसके चारो कोणों में 'ग्लौं' एवं चारो दिशाओं में 'भूः' लिखना चाहिये। सर्वान्त में यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—

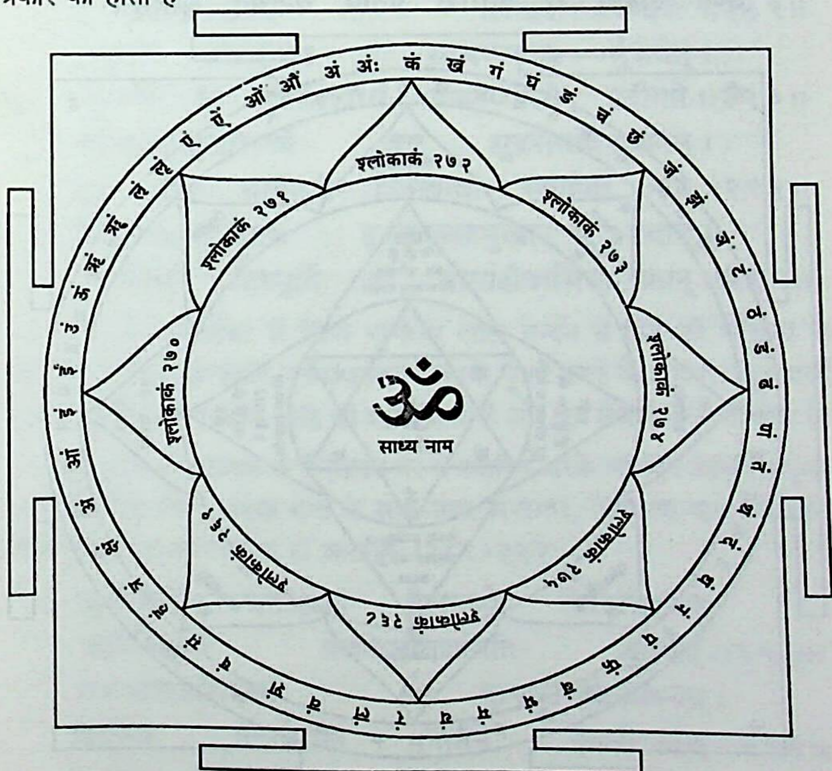


गोपालयन्त्रमेतद्धि विधिना स्थापितं गृहे ॥२७७॥
तत्र गावः पयस्विन्यः सवृषाश्च निरामयाः ।
पीनोघ्न्यो बहुरूपाश्च विशालाश्च भवन्ति हि ॥२७८॥
धनधान्यधरारत्नशालिनी तस्य मन्दिरे ।
लक्ष्मीः कीर्तिः स्थिरा भूत्वा निवसेत्सततं तदा ॥२७९॥

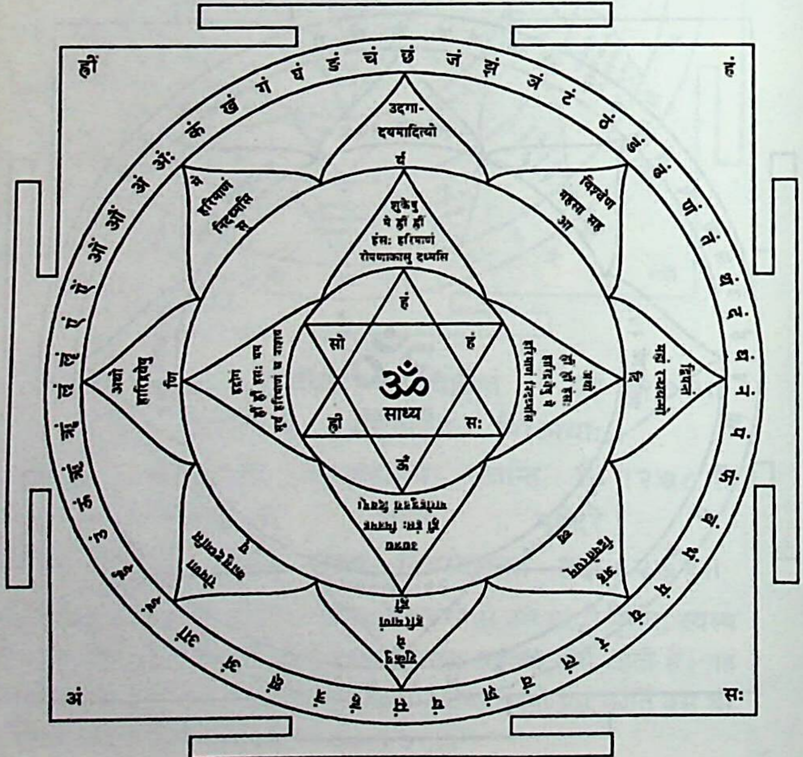
इस गोपालयन्त्र को विधि-पूर्वक घर में स्थापित करने से उस घर में पूर्णतः स्वस्थ बड़े-बड़े थनों वाली विभित्र प्रकार की विशाल-विशाल सवत्सा गौयें रहती हैं। वह घर धन-धान्य के साथ-साथ रत्नों से परिपूर्ण रहता है तथा लक्ष्मी एवं कीर्ति उस घर में स्थिर होकर सदा निवास करती हैं।।२७७-२७९।।

अथान्यद्वक्ष्यते यन्त्रं गवादेर्बहुभूतिकृत् ।
मध्येऽष्टदलपद्मस्य ससाध्यं प्रणवं लिखेत् ॥२८०॥
आ गाव इति सूक्तस्य एकैकां च दले ऋचम् ।
वृत्तद्वयं बहिष्कृत्य तद्वीथ्यां मातृवेष्टनम् ॥२८१॥
तद्वहिश्चतुरस्रं च कुर्य्याद्यन्त्रमिदं गृहे ।
स्थापितन्तत्तु गोऽश्वादिवृषैः पूर्णं सदा भवेत् ॥२८२॥

गवादि सम्पत्ति-प्रदायक यन्त्र—अब एक दूसरे यन्त्र को कहा जा रहा है, जो कि गौ आदि अनेकविध सम्पत्तियों को देने वाला है। एक अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में साध्य-सहित ॐ लिखने के अनन्तर आगावसूक्त की एक-एक ऋचा को आठो दलों में लिखने के पश्चात् उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उनकी वीथि में मातृकावर्णों को लिखने के बाद उसके बाहर भूपुर बनाकर इस यन्त्र को घर में स्थापित करने से वह घर गाय-बैल-घोड़े आदि से सदैव भरा रहता है। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



अथ वक्ष्ये दिनेशस्य यन्त्रं रोगनिवारणम्।
षट्कोणमध्ये सुलिखेत्साध्यं सप्रणवं ततः ॥२८३॥
कोणेषु तारं ह्रींसोऽहंहंसोवर्णान् क्रमाल्लिखेत्।
चतुर्दलन्तु कमलं तद्बहिः केशरेषु च ॥२८४॥
ह्रींह्रींहंसश्च पूर्वादौ लिखेत्पत्रेषु सर्वतः।
उद्यन्नद्य ऋचः पादा लेख्यास्तद्बाह्यतो लिखेत् ॥२८५॥
अष्टपत्रं तु कमलं केशरेषु लिखेत्क्रमात्।
घृणिः सूर्यस्तथादित्य इदमेकैकमक्षरम् ॥२८६॥
शुकेषुमेत्यादि ऋचः प्रापयैके दले दले।
वृत्तद्वयन्तु तद्बाह्ये वीथ्यां मातृप्रवेष्टनम् ॥२८७॥
तद्बहिर्भूपुरास्त्रेषु अंह्रीं ह्रींसः इदं लिखेत्।
एतद्यन्त्रं तु सूर्य्यस्य नाशयेत्सकलान् ग्रहान् ॥२८८॥
तेजो लक्ष्मीं च भोगञ्च प्रतापं वर्द्धयेद् धृतिम्।



रोग-निवारक सूर्ययन्त्र—अब मैं रोगनिवारक सूर्ययन्त्र का वर्णन करता हूँ। षट्कोण बनाकर उसके मध्य में साध्य-सहित ॐ लिखकर उसके कोणों में 'ॐ ह्रीं सो हं हं स:' इन छ: वर्णों को क्रमश: लिखने के पश्चात् उसके बाहर चतुर्दल कमल बनाकर उसके बाहरी केशरों में पूर्व से प्रारम्भ करके 'ह्रीं ह्रीं हं स:' इन चारो अक्षरों को लिखकर पत्रों में 'उद्यन्नद्य' ऋचा के एक-एक पादों को लिखना चाहिये। फिर अष्टदल कमल के केशरों में क्रमश: 'ह्रीं घृणि: सूर्य आदित्य' के एक-एक अक्षरों को लिखकर दलों में क्रमश: १. शुकेषु हरिमाणं, २. रोपणाकरसु दध्मसि, ३. अथो हरि द्रवेषु, ४. मे हरिमाणं निदध्मसि, ५. उदगादयमादित्यो, ६. विश्वेन महसा सह, ७. द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो, ८. अहं द्विषतेरधम् ऋचा को लिखकर उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उनके मध्य में मातृकावर्णों को लिखने के पश्चात् बाहर भूपुर बनाकर उसके चारो कोणों में 'अं ह्रीं ह्रीं स:' इन चारो वर्णों को लिखना चाहिये।

सूर्य का यह यन्त्र समस्त दुष्ट ग्रहों के प्रभाव को नष्ट करता है एवं तेज, लक्ष्मी, भोग, प्रताप तथा धैर्य की वृद्धि करता है।।२८३-२८८।।

एतद्गोमयलिप्तायां लिखेदारक्तचन्दनै: ॥२८९॥
धरायां ताम्रसूच्या तु सम्यगावाह्य पूजयेत्।
पूजान्ते च विशिष्टार्घ्यं प्रकल्प्यास्मै प्रदीयते ॥२९०॥
कुष्ठयक्ष्मादिशान्त्यै च क्षुद्ररोगविनाशनम्।
इदं यन्त्रं ताम्रपात्रे लिखित्वा स्थापितं गृहे ॥२९१॥
विधिवत्पूजयन्नित्यं हन्यात्कुष्ठमुखान् गदान्।
अपस्मारं विस्मृतिं च रोगांश्चैवाभिचारिकान् ॥२९२॥

इस यन्त्र को गोबर से लिप्त भूमि पर लाल चन्दन से ताँबे की शलाका से लिखकर सूर्यदेव का विधि-पूर्वक आवाहन करके पूजन करने के उपरान्त विशेषार्घ्य प्रदान करने से कोढ़, यक्ष्मा आदि की शान्ति होती है और क्षुद्र रोगों का विनाश होता है।

इस यन्त्र को ताम्रपत्र पर लिखकर घर में स्थापित करके प्रतिदिन विधिवत् पूजन करने से कोढ़ आदि प्रमुख रोगों के साथ-साथ अपस्मार, विस्मरण एवं अभिचार-जनित कष्टों का भी विनाश हो जाता है।।२८९-२९२।।

सुवर्णपत्रे चालिख्य तैलमध्ये विनि:क्षिपेत्।
सहस्रसङ्ख्यं प्रजपेदुद्यन्नद्यमिति त्र्यृचम् ॥२९३॥
तत्राशक्तशरीरस्य कुष्ठरोगविनाशनम्।
इदमेव लिखेद्यन्त्रं नवीने नवनीतकम् ॥२९४॥

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा त्र्यृचं निष्कास्य भक्षयेत् ।
गदिनो रोगशान्तिः स्यात्सत्यमेतन्न संशयः ॥२९५॥

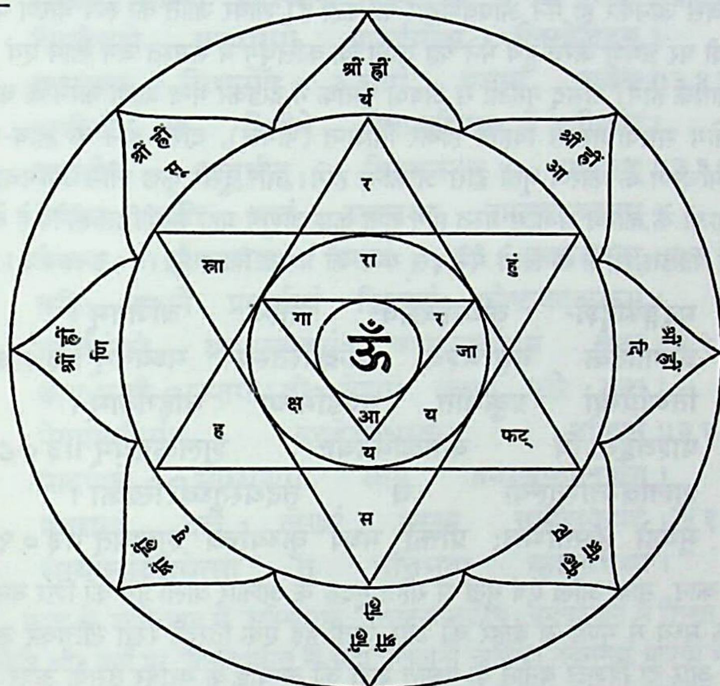
इस यन्त्र को सोने के पत्र पर लिखकर तेल में डुबोकर 'उद्यन्नद्य' आदि तीन ऋचाओं का एक हजार जप करने से कुष्ठ के कारण अशक्त शरीर वाले व्यक्ति के कुष्ठ रोग का विनाश हो जाता है।

इसी यन्त्र को लिखकर ताजे मक्खन में डुबोकर उक्त तीन ऋचाओं का एक सौ आठ बार जप करके यन्त्र को मक्खन से निकालकर मक्खन का भक्षण करने से रोगी का रोग नष्ट हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।।२९३-२९५।।

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि गायत्रीसौरमन्त्रयोः ।
यन्त्रं समस्तरोगाणां नाशनं सूर्य्यवल्लभम् ॥२९६॥
वृत्तं कृत्वा तु तन्मध्ये ससाध्यं प्रणवं लिखेत् ।
बहिस्तस्य त्रिकोणं तु मन्त्रागारेति संल्लिखेत् ॥२९७॥
एकैकमक्षरं कोणे बहिर्वृत्तं पुनर्लिखेत् ।
यक्षराजायेति तत्र लिखेत्पञ्चाक्षराणि तु ॥२२८॥
बहिस्तस्य तु षट्कोणे लिखेदेकैकमक्षरम् ।
सहस्रारं हुंफडिति अष्टकोणे ततो लिखेत् ॥२९९॥
घृणिं सूर्य्यं तथादित्यं लिखेदेकैककोष्ठके ।
पत्राग्रेषु लिखेच्छ्रीं ह्रीमिति बीजद्वयं पुनः ॥३००॥
सौरं यन्त्रमिदं प्रोक्तमायुरारोग्यवृद्धिदम् ।
वन्ध्यानां पुत्रजननं स्त्रीणां सौभाग्यदायकम् ॥३०१॥
राज्ञां विजयदं सम्यग्रोगिणां रोगनाशनम् ।
किं बहूक्तेन विधिना धृते हस्ते फलप्रदम् ॥३०२॥

सूर्यगायत्री यन्त्र—अब मैं दूसरे गायत्री एवं सूर्यमन्त्र के यन्त्र को कहता हूँ, जो समस्त रोगों का विनाशक होने के साथ-साथ सूर्य को भी अतिशय प्रिय है। एक वृत्त बनाकर उसके मध्य में साध्यनाम के साथ ॐ लिखने के बाद उसके बाहर त्रिकोण वनाकर आ गा रा मन्त्र के एक-एक अक्षर को तीनों कोणों में लिखने के पश्चात् उसके बाहर फिर एक वृत्त बनाकर उसमें 'यक्षराजाय' इन पाँच अक्षरों को लिखकर उसके बाहर षट्कोण बनाकर उसके छः कोणों में 'सहस्रार हुं फट्' मन्त्र के एक-एक अक्षर को लिखने के बाद उसके बाहर अष्टकोण का निर्माण करके उसके आठो कोणों में 'ह्रीं घृणिः सूर्य आदित्य' मन्त्र के एक-एक अक्षर को लिखकर आठों पत्रों के अग्रभाग

में 'श्रीं ह्रीं' इन दो बीजों को लिखना चाहिये। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार स्पष्ट होता है—



यह सूर्ययन्त्र आयु एवं आरोग्य की वृद्धि करने वाला, वन्ध्या स्त्रियों को पुत्र प्रदन करने वाला, स्त्रियों के सौभाग्य की वृद्धि करने वाला, राजाओं को विजय प्रदान करने वाला, रोगियों के रोगों का विनाश है। बहुत कहने से क्या लाभ; विधि-पूर्वक बाँह में धारण करने से यह निश्चित रूप से फल प्रदान करने वाला होता है।

तथैव सम्प्रवक्ष्यामि सारात्सारतरं परम्।
यद्बुद्ध्वा च मया प्रोक्तं सारमाथर्वणस्य च ॥३०३॥
शाबरं रूपमास्थाय पृथ्वीं पर्य्यटता मया।
कलौ लोका भविष्यन्ति सर्वे कामार्थसाधका: ॥३०४॥
असद्गुरूणां तन्मन्त्रैर्दृष्टैर्वा पुस्तकादिषु।
समयाचारविभ्रष्टा विक्षिप्तास्ते च निर्धना: ॥३०५॥
अधर्मेण भविष्यन्ति भूताक्रान्तास्तथापरे।
अभिचारिककृत्यादिरोगैर्ग्रस्तमहाग्रहै: ।
तेषामर्थे मया देवा यन्त्रं तु प्रकटीकृतम् ॥३०६॥

जिस प्रकार मैंने विविध यन्त्रों को कहा, उसी प्रकार सर्वोत्तम परम तत्त्व को कहता हूँ, जिसे ज़ानकर ही मैंने आथर्वणसार को कहा है। शाबर जाति का रूप धारण करके पृथिवी पर भ्रमण करते हुये मैंने यह जाना कि कलियुग में समस्त जन काम एवं अर्थ के साधक होंगे। असद् गुरुओं से अथवा पुस्तक में देखकर मन्त्र ग्रहण करने के कारण वे लोग समयाचार से विहीन होकर विक्षिप्त (पागल), दरिद्र होने के साथ-साथ अधर्माचरण के कारण भूतों द्वारा आक्रान्त होंगे। और दूसरे कुछ लोग आभिचारिक कृत्याओं के कारण रोगों से ग्रस्त होंगे तथा कुछ अशुभ ग्रहों से पीड़ित होंगे। हे देवों! उन्हीं पीड़ित लोगों के लिये मैंने इस यन्त्र को प्रकट किया है।।३०३-३०६।।

मृदङ्गसदृशं कुर्य्याच्छीर्षं प्रेतस्य वर्जितम्।
घ्राणादिकं चतुर्भिश्च इन्द्रियैस्तस्य मध्यगम्।।३०७।।
तिर्य्यग्रेखां प्रकुर्वीत मुण्डमित्या बहिर्गताम्।
पार्श्वद्वयेऽपि कर्तव्यमग्रयोः शूलकद्वयम्।।३०८।।
शूलविस्तारतुल्या च तदधस्तूर्ध्वरेखिका।
मुण्डो हस्ताभिधः प्रोक्तो मध्यं कुर्य्याच्च शूलवत्।।३०९।।

कान, नाक आँख एवं मुख से रहित मृदङ्ग के आकार वाला प्रेत का शिर बनाकर उसके मध्य में मुण्ड से बाहर की ओर जाती हुई एक तिरछी रेखा खींचकर उसके दोनों ओर दो त्रिशूल बनाने के पश्चात् शूल की लम्बाई के बराबर उसके ऊपर और नीचे रेखा खींचनी चाहिये। इस मुण्ड़ को एक हाथ लम्बा बनाना चाहिये और इसका मध्यभाग त्रिशूल के समान रखना चाहिये।।३०७-३०९।।

गुप्तेन्द्रियस्थले कुर्य्यात्पश्वाकारान्तु रेखिकाम्।
त्रिशूलौ पीठिकायुक्तौ पादयोस्तत्स्थले न्यसेत्।।३१०।।
एवं कृत्वा प्रेतरूपं बीजान्येतानि संल्लिखेत्।
शीर्षे हस्ते दक्षबाहावूर्ध्वमष्टदलं लिखेत्।।३११।।
रेखार्धभागमुण्डन्तु ङेऽन्तं डं नं लिखेत्तथा।
वामबाहूपरिष्टाच्च हामो इत्यक्षरद्वयम्।।३१२।।

गुप्तेन्द्रिय के स्थान पर पशु के आकार की रेखा बनानी चाहिये। उसके पैरों के स्थान पर पीठिका-युक्त त्रिशूल बनाना चाहिये। इस प्रकार प्रेत का रूप बनाकर इन बीजों को लिखना चाहिये। उसके शीर्ष, हस्त एवं दक्षिण भुजा के ऊपर अष्टदल कमल बनाकर रेखा के दूसरी ओर मुण्ड़ के अर्द्धभाग में चतुर्थ्यन्त 'त ड' को लिखकर बाँयीं भुजा के ऊपर 'हा मो' इन दो अक्षरों को लिखना चाहिये।।३१०-३१२।।

अर्धे भागे तु मुण्डस्य सस्मिवाष्टाश्च संल्लिखेत्।
शिखा कार्य्या हृदस्थानं तिर्य्यगूर्ध्वं तु सं सदा ॥३१३॥
लिखेत्ततो मध्यभागे पार्श्वयोश्च लिखेदिदम्।
क्रमान्नव विभागेषु अलीयं प्रथमा भवेत् ॥३१४॥
भूबीजं च द्वितीये स्यादहीनञ्च तृतीयके।
सराहीयं चतुर्थन्तु विहकस्तत्तु पञ्चमम् ॥३१५॥
त्रैयाक इति षष्ठं स्यात्तथा नाम्बुदसप्तमम्।
त्रैयाक इत्यष्टमञ्च नस्तरं न तथान्तिमम् ॥३१६॥
बहि: स्थाने प्रकर्त्तव्यं द्विकाद्यं कोष्ठषट्ककम्।
ऊर्ध्वपंक्तौ क्रमाल्लेख्यं षट्कत्राद्वितयं तथा ॥३१७॥
अध:पङ्क्तौ सप्तगोऽष्टौ पेश्यां लेख्यं त्रसे सदा।
पेश्याबहिर्मम हृदपेश्यधस्तात्तु दक्षिणे ॥३१८॥
पादपार्श्वे साध्यनाम वामे तन्मन्त्रमालिखेत्।
एतद्यन्त्रं दले लेख्यं मस्या तन्नीलकर्पटे ॥३१९॥
सम्यक्संवेष्टयेत्सा तु वर्त्तिभूता कुशाभिधा।

मुण्ड के आधे भाग में 'सस्मिवाष्टा:' लिखना चाहिये। हृदयस्थान में शिखा बनानी चाहिये और वहाँ पर 'तिर्यगूर्ध्वन्तु सं सदा' लिखना चाहिये। तदनन्तर पार्श्वों के मध्य में क्रमश: नव विभाग करके प्रथम भाग में 'अलीय', द्वितीय भाग में भूबीज, तृतीय भाग में 'अहीन', चतुर्थ भाग में 'सराहीय', पञ्चम भाग में 'विहक', षष्ठ भाग में 'त्रैयाक', सप्तम भाग में 'नाम्बुद', अष्टम भाग में 'त्रैयाक' एवं अन्तिम नवम भाग में 'नस्तर' लिखना चाहिये। उसके बाहरी भाग में छ: खानों वाला दो कोष्ठ बनाकर ऊपरी पंक्ति में '६, ३, २' अंक लिखकर नीचे की पंक्ति में '७, ८' अंक लिखना चाहिये। उसकी पेशी में सदा 'त्रसे' लिखना चाहिये। पेशी के बाहर 'मम हृद' एवं उसके नीचे दाँयें पैर के बगल में साध्यनाम एवं बाँयें मन्त्र लिखना चाहिये। इस यन्त्र को स्याही से कमलदल पर लिखकर उसे नीले रंग के पुराने कपड़े में अच्छी तरह से लपेटकर कुशा के समान बत्ती के आकार का बना लेना चाहिये।।३१३-३१९।।

आदित्यवासरे सायं गोमयेनोपलेपयेत् ॥३२०॥
स्थाने श्वेताक्षतैस्तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत्।
तत्कर्णिकायां प्रथमं पूजयेच्च गणाधिपम् ॥३२१॥
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे क्षेत्राधिपतिमर्चयेत्।
पत्रेष्विन्द्रादिकानर्चेत्कर्णिकायां तु दीपिकाम् ॥३२२॥

सम्यगन्यसेत्तदूर्ध्वन्तु स्थापयेत्तैलपात्रकम्।
तैलन्तु कुडवोन्मानं तिलानां तत्र तिष्ठति ।।३२३।।
तादृशे मृण्मये पात्रे धातुजे वा प्रकल्पयेत्।
पूजयित्वा दीपिकादि सायं तत्रोपवेशयेत् ।।३२४।।
तद्दर्शयन्निष्टयन्त्रं ध्यायेद्दीपं विलोकयन्।
दीपाधिष्ठातृदेवस्य तुष्ट्यै सावरणस्य च ।।३२५।।
दद्यादामान्नमर्कन्तु वैदिकाय कुटुम्बिने।
यावच्च प्रज्वलेद्दीपः पश्येत्तावदतन्द्रितः ।।३२६।।

रविवार को सायंकाल गोबर से लिप्त स्थान पर श्वेत अक्षत से अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में पहले गणेश का पूजन करने के उपरान्त उसी के दाँयें भाग में क्षेत्रपाल का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर आठ दलों में इन्द्रादि दिक्पालों का एवं कर्णिका में दीपिका का पूजन करना चाहिये। फिर उसके ऊपर सम्यक् रूप से एक कुड़व (=प्रस्थ) तिलतैल से समन्वित मिट्टी अथवा धातु से निर्मित तैलपात्र को स्थापित करके दीपक का पूजन करने के बाद सायंकाल उसी स्थान पर बैठकर इष्टयन्त्र को उसे दिखाते हुये दीपक की ओर देखते हुये ध्यान करना चाहिये। आवरण-सहित दीप के अधिष्ठातृ देवता की प्रसन्नता के लिये वैदिक व्यक्ति को कच्चा अन्न एवं अग्नि प्रदान करना चाहिये। जब तक दीपक जलता रहे तब तक अतन्द्रित (सावधान) रहकर दीपक को देखते रहना चाहिये।।३२०-३२६।।

देवदोषे समुत्पन्ने दीपो वदति स स्वयम्।
यत्किञ्चित्त्वरितं कार्य्यं शान्तिर्भवति निश्चितम् ।।३२७।।
दोषा यदा राक्षसादेः शरीरे सत्यवादिनि।
तदा तदैव कर्त्तव्यं रोगी सुखमवाप्नुयात् ।।३२८।।
अभिचारिककृत्यादौ दीपकम्पः प्रजायते।
कम्पते तु क्षणेनैव महाँश्चापि क्षणे क्षणे ।।३२९।।
एकेन भानुवारेण क्षुद्रदोषः प्रणश्यति।
भानुवारद्वयं कृत्याकृतदोषविनाशनम् ।।३३०।।
साधकेनाप्यचरितं त्रिभिर्दोषः क्षयं व्रजेत्।
मन्त्रभक्षणदोषोऽथ चतुर्दीपैर्विनश्यतु ।।३३१।।
कुगुरुप्राणमन्त्रेण षड्भिर्दोषो विनश्यति।
रोगोऽपि सप्तदीपेन नश्येदेतन्महाद्भुतम् ।।३३२।।

त्रिनिमित्तं स्वयं गच्छेद्वेधे वातायने त्रयः।
अभ्यन्तरे कालिमवच्छिद्रं वापि प्रदृश्यते॥३३३॥
त्रिशिखो वा द्विवर्णो वा निस्तेजा यदि जायते।
पूर्णमायुर्विनिर्देश्यं स रोगी नैव जीवति॥३३४॥

देवदोष उत्पन्न होने पर स्वयं वह दीपक जो भी कार्य करने के लिये कहता है, उसे तत्काल करने पर निश्चित रूप से शान्ति हो जाती है। हे सत्यवादिनि! शरीर में राक्षस-सम्बन्धी दोष होने पर वह दीपक जो कहे, उसे उसी समय कर देने पर रोगी रोगमुक्त होकर सुख का अनुभव करता है। आभिचारिक कृत्य आदि दोष होने पर दीपक में कम्पन होने लगता है; यह कम्पन एक क्षण में ही होने लगता है और प्रतिक्षण बढ़ता जाता है।

एक रविवार को इस प्रयोग को करने से क्षुद्र दोष समाप्त हो जाते हैं। दो रविवार को ऐसा करने से कृत्या-कृत दोष का विनाश हो जाता है। साधक द्वारा किये गये दोष तीन रविवार को प्रयोग से समाप्त हो जाते हैं। मन्त्रभक्षण दोष चार दीपों से समाप्त होता है। अयोग्य गुरु के प्राणमन्त्र-जनित दोष छः दीपों से विनष्ट होता है एवं सात रविवार को दीपदान से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। तीन निमित्त के होने पर स्वयं चला जाता है। घोड़े से वेध होने पर तीन के मध्य कालि द्वारा विभाजित दिखाई देता है। त्रिशिख अथवा द्विवर्ण दीप यदि निस्तेज हो जाय तब रोगी की आयु पूर्ण होने का निर्देश करना चाहिये अर्थात् वह रोगी जीवित नहीं रहता।।३२७-३३४।।

सिद्धयन्त्रमिदं प्रोक्तं तान्त्रिकाणां तु सिद्धिदम्।
स्वधर्म्मत्यागिनां नैव यन्त्रं कार्य्यं तु पण्डितैः॥३३५॥
ब्राह्मं धर्म्ममुपातिष्ठेत्तस्य नास्ति पुरस्क्रिया।
स्वयं यन्त्राणि मन्त्राश्च सिद्ध्यन्त्यत्र न संशयः॥३३६॥

यह सिद्ध यन्त्र है। तान्त्रिकों को भी इससे सिद्धि मिलती है। अपने धर्म का त्याग करने वाले पण्डितों को यह प्रयोग नहीं करना चाहिये। जो ब्राह्म धर्म का पालन करने वाले हैं, उनके लिये किसी प्रकार का आरम्भिक संस्कार करणीय नहीं होता; अपितु उनके सभी यन्त्र-मन्त्र स्वयं सिद्ध होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३३३-३३६।।

अष्टादशपुराणानि व्यासेन रचितानि तु।
गौतमेन प्रणीतो यो न्यायोऽसौ धर्म्मसाधनम्॥३३७॥
भविष्यन्ति कलौ नानाकुतर्का वेदनाशकाः।
तानधीत्य द्विजो भूयः प्रेतो वा ब्रह्मराक्षसः॥३३८॥

मीमांसा सेश्वरा या तु पुरुषार्थप्रसाधिका ।
निरीश्वरा कर्म्मपरा भोगं स्वर्गं प्रयच्छति ॥३३९॥
स्मृतयोऽष्टादश प्रोक्ताः पङ्क्तौ चाद्यः पराशरः ।
शङ्खश्च लिखितो व्यासो वशिष्ठः कश्यपो मुनिः ॥३४०॥
अगस्त्ययमहारीता दिवोदासः प्रजापतिः ।
पैठीनसिश्च भगवाञ्जमदग्निश्च गौतमः ॥३४१॥
भारद्वाज इमे प्रोक्ता धर्म्मशास्त्रप्रवर्त्तकाः ।
मतभेदस्तथा तेषां विज्ञेयो देशभेदतः ॥३४२॥
क्वचित्कालविभेदेन भिद्यते तु मुनेर्वचः ।
तस्माज्जातिं कुलं देशं ज्ञात्वा धर्म्मं समादिशेत् ॥३४३॥

धर्म-निरूपण—व्यास द्वारा रचित अठारह पुराण एवं गौतम द्वारा प्रणीत जो न्याय है, वही धर्म का साधन है। कलियुग में वेद के विरुद्ध बहुत कुतर्क होंगे और उन्हीं का बार-बार अध्ययन करके द्विज प्रेत अथवा ब्रह्मराक्षस बनेंगे।

ईश्वर को मानने वाली मीमांसा पुरुषार्थ की साधिका है एवं जो ईवर की सत्ता को स्वीकार न करने वाली कर्मप्रधान मीमांसा है, वह भोग एवं स्वर्ग को देने वाली है।

स्मृतियाँ अठारह कही गई हैं; उस पंक्ति में पराशरस्मृति प्रथम स्थान पर अवस्थित है। शङ्ख, लिखित, व्यास, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, यम, हारीत, दिवोदास, प्रजापति, पैठीनसि, जमदग्नि, गौतम और भारद्वाज को धर्मशास्त्र का प्रवर्तक कहा गया है। इन लोगों के वचनों में जो मतभेद दिखाई देता है, वह देश भेद के कारण है। कहीं-कहीं कालभेद के कारण भी मुनियों के वचनों में भिन्नता दृगोचर होती है; इसलिये जाति, कुल एवं देश को जानकर ही धर्म का आदेश करना चाहिये।।३३७-३४३।।

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च ।
गणितं संहिता होरा त्रिविधं ज्यौतिषं तथा ॥३४४॥
वेदाङ्गानि षडेतानि वेदाश्चत्वार एव च ।
चतुर्दशसु वै यद्यत्तत्प्रोक्तं धर्म्मसाधनम् ॥३४५॥
सिद्धे यस्मिंस्तु सिद्धाश्च ऋष्याद्याः स्वयमेव हि ।
एतद्विरुद्धं वर्णानां भवेन्नो धर्म्मसाधनम् ॥३४६॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वो नीतयस्तथा ।
शिल्पविद्याश्च गणितं शकुनं चेति सप्त च ॥३४७॥

प्रोक्तानि चार्थशास्त्राणि यथोक्ताचरणाद् ध्रुवम्।
यद्दर्शितं भवेत्तत्र समर्थं पुरुषार्थकृत्॥३४८॥
साहित्यमागमो वाजीकरणं कामचारणम्।
चतुर्धा कामशास्त्रं स्यात्प्राप्त्यर्थं गुरुशास्त्रतः॥३४९॥
धर्म्मार्थाद्यविरोधेन भवेत्तत्कामसाधनम्।
विना गुरुं विना बुद्धिं पुरुषार्थः प्रणश्यति॥३५०॥
योगशास्त्रञ्च वेदान्तं द्वयं मोक्षस्य साधनम्।
अन्ये ये प्राकृता ग्रन्था धर्म्माभासाश्च ते सुराः॥३५१॥

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द के साथ-साथ गणित, संहिता एवं होरारूप त्रिविध ज्यौतिष—ये छः वेदाङ्ग कहे गये हैं। वेद तो चार ही हैं। इन चौदहों (वेद ४, वेदाङ्ग ६, धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा एवं तर्कशास्त्र) के द्वारा जो कहा गया है, वही धर्म का साधन है। इनके सिद्ध हो जाने पर ऋषि आदि स्वयं सिद्ध हो जाते हैं। इनके विरुद्ध आचरण करने पर चारो वर्णों के लिये दूसरा कोई धर्म का साधन नहीं है।

आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, नीतिशास्त्र, शिल्पविद्या, गणित एवं शकुन—ये सात अर्थशास्त्र कहे गये हैं। इनके अनुरूप आचरण करने से मनुष्य पुरुषार्थ करने में समर्थ होता है।

साहित्य, आगम, वाजीकरण, कामचार—यह चार प्रकार का कामशास्त्र कहा गया है। गुरु और शास्त्र से प्राप्त होने पर एवं धर्म-अर्थ आदि से विरोध न होने पर यह काम का साधक होता है। विना गुरु और विना बुद्धि का पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है।

योगशास्त्र और वेदान्त—ये दोनों मोक्ष के साधन हैं। हे देवताओं! इनके अतिरिक्त जो प्राकृत ग्रन्थ हैं, वे सभी धर्माभास-मात्र हैं।।३४४-३५१।।

अस्मिन् कलियुगे घोरे शिश्नोदरपरायणे।
कश्चिदेकः कोटिमध्ये सर्वकर्म्मविवर्धनः॥३५२॥
बुधो धर्म्मपरो भूयात्तदर्थमिदमुच्यते।
उत्पादयेत्सुपुत्रन्तु कुलदीपं तदुच्यते॥३५३॥

शिश्नोदर-परायण इस घोर कलियुग में करोड़ों में कोई एक ही समस्त कर्मों को बढ़ाने वाला होता है। इसका विवेचन इसलिये किया गया है कि बुद्धिमान् मनुष्य धर्मपरायण हों एवं कुल के प्रकाशक सुपुत्र को उत्पन्न करें; उस पुत्रोत्पत्ति-विधान को अब कहा जा रहा है।।३५२-३५३।।

गर्भाधानाख्यसंस्कारं कुर्वीत प्रथमार्तवे।
सीमन्तोन्नयनं कार्य्यं तथा पुंसवनं स्मृतम् ॥३५४॥
एते त्रयस्तु संस्कारा ब्राह्मगर्भत्वकारकाः।
एतैरेव तु यो जातः संस्कृतो ब्रह्मबीजतः ॥३५५॥
जातकर्म्मादयस्तस्य चान्नप्राशनमेव च।
चत्वारस्ते बालकस्य संस्कारा ब्राह्मसिद्धये ॥३५६॥
व्रतबन्धः समावर्तो वेदपाठो विधानतः।
एते त्रयस्तु संस्काराः कौमारे ब्रह्मकारकाः ॥३५७॥

प्रथम रजस्राव होने पर गर्भाधान संस्कार करना चाहिये। इसके पश्चात् सीमन्तोन्नयन और पुंसवन संस्कार करना चाहिये। ये तीन संस्कार ब्राह्मगर्भत्व-कारक होते हैं। इन संस्कारों के द्वारा जो उत्पन्न होता है, वह ब्रह्मबीज से संस्कृत होता है। जातकर्म, नामकर्म, मुण्डन और अन्नप्राशन—ये चार संस्कार उस बालक के ब्रह्मतेज की वृद्धि के लिये किये जाते हैं। व्रतबन्ध, समावर्तन और वेदपाठ—विधि-पूर्वक बाल्यावस्था में किये गये ये तीन संस्कार ब्रह्मतेज को उत्पन्न करने वाले होते हैं।।३५४-३५७।।

एवं यो दशसंस्कारैः संस्कृतो दशकर्म्मकृत्।
स एव ब्राह्मणो ज्ञेयो मन्त्राः सर्वेऽपि तद्वशाः ॥३५८॥
तद्दृष्ट्वा राक्षसा वीरा म्लेच्छा बाधितुमक्षमाः।
कर्म्माणि दश ते दृष्ट्वा पलायन्ते तु दूरतः ॥३५९॥

इस प्रकार जो दश संस्कारों से संस्कृत होता है, उसी को दश कर्मों को करने वाला ब्राह्मण जानना चाहिये; सभी मन्त्र भी उसी के वशीभूत होते हैं। उसे देखकर राक्षस, वीर, म्लेच्छ भी उसे बाधित करने में समर्थ नहीं होते एवं वे सभी उसके दश कर्मों को देखकर दूर से ही भाग जाते हैं।।३५८-३५९।।

दशप्रकारान्यतरप्रकारेण धनार्जनम्।
निर्वाहाय कुटुम्बस्य प्रथमं कर्म्म चोच्यते ॥३६०॥
याज्यस्य याजनं कृत्वा साधयेत्प्रथमं धनम्।
पाठयित्वा योग्यशिष्यं द्वितीयं पारितोषिकम् ॥३६१॥
दुर्दातारं च दुष्कालं दुर्दानं दुष्टभूमिकाम्।
हित्वा प्रतिग्रहं कुर्य्यात्तृतीयन्धनसाधनम् ॥३६२॥
दायादक्रमतः प्राप्तं सञ्चितं तत्तुरीयकम्।
एतद्वंशे तु यद्वित्तं तल्लब्धं पञ्चमं स्मृतम् ॥३६३॥

अर्थोपायास्तु ये प्रोक्ताः साधितं तैस्तु षष्ठकम्।
सन्मन्त्रस्योपदेशेन यल्लब्धन्तत्तु सप्तमम्॥३६४॥
कृषिं यथोक्तमार्गेण कुर्य्यात्तच्चाष्टमं मतम्।
कालानुगुणतः प्राप्तं नवमं पारितोषिकम्॥३६५॥
विशिष्टं पूर्वपूर्वं तु दानं स्याद् द्विगुणं भवेत्।
धनार्जनाख्यं कर्म्मैतत्प्रथमं परिकीर्त्तितम्॥३६६॥

धनार्जन के दश प्रकार होते हैं, उनमें से किसी एक प्रकार से धनार्जन करना चाहिये। कुटुम्ब के निर्वाह के लिये प्रथम कर्म को कहता हूँ। याज्य का याजन करके धनोपार्जन करना सर्वश्रेष्ठ कर्म है। योग्य शिष्यों को पढ़ाकर पारितोषक-स्वरूप धन प्राप्त करना द्वितीय कर्म है। हेय दाता, हेय काल, हेय दान एवं दुष्ट भूमिका का परित्याग करते हुये प्रतिग्रह को ग्रहण करना धनोपार्जन का तृतीय उपाय है। दायादो (भाई-बन्धुओं) से प्राप्त धन को सञ्चित करना धनोपार्जन का चतुर्थ उपाय है। अपने वंश के धन को प्राप्त करना धनोपार्जन का पञ्चम साधन है। ऊपर वर्णित उपायों से धन प्राप्त करना छठा उपाय है। सन्मन्त्रों के उपदेश से जो धन प्राप्त होता है, वह सातवाँ उपाय है। यथोक्त मार्ग से खेती करना आठवाँ उपाय है। कालानुगुण से प्राप्त पारितोषिक नवम उपाय है। सभी नव उपायों में नीचे से ऊपर वाला क्रमशः श्रेष्ठ होता हैं। दान करने से धन दुगुना होता है। यह धनार्जन-नामक प्रथम कर्म कहा गया है।।३६०-३६६।।

पोष्यकर्म्म द्वितीयं स्यादादौ स्वीये कलेवरे।
ततः पतिव्रता भार्य्या माता जनयिता ततः॥३६७॥
भ्रातरो गुरवः पुत्राः कन्या मातामहस्तथा।
श्वश्रूश्चायं पोष्यवर्गो विपत्तौ यच्च लभ्यते॥३६८॥
एकाद्यंशान् समीकृत्य भागं तेभ्यः प्रदापयेत्।
अत्र पुत्रस्य यो भागस्तस्य पोष्यसमीकृतिम्।
कृत्वा विप्रेण रज्येत ब्राह्मण्यात्र तु हीयते॥३६९॥

दूसरे स्थान पर पोष्य कर्म है। उसमें पहला कर्म अपने शरीर का पोषण है। इसके बाद क्रमशः पतिव्रता पत्नी, माता, पिता, भ्राता, गुरु, पुत्र, कन्या, दादी, श्वश्रू (सास) पोषण करने योग्य होते हैं। विपत्ति की दशा में अपनी प्राप्ति के न्यूनतम एक अंश को एकत्रित कर उन्हें देना चाहिये। इसमें पुत्र के भाग को भी मिला लेना चाहिये। ऐसा करके साधक विप्र के द्वारा प्रशंसित होता है और ब्राह्मणत्व से पतित नहीं होता।

नित्यस्नानं तृतीयं स्यादस्नायी शूद्रतां व्रजेत्।
दशस्नानानि चैतानि गुणेनोपचितानि च।
आदौ वर्णतरुस्नानं साभ्यङ्गं च द्वितीयकम् ॥३७०॥
हैमोदकं च मात्रं च भौमाख्यं च विभूतिमत्।
गायत्रं चापि वायव्यं कायिकं मानसं तथा ॥३७१॥

तीसरा कर्म नित्य स्नान है। जो नित्य स्नान नहीं करता, वह शूद्र के समान होता है। स्नान दश प्रकार के होते हैं और वे गुणों से उपचित (बढ़े हुये) होते है। पहला वर्णतरु स्नान होता है। दूसरा अभ्यङ्ग-सहित स्नान होता है। उसके पश्चात् क्रमशः हिम जलस्नान, मन्त्रस्नान, भौमस्नान, भस्मस्नान, गायत्रीस्नान, वायव्य स्नान, कायिक स्नान तथा मानसिक स्नान होते हैं।।३७०-३७१।।

सन्ध्याकर्म्म चतुर्थं स्याद्दशधा तत्प्रकीर्तितम्।
प्रागुक्तविधिना पूजा मुद्रा दर्शनपूर्विका।
अष्टाधिकसहस्रं च जपो मुख्यमिदं स्मृतम् ॥३७२॥
द्व्येकयोरेवमाचारात् सन्ध्याभेदत्रयं मतम्।
सार्चना मुद्रिकायुक्ता तथा चान्या विमुद्रिका ॥३७३॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु तथा चाष्टोत्तरं शतम्।
अष्टाविंशतिरष्टौ वा जपे भेदचतुष्टयम्।
जपाभावे न सन्ध्याऽर्घ्यं गायत्र्या सम्प्रदीयते ॥३७४॥
दशमीयं भवेत्सन्ध्या शूद्रस्तल्लोपतो भवेत्।
देवपूजाद्वयं प्रोक्तं नित्यं काम्यं च पञ्चमम्।
पञ्चधा पञ्चयज्ञाश्च दशकर्म्मेति कीर्त्यते ॥३७५॥
देवभूतर्षिमनुजपितॄणामिति भेदतः।
तेऽपि पञ्चविधाः प्रोक्ता उत्तमोत्तममुख्यकाः ॥३७६॥
पञ्चभेदैश्च सम्भिन्ना एकैकस्य परिच्युतेः।
तत्रोच्यते देवयज्ञप्रकारो देवतर्पणम् ॥३७७॥
वैश्वदेवाहुतिर्नित्योपासनस्याहुतिस्तथा।
अग्निहोत्राहुतिश्चैव तत्सूक्तस्य तथा जपः ॥३७८॥

चौथा कर्म सन्ध्याकर्म है। यह दश प्रकार का होता है। पूर्वोक्त विधि से पूजा, मुद्रा-प्रदर्शन और आठ हजार से अधिक मन्त्रजप—यह मुख्य सन्ध्याकर्म कहा गया है। प्रतिदिन तीन बार किये जाने के कारण सन्ध्या के तीन भेद कहे गये हैं। अर्चना

भी द्विविध होती है, एक मुद्रा-सहित एवं दूसरी मुद्रा-रहित। एक हजार आठ, एक सौ आठ, अट्ठाईस अथवा आठ के भेद से जप के चार भेद होते हैं। जप के अभाव में सन्ध्या पूर्ण नहीं होती। गायत्री के द्वारा अर्घ्य दिया जाता है। इस प्रकार यह सन्ध्या दश प्रकार की होती है। इसका लोप होने से शूद्रत्व की प्राप्ति होती है। नित्य एवं काम्य के भेद से देवपूजा भी द्विविध होती है।

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, ऋषियज्ञ, मनुष्ययज्ञ एवं पितृयज्ञ के भेद से पाँच प्रकार के पञ्चयज्ञ पञ्चम दशकर्म कहे जाते हैं। वे पञ्चयज्ञ उत्तम, उत्तमोत्तम एवं मुख्य भेद वाले होते हैं। पाँच भेदों द्वारा सम्यक् रूप से अलग-अलग एक-एक के लोप होने की स्थिति में देवतर्पण, वैश्वदेव होम, नित्य उपासना का होम, अग्निहोत्र होम एवं उसके सूक्त का जप—ये पाँच देवयज्ञ के प्रकार कहे गये हैं।।३७२-३७८।।

त्रिविधस्तु बलिः प्रोक्तः शौचान्ते तु त्यजेज्जलम्।
तथा च वैश्वदेवान्ते यन्वता इति मन्त्रतः ।।३७९।।
आत्मोच्छिष्टस्य यच्छेषं तृतीयं तत्प्रकीर्त्तितम्।
अयन्तु भूतयज्ञः स्यात्क्षुद्रबाधानिवारणः ।।३८०।।

बलि तीन प्रकार की होती है। प्रथम प्रकार है—शौच के अन्त में जल का त्याग, द्वितीय प्रकार है—वैश्वदेव के अन्त में 'यन्वता' मन्त्र से जल का त्याग एवं तृतीय प्रकार है—आत्मोच्छिष्ट का शेष। इसे भूतयज्ञ कहते हैं। इससे क्षुद्र बाधा का निवारण होता है।।३७९-३८०।।

अष्टकं प्रपठेन्नित्यं पूजान्ते यतमानसः।
तदभावे ध्यानमात्रं वेदानां च पठेदृचः ।।३८१।।
तदभावे स्ववेदस्य पाठो नित्यमुदीरितः।
ऋषियज्ञस्तेन भवेद्विप्रो जन्मनि जन्मनि ।।३८२।।
आममन्नं यथाशक्त्या प्रातर्देयं तथा पुनः।
यज्ञादौ वैश्वदेवान्ते यज्ञोऽयं मानुषः स्मृतः।
तर्पणं हन्तकारश्च पितृयज्ञो द्विधा मतः ।।३८३।।

पूजा के अन्त में प्रतिदिन संयत मन से अष्टकपाठ (शिवसंकल्प की आठ ऋचाओं का पाठ) करना चाहिये। उसके अभाव में केवल देवता का ध्यान करके वैदिक ऋचाओं का पाठ करना चाहिये। उसके भी अभाव में प्रतिदिन अपने वेद का पाठ करना चाहिये। यही ऋषियज्ञ कहा गया है; इस ऋषियज्ञ को करने से प्रत्येक जन्म में विप्रत्व की प्राप्ति होती है।

प्रातःकाल यथाशक्ति अन्नदान करने के उपरान्त यज्ञ के पहले और वैश्वदेव के अन्त में अन्नदान करना मनुष्ययज्ञ कहा गया है। पितृयज्ञ भी दो प्रकार का है—तर्पण एवं हन्तकार (अतिथि को उपहार-स्वरूप दिया जाने वाला नैवेद्य)।।३८१-३८३।।

यथा बालस्य पठनं पण्डितस्य परावरम्।
तथैव सत्कुलीनानां मनो वैदिकवर्त्मनि ॥३८४॥
भक्ष्यपानाङ्गनारम्ये कौलिके रमते मनः।
प्रायः कलियुगे नृणां नृयोनिस्तेन दुर्लभा ॥३८५॥
अज्ञानी कौलिकोऽयन्तु पतितः शूकरो भवेत्।
वामाचारान्निपतितो ज्ञानी कुक्कुरतां व्रजेत् ॥३८६॥
वामे वा कौलमार्गे वा द्वयोः स्यात्सिद्धिरैहिकी।
योऽतिगुप्तः प्रत्यहं च बलिपूजादितत्परः ॥३८७॥
अथवा परिभूतो वा सर्वलोकबहिष्कृतः।

जैसे बालक का मन पढ़ने में एवं पण्डितों का मन दूसरे को अपने से न्यून सिद्ध करने में लगा रहता है, उसी प्रकार सत्कुलीनों का मन वैदिक मार्ग में लगा रहता है। कौलिकों का मन भोजन, मद्यपान और मैथुन में ही लगा रहता है। इसीलिये कलियुग के मनुष्यों के लिये मनुष्य योनि प्रायः दुर्लभ होती है। यह अज्ञानी कौलिक कलियुग में पतित होकर शूकर योनि में शरीर धारण करता है एवं ज्ञानी वामाचार के कारण पतित होकर कुक्कुर योनि को प्राप्त होता है। वाममार्ग अथवा कौलमार्ग—दोनों में उन्हें ही ऐहिक (सांसारिक) सिद्धि की प्राप्ति होती है, जो संसार से तिरस्कृत होकर अथवा सभी लोगों द्वारा बहिष्कृत होकर अत्यन्त गुप्त रहते हुये बलि-पूजा आदि में लगे रहते हैं।।३८४-३८७।।

प्रायः कलियुगे देवा धातुवादे धनक्षयः ॥३८८॥
निन्दा च तान्त्रिके मार्गे नानादुःखानि कौलिके।
शैवादिवैष्णवादीनां द्वेषान्निरयगामिनः ॥३८९॥
एकः शुद्धो मया दृष्टो लोकद्वयफलप्रदः।
वेदमार्गोऽस्त्यत्र सिद्धिः परत्रापि परा गतिः ॥३९०॥
इति ते तत्त्वमाख्यातं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
कलौ सर्वोपकाराय किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३९१॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते वैदिक-यन्त्रकथनप्रकाशः पञ्चदशः ॥१५॥

हे देवताओं! कलियुग में धातुवाद (रासायनिक क्रिया द्वारा सोना-चाँदी आदि बनाने की कला) में ही प्रायः धन का क्षय होता है। तान्त्रिक मार्ग के अनुसरण से निन्दा प्राप्त होती है एवं कौलिक मार्ग के अनुसरण से नाना प्रकार के दुःख प्राप्त होते हैं। शैव और वैष्णव आदि से द्वेष करने के कारण मनुष्य नरकगामी होता है। मैंने देखा कि केवल वेदमार्ग ही शुद्ध है, जिसके अनुसरण से इस लोक में सिद्धि मिलती है एवं परलोक में परम गति की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार कलियुग में सबों के उपकार के लिये सभी तन्त्रों में गुप्त तत्त्वों को मैंने तुमसे कहा; अब दूसरा क्या सुनना चाहती हो।।३८८-३९१।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में
शिवप्रणीत 'वैदिकयन्त्रकथन' नामक पञ्चदश
प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।



षोडशः प्रकाशः

(दक्षिणाम्नायगणपतिमन्त्रप्रकाशः)

श्रीदेव्युवाच

असिद्धगुरुणा दत्तो मनुः शिष्याय वा गुरुः ।
सिद्धा मन्त्रान्तरैर्देव नैव सिद्धो यथा गुरुः ॥१॥
भिन्नाम्नायो यदा शिष्यस्तद्भिन्नाम्नायदेवताम् ।
यजते तत्र देवेश कीदृक्सिद्धिस्तु तं व्रजेत् ॥२॥

श्रीदेवी ने कहा—हे देव! असिद्ध गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र शिष्य को सिद्ध नहीं होता और सिद्ध गुरु द्वारा प्रदत्त अन्य (असिद्ध) मन्त्र जिस प्रकार गुरु को सिद्ध नहीं होता, उसी प्रकार शिष्य को भी सिद्ध नहीं होता। हे देवेश! भिन्न आम्नाय का शिष्य यदि अपने आम्नाय से भिन्न आम्नाय वाले देवता का यजन करता है तो उसे सिद्धि की प्राप्ति कैसे होगी?।।१-२।।

ईश्वर उवाच

गुरुश्चेद्दक्षिणाम्नायी सर्वाम्नायेषु दीक्षितः ।
ऊर्ध्वाम्नायी तथान्येषु पूर्वाम्नायी परेषु च ॥३॥
द्वयोस्तु पश्चिमाम्नायी उत्तरे त्वधरे भवेत् ।
अधरे नैव कुत्रापि गुरुत्वं च विलोकितम् ॥४॥

शिवजी ने कहा—दक्षिणाम्नाय में सिद्ध गुरु सभी आम्नायों में दीक्षित समझा जाता है। ऊर्ध्वाम्नायी भी अन्य सभी आम्नायों में दीक्षित माना जाता है। पूर्वाम्नायी पश्चिमाम्नाय, उत्तराम्नाय एवं अधराम्नाय में दीक्षित होता है। पश्चिमाम्नायी उत्तराम्नाय एवं अधराम्नाय में तथा उत्तराम्नायी अधराम्नाय में दीक्षित होता है। अधराम्नायी किसी का भी गुरु नहीं होता अर्थात् वह किसी भी दूसरे आम्नाय में दीक्षित नहीं माना जाता।।३-४।।

दक्षिणोपासकः काल ऊर्ध्वः सायुज्यमाप्नुयात् ।
देवतायास्तथा पूर्वः सारूप्यं लभते परः ॥५॥

सामीप्यं त्वपरो लोकमधोगत्यैहिकं फलम्।
लोभत्यागश्चोपकारो ह्यधोमार्गेऽप्युदर्ककृत् ॥६॥

दक्षिण एवं ऊर्ध्व आम्नाय के उपासक समय आने पर देवता का सायुज्य प्राप्त करते हैं। पूर्व आम्नाय का उपासक देवता का सारूप्य प्राप्त करता है एवं पश्चिमाम्नाय का उपासक सामीप्य प्राप्त करता है। उत्तराम्नायी सालोक्य प्राप्त करता है और अधराम्नायी को अधोगति के साथ-साथ सांसारिक फल की प्राप्ति होती है। लोभ का त्याग एवं दूसरे का उपकार अधोगति को समाप्त करने वाला होता है।।५-६।।

मन्त्रान्तरे च संसिद्धो गुरुर्मन्त्रं प्रयच्छति।
यथोक्ताचरणात्तस्य सिद्धिः शिष्यस्य जायते ॥७॥
कृपावशात्सिद्धमन्त्रं ददाति च यदा गुरुः।
विना जपं विना पूजां सिद्धयस्तत्करे स्थिताः।
असिद्धगुरुणा दत्तो मन्त्रः स्याद्बहुविघ्नदः ॥८॥

अन्य मन्त्र में भी सम्यक् रूप से सिद्ध गुरु यदि सिद्ध मन्त्र प्रदान करता है तो शिष्य द्वारा उस मन्त्र के लिये विहित आचरण का पालन करने से ही उसे सिद्धि मिलती है। गुरु यदि कृपा के वशीभूत होकर शिष्य को सिद्ध मन्त्र प्रदान करता है तो विना जप एवं विना पूजा के ही सिद्धियाँ शिष्य को हस्तगत हो जाती हैं। असिद्ध गुरु द्वारा प्रदत्त मन्त्र शिष्य के लिये अनेक विघ्न प्रदान करने वाला होता है।।७-८।।

विघ्नहरविघ्नराजमन्त्रविधिः

तत्रादौ साधयेद्विघ्नराजमन्त्रं ततः पुनः।
निष्पापस्य पुरश्चर्य्या स्वतः सिद्ध्येन्मनूत्तमः ॥९॥
तत्राम्नायविभेदेन सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
एकबीजात्मकं वक्ष्ये विघ्नमन्त्रं सुसिद्धिदम् ॥१०॥
तत्रादौ वैदिकानां तु गकारः केवलो मतः।
दक्षिणानां बिन्दुयुक्तो द्विबिन्दुः पूर्वमार्गिणाम् ॥११॥
एतद् द्वययुतः पश्चादूर्ध्वाम्नायेऽपि गौमिति।
ग्लौमुत्तरे गौमिति च पातालाम्नाय ईरितः ॥१२॥

विघ्नहर विघ्नराज मन्त्र—इसलिये सर्वप्रथम विघ्नराज मन्त्र का साधन करने के पश्चात् निष्पाप होकर पुरश्चरण करने से मन्त्र स्वतःसिद्ध हो जाता है। अब मैं आम्नायभेद से सभी तन्त्रों में गुप्त सुन्दर सिद्धि प्रदान करने वाले एकबीजात्मक विघ्नमन्त्र को कहता हूँ। सर्वप्रथम वेदमार्गानुयायियों के लिये एकबीजाक्षर मन्त्र मात्र

'ग' कहा गया है। दक्षिणाम्नाय वालों के लिये बिन्दुयुक्त 'गं', पूर्वाम्नाय वालों के लिये दो विन्दुयुक्त 'गः', ऊर्ध्वाम्नाय वालों के लिये 'गौंः', उत्तराम्नाय वालों के लिये 'ग्लौं' तथा पातालाम्नाय (अधराम्नाय) वालों के लिये 'गौं' मन्त्र कहा गया है।।९-१२।।

गणपोऽस्य मुनिश्छन्दो निवृद्विघ्नश्च देवता।
गणं जयाय स्वाहा हृत्कमेकदंष्ट्राय हुं फट्।।१३।।
अचलकर्णिने नमः शिखा प्रोक्ताऽथ वर्म्म च।
गजवक्त्राय च नमस्तथा नेत्रमुदीर्य्यते।।१४।।
महादशनचण्डाय हुं फड्वैरिकमस्त्रकम्।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन तान्त्रिको न्यासमाचरेत्।।१५।।
ततो गणपतिं ध्यायेद्यतवाक्च प्रसन्नधीः।

इस मन्त्र के ऋषि गणप, छन्द निवृद् एवं देवता विघ्न कहे गये हैं। 'गणं जयाय स्वाहा' से हृदय में, 'एकदंष्ट्राय हुं फट्' से शिर में, 'अचलकर्णिने नमः' से शिखा में, 'गजवक्त्राय नमः' से नेत्र में और 'महादशनचण्डाय हुं फट्' से अस्त्र में इस मन्त्र का न्यास करना चाहिये। छः दीर्घयुक्त बीजमन्त्र (गां गीं गूं गैं गौं गः) से तान्त्रिक न्यास करना चाहिये। तदनन्तर प्रसन्न मन से मौन का अवलम्बन कर गणपति का ध्यान करना चाहिये।।१३-१५।।

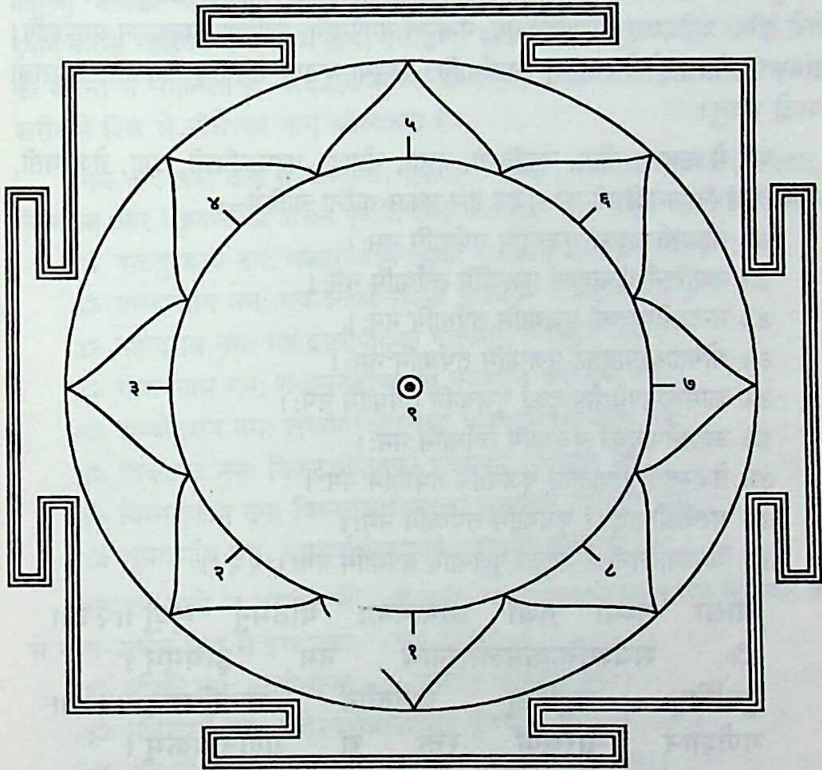
रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तगन्धानुलेपनम्।।१६।।
रक्तपुष्पैः पूज्यमानं तुन्दिलं चन्द्रमौलिनम्।
त्रिनेत्रं वामनं विघ्नाधीशं पूज्यं च शुण्डिनम्।।१७।।
वामे दक्षे द्वयोः पाशाङ्कुशौ पाण्योस्तु बिभ्रतम्।
पद्मासनं सर्वभूषं ध्यायेद्विघ्नविनायकम्।।१८।।

रक्त वस्त्र धारण करने वाले, रक्त वर्ण वाले, रक्त गन्ध का अनुलेप लगाये हुये, रक्त पुष्पों द्वारा पूजे जाने वाले, बड़े पेट वाले, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करने वाले, तीन नेत्र वाले, वामन स्वरूप वाले, विघ्नों के अधिपति, पूज्य, शुण्ड से समन्वित, बाँयें एवं दाँयें दोनों हाथों में पाश एवं अंकुश धारण किये हुये, पद्मासन पर विराजमान, समस्त आभूषणों से अलंकृत विघ्नविनायक का ध्यान करना चाहिये।

श्रीपर्णादिकृते पीठे पूजयेत्कुङ्कुमादिना।
यन्त्रमेतद्बुधः कुर्य्याच्चतुरस्त्रत्रयं शुभम्।।१९।।
तन्मध्येऽष्टदले कार्यः पूजापीठं गणेशितुः।
तत्र पूर्वोक्तविधिना मण्डपादि प्रकल्पयेत्।।२०।।

पृथिव्यन्तं समुद्रादि लिखेदिक्षुरसात्मकम्।
रत्नद्वीपादि च परं त्वर्चेदिष्टदलात्मके ॥२१॥

श्रीपर्ण (कमल) आदि से निर्मित पीठ पर कुंकुम आदि से पूजन करके उसी पीठ पर विद्वान् साधक को इस यन्त्र को बनाना चाहिये। तीन चतुरस्र रेखा से भूपुर बनाकर उसके मध्य में अष्टदल कमल बनाने से वह गणेश का पूजनपीठ बन जाता है। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



उसी स्थान पर पूर्वोक्त विधि से मण्डप आदि बनाना चाहिये। पृथिवी के बाहर इक्षुरस का सागर बनाना चाहिये। उस इक्षुरसात्मक समुद्र में रत्ननिर्मित द्वीप आदि की कल्पना करने के बाद कमलदल में इष्ट की पूजा करनी चाहिये।।१९-२१।।

अर्चयेत्कर्णिकायां तु देवं पत्रेषु वै क्रमात्।
तीव्रा च ज्वालिनी नन्दा भोगदा कामरूपिणी ॥२२॥
उग्रा तेजस्वती सत्या नवमी विघ्ननाशिनी।

कमलकर्णिका में गणपति का अर्चन इस प्रकार करना चाहिये—श्रीगणपतिं ध्यायामि आवाहयामि गणपतये नमः, आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपर्कं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धं समर्पयामि। नानाविधपरिमलद्रव्याणि समर्पयामि। गणपति-श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि। गणपतये नमः धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं हस्तप्रक्षालनं पादप्रक्षालनं आचमनीयं ताम्बूलं समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि। तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्। गणपतये नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि, प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान् गणपतिः सुप्रसन्नो वरदो भवतु।

पत्रों में क्रमशः तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजस्वती, सत्या एवं विघ्ननाशिनी का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ तीव्राश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ ज्वालिनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ नन्दाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ भोगदाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ कामरूपिणीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ उग्राश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ तेजस्वतीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ सत्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ विघ्ननाशिनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।।२२।।

आद्या मध्या तथा चान्तमनाः पीठमनुं शृणु ।।२३।।
ॐ सर्वशक्तिकमलासनाय नम इत्यमुम्।
पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु यजेत्पीठं गणाधिपम् ।।२४।।
गणेशानं गौरवर्णं रक्तं च गणनायकम्।
गणक्रीडं नीलवर्णं केशरेषु ततो यजेत् ।।२५।।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये चान्तरदिक्षु च।
मन्त्रस्यास्य षडङ्गानि ध्यातव्यास्ताश्च देवताः ।।२६।।
तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणत्विषः ।
वरदाभयधारिण्यः प्रधानतनवः स्त्रियः ।।२७।।
वक्रतुण्डैकदंष्ट्रौ च महोदरगजाननौ।
लम्बोदराख्यविकटौ विघ्नराड्धूम्रवर्णकौ ।।२८।।

पूर्वादिषु दलेष्वर्च्या ब्राह्मयाद्याश्च दलाग्रतः ।
ध्यानं तासां प्रवक्ष्यामि प्रोक्तं सव्यक्रमेण तु ॥२९॥

अब पहले, दूसरे और तीसरे पीठमन्त्र को कहता हूँ; सुनो। पहला पीठमन्त्र है— ॐ सर्वशक्तिकमलासनाय नमः। पूर्व से प्रारम्भ करके चारो दिशाओं में गणपतिपीठ का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर गौरवर्ण के गणेश, लाल वर्ण के गणनायक और नीलवर्ण के गणक्रीड का यजन केशरों में करना चाहिये। केशर के अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य, मध्य और विदिशाओं में इस मन्त्र के षडङ्गों एवं उनके देवताओं का ध्यान करना चाहिये। वे देवतायें हिम, स्फटिक, श्याम, नील, कृष्ण एवं अरुण वर्ण की कान्ति से समन्वित हैं; वरद एवं अभय को धारण करने वाली हैं तथा इन सबके शरीर में शिर से नीचे का भाग स्त्रीस्वरूप है।

इसके बाद आठ दलों में वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज और धूम्रवर्ण का अर्चन पूर्वादि दलों में क्रमशः इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ वक्रतुण्डाय नमः वक्रतुण्डश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ एकदन्ताय नमः एकदन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ महोदराय नमः महोदरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ गजाननाय नमः गजाननश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ लम्बोदराय नमः लम्बोदरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ विकटाय नमः विकटश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ विघ्नराजाय नमः विघ्नराजश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ धूम्रवर्णाय नमः धूम्रवर्णश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

तत्पश्चात् दलों के अग्रभाग में [illegible]ी आदि अष्टमातृकाओं का अर्चन वामावर्त क्रम से गन्ध-अक्षत-पुष्प से इस प्रका[illegible]ना चाहिये—

ॐ ब्राह्म्यै नमः ब्राह्मीश्रीपादु[illegible]ूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ माहेश्वर्यै नमः माहेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ कौमार्यै नमः कौमारीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ वैष्णव्यै नमः वैष्णवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ ऐन्द्र्यै नमः ऐन्द्रीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ वाराह्यै नमः वाराहीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ चामुण्डायै नमः चामुण्डाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
ॐ महालक्ष्म्यै नमः महालक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

अब उन अष्टमातृकाओं के ध्यान को मैं क्रमशः कहता हूँ।।२३-२९।।

ब्राह्मी वर्णसिता ध्येया मृगचर्म्मविभूषिता।
अक्षमालामयोदण्डं कुण्डिकां दधती करैः ॥३०॥
त्रिशिखं परशुं हस्तैर्डमरुं नृकपालकम्।
विभ्राणां चन्द्रगौराङ्गीं महेशीं भावयेच्छुभाम् ॥३१॥
गुणं खट्वाङ्गकं दण्डमङ्कुशं दधतीं करैः।
इन्द्रगोपारुणां ध्यायेत्कौमारीं करुणाऽलयाम् ॥३२॥
अरिशङ्खकपालानि घण्टां च करपङ्कजैः।
बिभ्राणां वैष्णवीं ध्यायेन्नीलमेघसमप्रभाम् ॥३३॥
तोमराङ्कुशवज्राङ्कविद्युद्युक्तकराम्बुजाम्।
इन्द्राणीं भावयेन्मन्त्री नीलवर्णां सुभूषणाम् ॥३४॥
हलं च मुसलं दोर्भिर्दधानां खड्गखेटकौ।
वाराहीं भावयेच्छक्तिमञ्जनाचलसन्निभाम् ॥३५॥
धारयन्तीं शूलखेटौ कपालं नृशिरः करैः।
चामुण्डां शोणवर्णां च मुण्डमालायुतां स्मरेत् ॥३६॥
स्वर्णाभामक्षमालां च बीजपूरकपालके।
पद्मं च दधतीं हस्तैर्महालक्ष्मीं स्मरेत्सुधीः ॥३७॥

मृगचर्म से विभूषित तथा हाथों में अक्षमाला, लौहदण्ड एवं कुण्ड़िका धारण की हुई श्वेत वर्ण वाली ब्राह्मी का ध्यान करना चाहिये। त्रिशिख (तीन कलगी वाले मुकुट) से अलंकृत, हाथों में परशु डमरु एवं नृकपाल धारण की हुई चन्द्रमा के सदृश गौर वर्ण वाली कल्याणकारिणी महेशी का ध्यान करना चाहिये। हाथों में रस्सी, खट्वाङ्ग (मूँठ पर खोपड़ी जड़ा हुआ डण्डा), दण्ड, अंकुश धारण की हुई, इन्द्रगोप के सदृश अरुण वर्ण वाली, करुणामयी कौमारी का ध्यान करना चाहिये। करकमलों द्वारा अरि (पहिया), शंख (माथे अथवा कनपटी की हड्डी), कपाल एवं घण्टा को धारण की हुई, नीले मेघ के सदृश कान्तिमती वैष्णवी का ध्यान करना चाहिये। तोमर (बर्छी), अंकुश, वज्रचिह्न एवं विद्युत् से समन्वित हाथों वाली, रमणीय आभूषणों से विभूषित, नीलवर्ण वाली इन्द्राणी का ध्यान करना चहिये। हाथों में हल, मुसल, खड्ग (तलवार) एवं खेटक धारण की हुई, अञ्जनपर्वत के सदृश कान्तिमती वाराही शक्ति का ध्यान करना चाहिये। हाथों में शूल, खेट, नृकपाल धारण की हुई, मुण्ड़ों की माला से समन्वित, रक्त वर्ण वाली चामुण्ड़ा का स्मरण करना चाहिये। विद्वान् साधक को हाथों में अक्षमाला, बीजपूर, कपाल एवं पद्म धारण की हुई, सुवर्ण-सदृश कान्तिमती महालक्ष्मी का स्मरण करना चाहिये।।३०-३७।।

चतुरस्त्रत्रयान्तस्थवीथिद्वन्द्वे समर्चयेत्।
दिक्पालाँश्च तदस्त्राणि पूजा विघ्नहरस्य तु ॥३८॥
यश्चैवं पूजयेद् देवं गणेशं विघ्ननाशनम्।
असिद्धादपि सम्प्राप्तो मन्त्रोऽसौ सिद्धिकृद्भवेत् ॥३९॥

चतुरस्त्रत्रय के भीतर दो वीथियों के मध्य में दस दिक्पालों का एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। पूजन की प्रक्रिया इस प्रकार होती है—

ॐ इन्द्राय नमः इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (पूर्व में)।
ॐ अग्नये नमः अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (आग्नेय कोण में)।
ॐ यमाय नमः यमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (दक्षिण में)।
ॐ निर्ऋतये नमः निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (नैर्ऋत्य कोण में)।
ॐ वरुणाय नमः वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (पश्चिम में)।
ॐ वायवे नमः वायुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (वायव्य कोण में)।
ॐ कुबेराय नमः कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (उत्तर में)।
ॐ ईशानाय नमः ईशानश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (ईशान कोण में)।
ॐ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (पूर्व-ईशानमध्य में)।
ॐ अनन्ताय नमः अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (नैर्ऋत्य-पश्चिमध्य में)।

दिक्पालों के आयुधों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—
वं वज्राय नमः वज्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
शं शक्तये नमः शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
दं दण्डाय नमः दण्डश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
खं खड्गाय नमः खड्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
गं पाशाय नमः पाशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
अं अंकुशाय नमः अंकुशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
गं गदायै नमः गदाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
त्रिं त्रिशूलाय नमः त्रिशूलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
पं पद्माय नमः पद्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
चं चक्राय नमः चक्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

विघ्नविनाशक गणेश का जो इस प्रकार से पूजन करता है, उसके लिये असिद्ध गुरु से प्राप्त मन्त्र भी सिद्धि प्रदान करने वाला हो जाता है।।३८-३९।।

लक्षमेकं मनुं जप्त्वा जुहुयात्तद्दशांशतः।
मोदकैः पृथुकैर्लाजैः सक्तुभिश्चेक्षुपर्वभिः ॥४०॥

नारिकेरैस्तिलैर्मोचैर्होमं कुर्य्यात्पृथक्पृथक् ।
सहस्रमेकं द्विशतं पञ्चाशप्रमितं तथा ।।४१।।
तिलैस्त्रिमधुराक्तैश्च होमः कार्य्योऽथ कथ्यते ।

एक लाख की संख्या में मन्त्र का जप करने के पश्चात् जप का दशांश हवन मोदक (लड्डू), पृथुक् (चिउड़ा), लाजा (धान का लावा), सत्तू, ईख के टुकड़ों, नारियल, तिल एवं मोच (केला) से अलग-अलग करना चाहिये। उक्त सबसे पृथक्-पृथक् एक हजार दो सौ पचास-एक हजार दो सौ पचास आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर त्रिमधुराक्त तिल से होम करना चाहिये।।४०-४१।।

दौग्धान्नेन घृताक्तेन होमोऽभीष्टफलप्रदः ।।४२।।
लक्ष्मीकामो नारिकेरैश्चतुर्थ्यां तु चतुश्शतम् ।
सितपक्षादिमारभ्य प्रत्यहं जुहुयात्क्रमात् ।।४३।।
चतुर्थ्यन्तं ततः सर्वप्राणिनो वशगा नृणाम् ।
तिलैश्च घृतसंयुक्तैर्होमः श्रीवश्यकीर्त्तिदः ।।४४।।

घृत-सिक्त दौग्धान्न (खीर) से किया गया होम अभीष्ट फल प्रदान करने वाला होता है। धन की कामना वाले को चतुर्थी तिथि को चार सौ नारियलखण्डों से हवन करना चाहिये। इसी हवन को शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि से आरम्भ करके कृष्ण पक्ष की चतुर्थी-पर्यन्त करने से समस्त प्राणी मनुष्य के वशीभूत हो जाते हैं। तिल एवं घृत मिलाकर किया गया होम लक्ष्मी को वशीभूत करने वाला एवं कीर्ति प्रदान करने वाला होता है।।४२-४४।।

स्वादुत्रययुतैर्लाजैर्हुनेत् सप्तदिनावधि।
कन्यार्थी लभते कन्यां पुत्रार्थी लभते सुतम् ।।४५।।
दधिसंसिक्तलवणैर्जुहुयाच्च चतुर्दिनम् ।
निशीथिन्यां च वश्यादौ भवेद्वश्यं तथेप्सितम् ।।४६।।
गौरवं लाघवं साध्यं जाप्यं चासाध्यमेव च ।
कार्य्यं ज्ञात्वा होमसङ्ख्यां कल्पयेच्च सहस्रतः ।।४७।।
कोट्यन्तमेवं विज्ञेयं यत्र सङ्ख्या तु नोदिता ।

सात दिनों तक त्रिमधु-युक्त लाजा से हवन करने पर कन्यार्थी को कन्या और पुत्रार्थी को पुत्र प्राप्त होता है। वशीकरण आदि के लिये चार दिनों तक अर्धरात्रि में दधि-सिक्त लवण (नमक) से हवन करना चाहिये; इससे इच्छित व्यक्ति वशीभूत हो जाता है। जहाँ पर होमसंख्या का निर्देश नहीं किया गया है, वहाँ पर कार्य गुरु है

अथवा लघु है; जप के योग्य है अथवा नहीं; साध्य है अथवा असाध्य है—इसका निर्धारण करके एक हजार से लेकर एक करोड़ तक के होम का निश्चय स्वंयं करना चाहिये।।४५-४७।।

सितार्कद्रुममूलेन कुचन्दनसुदारुभिः ।।४८।।
गजाक्षत्रोटिनं चैव दन्तकेनापि दन्तिनाम् ।
विधाय विघ्नं सम्पूज्य तं पृष्ट्वा प्रजपेन्मनुम् ।।४९।।
उपोषितः शुचिश्चन्द्रग्रहणे तं समुद्धरेत् ।
शिखायां व्यवहारादौ समरे विजयी भवेत् ।।५०।।

श्वेत मदार की जड़, लाल चन्दन, देवदारु एवं हाथीदाँत से गजाक्ष का वध करने वाले विघ्नेश्वर की प्रतिमा बनाकर पूजन करके उनसे आज्ञा प्राप्त कर मन्त्रजप करना चाहिये। चन्द्रग्रहण के समय पवित्रता-पूर्वक निराहार रहकर उक्त मन्त्र का उद्धार करना चाहिये। तत्पश्चात् उसको शिखा में धारण करने से व्यवहार (मुकदमा) अथवा युद्ध में विजय की प्राप्ति होती है।।४८-५०।।

रोचनारजसानेन कृतं च मनुना ततः ।
तिलकं सर्वराजानो लोकाः स्युर्वशगाः सदा ।।५१।।
नवनीतेन वै साध्यनामालिख्यानुलोमगम् ।
विलोमं विघ्नबीजं च तद्धृतं स्थापितं जले ।।५२।।
जपित्वाष्टोत्तरशतं तूष्णीं तद्भक्षयेत्तदा ।
सप्ताहाद्वशगः साध्यः साधकस्य भवेद् ध्रुवम् ।।५३।।

गोरोचनचूर्ण को मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसका तिलक लगाने से समस्त राजा एवं समस्त लोग सदा वशीभूत हो जाते हैं। साध्य का नाम अनुलोमक्रम से एवं विघ्नबीज को विलोमक्रम (विपरीतक्रम) से मक्खन से लिखकर उसे जल में स्थापित करने के उपरान्त मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के पश्चात् मौन रहते हुये उसका भक्षण करने से एक सप्ताह के भीतर वह साध्य अवश्य ही साधक के वशीभूत हो जाता है।।५१-५३।।

गणेशं तर्पयेत्तोयैः प्राग्वत्कार्यवशेन तु ।
मण्डादिभिरवाप्नोति मन्त्रोऽयं प्रणवादिकः ।।५४।।
संन्यासिने च पूजायां हृदन्तः परिकीर्तितः ।

गणेश का तर्पण जल से अथवा पूर्ववत् कार्य की प्रकृति के अनुसार मण्ड़ आदि

से मन्त्र के पहले ॐ. लगाकर करना चाहिये। संन्यासी को पूजा में मन्त्र के पश्चात् 'ह्रीं' का प्रयोग करना चाहिये।।५४।।

लक्ष्मीगणपतिविधानम्

वक्ष्येऽथ दक्षिणाम्नाये लक्ष्मीगणपतिं सुराः ।।५५।।
गजलक्ष्मीसमायुक्तमयं योगोऽतिदुर्लभः ।
श्रीं गं सौम्याय चोच्चार्य्य महागणपतिं तथा ।।५६।।
ङेऽन्तमुक्त्वा वरवरदोक्त्वा सर्वजनं वदेत् ।
मे वशमानय स्वाहेत्येकोनत्रिंशदक्षरः ।।५७।।
अन्तर्यामी मुनिश्छन्दो गायत्री त्रिवृदन्विता ।
देवो लक्ष्मीगणेशोऽत्राथाद्यबीजद्वयेन तु ।
षड्दीर्घयुक्तेनाङ्गानि जातियुक्तानि कारयेत् ।।५८।।

लक्ष्मी-गणपति विधान—हे देवताओं! अब मैं दक्षिणाम्नाय के लक्ष्मी-गणपति मन्त्र को कहता हूँ। गणेश एवं लक्ष्मी के एक साथ का यह योग अत्यन्त दुर्लभ है। उन्तीस अक्षरों का यह मन्त्र इस प्रकार है—श्रीं गं सौम्याय महागणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

इस मन्त्र के ऋषि अन्तर्यामी, छन्द त्रिवृद् गायत्री एवं देवता लक्ष्मीगणेश कहे गये हैं। दोनों आद्य बीज 'श्रीं गं' को छः दीर्घ स्वरों से युक्त करके निम्नवत् इसका कराङ्गन्यास करना चाहिये—

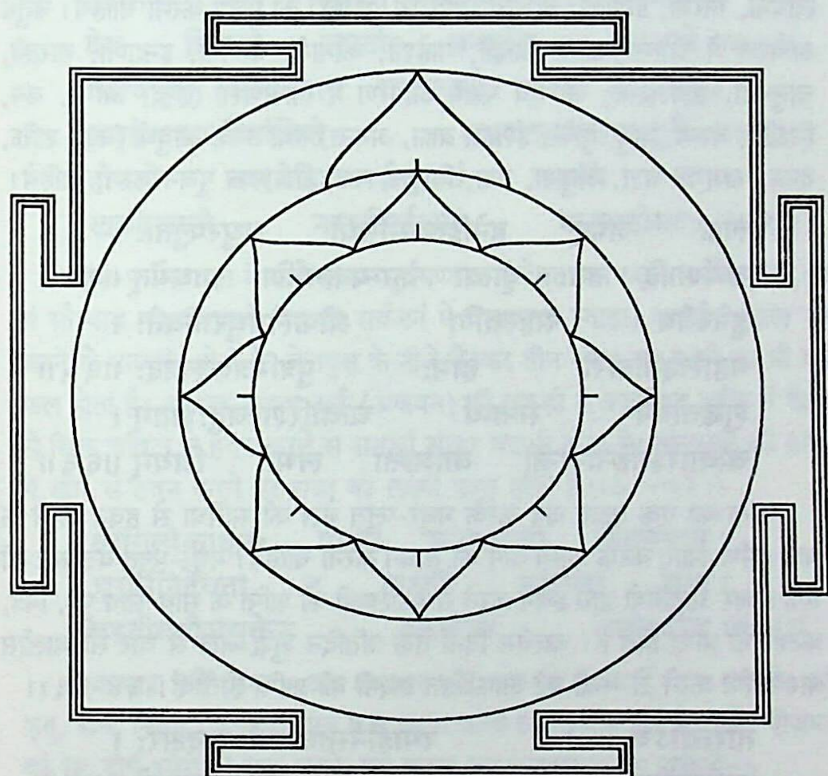
ॐ श्रां गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः।
ॐ श्रीं गीं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा।
ॐ श्रूं गूं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट्।
ॐ श्रैं गैं अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय हुं।
ॐ श्रौं गौं कनिष्ठाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ श्रः गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट्।।५५-५८।।

हेमाभं पीतवसनं शङ्खचक्रगदाभयान् ।
दक्षोर्ध्वकरमारभ्य दक्षिणेऽधः करावधि ।।५९।।
दधतं शुण्डया स्वर्णघटं पद्मोपरि स्थितम् ।
वामाङ्के विष्णुलक्ष्म्या चाश्लिष्टं दक्षभुजेन तु ।।६०।।

ध्यान—स्वर्ण-सदृश आभा वाले, पीत वस्त्र धारण करने वाले, दाहिनी ओर के ऊपर एवं नीचे के हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं अभय धारण करने वाले, सूँड़ में स्वर्ण-

कलश को लिये हुये, कमल पर विराजमान, बाँयीं गोद में विराजमान विष्णुलक्ष्मी द्वारा अपनी दाँयीं भुजा से आलिङ्गित लक्ष्मीगणेश का ध्यान करना चाहिये।।५९-६०।।

प्राक्प्रोक्ते पूजयेत्पीठे तीव्रादिनवशक्तिके।
अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वे कर्णिकाकेशरोज्ज्वले।
चतुर्द्वारसमायुक्तचतुरस्रत्रयावृते ॥६१॥
मूलेन मूर्त्तिं सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत्।



पूर्वकथित तीव्रा आदि नव शक्तियों से समन्वित पीठ पर चार द्वारों से युक्त एवं तीन चतुरस्र से आवृत तथा कर्णिका एवं केशर से उद्भासित दो अष्टदल कमल बनाकर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके उसके मध्य में देवता का आवाहन करके पूजन करना चाहिये।।६१।।

प्रथमावृत्तिरङ्गैः स्याद्वक्रतुण्डादिभिः परा ॥६२॥

अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा।
ईशित्वं च वशित्वं च प्राकाम्यं प्राप्तिरग्रतः ॥६३॥
चतुर्थी मातृभिश्चाग्रे लोकेशानायुधानि च।

तदनन्तर प्रथम आवरण में षडङ्ग-पूजन किया जाता है। द्वितीय आवरण में अष्टगणेश (वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण) का पूजन करना चाहिये। तृतीय आवरण में अष्टसिद्धियों (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, प्राप्ति) का पूजन करना चाहिये। चतुर्थ आवरण में अष्टमातृकाओं (ब्राह्मी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, इन्द्राणी, वाराही, चामुण्डा, महालक्ष्मी) का एवं पञ्चम आवरण में लोकपालों (इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त) तथा उनके आयुधों (वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म, चक्र) का पूजन करना चाहिये।

लक्षं जपेद् हुनेद्बिल्वसमिधो मधुरप्लुताः।
तर्प्पणादि ततः कृत्वा काम्यकर्माणि साधयेत् ॥६४॥
हुनेच्चैव सहस्राणि श्रीफलैर्मधुरान्वितैः।
महालक्ष्मीकरो होमः पुत्रमित्रकलत्रदः ॥६५॥
शुद्धतोयेन सन्तर्प्य चत्वारिंशच्चतुःशतम्।
चत्वारिंशद्दिनान्मन्त्री वाञ्छितां लभते श्रियम् ॥६६॥

मन्त्र का एक लाख जप करके मधुर-प्लुत बेल की समिधा से हवन करने के बाद तर्पण आदि करके काम्य कर्म का साधन करना चाहिये। मधुर-प्लुत बेलफ़ल की एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने से महालक्ष्मी की प्राप्ति के साथ-साथ पुत्र, मित्र, कलत्र भी प्राप्त होते हैं। चालीस दिनों तक प्रतिदिन शुद्ध जल से चार सौ चालीस बार तर्पण करने से मन्त्री को आकांक्षित लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।।६४-६६।।

ताराद्योऽयं रमाहीनस्तथाष्टाविंशदक्षरः।
न्यासध्यानादिकं प्राग्वत्पूजाभेदो निगद्यते ॥६७॥
आदावङ्गानि च ततो बलाका विमला तथा।
कमला वनमाला च बिभीषिका च मालिका ॥६८॥
वशङ्करा वसुमाला पार्श्वयोः शङ्खपद्मकौ।
लोकेशांश्च तदस्त्राणि पूजयेत्काम्यमुच्यते ॥६९॥

उक्त मन्त्र (श्रीं गं सौम्याय महागणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा)

में 'श्रीं' के स्थान पर 'ॐ' लगाने पर भी न्यास-ध्यान आदि पूर्ववत् ही होते हैं; पूजा में भिन्नता होती है, जिसे अब कहा जा रहा है। प्रथमतः अङ्ग-पूजन के पश्चात् अष्टपत्रों में बलाका, विमला, कमला, वनमाला, बिभीषिका, मालिका, वशङ्करा, वसुमाला का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर बिन्दु में गणपति के दोनों पार्श्व में शङ्ख और पद्म का पूजन करने के बाद लोकपालों और उनके अस्त्रों का पूजन करने के उपरान्त किये जाने वाले काम्य कर्मों को अब कहा जा रहा है।।६७-६९।।

उरोमात्रे जले स्थित्वा ध्यात्वा सवितृमण्डले।
देवं त्रिलक्षं जपतो धनवृद्धिः प्रजायते ।।७०।।
बिल्वमूलं समास्थाय तावज्जप्ते फलं हि तत्।
अशोककाष्ठैर्ज्वलिते वह्नावाज्याक्ततण्डुलैः ।।७१।।
होमतो वशयेद्विश्वमर्ककाष्ठं तथापि वा।
खादिराग्नौ नरपतिर्लक्ष्मीं पायसहोमतः ।।७२।।

जँघा-पर्यन्त जल में खड़े होकर सूर्यमण्डल में देवता का ध्यान करके मन्त्र (ॐ गं सौम्याय महागणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा) का तीन लाख जप करने से धनवृद्धि होती है। बेलवृक्ष के नीचे बैठकर तीन लाख जप करने का भी वही फल होता है। अशोक अथवा अर्क (अकवन) की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में गोघृत से सिक्त चावल से हवन करने से सम्पूर्ण संसार वश में होता है। खैरकाष्ठ की अग्नि में खीर से हवन करने पर राजा को लक्ष्मी प्राप्त होती है।।७०-७२।।

श्रीमित्येकाक्षरः प्रोक्तो मन्त्रश्छन्दो निवृन्मतम्।
भृगुर्मुनिर्देवता तु लक्ष्मीः सर्वप्रदा मता।
षड्दीर्घबीजयुक्तेन षडङ्गानि समाचरेत् ।।७३।।

एकाक्षर 'श्रीं' मन्त्र—अब एकाक्षर 'श्रीं' मन्त्र को कहता हूँ। इस मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द निवृत् एवं देवता सब कुछ प्रदान वाली लक्ष्मी कही गई हैं। 'श्रीं' बीजमन्त्र को छः दीर्घ स्वरों से युक्त करके इस प्रकार कराङ्गन्यास करना चाहिये—

श्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः।
श्रीं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा।
श्रूं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट्।
श्रैं अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय हुं।
श्रौं कनिष्ठाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्।
श्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट्।।७३।।

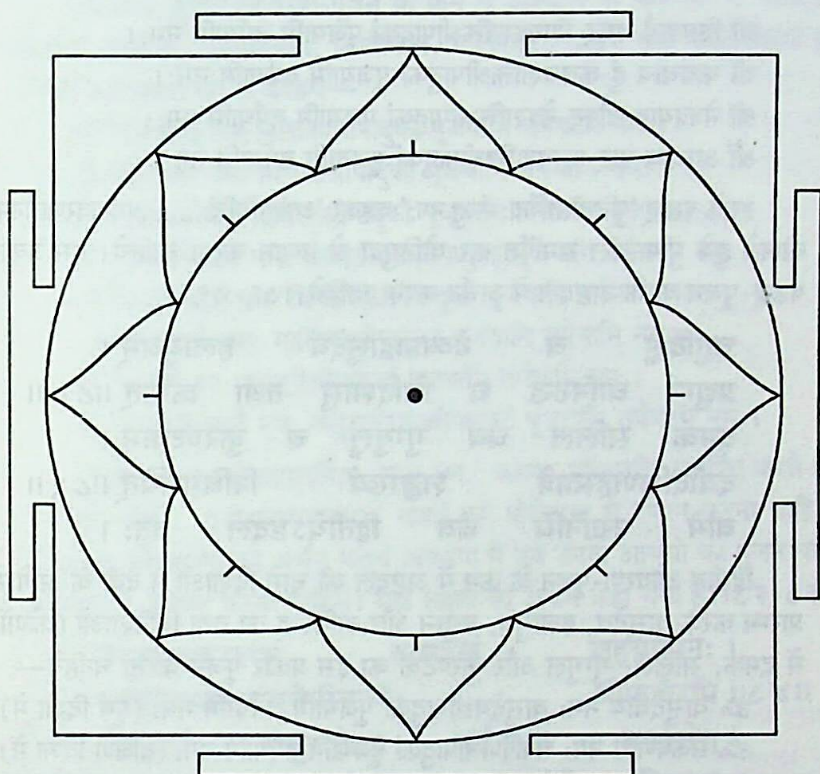
पद्मारूढां सुवर्णाभां सपद्मोर्ध्वकरद्वयाम् ।
अधोदक्षेणाभयदां वामेन वरदायिनीम् ।।७४।।
हिमाचलनिभैर्नागैः शुण्डाग्रामृतकुम्भकैः ।
चतुर्भिः सिच्यमानां च क्षौमवस्त्रां किरीटिनीम् ।।७५।।
ध्यायेद्धरिप्रियां देवीं भक्तानुग्रहकातराम् ।

ध्यान—कमल पर आरूढ़, सुवर्ण-सदृश कान्तिमान, ऊपर के दोनों हाथों में कमल धारण की हुई एवं नीचे के दाहिने हाथ से अभय तथा बाँयें हाथ से वर प्रदान करती हुई, हिमालय-सदृश ऊँचे-ऊँचे हाथियों द्वारा सूँड़ के अग्रभाग में लिये हुये अमृतकलशों से चारो दिशाओं से अभिषिक्त होती हुई, रेशमी वस्त्र धारण की हुई, माथे पर मुकुट धारण की हुई, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये लालायित देवी विष्णुप्रिया (लक्ष्मी) का ध्यान करना चाहिये।।७४-७५।।

धर्म्मादिकल्पिते पीठे भूपुराढ्ये दलाष्टके ।।७६।।
रमामावाह्य गन्धाद्यैः कर्णिकायां यजेत्ततः ।
विभूतिरुन्नतिश्चैव हृष्टिः कीर्त्तिश्च सन्नतिः ।।७७।।
व्युष्टिरुत्कृष्टिर्ऋद्धिश्च क्रमात्पूज्या दिगष्टके ।
मध्ये सिंहासनं पूज्यं सर्वशक्तिमयं तथा ।।७८।।
बीजाद्यमासनं दद्यान्मूर्त्तिं मूलेन कल्पयेत् ।
षडङ्गानि च सम्पूज्य पुनरष्टदलेऽर्चयेत् ।।७९।।

धर्मादि से कल्पित पीठ पर भूपुर से सुशोभित अष्टदल कमल बनाकर लक्ष्मी का आवाहन करके कर्णिका में गन्धादि से पूजन करने के उपरान्त कर्णिका की आठो दिशाओं में क्रमशः विभूति, उन्नति, हृष्टि, कीर्ति, सन्नति, व्युष्टि, उत्कृष्टि और ऋद्धि का इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. श्रीं विभूत्यै नमः विभूतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
२. श्रीं उन्नत्यै नमः उन्नतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३. श्रीं हृष्ट्यै नमः हृष्टिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४. श्रीं कीर्त्यै नमः कीर्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
५. श्रीं सन्नत्यै नमः सन्नतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
६. श्रीं व्युष्ट्यै नमः व्युष्टिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
७. श्रीं उत्कृष्ट्यै नमः उत्कृष्टिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
८. श्रीं ऋद्ध्यै नमः ऋद्धिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।



तदनन्तर मध्य विन्दु में सिंहासन का पूजन करके उस पर सर्वशक्तिमयी देवी को श्रीं बीज का आसन देकर मूल मन्त्र 'श्रीं' से लक्ष्मी की मूर्ति की कल्पना करके उस कल्पित मूर्ति का इस प्रकार पूजन करना चाहिये—श्रीं लक्ष्मीं ध्यायामि, आवाहयामि, लक्ष्म्यै नमः आवाहनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपर्कं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् समर्पयामि। नानाविधपरिमलद्रव्याणि पत्रपुष्पाणि समर्पयामि। धूपं समर्पयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं, उत्तरापोशनं हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं ताम्बूलं समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि। श्रीं लक्ष्म्यै नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि। अनया पूजया श्रीलक्ष्मीः सुप्रसन्ना वरदा भवतु। इसके बाद प्रथम आवरण में इस प्रकार षडङ्ग-पूजन करना चाहिये—

श्रीं हृदयाय नमः हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

श्रीं शिरसे स्वाहा शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

श्रीं शिखायै वषट् शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
श्रीं कवचाय हुं कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
श्रीं अस्त्राय फट् अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इसके पश्चात् 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर 'अभीष्टसिद्धिं.........प्रथमावरणार्चनम्' बोलते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये। इस प्रकार षडङ्ग-पूजन करके अष्टदल में अर्चन करना चाहिये।।७६-७९।।

चतुर्दिक्षु च देव्यग्राद्वासुदेवं हलायुधम्।
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च विदिशासु तथा क्रमात्।।८०।।
दमकं सलिलं चैव गुग्गुलुं च कुरण्टकम्।
देवीदक्षिणहस्ताग्रे शङ्खाख्यं निधिमर्चयेत्।।८१।।
वामे पद्मनिधिं चैव द्वितीयेऽष्टदले ततः।

द्वितीय आवरण-पूजन के क्रम में अष्टदल की चारो दिशाओं में देवी के आगे से प्रारम्भ करके वासुदेव, हलायुध, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का तथा विदिशाओं (कोणों) में दमक, सलिल, गुग्गुल और कुरण्टक का इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

ॐ वासुदेवाय नमः वासुदेवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (पूर्व दिशा में)।
ॐ संकर्षणाय नमः संकर्षणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (दक्षिण दिशा में)।
ॐ प्रद्युम्नाय नमः प्रद्युम्नश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (पश्चिम दिशा में)।
ॐ अनिरुद्धाय नमः अनिरुद्धश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (उत्तर दिशा में)।
ॐ दमकाय नमः दमकश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (अग्निकोण में)।
ॐ सलिलाय नमः सलिलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (नैर्ऋत्यकोण में)।
ॐ गुग्गुलाय नमः गुग्गुलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (वायव्य कोण में)।
ॐ कुरण्टकाय नमः कुरण्टकश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (ईशान कोण में)।

इसके पश्चात् 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर 'अभीष्टसिद्धिं.....द्वितीयावरणार्चनम्' कहते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित करके योनि मुद्रा से प्रणाम करने के उपरान्त देवी के दाहिने हाथ के आगे शंखनिधि का एवं बाँयें हाथ के आगे पद्मनिधि का अर्चन करना चाहिये।।८०-८१।।

बलाकां विमलां चैव कमलां वनमालिकाम्।।८२।।
बिभीषिकां मालिकां च शाङ्करीं वसुमालिकाम्।
लोकपालानायुधानि प्रोक्तमेतच्छ्रियोऽर्चनम्।।८३।।

तदनन्तर तृतीय आवरण-पूजन के क्रम में अष्टदल के अग्रभाग में बलाका, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, मल्लिका, शाङ्करी एवं वसुमालिका का अर्चन इस प्रकार करना चाहिये—

श्रीं बलाकायै नमः बलाकाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

श्रीं विमलायै नमः विमलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

श्रीं कमलायै नमः कमलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

श्रीं वनमालिकायै नमः वनमालिकाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

श्रीं विभीषिकायै नमः विभीषिकाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

श्रीं मालिकायै नमः मालिकाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

श्रीं शाङ्कर्यै नमः शाङ्करीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

श्रीं वसुमालिकायै नमः वसुमालिकाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

इसके पश्चात् 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये 'अभीष्टसिद्धिं.....तृतीयावरणार्चनम्' कहते हुये योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् लोकपालों का अर्चन चतुर्थ आवरण में एवं उनके आयुधो का पूजन पञ्चम आवरण में पूर्ववत् करना चाहिये। यही लक्ष्मी का अर्चन कहा गया है।।८२-८३।।

जपेद्भास्करलक्षं तत्सहस्रं जुहुयात्पुनः।
पद्मैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैस्त्रिनवैः श्रीफलैरपि ।।८४।।
त्रिभिर्वा मधुराक्तैश्च तर्पणादि ततश्चरेत्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेन्निजवाञ्छितम् ।।८५।।

तदनन्तर 'श्रीं' बीज का बारह लाख जप करने के उपरान्त त्रिमधु-युक्त पद्म, त्रिनव अथवा श्रीफल से बारह हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। अथवा तीनों को एक साथ मधुराक्त कर हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्री को मन्त्र सिद्ध हो जाता है और मन्त्र सिद्ध हो जाने पर मन्त्री को अपने आकांक्षित विषय का साधन करना चाहिये।।८४-८५।।

वक्षोजदध्ने पयसि तिष्ठन्नर्कगतां श्रियम्।
संस्कृत्य मनुमेनं च जपेल्लक्षत्रयावधि।
सोऽचिरेणैव कालेन दारिद्र्यात्परिमुच्यते ।।८६।।
मधुसूदनगेहे च बिल्वाध उपविश्य च।
त्रिलक्षं प्रजपेन्मन्त्री वत्सराद्वाञ्छितार्थदः।
अधिकं वसुसङ्घातं लभते नान्यथाचिरात् ।।८७।।

अर्क (अकवन) के नीचे स्थापित लक्ष्मी को वक्षोज (स्तन के दुग्ध से बने) दधि और दूध से संस्कृत करके इस मन्त्र का तीन लाख की संख्या में जप करने से स्वल्प समय में ही मनुष्य दरिद्रता से मुक्त हो जाता है। विष्णुमन्दिर-परिसर में बेलवृक्ष के नीचे बैठकर इस मन्त्र का तीन लाख की संख्या में जप करने वाला मन्त्री एक वर्ष के अन्दर वाञ्छित फल प्राप्त करता है और शीघ्र ही प्रभूत धन प्राप्त करता है।।८६-८७।।

अशोकैधश्रिते वह्नौ सघृतैस्तण्डुलैर्हुनेत्।
मन्त्री त्रिभुवनं सर्वं वशं कुर्य्यान्न चान्यथा ।।८८।।
खादिरैः कमलैः सम्यगेधितेऽग्नौ यथाविधि।
तण्डुलैस्त्रिस्वादुयुक्तैर्जुहुयान्मन्त्रवित्तमः ।
तेन राजकुलं वश्यं धनवानर्थवान्भवेत् ।।८९।।
अर्कवह्नौ हुनेन्मन्त्री सुशुद्धैः शालितण्डुलैः ।
नियतं राज्यलक्ष्मीं स चायुष्पुत्राँल्लभेत कम् ।।९०।।
त्रिस्वादुयुक्तैर्नलिनैर्लक्षमेकं हुनेत्सुधीः ।
अलक्ष्मीसहितो मर्त्यो लक्ष्मीमाप्नोति निश्चितम्।
धनधान्यादिसम्पत्त्या तुष्टो भवति साधकः ।।९१।।

अशोककाष्ठ की प्रज्वलित अग्नि में घृत-मिश्रित तण्डुल (चावल) से हवन करने वाला मन्त्री निश्चित रूप से तीनों लोकों में सबको वश में कर लेता है। खैर और कमल से सम्यक् रूप से प्रज्वलित अग्नि में यथाविधि त्रिमधुराक्त तण्डुल से हवन करने वाला मन्त्रज्ञश्रेष्ठ राजकुल को वशीभूत करके धनवान और अर्थवान हो जाता है। अकवनकाष्ठ की अग्नि में विशुद्ध शालितण्डल से निश्चित संख्या में हवन करने वाला साधक राज्यलक्ष्मी, आयु और पुत्रसुर त करता है। त्रिमधुराक्त कुमुदपुष्प से एक लाख हवन करने से दरिद्र मनुष्य को श्चित रूप से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और साधक धन-धान्यादि सम्पत्ति से स हो जाता है।।८८-९१।।

ब्राह्मणस्य गृहे बिल्वं समारोप्य विवर्धयेत्।
श्रीसूक्तं च पठन्नेव तत्रैव जुहुयात्पुनः ।।९२।।
त्रिस्वादुयुक्तैः कुसुमैः फलैश्चापि समिद्वरैः ।
स्कन्धभेदैस्तस्य नरस्तिष्ठन्मूलेऽपि संहुनेत् ।।९३।।
बिल्वाभिमिश्रहविषा हविष्याण्यचिरं रमा ।
प्रत्यक्षा च भवेत्तस्य कथमश्रीः कुले भवेत् ।।९४।।

ब्राह्मण के घर में बेलवृक्ष का रोपण करके उसे बड़ा करके उसके नीचे श्रीसूक्त

का पाठ करते हुये वहीं पर घी, मधु और शक्कर से युक्त फूल, फल और समिधा से हवन करना चाहिये। मनुष्य को वहीं बैठकर शाखाभेद से उस वृक्ष के मूल में भी सम्यक् रूप से बिल्व-मिश्रित हविष्य से हवन करना चाहिये। इस प्रकार के हवन से लक्ष्मी शीघ्र ही साधक के समक्ष प्रत्यक्ष हो जाती है; फिर उसके कुल में दरिद्रता कैसे हो सकती है?।।९२-९४।।

शक्तिगणपमन्त्रकथनम्

वक्ष्येऽथ शक्तिगणपमन्त्रं ह्रां ह्रीं ततश्च ह्रीम्।
त्र्यक्षरोऽयं विराट् छन्दो मुनिर्भार्गव ईरितः ।।९५।।
देवता शक्तिगणपः षडङ्गानि समाचरेत्।
षड्दीर्घयुग्गकारेण ततो ध्यायेद् गजाननम् ।।९६।।

शक्तिगणप मन्त्र—अब शक्तिगणप के मन्त्र को कहता हूँ। शक्तिगणप का त्र्यक्षर मन्त्र है—ह्रां ह्रीं ह्रीं। इस त्र्यक्षर मन्त्र के ऋषि भार्गव, छन्द विराट् और देवता शक्तिगणप कहे गये हैं। छः दीर्घ गकार से इसका कराङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

गां अंगुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः।
गीं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा।
गूं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट्।
गैं अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय हुं।
गौं कनिष्ठाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्।
गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट्।

इस प्रकार कराङ्गन्यास करने के उपरान्त गजानन का ध्यान करना चाहिये।।९५-९६।।

दक्षोर्ध्वे चाङ्कुशं वामे पाशं वामे त्वधः करे।
बीजपूरं स्वयं तत्तु दक्षिणे स्वर्णवर्णकम् ।।९७।।
पुष्करं मोदकान् बिभ्रत्कर्णयोर्दीर्घचामरे।
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे पूर्वादिनवशक्तिके ।।९८।।
अष्टपत्राम्बुजे देवं चतुरस्रत्रयावृते।
प्रथमाङ्गावृतिः प्रोक्ता द्वितीया चापि मातृभिः ।।९९।।
तृतीया लोकपालैः स्याच्छस्त्रौघैश्च चतुर्थ्यपि।

दाहिने ऊपर के हाथ में अंकुश, बाँयें ऊपर के हाथ में पाश एवं नीचे के बाँयें हाथ में बीजपूर, दाहिने नीचे के हाथ में स्वर्णवर्ण (?) लिये हुये, पुष्कर (सूँड़) पर

मोदकों को धारण किये हुये, चँवर-सदृश बड़े-बड़े कान वाले देव का तीन चतुरस्र (भूपुर) से आवृत अष्टदल कमल वाले पूर्वोक्त पीठ पर पूर्वकथित नव शक्तियों के साथ पूजन करना चाहिये। तदनन्तर प्रथम आवरण में षडङ्ग-पूजन, द्वितीय आवरण में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन, तृतीय आवरण में लोकपालों का एवं चतुर्थ आवरण में लोकपालों के अस्त्रों का पूजन करना चाहिये।।९७-९९।।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।।१००।।
तद्दशांशं प्रजुहुयादपूपैर्घृतसम्प्लुतैः ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री काम्यकर्माणि साधयेत् ।।१०१।।
शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां च पूजयित्वा विनायकम् ।
अपूपैर्गुडसम्मिश्रैः पक्वान्नैश्च घृतप्लुतैः ।।१०२।।
मरिचैः क्षुरकैश्चैव सैन्धवेनापि मिश्रितैः ।
देवस्य सन्निधौ मन्त्री जुहुयात्त्रिसहस्रकम् ।।१०३।।
गद्यपद्यमयी वाणी सप्ताहाद् भवति ध्रुवम् ।
वश्यार्थी मधुहोमेन राजानं वशमानयेत् ।।१०४।।
कन्यार्थी जुहुयाल्लाजैस्तन्नामपुरमन्त्रतः ।
सप्त सम्भोजयेत्कन्यां यद्वैकां स लभेत ताम् ।।१०५।।

पूजनोपरान्त हविष्यान्न का भक्षण करके जितेन्द्रिय रहकर उक्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। तत्पश्चात् सम्यक् रूप से घृत-सिक्त अपूपों (पूओं) से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र की सिद्धि हो जाने पर मन्त्री को काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये।

मन्त्रज्ञ साधक को शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि को विनायक का पूजन करने के पश्चात् उन्हीं की सन्निधि में गुड़ से बने पूये, घृत-सिक्त पक्वान्न, मरिच के टुकड़े और सैन्धव लवण को मिलाकर तीन हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। ऐसा करने से एक सप्ताह के भीतर ही साधक की वाणी गद्य-पद्यमयी हो जाती है।

वशीकरण-सिद्धि की कामना वाला साधक मधु से हवन करके राजा को भी वशीभूत कर लेता है। कन्या-प्राप्ति का इच्छुक साधक अभीष्ट कन्या के नाम एवं उसके नगर-सहित मन्त्र का उच्चारण करते हुये लावा से हवन करने के उपरान्त सात अथवा एक कन्या को भली-भाँति भोजन कराने से उस ईप्सित कन्या को प्राप्त कर लेता है।

कर्षमात्रं च वा स्वर्णं पलमात्रं तथैव च ।
सूर्य्यग्रहे तथा चन्द्रग्रहणे चाभिमन्त्रयेत् ।।१०६।।

अष्टोत्तरसहस्रन्तु सप्तधा विभजतेत्ततः।
एकं भागं गृहे स्वीये देवताध्यानपूर्वकम् ॥१०७॥
शेषान् भागान् द्वितीयेऽह्नि क्रमाच्चैकैकशः पिबेत्।
ध्यानपूर्वं देवतायाः प्रातः प्रातस्तदा भवेत् ॥१०८॥
बुद्ध्या बुधेन सदृशः पण्डितो गुरुणा समः।
कविना च कवित्वेन शनिना प्रतिवादकः ॥१०९॥

एक कर्ष (पाँच रत्ती=९००मिलीग्राम) अथवा एक पल (बीस रत्ती=एक ग्राम पाँच सौ मिलीग्राम) सुवर्ण को सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण में इस मन्त्र के एक हजार आठ जप से अभिमन्त्रित करने के उपरान्त उस सुवर्ण को सात भाग में विभाजित करके एक भाग को देवता का ध्यान करते हुये अपने घर में स्थापित करने के पश्चात् शेष छः भागों को दूसरे दिन से प्रतिदिन प्रातःकाल में देवता का ध्यान करते हुये पान करने से साधक बुद्धि में बुध के समान, पाण्डित्य में बृहस्पति के समान, कवित्व में शुक्र के समान और प्रतिवाद करने में शनि के समान हो जाता है।।१०६-१०९।।

वन्ध्यर्त्तुस्नानदिवसे पूजयित्वा विनायकम्।
निष्कार्धपादमानेन हरिद्राञ्च वचान्तथा ॥११०॥
गोमूत्रे कुष्ठकं पिष्टं सहस्रमभिमन्त्रितम्।
वन्ध्या कन्या भक्ष्यभोज्यैर्मुक्त्वा सम्भोज्य स्वं गुरुम्।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा पिबेन्नारी तदौषधम् ॥१११॥
ततस्सा लभते पुत्रं सर्वलक्षणसंयुतम्।
आयुष्मन्तं सुरूपं च बुद्धिमन्तं श्रिया युतम् ॥११२॥

वन्ध्या स्त्री ऋतुस्नान के दिन विनायक का पूजन करके निष्कार्धपाद=४ ग्राम हल्दी, वच और कूठ को गोमूत्र में पीसकर एक हजार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करने के उपरान्त अपने गुरु को भक्ष्य-भोज्य द्वारा सम्यक् रूप से भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान कर यदि उस औषधि का पान करती हैं तो उसे सर्वलक्षण-सम्पन्न, सुन्दर, दीर्घायु, बुद्धिमान और सम्पत्ति से युक्त पुत्र की प्राप्ति होती है।।११०-११२।।

ताराद्योऽयं चतुर्वर्णो गायत्रं छन्द उच्यते।
पूर्ववच्च षडङ्गानि हेमाभो हेमवस्त्रवान् ॥११३॥
बृहज्जानुस्तुन्दिलश्च लम्बबाहुर्विलोचनः।
दक्षोर्ध्वहस्तपाशं चाधो वामे चाक्षसूत्रकम् ॥११४॥
दक्षिणाधो निजं दन्तमूर्ध्वे बाहौ तथा सृणिम्।

पुष्करेण तु बिभ्राणं मोदकं हेमभूषणम्।
शक्तियुक्तं विश्ववन्द्यं गणेशं चिन्तयाम्यहम् ॥११५॥
प्राग्वत्पूजा समुद्दिष्टा जपेल्लक्षत्रयम्मनुम्।
घृताक्तैश्च तिलैर्होमं तर्प्पणादि ततश्चरेत् ॥११६॥
आज्यान्नैर्जुहुयान्नित्यमन्नवान् स नरो भवेत्।
पायसान्नेन महतीं श्रियमाप्नोति मानवः ॥११७॥

गणेश का चतुरक्षर मन्त्र—इस मन्त्र (ह्रां ह्रीं ह्रीं) के पूर्व ॐ लगाने से यह मन्त्र चार अक्षरों वाला (ॐ ह्रां ह्रीं ह्रीं) हो जाता है। इसका छन्द गायत्री कहा गया है। पूर्व के समान ही इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।

स्वर्ण-सदृश आभा वाले, स्वर्णवस्त्र धारण करने वाले, बड़े घुटने एवं पेट वाले, लम्बी भुजा एवं आँख वाले, ऊपर वाले दाहिने हाथ में पाश, नीचे वाले बाँयें हाथ में अक्षसूत्र, नीचे वाले दाहिने हाथ में अपना दाँत एवं ऊपर वाले बाँयें बाहु में सृणि (चन्द्रमा) को धारण किये हुये, सूँड़ पर सुवर्ण-भूषित मोदक धारण किये हुये, जगत् के आराध्य शक्ति-समन्वित गणेश का मैं ध्यान करता हूँ।

इस प्रकार गणेश का ध्यान करके पूर्ववत् पूजन करने के उपरान्त इस चतुरक्षर मन्त्र का तीन लाख जप पूर्ण कर घृताक्त तिल से जप का दशांश हवन एवं उसके बाद हवन का दशांश तर्पण करना चाहिये।

गोघृत-मिश्रित अन्न से नित्य हवन करने वाला मनुष्य अन्न प्राप्त करता है एवं पायसान्न से हवन करने पर अपार धन प्राप्त करता है।।११३-११७।।

गं क्षिप्रप्रसादनाय हृदन्तोऽयं दशाक्षरः।
ऋषिर्गणक आख्यातश्छन्दः प्रोक्तं विराडिति ॥११८॥
देवता कथितः क्षिप्रप्रसादनविनायकः।
षड्दीर्घभाजा बीजेन कुर्य्यादङ्गक्रियां बुधः ॥११९॥

गणेश का दशाक्षर मन्त्र—'गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः' यह दशाक्षर गणेशमन्त्र है। इसके ऋषि गणक, छन्द विराट् एवं देवता क्षिप्रप्रसादन विनायक कहे गये हैं। विद्वान् साधक को छः दीर्घ बीजमन्त्रों (गां गीं गूं गैं गौं गः) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।।११८-११९।।

ध्यानं सर्वत्रायुधानां वामोर्ध्वात्तु प्रदक्षिणम्।
पाशाङ्कुशौ विलसतां पत्राग्रं च दधत्करैः ॥१२०॥

बीजपूरं पुष्करे च त्रिनेत्रो रक्तवस्त्रवान्।
भक्तं सदा पूर्णचन्द्रमौलिरव्याद् गणेश्वरः ॥१२१॥

ध्यान—समस्त आयुधों को बाँयें ऊपर वाले हाथ से आरम्भ कर प्रदक्षिणक्रम से धारण किये हुये, पाश एवं अंकुश से शोभायमान, सूँड़ में बीजपूर लिये हुये, तीन नेत्रों वाले, रक्त वस्त्र धारण करने वाले, मस्तक पर पूर्ण चन्द्र को धारण करने वाले गणनायक भक्त की सदा रक्षा करें।।१२०-१२१।।

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे नवशक्तिसमन्विते।
मूर्त्तिं मूलेन सङ्कल्प्य तस्यां विघ्नेश्वरं यजेत्।
प्रथमावृत्तिरङ्गैः स्याद् द्वितीया चाष्टभिर्गणैः ॥१२२॥
विघ्नो विनायकः शूरो वीरश्च वरदस्तथा।
इभवक्त्रश्चैकदन्तो लम्बोदर इति क्रमात् ॥१२३॥
मातृपूजा दलाग्रे स्याल्लोकेशास्त्राणि चाग्रतः।

नव शक्ति-समन्वित पूर्वोक्त पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति कल्पित करके विघ्नेश्वर का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर प्रथम आवरण में षडङ्गों का पूजन करने के उपरान्त द्वितीय आवरण में गणेश के आठ गणों का पूजन करना चाहिये। वे आठ गण क्रमशः इस प्रकार हैं—विघ्न, विनायक, शूर, वीर, वरद, इभवक्त्र, एकदन्त और लम्बोदर। इनका पूजन अष्टदल में करना चाहिये। तत्पश्चात् तृतीय आवरण में दलों के अग्रभाग में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। इसके बाद चतुर्थ आवरण में भूपुर में दिक्पालों का तथा पञ्चम आवण में लोकपालों के अस्त्रों का पूजन करना चाहिये।।१२२-१२३।।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं त्रिस्वाद्वक्तैस्तिलैर्हुनेत् ॥१२४॥
पूर्वोदिताष्टद्रव्यैर्वा तर्पणादि ततश्चरेत्।

तदनन्तर मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त तिल से अथवा पूर्वोक्त आठ द्रव्यों से कृत जप का दशांश हवन करने के पश्चात् हवन का दशांश तर्पण करना चाहिये।।१२४।।

शर्कराघृतयुक्तेन हविषा जुहुयात् सुधीः ॥१२५॥
लक्ष्मीवान् केवलाज्येन होमो लोकवशीकरः।
घृताक्तं तत्प्रजुहुयाल्लक्ष्मीवान् साधको भवेत् ॥१२६॥
चत्वारिंशद्दिनं मन्त्री नारिकेलं हुनेत्ततः।
सर्वसम्पत्समृद्धिः स्यात्प्रत्यहं वाञ्छितार्थकृत् ॥१२७॥

सलाजकैः कङ्गुभिश्च पृथुकैर्वाञ्छिताप्तये ।
होमो भवेदष्टभिश्च द्रव्यैस्त्रिमधुराप्लुतैः ॥१२८॥
हुनेत्ततश्च वशयेद्राज्ञस्तत्प्रमदा अपि ।
चतुश्चत्वारिंशदाख्यं चतुःशतमतन्द्रितः ॥१२९॥
प्रातःप्रातस्तु सलिलैर्विघ्नेशस्य तु मन्त्रकैः ।
तर्पयेत्सुसमिद्धिश्च भवेत्तस्य न संशयः ॥१३०॥
पूर्वादिगं गणेशानमायातं रविबिम्बतः ।
पूर्वोक्तचक्रमध्यस्थं चिन्तयित्वा तु तर्पयेत् ।
त्र्यक्षरोक्तप्रयोगांश्च कुर्य्यादत्रापि साधकः ॥१३१॥

शक्कर एवं घृत-समन्वित हविष्य से हवन करने वाला विद्वान् साधक धनवान होता है। केवल गोघृत से किया गया हवन लोक को वश में करने वाला होता है। घृत-सिक्त हविष्य के हवन से साधक लक्ष्मी-सम्पन्न होता है। चालीस दिनों तक केवल नारियल से हवन करने पर साधक सभी सम्पत्ति-समृद्धि से युक्त होकर प्रतिदिन वाञ्छित वस्तु प्राप्त करता है। अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये लावा, कंगु और पृथुक् से हवन करना चाहिये। पूर्वोक्त आठ द्रव्यों को त्रिमधु से सिक्त कर हवन करने पर राजा के साथ-साथ उसकी रानियाँ भी वशीभूत होती हैं।

चौवालीस दिनों तक प्रतिदिन प्रातःकाल में सजग होकर विघ्नेश के मन्त्र से सर्वौषधि-समन्वित जल से चार सौ बार तर्पण करने से निःसन्दिग्ध रूप से अभीष्ट-प्राप्ति होती है। पूर्व दिशा-स्थित सूर्यमण्डल से आते हुये गणेश को पूर्वोक्त चक्र के मध्य में स्थित होने की भावना करते हुये तर्पण करना चाहिये। साधक पूर्वोक्त त्र्यक्षर मन्त्र के प्रयोगों को इस मन्त्र से भी साधित कर सकता है।।१२५-१३१।।

ॐठांनमश्चतुर्वर्णो हेरम्बस्य मनुर्मतः ।
मुनिर्गणक आख्यातो गायत्री छन्द ईरितम् ॥१३२॥
पञ्चवक्त्रोऽस्य हेरम्बो देवता सिंहवाहनः ।
षड्दीर्घबीजयुक्तेन षडङ्गविधिरीतितः ॥१३३॥

हेरम्ब मन्त्र—'ॐ ठां नमः' यह चार अक्षरों का हेरम्ब का मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि गणक, छन्द गायत्री एवं देवता सिंहरूप वाहन वाले पञ्चवक्त्र हेरम्ब कहे गये हैं। इसका न्यास छः दीर्घ बीज से पूर्ववत् करना चाहिये।।१३२-१३३।।

मुक्ताविद्युन्मेघदुग्धकाश्मीरीसन्निभैर्मुखैः ।
गजवत्पञ्चभिर्युक्तः किरीटी चासिहस्तकः ॥१३४॥

अङ्कुशं च त्रिशूलं च मुद्गरं च कपालकम्।
स्वयन्तमभयं चापि वरं मोदकमेव च ॥१३५॥
परशुं चाक्षमालां च दधतं करपङ्कजैः।
कोटिसूर्य्यप्रतीकाशं ध्यायेद्धेरम्बमव्ययम् ॥१३६॥

ध्यान—मुक्ता, विद्युत्, मेघ, दुग्ध एवं काश्मीरी के समान हस्ति-सदृश पाँच मुखों वाले, माथे पर मुकुट धारण किये हुये, करकमलों में तलवार, अंकुश, त्रिशूल, मुद्गर, कपाल, अभय, वर, मोदक, परशु एवं अक्षमाला धारण किये हुये, कोटिसूर्य के सदृश दीप्तिमान, अव्यय हेरम्ब का ध्यान करना चाहिये।।१३४-१३६।।

पद्ममष्टदलं कृत्वा चतुरस्त्रत्रयावृतम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं तत्रादावासनं यजेत् ॥१३७॥
ॐ हुं हूं च महासिंहाय गं हेरम्बमुच्चरेत्।
आसनाय नमश्चेति प्रोक्तः सप्तदशाक्षरः ॥१३८॥
अनेन चासनं दद्यादनेनैव प्रपूजयेत्।
ध्रुवयुक्तेन बीजेन कुर्य्यान्मूर्तिप्रवर्त्तनम् ॥१३९॥
आदावङ्गानि सम्पूज्य लोकपालान् यजेत्पुनः।
तेषामस्त्राणि तद्बाह्ये हेरम्बार्चनमीरितम् ॥१४०॥
लक्षत्रयं जपं कृत्वा तिलैर्हुत्वा दशांशतः।
मधुरत्रयसंयुक्तैस्तर्पणादि समाचरेत् ॥१४१॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः।

तीन चतुरस्त्र (भूपुर) से आवृत एवं चार द्वारों से युक्त अष्टदल कमल बनाकर उसके मध्य में आसन का पूजन करना चाहिये। 'ॐ हुं हूं महासिंहाय गं हेरम्बासनाय नमः' इस सत्रह अक्षर के आसन मन्त्र से आसन प्रदान करते हुये इसी मन्त्र से पूजन भी करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ ठां' बीजमन्त्र से मूर्ति को कल्पित करने के पश्चात् सर्वप्रथम षडङ्ग-पूजन करने के बाद लोकपालों का एवं उसके बाहर लोकपालों के अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। यही हेरम्ब का अर्चन कहा गया है। इसके पश्चात् तीन लाख की संख्या में मन्त्र का जप करके उस कृत जप का दशांश (तीस हजार) हवन मधुरत्रय (घी, मधु, शक्कर) से समन्वित तिल से करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्री को प्रयोगों में प्रवृत्त होना चाहिये।

चतुर्दश्यष्टमी षष्ठीष्वेकैकं जुहुयाद् बुधः।
अपूपैः कृशरैश्चापि मोदकैरिष्टसिद्धये ॥१४२॥

पूर्वोक्तैर्जुहुयाद् द्रव्यैः पर्वस्वपि च मन्त्रवित्।
यद्यदिच्छति तत्सर्वं साधकस्तत्र साधयेत्।
क्षिप्रप्रसादनप्रोक्तान् प्रयोगान् वा समाचरेत्॥१४३॥

इष्ट की सिद्धि के लिये बुद्धिमान साधक को चतुर्दशी, अष्टमी एवं षष्ठी तिथि में क्रमशः अपूप (पूआ), खिचड़ी एवं लड्डुओं से हवन करना चाहिये। पूर्वोक्त द्रव्यों से ही मन्त्रज्ञ साधक को पर्वों पर भी हवन करना चाहिये। ऐसा करने वाला साधक जो कुछ भी चाहता है, वह सब प्राप्त कर लेता है। अथवा क्षिप्रप्रसादन मन्त्र में कथित प्रयोगों का साधन करना चाहिये।।१४२-१४३।।

तारो ङेऽन्तो गणेशो हृत्प्रोक्तः सप्ताक्षरो मनुः।
प्रणवान्तोऽष्टवर्णोऽयं शक्तिबीजादिकोऽपि वा॥१४४॥
ऋषिरग्निः समाख्यातो गायत्री छन्द उच्यते।
सुब्रह्मण्यो मनोरस्य देवता तु विनायकः।
दीर्घभाजाग्निबीजेन षडङ्गानि समाचरेत्॥१४५॥

सुब्रह्मण्य गणपति मन्त्र—सुब्रह्मण्य गणेश का सात अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमो गणेशाय। यही मन्त्र अन्त में भी प्रणव (ॐ) अथवा शक्तिबीज आदि लगा देने पर आठ अक्षरों का हो जाता है। इस सुब्रह्मण्य मन्त्र के ऋषि अग्नि, छन्द गायत्री एवं देवता विनायक कहे गये हैं। छः दीर्घ अग्निबीज (रं) से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः।
२. रीं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा।
३. रुं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट्।
४. रैं अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय हुं।
५. रौं कनिष्ठाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्।
६. रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट्।।१४४-१४५।।

रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तगन्धानुलेपनम्।
रक्तपुष्पैः पूज्यमानं भक्तपातकहारिणम्॥१४६॥
मुद्गरं च तथा शक्तिं कमलं चाङ्कुशं तथा।
हस्तैर्दधानं चन्द्रास्यं नानाभूषणभूषितम्॥१४७॥
रिपुक्षयकरं देवं सुब्रह्मण्यगणाधिपम्।
ध्यात्वैवं पूजिते पीठे पश्चात्सम्पूजयेद्विभुम्॥१४८॥

सुब्रह्मण्य-ध्यान—रक्त वर्ण वाले, रक्त वस्त्र धारण करने वाले, रक्त गन्ध का अनुलेप लगाये हुये, रक्त पुष्प से पूजित, भक्त के पापों का हरण करने वाले, हाथों में मुद्गर, शक्ति, कमल तथा अंकुश धारण किये हुये, शत्रुओं का नाश करने वाले सुब्रह्मण्य गणपति का ध्यान करके पीठपूजन के उपरान्त देवता का पूजन करना चाहिये।।१४६-१४८।।

केशरेषु षडङ्गानि पूर्वाद्यष्टदले ततः।
जयन्तश्चाग्निवेषश्च कृत्तिकापुत्र एव च।।१४९।।
तथा भूतपतिस्सेनानीर्गुहो हेमसूत्रकः।
विशालाक्षश्च सम्प्रोक्ताः शक्तिशूलकरा इमे।।१५०।।
दलाग्रेषु च पूर्वादि यजेदेताननन्तरम्।
देवसेनापतिं शक्तिं विघ्नं कुक्कुटमेव च।।१५१।।
मेधां मयूरं वज्रं च धियं लोकेश्वराँस्ततः।
तदस्त्राणि च सम्पूज्य सुब्रह्मण्यार्चनं त्विदम्।।१५२।।

अष्टदल के केशरों में षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् अष्टदल में पूर्वादि क्रम से शक्ति एवं शूल धारण करने वाले जयन्त, अग्निवेष, कृत्तिकापुत्र, भूतपति, सेनानी, गुह, हेमसूत्र एवं विशालाक्ष का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर दलों के अग्रभाग में पूर्वादि क्रम से देवसेनापति, शक्ति, विघ्न, कुक्कुट, मेधा, मयूर, वज्र और बुद्धि—इन आठ का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में दिक्पालों और उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। यही सुब्रह्मण्य के पूजन की विधि है। आवरण-पूजन इस प्रकार किया जाता है—

प्रथम आवरण का पूजन केशर में इस प्रकार किया जाता है—

१. रां हृदयाय नमः हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
२. रीं शिरसे स्वाहा शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
३. रूं शिखायै वषट् शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४. रैं कवचाय हुं कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
५. रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
६. रः अस्त्राय फट् अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

पूजन के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करके देवता को प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

द्वितीय आवरण का पूजन अष्टदल में पूर्वादि क्रम से इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ जयन्ताय नमः जयन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२. ॐ अग्निवेषाय नमः अग्निवेषश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३. ॐ कृत्तिकापुत्राय नमः कृतिकापुत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

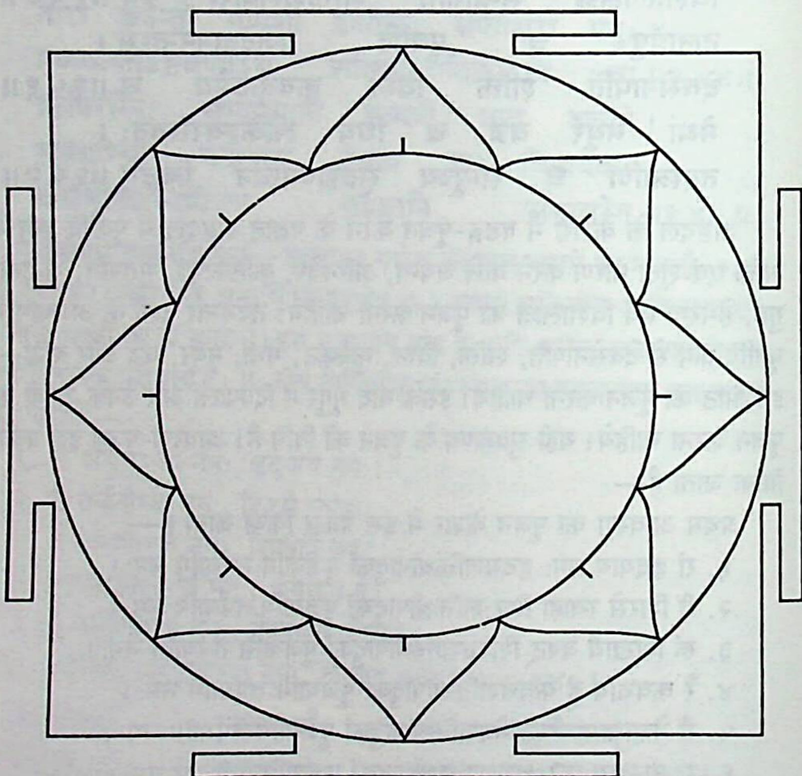
४. ॐ भूतपतये नमः भूतपतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

५. ॐ सेनान्यै नमः सेनानीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

६. ॐ गुहाय नमः गुहश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

७. ॐ हेमसूत्राय नमः हेमसूत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

८. ॐ विशालाक्षाय नमः विशालाक्षश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।



पूजन के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करके देवता को प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

तृतीय आवरण का पूजन दलों के अग्रभाग में इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ देवसेनापतये नम: देवसेनापतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
२. ॐ शक्तये नम: शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
३. ॐ विघ्नाय नम: विघ्नश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
४. ॐ कुक्कुटाय नम: कुक्कुटश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
५. ॐ मेधायै नम: मेधाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
६. ॐ मयूराय नम: मयूरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
७. ॐ वज्राय नम: वज्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
८. ॐ बुद्ध्यै नम: बुद्धिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

पूजन के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिता: सन्तु नम:' कहकर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करके देवता को प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

तत्पश्चात् चतुर्थ आवरण में भूपुर में पूर्ववत् लोकपालों (इन्द्र अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त) का पूजन करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये।

तत्पश्चात् पञ्चम आवरण में भूपुर में ही लोकपालों के आगे उके अस्त्रों (वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म, चक्र) का पूर्ववत् पूजन करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये।।१४९-१५२।।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं सर्पिषा पयसान्धसा।
अयुतं जुहुयान्मन्त्री तर्पयेद्विप्रपुङ्गवान्।।१५३।।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री कुर्य्यात्कामान्यथेप्सितान्।
दिने दिने स मधुरैर्भक्ष्यभोज्यै: प्रतोषयेत्।
देवं देवधिया सम्यगर्चयेद् ब्रह्मचारिणम्।।१५४।।
सुब्रह्मण्यमनो: सम्यगुपास्ति ये प्रकुर्वते।
ऐहिकामुष्मिकान् भोगाँल्लभन्ते नात्र संशय:।।१५५।।

मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करने के उपरान्त दूध एवं भात से (जप का दशांश) दस हजार आहुतियों द्वारा हवन करने के बाद विप्रश्रेष्ठों को तृप्त करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक को यथेष्ट कार्यों का साधन करना चाहिये। प्रतिदिन मधुर भक्ष्य-भोज्य प्रदान करते हुये देवता को प्रसन्न करना चाहिये

एवं ब्रह्मचारी में देवबुद्धि रखते हुये उसका सम्यक् रूप से अर्चन करना चाहिये। जो लोग सुब्रह्मण्य मन्त्र की सम्यक् रूप से उपासना करते हैं, वे निस्सन्दिग्ध रूप से ऐहिक एवं आमुष्मिक भोगों को प्राप्त करते हैं।।१५३-१५५।।

हरिद्रागणपतिमन्त्रविधानम्

ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रेति चोक्त्वा गणपतये वदेत्।
वरवरद इत्युक्त्वा सर्वजनपदं वदेत् ।।१५६।।
हृदयं स्तम्भयद्वन्द्वं स्वाहा द्वात्रिंशदर्णकः।
ऋषिर्मदन आख्यातश्छन्दोऽनुष्टुप्समीरितम् ।।१५७।।
हरिद्रागणपो देवः षडङ्गानि समाचरेत्।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन विप्रादीनां प्रकीर्तितः ।।१५८।।

हरिद्रागणपति मन्त्र—हरिद्रागणपति का बत्तीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ हुं गं ग्लौं हरिद्रागणपतये वरवरद सर्वजनहृदयं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि मदन, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता हरिद्रागणप कहे गये हैं। इस मन्त्र का षडङ्गन्यास बीजमन्त्र को छः दीर्घ स्वरों से युक्त करके इस प्रकार करना चाहिये—

१. ग्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः।
२. ग्लीं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा।
३. ग्लूं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट्।
४. ग्लैं अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय हुं।
५. ग्लौं कनिष्ठाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्।
६. ग्लः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट्।।१५६-१५८।।

विधिना येन मन्त्रोऽयं गृह्यते तदहं ब्रुवे।
चतुर्थीदिवसे प्राप्ते शुक्लपक्षस्य मन्त्रवित् ।।१५९।।
शुद्धां हरिद्रामानीय सुपिष्टं कन्यया शुभाम्।
सर्वाङ्गे तां समालिप्य स्नायाच्छुद्धजलैस्ततः ।।१६०।।
भक्त्या परमयोपेतः प्रसन्नेनान्तरात्मना।
प्रथमं गुरुपादाब्जमर्चयित्वा विधानतः।
स्वर्णाङ्गुलीयहारौघैर्भूषणैश्च शुभाम्बरैः ।।१६१।।
पूर्वोक्तविधिना तस्माद् गृह्णीतेमं मनुं शुभम्।
सुगन्धैः सुमनोभिस्तं यजेद्देवधिया पुनः ।।१६२।।

इस मन्त्र को जिस विधि से ग्रहण किया जाता है, उसे अब मैं कहता हूँ। शुक्ल

पक्ष की चतुर्थी तिथि को मन्त्रज्ञ साधक द्वारा सुन्दर कन्या द्वारा पिसी हुई शुद्ध हल्दी को लाकर उसको अपने समस्त अंगों में लिप्त करने के पश्चात् शुद्ध जल से स्नान करके अतिशय भक्तियुक्त होकर प्रसन्न मन से सर्वप्रथम गुरु के चरणकमलों का सोने की अंगूठी, हार आदि आभूषणों एवं शोभन वस्त्रों द्वारा विधिपूर्वक पूजन करने के उपरान्त इस मन्त्र को ग्रहण करना चाहिये। इसके बाद पुनः सुगन्धित पुष्पों द्वारा देवबुद्धि से उनका पूजन करना चाहिये।।१५९-१६२।।

पीताम्बरं पीतवर्णं पीतगन्धानुलेपनम्।
पीतपुष्पैः पूज्यमानं मणिसिंहासनस्थितम्।।१६३।।
पीतभूषं त्रिनेत्रञ्च षड्भुजञ्च वराभयम्।
क्रोधमुद्रां सृणिं पाशं परशुं बिभ्रतं करैः।।१६४।।
ध्यायेच्छुद्धमना मन्त्री हरिद्रागणपं प्रभुम्।
पूर्वोक्तपीठे प्रयजेदङ्गमातृदिगीश्वरैः।।१६५।।

मणि-निर्मित सिंहासन पर विराजमान, पीत वर्ण वाले, पीत वस्त्र धाण किये हुये, पीत गन्ध का अनुलेप लगाये हुये, पीत पुष्पों द्वारा पूजे जाते हुये, पीत आभूषण धारण किये हुये, तीन नेत्रों एवं छः भुजाओं वाले, छः हाथों में वर, अभय, क्रोधमुद्रा, सृणि (अंकुश), पाश एवं परशु धारण किये हुये प्रभु हरिद्रागणपति का शुद्ध मन से मन्त्रज्ञ साधक को ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वोक्त गणेशपीठ पर अङ्गों, मातृकाओं और दिगीश्वरों का पूजन करना चाहिये।।१६३-१६५।।

वेदलक्षं जपित्वान्ते हरिद्राचूर्णमिश्रितैः।
दशांशं तण्डुलैर्हुत्वा ब्राह्मणानपि भोजयेत्।।१६६।।
साग्रं सहस्रं सञ्जप्य दशांशं हव्यवाहने।
सर्पिर्गुडपुटैः सम्यगपूपैर्जुहुयाद्बहिः।।१६७।।
हरिद्रागणपं तावत्तर्पयेद्भक्तितत्परः।
कुमारीं भोजयेत्तावद् ब्रह्मचारिणमेव च।।१६८।।
अभीष्टफलमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा।

पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का चार लाख की संख्या में जप पूर्ण करने के पश्चात् हल्दी-चूर्ण मिले चावल से जप का दशांश हवन करना चाहिये एवं ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर हव्यवाहन (अग्नि) के समक्ष मन्त्र का एक हजार जप करने के बाद घृत एवं गुड़ लिपटे अपूपों से हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् भक्तिभाव से हरिद्रागणपति का तर्पण करने के अनन्तर कुमारी एवं ब्रह्मचारी को भोजन कराना

चाहिये। ऐसा करने से साधक निश्चित रूप से अभीष्ट फल को प्राप्त करता है; इसमें किसी भी प्रकार का विचार नहीं करना चाहिये।।१६६-१६८।।

लाजैः कन्यामवाप्नोति कन्यापि लभते वरम् ।।१६९।।
वन्ध्या नारी रजःस्नाता पूजयित्वा गणाधिपम् ।
पलप्रमाणगोमूत्रे पिष्टाः सिन्धुवचानिशाः ।।१७०।।
सहस्रं मन्त्रयेत्कन्या वटून् सम्भोज्य मोदकैः ।
पीत्वा तदौषधं पुत्रं लभते गुणसागरम् ।।१७१।।
वाणीस्तम्भं रिपुस्तम्भं कुर्य्यान्मनुरुपासितः ।
जलाग्निसिंहचौरास्त्रप्रमुखानपि रोधयेत् ।।१७२।।
एतेऽष्टौ गणपाः प्रोक्ता दक्षिणाम्नायगोचराः ।।१७३।।

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते दक्षिणाम्नायगणपतिमन्त्रप्रकाशष्षोडशः ।।१६।।



लावा से हवन करने पर विवाहार्थी पुरुष को कन्या की एवं कन्या को वर की प्राप्ति होती है। वन्ध्या स्त्री रज:निवृत्ति के बाद स्नान करके गणेश का पूजन करने के उपरान्त पचास ग्राम गोमूत्र में सेंधा नमक, वच और हल्दी को पीस कर मन्त्र के एक हजार जप से उसे अभिमन्त्रित करने के बाद कुमारियों एवं बटुकों को लड्डू का भोजन कराने के पश्चात् यदि उक्त अभिमन्त्रित औषधि का पान करती है तो अत्यन्त गुणी पुत्र को प्राप्त करती है।

इस मन्त्र की उपासना से वाणी एवं शत्रु का स्तम्भन किया जा सकता है; जल, अग्नि, सिंह, चोर, अस्त्र आदि को भी अवरुद्ध किया जा सकता है। इस प्रकार इन आठ प्रकार के दक्षिणाम्नायस्थ गणपतियों का वर्णन किया गया।।१६९-१७३।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिव-प्रणीत 'दक्षिणाम्नायगणपतिमन्त्रकथन'-नामक षोडश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।



सप्तदशः प्रकाशः

(ऊर्ध्वाम्नायगणपतिमन्त्रप्रकाशः)

ऊर्ध्वाम्नायोक्तगणपतिमन्त्रः

ईश्वर उवाच

ऊर्ध्वाम्नाये प्रवक्ष्यामि गणेशान् सिद्धिदायकान्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं तत्र महागणपतिं शृणु ॥१॥
तारश्रीबीजहृल्लेखाः कामो भूबीजमेव च।
गणेशबीजं गणपतये वरवरेति च ॥२॥
द सर्वजनं मे वशमानयाग्निवधूरिति।
अष्टाविंशतिवर्णोऽयं गणकोऽस्य मुनिर्मतः ॥३॥
निवृद्गायत्रिका छन्दो महागणपतिः सुरः।
गं बीजं ह्रीं च शक्तिः स्याद्दीर्घषट्कयुतस्तु गः ॥४॥
तारादिबीजषट्केन पृथग्युक्तेन कारयेत्।
षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि चाचरेत् ॥५॥
अथवा तारपूर्वेण दीर्घषट्कयुतेन च।
स्वबीजेनाङ्गुलिन्यासं षडङ्गानि तथाचरेत् ॥६॥

महागणपति मन्त्र—श्रीशिवजी ने कहा—अब मैं ऊर्ध्वाम्नाय में सिद्धि प्रदान करने वाले गणेशमन्त्रों को सम्यक् रूप से कहता हूँ; सर्वप्रथम उनमें से भोग-मोक्षप्रदायक महागणपतिमन्त्र को श्रवण करो। महागणपति का अट्ठाईस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा।

इस महागणपतिमन्त्र के ऋषि गणक, छन्द निवृद् गायत्री, देवता महागणपति, बीज गं एवं शक्ति ह्रीं कहे गये हैं। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः।
२. ॐ गीं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा।
३. ॐ गूं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट्।
४. ॐ गैं अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय हुं।

५. ॐ गौं कनिष्ठाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय वौषट्।

६. ॐ गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट्।।१-६।।

वर्णा द्वाविंशतिर्न्यस्या गणपत्यादयो मनोः।
ब्रह्मरन्ध्रे श्रोत्रयोश्च नेत्रयोश्च नसोर्मुखे ।।७।।
मूले दक्षभुजस्यादौ मध्ये च मणिबन्धके।
अङ्गुलीमूलकेऽग्रे च वामबाहावपीदृशम् ।।८।।
विन्यसेदग्रिमान् वर्णांस्ततश्चादौ तदग्रिमान्।
मणिपूरे स्वाधिष्ठाने मूलाधारे तदग्रिमान् ।।९।।
तारं पार्ष्णौ मुखे श्रीं च हृदि ह्रीं श्रीं गुदे न्यसेत्।
पादयोर्ग्लौं हृदि पुनः प्रत्यङ्गं बीजमेव च ।।१०।।
अवशिष्टैर्मन्त्रवर्णैः शरीरे व्यापकं न्यसेत्।
एवं न्यासविधिं कृत्वा हृदि देवं विचिन्तयेत् ।।११।।

मन्त्र के 'गणपति' आदि बाईस वर्णों का क्रमशः इन स्थानों में न्यास करना चाहिये—ब्रह्मरन्ध्र, दक्ष कर्ण, वाम कर्ण, दक्ष नेत्र, वाम नेत्र, दक्ष नासिका, वाम नासिका, मुख, दक्ष बाहुमूल, दक्ष कूर्पर, दक्ष मणिबन्ध, दक्षांगुलिमूल, दक्षांगुलि के आगे, वाम बाहुमूल, वामकूर्पर, वाममणिबन्ध, वामांगुलिमूल, वाम अंगुलि के आगे, मणिपूर, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार। तदनन्तर तार (ॐ) का पार्ष्णि में, श्रीं का मुख में, ह्रीं का हृदय में, श्रीं का गुदा में, ग्लौं का पैरों में एवं गं का हृदय में न्यास करने के पश्चात् शरीर के प्रत्येक अंग में पुनः बीजमन्त्र का न्यास करना चाहिये। सर्वान्त में अवशिष्ट मन्त्रवर्णों से सम्पूर्ण शरीर में व्यापक न्यास करना चाहिये। इस प्रकार विहित न्यास को करने के उपरान्त अपने हृदय में देवता का ध्यान करना चाहिये।।७-११।।

ऐक्षवे जलधेर्द्वीपे नवरत्नमये शुभे।
तत्तरङ्गलसत्तोयैर्धौते शीते महीतले ।।१२।।
तत्तोयगुणसम्पृक्तगन्धवाहनिषेविते ।
कल्पपादपपुष्पौघैः पतद्भिः समलङ्कृते ।।१३।।
नानाकुसुमसङ्कीर्णे नानापक्षिविराजिते।
अनेकफलसङ्कीर्णे सेविते चाप्सरोगणैः ।।१४।।
ज्वालामालासहस्राढ्ये चोद्यज्ज्योत्स्नासमाकुले।
विलसत्पद्मरागौघकुट्टिमारुणभूतले ।।१५।।
कल्पपादपपुष्पस्थषट्पदस्वनमञ्जुले ।
पारिजातं कल्पतरुं तत्र मध्ये विचिन्तयेत् ।।१६।।

युगपट्टे तु षट्केन खचितं पुष्पशोभितम्।
नवरत्नमयं तस्याधस्तात्सिंहासनं स्मरेत्॥१७॥
तन्मध्ये लिपिपद्मं च षडारं तस्य मध्यतः।
कर्णिकायां गणेशञ्च तत्संस्थं च महागणम्॥१८॥
नानारत्नविभूषाढ्यमेकदन्तं गजाननम्।
चक्रं चाङ्कुशपद्मादीन् बीजपूरं गदां तथा।
शरासनं च शूलं च बिभ्रन्तं हस्तपङ्कजैः॥१९॥
पद्मोद्यत्करया शक्त्या चाश्लिष्टं वरदं प्रभुम्।
अर्धेन्दुमौलिं त्र्यक्षं च दीप्यमानं कृपाकरम्॥२०॥
पुष्करोद्धृतरत्नौघमयकुम्भमुखच्युतान्।
मणिमुक्ताप्रवालादीन् वर्षन्तं धारया मुहुः॥२१॥
सर्वतः साधकस्याग्रे स्वदानजललोलुपाम्।
षट्पदालीं कर्णतालैर्वारयन्तं मुहुर्मुहुः॥२२॥
अमरासुरसंसेव्यं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्।
ऊरूकरं गजमुखं नानाभरणभूषितम्॥२३॥

इक्षुसमुद्र में नव रत्नों से निर्मित एक रमणीय द्वीप है, जिसका भूभाग इक्षुसमुद्र के तरङ्गपूर्ण जल से प्रक्षालित होने के कारण शीतल है। उस द्वीप पर सामुद्र जल-मिश्रित वायु प्रवहमान रहती है।

कल्पवृक्षों के गिरते फूलों से वह द्वीप शोभायमान है। अनेक प्रकार के पुष्पों से भरा, विविध प्रकार के पक्षियों द्वा॰ ुशोभित, अनेक प्रकार के फलों से भरा वह द्वीप अप्सराओं द्वारा सेवित है।

हजारों ज्वालामालाओं (?) से निःसृत किरणों से परिपूर्ण है। कल्पवृक्ष के फूलों पर मँड़राते भौंरों से निनादित है।

उस द्वीप के मध्य में पारिजात वृक्ष विद्यमान हैं। उसके नीचे छः जोड़ी वस्त्रों से खचित एवं पुष्पों से सुशोभित नवरत्नमय सिंहासन है। उसके मध्य में कमल तथा कमल के मध्य में षट्कोण अंकित है। उसकी कर्णिका में गणेश विराजमान हैं।

वहाँ पर अनेकानेक रत्नों से निर्मित आभूषणों से सुशोभित एक दाँत वाले गजानन विद्यमान हैं। उनके हाथों में चक्र, अंकुश, कमल, बीजपूर, गदा, शरासन एवं शूल सुशोभित हैं।

वे वरद प्रभु हाथ में कमल धारण की हुई शक्ति द्वारा आलिङ्गित हैं। कृपा करने वाले वे प्रभु मस्तक पर अर्धचन्द्रमा एवं तीन नेत्रों से दीप्यमान हैं।

हाथियों द्वारा उठाये हुये रत्नों से भरे कलशों के मुख से बार-बार मणि, मुक्ता, मूँगा आदि की उनके ऊपर वर्षा हो रही है। वे हाथी साधक के आगे चारो ओर अपने गण्ड्स्थल से प्रवहमान मदजल के लोभी भौंरों को कर्णरूपी पंखों से बार-बार हटा रहे हैं।

वे गजानन देवों एवं दानवों द्वारा सेवित हैं। बहुमूल्य रत्नों से जटित मुकुट उनके माथे पर प्रकाशमान है। अपने सूँड़ को वे अपनी जाँघों पर रखे हैं एवं बहुविध आभूषणों से विभूषित हैं।।१२-२३।।

इति ध्यात्वा गणपतिं यजेत्सर्वोपचारकैः ।
धर्मादिक्लृप्ते पूर्वोक्ते तीव्रादिनवशक्तिके ।।२४।।

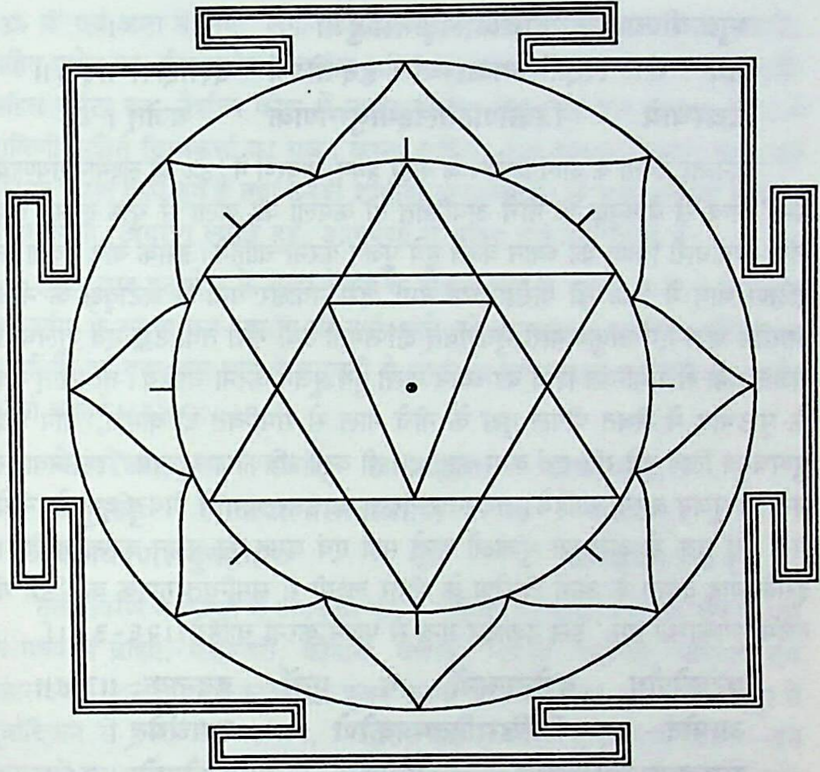
इस प्रकार ध्यान करके तीव्रा आदि नव शक्तियों से समन्वित धर्मादि से रचित पूर्वोक्त पीठ पर समस्त उपचारों से गणपति का इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

श्रीमहागणपतिं ध्यायामि। आवाहयामि। महागणपते नमः आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। मधुपर्कं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् समर्पयामि। श्रीमहागणपतये नमः। नानापरिमलद्रव्याणि पत्रपुष्पाणि समर्पयामि। महागणपतये नमः धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं ताम्बूलं समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि। ॐ तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्। महागणपतये नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान् सर्वदेवात्मकः श्रीमहागण-पतिः सुप्रसन्नो वरदो भवतु।।२४।।

गणेशपूजायन्त्रम्

पूजायन्त्रं गणेशस्य मातृकापद्ममुच्यते ।
चतुर्द्वारसमायुक्तं चतुरस्त्रत्रयावृतम् ।।२५।।
तत्कर्णिकायां षट्कोणं तदन्तश्च त्रिकोणकम् ।

गणेश का पूजन यन्त्र मातृकापद्म कहा गया है। यह चार द्वारों एवं तीन भूपुर से समन्वित होता है। इसकी कर्णिका में षट्कोण एवं उस षट्कोण के भीतर त्रिकोण होता है। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



देवस्याग्रे त्रिकोणाच्च बहिर्मन्त्रैर्यजेत्सुरान् ॥२६॥
लक्ष्मीनारायणायेति ॐ श्रींपूर्वो हृदन्तकः ।
मन्त्रस्तेन यजेत्तञ्च ध्यायेद्बिल्वतले स्थितम् ॥२७॥
पद्मद्वयकला लक्ष शङ्खचक्रधरो हरिः ।
ॐ ह्रीं गौरीहराभ्यां च हृदन्तो नववर्णकः ॥२८॥
देवस्य दक्षिणे तौ च ध्यायन्नेवं प्रपूजयेत् ।
संस्थितौ च जटाधस्तात् सुवर्णरजतप्रभौ ॥२९॥
पाशाङ्कुशधरा देवी टङ्कशूलधरो हरः ।
तारः क्लीं रतिकामाभ्यां हृदन्तोऽयं नवाक्षरः ॥३०॥
पृष्ठस्थपिप्पलाधस्ताद्रतिकामौ समर्चयेत् ।
नालयुक्तोत्पलद्वन्द्वचापपुष्पेषुसंयुतौ ॥३१॥
ॐ ग्लौं महीवराहाभ्यां हृदन्तोऽयं दशाक्षरः ।
उत्तरेऽधः प्रियङ्गोऽस्तु महीकोलौ यजेत्ततः ॥३२॥

शुक्रवीज्याग्रकगदाचक्रालंकृतसद्भुजौ ।
ॐ गं लक्ष्मीगणकाभ्यां हृदन्तोऽयं दशाक्षरः ॥३३॥
देवस्याग्रे त्रिकोणान्तर्लक्ष्मीयुग्गणकं यजेत् ।

तदनन्तर देवता के आगे त्रिकोण के बाहर प्रथम आवरण में 'ॐ श्रीं लक्ष्मीनारायणाय नमः' मन्त्र से बेलवृक्ष के नीचे अवस्थित दो कमलों की कला से युक्त लक्ष्मी एवं शंख-चक्रधारी विष्णु का ध्यान करते हुये पूजन करना चाहिये। इसके बाद देवता के दक्षिण भाग में 'ॐ ह्रीं गौरीहराभ्यां नमः' इस नवाक्षर मन्त्र से जटावृक्ष के नीचे आसीन पाश एवं अंकुशधारी सुवर्णवत् दीप्तिमती देवी गौरी तथा टङ्क एवं शूलधारी राजत् प्रभा से समन्वित शिव का ध्यान करते हुये पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् देव के पृष्ठभाग में स्थित पीपल वृक्ष के नीचे नाल से समन्वित दो कमल, चाप एवं पुष्पधनुष लिये हुये रति एवं काम का 'ॐ श्रीं क्लीं रतिकामाभ्यां नमः' इस नवाक्षर मन्त्र से पूजन करना चाहिये। तदनन्तर देवता के उत्तर भाग में प्रियङ्गु वृक्ष के नीचे गदा एवं चक्र से अलंकृत भुजाओं वाले मही एवं वराह का यजन करना चाहिये। इसके बाद देवता के आगे त्रिकोण के भीतर लक्ष्मी से समन्वित गणक का 'ॐ गं लक्ष्मीगणकाभ्यां नमः' इस दशाक्षर मन्त्र से पूजन करना चाहिये।।२६-३३।।

षट्कोणेषु यजेन्मन्त्रमों गं पूर्वो हृदन्तकः ॥३४॥
आमोदं सिद्धिसहितमग्रकोणे समर्चयेत् ।
समृद्ध्यायुतमभ्यर्चेत् प्रमोदं वह्निकोणके ॥३५॥
सुमुखं कान्तिसंयुक्तमीशकोणे समर्चयेत् ।
दुर्मुखं मदनावत्या यजेद्वारुणकोणगम् ॥३६॥
विघ्नं मदद्रवायुक्तं कोणे नैशाचरे यजेत् ।
वायव्ये विघ्नकर्त्तारं द्राविण्या सहितं यजेत् ॥३७॥
पाशाङ्कुशधरा विद्या शक्तयश्चाभयप्रदाः ।
रक्तारक्ताम्बरालेपभूषणा मदविह्वलाः ॥३८॥
षट्कोणस्य बहिर्देवैर्दक्षिणे तु समर्चयेत् ।
वसुधारान्वितं शङ्खनिधिं वामेऽर्चयेत्तथा ॥३९॥
वसुमत्या युतं पद्मनिधिं तद्ध्यानमुच्यते ।
तत्राद्यो मौक्तिकाभोऽन्यो माणिक्याभस्तु धारया ।
वर्षन्तौ धनसम्पत्तिं लोकानां मेघवत्सदा ॥४०॥

तत्पश्चात् द्वितीयावरण में षट्कोण में देवता के आगे वाले कोण में मन्त्र के पूर्व

'ॐ गं' एवं अन्त में 'नमः' लगाकर सिद्धि-सहित आमोद का, वह्निकोण में समृद्धि-सहित प्रमोद का, ईशानकोण में कान्ति-सहित सुमुख का, वारुण कोण में मदनावती-सहित दुर्मुख का, नैर्ऋत्य कोण में मदद्रवा-सहित विघ्न का एवं वायव्य कोण में द्राविणी-सहित विघ्नकर्त्ता का यजन करना चाहिये। उक्त समस्त देवगण पाश एवं अंकुश धारण किये हुये हैं तथा उनकी शक्तियाँ अभयप्रदा हैं। वे सभी शक्तियाँ रक्तारक्त वस्त्रधारिणी, अंगराग लगाई हुईं, आभूषणों से भूषित एवं मदविह्वला हैं।

इसके बाद षट्कोण के बाहर देवता के दक्षिण भाग में संसार के लिये मेघ द्वारा जलवर्षण के सदृश धन-सम्पत्ति की वर्षा करते हुये वसुधारा से समन्वित मौक्तिकाभ शङ्खनिधि का तथा वाम भाग में वसुमती से समन्वित माणिक्याभ पद्मनिधि का अर्चन करना चाहिये।।३४-४०।।

केशरेष्वङ्गपूजा स्याद् ब्राह्म्याद्याः पत्रमध्यगाः।
चतुरस्रे लोकपालाँस्तदस्त्राणि च पूर्ववत्।
षडावरणसंयुक्तमित्थं देवं समर्चयेत्।।४१।।

तृतीयावरण में केशरों में अंगपूजन करना चाहिये। चतुर्थावरण में अष्टदल के पत्रों के मध्य में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी—इन अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। पञ्चम आवरण में भूपुर में पूर्वादिक्रम से इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर एवं ईशान—इन दिक्पालों का अर्चन करना चाहिये। अन्त में षष्ठावरण के अर्चनक्रम में भूपुर के बाहर दिक्पालों के अस्त्रों (वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल) का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार देवता का छः आवरणों से समन्वित पूजन करना चाहिये।।४१।।

एकादशायुतं जप्त्वा सहस्रोत्तरमादरात्।
दशांशं जुहुयादष्टद्रव्यैरेकाक्षरोदितैः।।४२।।
तर्पयित्वा दशांशेन चाभिषिक्तोऽणुना ततः।
ब्राह्मणान् भोजयेत्सम्यक् षड्रसैर्भूरिदक्षिणाम्।
दत्त्वा प्रणम्य विसृजेदेवं सिद्धो भवेन्मनुः।।४३।।
ततः प्रणम्य विधिवद्गुरुं सन्तोष्य यत्नतः।
काम्यकर्म्माणि कुर्वीत सिद्धयः स्युर्न चान्यथा।।४४।।

आवरण-सहित देवपूजन के अनन्तर मन्त्र का एक लाख ग्यारह हजार जप करने के पश्चात् कृत जप का दशांश ग्यारह हजार एक सौ आहुतियों द्वारा एकाक्षर मन्त्र के

प्रसङ्ग में कथित आठ द्रव्यों से हवन करने के बाद हवन का दशांश तर्पण एवं तर्पण का दशांश अभिषेक करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणों को सम्यक् रूप से षड्रस भोजन कराने के उपरान्त उन्हें प्रचुर दक्षिणा प्रदान करते हुये प्रणाम कर पूजा का विसर्जन करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। तत्पश्चात् गुरु को विधिपूर्वक प्रणाम करके उन्हें यत्नपूर्वक सन्तुष्ट करने के बाद काम्य कर्मों का सम्पादन करने से ही उनकी सिद्धि होती हैं; अन्यथा नहीं।।४२-४४।।

गणेशमन्त्रकल्पाः

रक्तप्रसूनैर्गणपं पूजयित्वा मनुं जपेत्।
सहस्राष्टकमस्यान्ते जुहुयात् करवीरजैः ।।४५।।
तद्दशांशेन कुसुमैर्मधुस्त्रयसंस्कृतैः।
राजा तदा चरो भूत्वा सामात्यः सन्निषेवकः ।।४६।।
एवं पलाशपुष्पैश्च मधुरत्रयसम्प्लुतैः।
होमात्सर्वेऽपि विघ्नाः स्युर्वशास्तस्य न संशयः ।।४७।।
जितेन्द्रियो मन्त्रिवरो घृतमेवं च होमयेत्।
कीर्तिम्प्राप्नोति विपुलां चिरकालानुबन्धिनीम् ।।४८।।
एवमाज्यप्लुतं धान्यं हुत्वामात्यः प्रजायते।

प्रयोग के समय लाल फूलों से गणेश-पूजन करके मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने के उपरान्त लाल कनैल के पुष्पों को मधुरत्रय (मधु, घृत, गुड़) से सिक्त करके जप का दशांश (एक सौ आठ बार) हवन करना चाहिये। ऐसा करने से अपने अमात्यों एवं सेवकों के सहित राजा साधक का दास हो जाता है। इसी प्रकार मधुरत्रय-सिक्त पलाशपुष्पों के हवन से समस्त विघ्न साधक के वशीभूत हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। जितेन्द्रिय मन्त्रज्ञ साधक मात्र घृत से हवन करके चिरकाल तक वर्तमान रहने वाली विपुल कीर्ति को प्राप्त करता है। इसी प्रकार घृत-सिक्त धान्य से हवन करने पर साधक अमात्य पद प्राप्त कर लेता है।।४५-४८।।

अष्टोत्तरसहस्रं तु जप्त्वा होमं समाचरेत्।
लवणाज्यसुराभिश्च शोधयित्वास्य भस्म तु ।।४९।।
करे गृहीत्वा सघृतं तेन नारीं च ताडयेत्।
भवत्यामरणान्तं सा दासीतोऽप्यधिकं वशा ।।५०।।

मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करके नमक, गोघृत और सुरा से हवन करने के पश्चात् उसके भस्म का शोधन करने के उपरान्त उस शोधित भस्म को घृत के साथ

अपने हाथ में लेकर उसे जिस स्त्री पर छिड़क दिया जाता है, वह स्त्री आजीवन दासी से भी अधिक उसके वशीभूत हो जाती है।।४९-५०।।

शिवालये लक्षमिताज्जपाद्धोमो दशांशतः।
पायसेन त्रिमधुरयुतेन लभते सदा।
अर्थांश्च विविधान्मन्त्री भोगं मोक्षमवाप्नुयात्।।५१।।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु हुत्वा जातीप्रसूनकैः।
मेधा वेदार्थकरणे बुद्धिं प्राप्नोति साधकः।।५२।।
अयुतत्रितयं यस्तु हुनेद् दूर्वा घृतेन च।
तस्याल्पमृत्युरोगाद्या नश्यन्त्यायुश्च वर्धते।।५३।।
समाहितोऽयुतं हुत्वा पीतपुष्पैर्घृतान्वितैः।
संस्तम्भयेद्वैरिसेनां सभृत्यगजयोधिकाम्।
धारास्तम्भं च वाक्स्तम्भं कुर्य्यादत्र न संशयः।।५४।।
बिभीतकसमिद्धिश्च जुहुयादयुतत्रयम्।
उच्चाटयेद्वैरिसङ्घान् ग्रामं देशं पुरादिकम्।।५५।।
अष्टोत्तरसहस्रं तु समिधोऽरुष्कवृक्षजाः।
हुत्वा रण्डास्तस्य वश्या जीवेन च धनेन च।।५६।।

शिवालय में इस मन्त्र का एक लाख जप करके त्रिमधु-समन्वित पायस से कृत जप का दशांश हवन करने से मन्त्री को निरन्तर अनेक प्रकार से धन प्राप्त होते हैं, जिनका वह भोग करता है और अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जातीपुष्पों से एक हजार आठ बार हवन करने वाला साधक धारणा शक्ति से सम्पन्न होता है एवं उसकी बुद्धि वेदों का अर्थ स्पष्ट करने वाली हो जाती है। घृताक्त दूब से जो तीस हजार हवन करता है, उसके अल्पमृत्यु, रोग आदि नष्ट हो जाते हैं और आयु में वृद्धि होती है।

समाहित चित्त होकर जो साधक घृत-समन्वित पीले पुष्पों की दस हजार आहुतियों द्वारा हवन करता है, वह सेवकों एवं हाथियों सहित युद्धतत्पर शत्रुसेना, जल का प्रवाह एवं मनुष्य की वाणी को स्तम्भित कर देता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। जो साधक बिभीतक (बहेड़ा) की समिधा से तीस हजार हवन करता है, वह ग्राम, नगर अथवा देश से शत्रुओं का उच्चाटन कर देता है। अरुष्क=अकवन (मदार) की समिधा से जो एक हजार आठ आहुतियों द्वारा हवन करता है, जान-माल सहित रण्डा (विधवा) स्त्री उसके वशीभूत हो जाती है।।५१-५६।।

निम्बपत्रेषु सँलिख्य साध्यनामानि तु द्वयोः।
एकस्य चाश्वरक्तेन महिषस्यापरस्य च।।५७।।

कटुतैलयुतैर्विंशत्सहस्त्रं होममाचरेत्।
मन्त्रान्ते प्रवदेदेतदमुकं चामुकेन च ॥५८॥
द्वेषयेति ततः स्वाहा चैकान्ते होममाचरेत्।
तयोस्तु जायते वैरं मित्रयोर्जीवनाशकम् ॥५९॥
अष्टाङ्गुलं मनुष्यास्थि कीलं शवशिरोरुहैः।
संवेष्ट्य मन्त्रयेदष्टोत्तरं तच्च सहस्त्रकम् ॥६०॥
मुहूर्ते कुलिके रात्रौ शत्रोर्द्वारि प्रपूजयेत्।
सप्ताहतोऽसौ भवति निश्चयेन यमातिथिः ॥६१॥

दो सुहृद् व्यक्तियों में द्वेष उत्पन्न करने के लिये नीम के पत्ते पर एक का नाम घोड़े के रक्त से एवं दूसरे का भैंसे के रक्त से लिखकर उन पत्रों को सरसो के तेल से सिक्त कर मन्त्र के अन्त में 'अमुकं अमुकेन द्वेषय स्वाहा' कहते हुये एकान्त में बीस हजार आहुतियों द्वारा हवन करने से उन दोनों मित्रों में परस्पर प्राणघाती वैर उत्पन्न हो जाता है।

आठ अंगुल लम्बी मनुष्य की हड्डी से निर्मित कील को शव के शिर के बालों से लपेट कर उसे एक हजार आठ मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करने के उपरान्त रात्रि में कुलिक योग में शत्रु के द्वार पर उसका पूजन करने से निश्चित ही वह शत्रु एक सप्ताह के भीतर यमराज का अतिथि हो जाता है अर्थात् उस शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

नागस्य विवरद्वारि लक्षमेतं मनुं जपेत्।
तस्याग्रतः समायान्ति नागकन्याः सहस्त्रशः ॥६२॥
निर्लज्जा भोगकांक्षिण्यः प्रयच्छन्ति रसायनम्।
नानामणींश्च रत्नानि यद्यदिष्टतमं भवेत् ॥६३॥
लक्षमेकं गिरेर्मूर्ध्नि जपेन्मन्त्री दृढव्रतः।
कृपाणसिद्धिं लभते प्रार्थनीयां सुरासुरैः ॥६४॥
घनसारञ्च लज्जालुं शुक्लां च गिरिकर्णिकाम्।
नन्द्यावर्त्तं मधुपुष्पीं मेलयित्वा सुपेषयेत् ॥६५॥
कृत्वा तु गुटिकां विंशत्सहस्त्रमभिमन्त्रयेत्।
नेत्रे तया चाञ्जयित्वा निधानं पश्यति ध्रुवम् ॥६६॥

नाग (सर्प) के बिल के द्वार पर बैठकर इस मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करने से जापक के समीप हजारों नागकन्यायें उपस्थित हो जाती हैं। कामाभिभूत

एवं निर्लज्ज वे नागकन्यायें उस साधक को रसायन के साथ-साथ अनेक प्रकार की मणि एवं रत्न प्रदान करती हैं तथा उसके अभीष्ट को पूर्ण करती हैं।

अनुष्ठान में दृढ़ होकर पर्वतशिखर पर आसीन होकर मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करने से देवताओं एवं राक्षसों द्वारा आकांक्षित कृपाणसिद्धि साधक को प्राप्त हो जाती है।

घनसार, श्वेत लाजवन्ती, गिरिकर्णिका, नन्द्यावर्त एवं मधुपुष्पी को एक साथ अच्छी तरह पीसकर उसकी गुटिका बनाने के उपरान्त उन गुटिकाओं को बीस हजार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करके उनसे आँखों में अंजन लगाने से निश्चित ही साधक भूमि में दबे खजाने को देखने में समर्थ हो जाता है।।६२-६६।।

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा पीडाक्रान्तं च रोगिणम्।
त्रिः फूत्कृत्य हरेत्पीडां सर्वा नास्त्यत्र संशयः ।।६७।।
गुप्तप्रदेशे रम्ये च गोमयेनोपलेपिते।
स्नात्वा मन्त्री नवं कुम्भं चन्दनाद्यैश्च चर्चितम् ।।६८।।
सुगन्धतोयैः सम्पूर्य्य शरावेण पिधापयेत्।
कपिलाज्येन सम्पूर्णं दीपं न्यस्येत्तथोपरि ।।६९।।
पूजयेदुपचारैस्तं कुमारीं च कुमारकम्।
तत्रोपविश्य तं स्पृष्ट्वा जपेदष्टोत्तरं शतम् ।।७०।।
तदाऽसौ कथयेत्सर्वं दीपं दृष्ट्वा तु बालकः।
भूतं च वर्तमानं च भविष्यन्नात्र संशयः ।।७१।।
ध्यात्वा महागणपतिमथवा दीपसन्निधौ।
जपेद्गणेशः कथयेत्स्वप्ने चापि शुभाशुभम् ।।७२।।

एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करके पीड़ा से व्यथित रोगी को तीन बार फूँक देने से उस रोगी की समस्त पीड़ा का नाश हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है।

मन्त्रज्ञ साधक द्वारा स्नान करके एकान्त में रमणीय स्थान पर गोबर से लिप्त भूमि पर चन्दन-चर्चित एक नये घड़े को स्थापित कर उसे सुगन्धित जल से पूर्ण करके उसके मुख को ढ़क्कन से बन्द करने के पश्चात् उसके ऊपर कपिला गाय के घी से भरे दीपक को रखकर विविध उपचारों से कुमारी और कुमार-सहित उसका पूजन करने के अनन्तर वहीं पर बैठकर उस घट को स्पर्श करते हुये मन्त्र का एक सौ आठ जप करने पर उस दीपक देखकर वह बालक निश्चित ही भूत, वर्तमान और भविष्य को बतलाने लगता है। अथवा दीपक के निकट बैठकर महागणपति का ध्यान करके मन्त्रजप करने से गणेश जी भी स्वप्न में शुभ-अशुभ को बतला देते हैं।।६७-७२।।

ग्रहणे जलमध्यस्थो जपेन्मन्त्रं तदा भवेत्।
आकर्षणस्य संसिद्धिः सधान्यपशुयोषिताम् ॥७३॥
न्यग्रोधस्य तले जप्त्वा लक्षमेकं वटाभिधा।
यक्षिणी तु समागत्य धनाद्याकृष्य यच्छति ॥७४॥

ग्रहणकाल में जल के मध्य में खड़े होकर मन्त्र का जप करने से धान्य, पशु एवं स्त्री को आकर्षित करने की सिद्धि साधक को प्राप्त हो जाती है। पीपल वृक्ष के नीचे बैठकर मन्त्र का एक लाख जप करने पर वटयक्षिणी साधक के समीप आकर उसे धन आदि देकर वापस चली जाती है।।७३-७४।।

उपोष्य रात्रौ विधिवत्स्नात्वा चानीय सद्वचाम्।
पूजयित्वा गणेशं तां स्पृष्ट्वा मन्त्रायुतं जपेत् ॥७५॥
पश्चात्कृत्वा तु तच्चूर्णं गृह्णीयात्कर्षमात्रकम्।
कपिलाज्यैः पिबेत्प्रातः सप्तभिर्दिवसैः कविः ॥७६॥
अवश्यमेव भवति पारदस्य क्रियां शृणु।
कर्पटे शोधयेदादौ रसमष्टोत्तरं शतम् ॥७७॥
कर्पासपत्रजरसैर्दिनमेकं च मर्दयेत्।
कुमारिकाकाशवल्ल्योस्तदा रौप्यसमो भवेत् ॥७८॥
एतस्य युग्मांशं तु शुद्धं शुल्वं नियोजयेत्।
शुल्वादेतत्सार्धभागं शुल्वार्धं कनकन्त्वयः ॥७९॥
कज्जलाभं वर्धतीयं कर्पासीकन्यकाद्रवैः।
दिनैकमारनाले तु मर्दयित्वारनालके ॥८०॥
स्थापयेद् गुटिकां कृत्वा ततो गच्छेच्छिवालये।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं सिद्धा सा जायते तदा ॥८१॥
तां मुखे धारयन्मन्त्री रणे च विजयी भवेत्।
अवध्यः सर्वभूतानां शस्त्रास्त्रैश्चैव जायते ॥८२॥
तमक्त्वा म्रियते नैव विषैः सर्पादिसम्भवैः।
तत्प्रभावाद्वज्रदेह आकाशे लभते गतिम् ॥८३॥
नष्टच्छायस्तथादृश्यो जलगोऽपि प्रजायते।
यस्मिन् गेहे स्थिता सा तु तत्र लक्ष्मीः स्थिरा भवेत्।
लोकानां दृष्टिबन्धं च सा कुर्यात्साधकेच्छया ॥८४॥

उपवास करके रात्रि में सविधि स्नान करने के पश्चात् वचा (औषधिविशेष) को

लाने के बाद गणेश का पूजन करके उस वचा का स्पर्श करते हुये मन्त्र का दस हजार जप करने के बाद वचा को चूर्ण करके उसकी एक कर्ष (१५ ग्राम) की मात्रा को कपिला गाय के घी में मिलाकर प्रातःकाल पान करने से साधक एक सप्ताह में अवश्य ही कवि हो जाता है।

अब पारद की क्रिया को सुनो। सर्वप्रथम पारद को एक सौ आठ मन्त्रजप से शोधित करने के बाद एक दिन कपास के सूखे पत्तों के रस के साथ मर्दन करने के उपरान्त घृतकुमारी एवं आकाशवेल के रस से उसका मर्दन करने पर वह चाँदी के समान हो जाता है। फिर उसमें दुगुना शुद्ध ताँबा मिलाने से उस ताँबे का आधा भाग सुवर्ण में एवं आधा भाग लोहे में पविवर्तित हो जाता है। उस लोहभाग को कपासरस और कन्या के रज के साथ मिलाकर आरनाल (चावल का माँड़) में मर्दन करके गुटिका बनाने के पश्चात् शिवालय में जाकर उस गुटिका को एक लाख मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करना चाहिये; इस प्रकार करने से वह गुटिका सिद्ध हो जाती है। अब उस गुटिका को मुख में रखकर युद्ध करने वाला मन्त्रज्ञ साधक युद्ध में विजयी होता है; साथ ही वह समस्त प्राणियों द्वारा किसी भी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग करने पर भी अवध्य होता है। उसका अपने शरीर पर लेप करने वाले की सर्पादि-जनित विष से मृत्यु नहीं होती। उसके प्रभाव से साधक का शरीर वज्र के समान हो जाता है और वह आकाश-गमन में समर्थ हो जाता है। उसकी छाया नहीं दिखाई देती, वह अदृश्य हो जाता है और जल-गमन में भी समर्थ हो जाता है। जिसके घर में वह गुटिका रहती है, उस घर में स्थिर लक्ष्मी का वास रहता है और वह लक्ष्मी साधक की इच्छानुसार लोगों की दृष्टि को बाँध देती है।।७५-८४।।

ब्रह्मदण्डीं च लज्जालुं गृह्णीयात्पुष्यभास्करे।
वज्राणुकं त्रिलोहं च ताभ्यां सम्यग्विमर्दयेत्॥८५॥
तद्यदा कज्जलीतुल्यं स्यात्तदा गुटिकां चरेत्॥८६॥
गणेशं पूजयित्वास्य गृह्णीयाद् गुटिकां शुभाम्।
इत्थं विचिन्त्य स्वकरे गृह्णीयात्तन्मनुं जपेत्॥८७॥
वक्त्रे शिखायां च करे स्कन्धे वा धारयेच्च ताम्।
तस्याः प्रभावान्नायान्ति चौरव्याघ्रोरगादयः॥८८॥
साधकस्य समीपं तु न विघ्नैः परिभूयते।
राजानो वश्यतां यान्ति सुन्दरीणामतिप्रियः॥८९॥

पुष्यार्क योग में ब्रह्मदण्डी और लाजवन्ती को लाकर हीरा, सोना, चाँदी, ताँबे के चूर्ण के साथ पारद का सम्यक् रूप से मर्दन करते हुये जब वह काजल के समान

काला हो जाय तब उसकी गुटिका बना लेनी चाहिये। तत्पश्चात् गणेश का पूजन करने के बाद उस गुटिका को अपने हाथ में लेकर गणेश का चिन्तन करते हुए मन्त्रजप से उसे अभिमन्त्रित करने के अनन्तर उस गोली को मुख में, शिखा में अथवा बाँह में धारण करने पर उसके प्रभाव से साधक के समीप चोर, बाघ, सर्प आदि नहीं आते। किसी भी प्रकार के विघ्न उसे प्रभावित नहीं करते, राजा लोग उसके वशीभूत हो जाते हैं और वह सुन्दरियों का अतिशय प्रिय हो जाता है।।८५-८९।।

धत्तूररोचने शङ्खपुष्पी श्वेतापराजिता।
सहदेवी ब्रह्मदण्डी हिमं कृष्णागुरुः समम्।।९०।।
सम्पीड्य सम्यक्कुर्य्याच्च गुटिकां विधिना ततः।
कुर्य्याद् द्वादशसाहस्त्रं जपं तत्तिलके कृते।
जनानां जायते मोहो गणेशस्य प्रभावतः।।९१।।

धत्तूर, गोरोचन, शङ्खपुष्पी, श्वेत अपराजिता, सहदेई, ब्रह्मदण्डी, कमल एवं काले अगुरु को समान भाग में एकत्र कर सबको सम्यक् रूप से पीसकर विधिवत् गुटिका बनाकर मन्त्र के बारह हजार जप से उसे अभिमन्त्रित करने के पश्चात् उस गुटिका से तिलक लगाने पर गणेश के प्रभाव से सभी लोग उससे मोहित हो जाते हैं।।९०-९१।।

दीर्घतुण्डामृता ग्राह्याः पुष्यार्के पेषयेच्च ताः।
तच्चूर्णेन करौ लिप्त्वाष्टाधिकं च सहस्त्रकम्।।९२।।
मनुं जपित्वा तौ हस्तौ गजेभ्यः परिदर्शयेत्।
विद्रवन्ति तदा नागा ऐरावतसमा अपि।।९३।।

पुष्यार्क योग में दीर्घतुण्ड और गुरुच को लाकर उन्हें पीसने के बाद उस चूर्ण का अपने हाथों में लेप लगाकर मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने के पश्चात् साधक यदि अपने हाथों को हाथियों को दिखलाता है तो ऐरावत-सदृश हाथी भी उसके वशीभूत हो जाते हैं।।९२-९३।।

गजान् ग्रहीतुकामश्चेद्राजा गजवने तदा।
सम्यक्च कारयेच्छालां दृढां गजनिबन्धिनीम्।।९४।।
चतुरस्त्रां विशालां च दृढावरणसंयुताम्।
कुर्य्यात्तत्र स्थलां सम्यक्चतुरस्त्रां समुन्नताम्।
तस्यामुत्तरदिग्भागे कुण्डं कुर्य्याद्यथोदितम्।
मण्डलं सर्वतोभद्रं कृत्वा तत्र प्रपूजयेत्।।९५।।

नानोपचारैर्गणपं बहिः स्थापनमाचरेत् ।
त्रिस्त्रिर्हुनेत् क्रमात्तारश्रीमायाकामबीजकैः।
ग्लौंगंभ्यां गणपतये पदेनापि च होमयेत् ॥९६॥
वरवरदेति ततः पदेनापि च होमयेत् ।
सर्वं जनं मे वशमानय स्वाहा त्वनेन च ।
सप्तविंशत्याहुतयो हव्या एधैश्च गोघृतैः ॥९७॥
ततः समृद्धिमन्त्रेण तिस्रश्चानेन होमयेत् ।
भूर्भुवः स्वस्तथा चाग्निर्जातवेदास्ततः परम् ।
ततश्च मूलमन्त्रेण जुहुयाच्च नवाहुतीः ॥९८॥
मूलाणुना समस्तेन जपेन्मन्त्रार्णसङ्ख्यया ।
आज्येनैव ततश्चाष्टद्रव्यैः स्वादुत्रयान्वितैः ॥९९॥
देवस्थानस्थदेवानां सङ्ख्यया प्रत्यहं ततः ।
बहून् सम्भोजयेद्विप्रांस्तदाशीर्भिर्विवर्धितः॥१००॥
गुरवे दक्षिणां दद्यात्पञ्चाशद्दन्तिनोऽथवा ।
तन्मूल्यं तद्दशांशं वा दत्त्वा सन्तोष्य सद्गुरुम् ॥१०१॥
चतुर्णां मिथुनानां षड्गणेशनिधियुग्मयोः ।
अङ्गमातृदिगीशानां तन्मन्त्रैः सर्पिषा हुनेत् ॥१०२॥
लक्ष्मीनारायणौ गौरीहरौ कामस्तथा रतिः ।
पृथ्वीवराहाविति तु चत्वारि मिथुनानि च ॥१०३॥
सिद्धिमोदौ तथा ऋद्धिप्रमोदौ कान्तिसंयुतः ।
सुमुखोऽथो दुर्मुखस्य प्रियोक्ता मदनावती ॥१०४॥
मदनद्रवया युक्तो विघ्नोऽथो द्राविणीयुतः ।
विघ्नकर्तेति षट्प्रोक्ता गणेशाश्च निधिद्वयम् ॥१०५॥
शङ्खः पद्मश्च तन्मन्त्रास्तद्बीजं नाम हृत्तथा ।
एवं होमं समाप्याथ नैवेद्यं तु समाचरेत् ॥१०६॥
पुनरभ्यर्च्य विघ्नेशं साङ्गं सावरणं तथा ।
निजे हृदि समुद्वास्य विचरेच्च यथासुखम् ॥१०७॥
ततो दिनैर्वेदवेदैः करिणो निपतन्ति हि ।
विनायकप्रभावेण कलभाः शतशस्तथा ॥१०८॥
करिणीनां समूहश्च पतत्यम्बु घटे यथा ।

राजा को यदि हाथियों को पकड़ने की इच्छा हो तो उसे हाथियों के वन में जाकर हाथियों को रखने के लिये एक मजबूत, चौकोर, विशाल एवं मजबूत छाजन वाले घर का निर्माण कराना चाहिये। उसके मध्य भाग में चौकोर उन्नत स्थान रखना चाहिये। उस स्थान के उत्तरभाग में यथोक्त कुण्ड का निर्माण कराना चाहिये। फिर सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर उस पर विविध उपचारों से गणेश का पूजन करके उन्हें बाहर स्थापित कर देना चाहिये। तदनन्तर गोघृत-सिक्त समिधा से क्रमश: तीन बार 'ॐ' से, तीन बार 'श्रीं' से, तीन बार 'ह्रीं' से, तीन बार 'क्लीं' से, तीन बार 'ग्लौं' से, तीन बार 'गं' से, तीन बार 'गणपतये' से, तीन बार 'वरवरद' से एवं तीन बार 'सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा' से—इस प्रकार कुल सत्ताईस आहुतियों से हवन करना चाहिये। इसके बाद समृद्धि मन्त्र से तीन आहुतियाँ देने के बाद एक-एक आहुति भू:, भुव:, स्व: एवं अग्निर्जातवेद मन्त्र से देकर नव आहुतियाँ मूल मन्त्र से प्रदान करनी चाहिये।

इसके बाद बीज-सहित समस्त मूल मन्त्र का उसके वर्णों की संख्या के बराबर जप करने के उपरान्त गोघृत से हवन करने के बाद पुन: त्रिमधुरान्वित अष्टद्रव्यों से देवस्थानस्थ देवों की संख्या के बराबर प्रतिदिन हवन करना चाहिये। तदनन्तर विप्रों को यथेच्छ भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने के उपरान्त गुरु को दक्षिणा में पचास हाथी अथवा उसके मूल्य के बराबर अथवा उस मूल्य का दशांश धन देकर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये।

इसके बाद गोघृत से लक्ष्मी-नारायण, गौरी-हर, काम-रति तथा पृथ्वी-वराह—इन चार मिथुनों; सिद्धि-मोद, ऋद्धि-प्रमोद, कान्ति-सुमुख, मदनावती-दुर्मुख, मदनद्रवा-विघ्न एवं द्राविणी-विघ्नकर्ता—इन छ: गणेशमिथुनों; शंखनिधि एवं पद्मनिधि; अङ्ग-देवताओं; अष्टमातृकाओं तथा दस दिक्पालों के लिये बीजमन्त्र-सहित उनके मूलमन्त्रों के साथ उनका नामग्रहण करते हुये 'नम:' लगाकर हवन करना चाहिये। इस प्रकार हवन समाप्त करके उन्हें नैवेद्य प्रदान करना चाहिये।

तत्पश्चात् पुन: अंग एवं आवरण-सहित विघ्नेश का अर्चन करने के अनन्तर अपने हृदय में उनका उद्वासन करके यथेच्छ विचरण करना चाहिये। उस दिन से गणेश के प्रभाववश वहाँ पर चार-चार की संख्या में हाथियों का एवं सौ-सौ की संख्या में हस्तिशिशुओं का आगमन होने लगता है एवं जिस प्रकार घड़े में जल गिरता है, उसी प्रकार हथिनियों का झुण्ड उपस्थित हो जाता है।।९४-१०८।।

प्रोक्तकुण्डे प्रोक्तरूपं गणेशं सम्यगर्चयेत् ॥१०९॥
तत्र वह्निं समाधाय जुहुयाल्लक्षसङ्ख्यया ।
पयोघृताभ्यां संयुक्तैः पुष्पैः शर्करयापि च ॥११०॥

क्षौद्रेण पृथगेकैकद्रव्येणागर्त्वगाष्टपः ।
वेतालसञ्ज्ञा गुटिका कुण्डमध्यात्प्रयाति च ॥१११॥
अणिमादिकसिद्धीनां प्राप्य तं नायको भवेत् ।
ब्राह्मे काले समुत्थाय क्षीणचन्द्रे च पर्वणि ॥११२॥
कपिलायाः पद्मखण्डं गोमयं प्रतिगृह्य च ।
सञ्जप्य मन्त्रमयुतं निखातद्वारि वारयेत् ।
व्याघ्रक्रोडारिचोरादीन्नात्र कार्य्या विचारणा ॥११३॥

पूर्वोक्त कुण्ड में पूर्ववर्णित स्वरूप वाले गणेश का सम्यक् रूप से अर्चन करने के उपरान्त उसमें अग्नि प्रज्वलित करके दूध, शर्करा एवं घृत से सिक्त पुष्पों से एक लाख आहुतियों द्वारा हवन करने के पश्चात् मधु से लिप्त आठो द्रव्यों से अलग-अलग हवन करना चाहिये। ऐसा करने से साधक को कुण्ड के मध्य से वेताल गुटिका प्राप्त होती है; साथ ही वह साधक अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त करके नायक हो जाता है।

ब्राह्ममुहूर्त में उठकर क्षीण चन्द्रपर्व (अमावास्या) को कपिला गाय का गोबर एवं कमलखण्ड लेकर दोनों को दस हजार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करके दरवाजे पर गड्ढा खोदकर गाड़ देने से व्याघ्रशिशु, शत्रु, चोर आदि का निवारण हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।१०९-११३।।

जातीधत्तूरमञ्जिष्ठा प्रचण्डा हस्तयोजिनी ।
शिखादिकर्णिकाख्यादि त्वग्जिह्वाचक्षुषामलैः ॥११४॥
नासिकाघ्राणजैश्चापि गुटीं सम्यग्विधाय च ।
स्पृष्ट्वा सम्प्रजपेन्मन्त्रं त्वष्टाधिकसहस्त्रकम् ॥११५॥
गुञ्जिकादिप्रमाणं च यवमानं च लेहयेत् ।
सर्षपार्धं त्वङ्गनाया भक्षितं वश्यकारकम् ॥११६॥

जायफल, धत्तूर, मजीठ, प्रचण्डा, हाथाजोड़ी, मोरपंख, कर्णिकार, शरीर-जीभ-आँख-नाक-कान का मैल—इन सबको सम्यक् रूप से मिलाकर गुटिका बनाकर उसका स्पर्श करते हुये मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने के बाद उस गुटिका में से गुञ्जा अथवा यव के मान के बराबर स्वयं चाटने एवं आधा सरसों के बराबर स्त्री को खिलाने से वह स्त्री साधक के वशीभूत हो जाती है।।११४-११६।।

जितेन्द्रियो जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्त्रकम् ।
दशांशं जुहुयाल्लाजाहयारिकुसुमान्वितान् ।
प्राप्नुयात्सत्कुलां कन्यामथ ध्यायेद्विनायकम् ॥११७॥

गन्धादिनाभ्यर्च्य तं च मन्त्रं लक्षमितं जपेत्।
निगडान्मुच्यतेऽकस्मादथ बिल्वस्य पुष्पकम् ॥११८॥
तगरं देवदारुं च प्रियंग्वगरुचन्दने।
नागकेशरमेतानि मधुना भावयेत्समम् ॥११९॥
गुटीं कृत्वाथ संस्पृश्य सहस्राष्टकमाजपेत्।
भवेत्सा सिद्धगुटिका तद्धूपाद्रोगनाशनम् ॥१२०॥
एतद्धूपाच्च निस्स्वोऽपि धनी स्याज्जनवल्लभः।
दुर्भगा सुभगा स्त्री स्यात्कुमारी लभते वरम् ॥१२१॥
जलाशये लक्षजपाद् वृष्टिः सप्ताहतो भवेत्।

जितेन्द्रिय रहकर मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने के उपरान्त जप का दशांश धान का लावा और कनैल के फूल से हवन करने से साधक उच्च कुलोत्पन्न कन्या को प्राप्त करता है।

विनायक का ध्यान करके गन्धादि से उनका पूजन कर उनके मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करने से बन्दी अचानक जेल से छूट जाता है।

बिल्वपुष्प, तगर, देवदारु, प्रियङ्गु, अगुरु, चन्दन और नागकेशर को बराबर मात्रा में लेकर मधु के साथ पीसकर गुटिका बनाकर उसका स्पर्श करते हुये मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करने से वह गुटिका सिद्ध हो जाती है। इस गुटिका से धूप देने पर रोगों का नाश होता है।

इस धूप से दरिद्र भी धनी होकर लोगों का प्रिय हो जाता है, दुर्भगा सुभगा हो जाती है एवं कुमारी कन्या को वर प्राप्त हो जाता है। जलाशय में खड़े होकर मन्त्र का एक लाख जप करने से एक सप्ताह के भीतर वर्षा होती है।।११७-१२१।।

अथास्य लक्षहोमस्य प्रयोगं कामिकं शृणु ॥१२२॥
हुनेद् गोपयसा गोऽर्थे स्वर्णार्थं मधुना हुनेत्।
घृतेन लक्ष्म्यै पयसे हुनेच्छर्करया द्विजः ॥१२३॥
दध्ना सर्वर्द्धये होमो घृतान्नैरन्नवृद्धये।
लाजैश्च यशसे होमो धनार्थं तिलतण्डुलैः ॥१२४॥
कौसुम्भैः करवीरैर्वा वस्त्रार्थं होममाचरेत्।
यवैस्तु वशयेद् भूपमुत्पलैश्चापि तद्वधूम् ॥१२५॥
कैरवैर्मन्त्रिणस्तस्य पुत्तल्यादि च पिष्टजम्।
कृत्वा हुनेद्वधूर्वश्या वटात्प्लक्षादुदुम्बरात् ॥१२६॥

कस्मादपि गृहीत्वा च समिधो होममाचरेत्।
विप्राद्यान् वशयेद्वर्णाल्लोणहोमादवर्षणम्॥१२७॥
विनश्येद् भूयसी वृष्टिर्महागणपतेस्तदा।
वर्णानस्य प्रवक्ष्यामि काम्यकर्म्माणि संस्मरेत्॥१२८॥
पीतं स्तम्भेऽरुणं वश्ये धूम्रमुच्चाटने स्मरेत्।
मारणे कृष्णमारक्तमाकृष्टौ पाटलं द्विषि।
हरिद्वर्णं धनप्राप्त्यै मुक्त्यै शुक्लं च संस्मरेत्॥१२९॥

अब इस मन्त्र से किये जाने वाले लक्षहोम के काम्य प्रयोगों को सुनो। गौ-प्राप्ति की कामना वाले को गोदुग्ध से, सुवर्ण-प्राप्ति की कामना वाले को मधु से, लक्ष्मी-प्राप्ति की कामना वाले को घृत से एवं दुग्ध-प्राप्ति की कामना वाले को शक्कर से हवन करना चाहिये। सब प्रकार से समृद्धि के लिये दधि से, अन्न की वृद्धि-हेतु घृत-सिक्त अन्न से, यशःप्राप्ति के लिये लाजा (धान का लावा) से एवं धन-प्राप्ति-हेतु तिलमिश्रित चावल से हवन करना चाहिये। वस्त्र-प्राप्ति के लिये कुसुम्भ (केशर) अथवा कनैल के फूलों से हवन करना चाहिये। यव से हवन करने पर राजा, उत्पल से हवन करने पर राजा की रानी एवं कुमुदिनी से हवन करने पर राजा का मन्त्री वशीभूत होता है।

आटे की पुत्तली बनाकर उससे हवन करने पर स्त्री वश में होती है। वर, पाकड़, गूलर में से किसी की भी समिधा से हवन करने से विप्र आदि वशीभूत होते हैं। नमक के हवन से अवर्षण का नाश होता है एवं प्रचुर वृष्टि होती है।

अब काम्य कर्मों को करते समय स्मरण किये जाने वाले महागणपति के वर्णों को कहता हूँ। स्तम्भन कर्म में पीत वर्ण वाले महागणपति का, वशीकरण कर्म में रक्त वर्ण वाले महागणपति का, उच्चाटन कर्म में धूम्र वर्ण वाले महागणपति का, मारण कर्म में कृष्ण वर्ण वाले महागणपति का, आकर्षण कर्म में ईषत् रक्त वर्ण वाले महागणपति का एवं विद्वेषण कर्म में पाटल (गुलाबी) वर्ण वाले महागणपति का स्मरण करना चाहिये। धन-प्राप्ति के लिये हरित् वर्ण वाले एवं मोक्ष-प्राप्ति के लिये श्वेत वर्ण वाले महागणपति का स्मरण करना चाहिये।।१२२-१२९।।

गणेशतर्पणम्

गणेशतर्पणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम्।
त्रिवेदाङ्कसमं यच्च प्रकटं वक्ष्यतेऽधुना॥१३०॥
एकान्ते विजने रम्ये सर्वोपद्रववर्जिते।
कृतस्नानादिको मन्त्री पूर्ववन्न्याससंयुतः॥१३१॥

तडागमध्ये सञ्चिन्त्य पुष्पितं नलिनीवनम् ।
तस्य मध्ये महापद्मं तरुणादित्यसन्निभम् ॥१३२॥
समुन्नतं सुगन्धाढ्यं रमणीयं मनोहरम् ।
सद्यो विकसितं ध्यायेन्मन्त्री पूर्वोक्तमन्त्रवत् ॥१३३॥
शुद्धं रजतसोपानं पश्यन्तं रविमण्डलात् ।
विनिर्गत्यावरुह्याथ कर्णिकामध्यसंस्थितम् ॥१३४॥
इति ध्यात्वा सावरणं महागणपतिं पुनः ।
प्रवरैर्गन्धकुसुमैः प्राग्वत्सावरणं यजेत् ॥१३५॥
निधाय पुष्करमुखं साधकेन्द्रस्य मूर्द्धनि ।
वर्षन्तं रत्नधाराभिर्ध्यात्वा देवस्य मूर्द्धनि ॥१३६॥
चन्द्रचन्दनकाश्मीरकस्तूरीमिलितैर्जलैः ।
तर्पयेत्परया भक्त्या देवदेवं प्रसन्नधीः ॥१३७॥
यथादिष्टस्य नामान्ते तर्पयामीति संवदेत् ।
तर्पणस्य विधिश्चायं श‍ृणु वैदिकतर्पणम् ॥१३८॥

गणेश-तर्पण—अब सर्वकामफलप्रद गणेश-तर्पण को कहता हूँ। यह तीनों वेदों के अङ्ग के समान है, उसी को आज मैं प्रकट करता हूँ। मन्त्रज्ञ साधक को स्नानादि नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर एकान्त, जनशून्य, रमणीय एवं समस्त उपद्रवों से रहित स्थान में पूर्ववत् न्यासादि करने के उपरान्त यह चिन्तन करना चाहिये कि तालाब के बीच में पुष्पित कुमुदिनीवन के मध्य में प्रखर सूर्य-सदृश, अत्यन्त ऊँचा, सुगन्ध से समन्वित, रमणीय, मनोहारी तत्काल विकसित एक महापद्म विराजमान है। फिर पूर्वोक्त मन्त्र-सदृश महा-गणपति सूर्यमण्ड़ल से निकलकर उसके देखते ही देखते शुद्ध चाँदी की सीढ़ी द्वारा उस महापद्म पर चढ़कर उसकी कर्णिका में स्थित हो गये हैं। इस प्रकार ध्यान करके आवरण-सहित महागणपति का सर्वश्रेष्ठ गन्धयुक्त पुष्पों से यजन करना चाहिये।

फिर ऐसी भावना करनी चाहिये कि साधक के मूर्धा पर अवस्थित हस्तिशुण्ड़ से देव के शीर्ष पर रत्नों की लगातार वृष्टि हो रही है। तदनन्तर कपूर, चन्दन, केसर, कस्तूरी-मिश्रित जल से प्रसन्न मन से परम भक्ति-पूर्वक देवदेव का तर्पण करना चाहिये। तर्पण करते समय यथादिष्ट नाम के अन्त में 'तर्पयामि' कहना चाहिये। यही तर्पण की विधि है। अब वैदिक तर्पण की विधि को सुनो।।१३०-१३८।।

तर्पयाम्येतदन्ते तु स्वाहां वैदिक ईरयेत् ।
इतरस्तु नमो ब्रूयाद्वामाचारी नमो वदेत् ॥१३९॥

मूलमन्त्रं समुच्चार्य्य महागणपतिं ततः ।
देवस्य मूर्ध्नि प्रथमं दशवारं प्रतर्पयेत् ॥१४०॥
पुनश्चतुश्चतुर्वारं ज्ञेयं सर्वत्र तर्पणम् ।
एकं वर्णं समुच्चार्य्य मूलमन्त्रस्य तर्पयेत् ॥१४१॥
पुनः सम्पूर्णमूलेन चतुर्वारन्तु तर्पणम् ।
एवं षट्पञ्चसङ्ख्याकं चतुष्कं तर्पणं भवेत् ॥१४२॥
पुनर्मूलेन सन्तर्प्य ततो युग्मानि तर्पयेत् ।
तत्र चायं प्रयोगः स्यादमुकं सहितामिति ।
अमुकीं तर्पयामीति पुनर्मूलेन तर्पयेत् ॥१४३॥
अमुक्या युक्तममुकं तर्पयामि ततो वदेत् ।
पुनर्मूलं भवेदेवं चतुष्कमपि तर्पणम् ॥१४४॥
एवं षड्गणपानां च सजायानां तदन्तरा ।
तर्पणं मूलमन्त्रेण चतुष्काजिनसङ्ख्यकम् ॥१४५॥
वसुन्धराशङ्खनिधेर्भार्य्या पद्मनिधेस्तथा ।
भवेद्वसुमती ताभ्यां मध्ये मूलेन चाष्टधा ॥१४६॥
तर्पणं स्यात्तु मूलेन पुनश्चापि तु तर्पयेत् ।
एवं भूभूचतुष्काङ्कैर्वेदवेदकृतैर्मितम् ॥१४७॥

वैदिक तर्पण-विधि—वैदिक विधि में 'तर्पयामि' के पश्चात् 'स्वाहा' कहा जाता है। अन्य लोग स्वाहा के स्थान पर 'नमः' लगाते हैं एवं वामाचारी साधक भी 'नमः' का ही प्रयोग करते हैं। मूल मन्त्र का उच्चारण करने के पश्चात् 'महागणपतिं' कहकर 'तर्पयामि स्वाहा' कहकर देव की मूर्धा पर पहले दश बार तर्पण करना चाहिये। इसके बाद पुनः सर्वत्र चार बार तर्पण करना चाहिये। मूल मन्त्र के एक-एक वर्ण का उच्चारण करते हुये तर्पण करना चाहिये। तत्पश्चात् चार बार सम्पूर्ण मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार कुल छप्पन चतुष्कों का तर्पण सम्पन्न हो जाता है।

तदनन्तर मूल मन्त्र से तर्पण करने के उपरान्त युग्मों का तर्पण किया जाता है। इस तर्पण में 'अमुकं सहिताम् अमुकीं तर्पयामि' कहने के बाद मूल मन्त्र से तर्पण किया जाता है।

इसके बाद 'अमुक्या युक्तममुकं तर्पयामि' कहकर तर्पण किया जाता है। इसके बाद फिर मूल मन्त्र बोलकर तर्पण किया जाता है। इस प्रकार चतुष्क तर्पण होता है।

इसी प्रकार छः गणेशों का उनकी पत्नियों के साथ तर्पण किया जाता है। मूल मन्त्र से तर्पण चतुष्कों की संख्या के बराबर होती है।

शङ्खनिधि की भार्या वसुन्धरा एवं पद्मनिधि की भार्या का वसुमती हैं। उनके मध्य में मूल मन्त्र से आठ बार तर्पण होता है। पुनः मूल मन्त्र से तर्पण किया जाता है। इस प्रकार कुल चार सौ चौवालीस तर्पण होते हैं।।१३९-१४७।।

तर्पणस्य विधिं वच्मि तान्त्रिकाणान्तु यद्धितम्।
आदौ मूलेन सन्तर्प्य मन्त्रवर्णैश्च तर्पयेत्।।१४८।।
भूभूभूभूकुभूपञ्चपञ्च दिग्द्वितयेन च।
अन्तरान्तरमूलेन चैवं सिद्धिश्चतुष्किका।।१४९।।
ततो मूलेन सन्तर्प्य गणेशायुधतर्पणम्।
कुर्य्यादन्तरशूलेन ह्यायुधानां क्रमस्त्वयम्।।१५०।।
आदौ तद्बीजमुच्चार्य्य प्रणवं च वदेत्ततः।
अमुकात्मने च प्रवदेदमुकाय नमस्त्विवति।।१५१।।
नमोऽमुकं तर्पयामि स्वाहेति कथितो मनुः।
विघ्नं भूमों रमां मायां श्रीं ह्रीं क्लीं वसुधां च गम्।।१५२।।
एकादशे गणेशस्य षड्बीजान्यपि संवदेत्।
मन्त्रं फलञ्च शक्तिं च प्राणबन्धं वदेत्ततः।।१५३।।
चक्रव्याप्तिश्च तारं च भूविद्या च त्रिलोककम्।
तदात्मन इमे प्रोक्तास्तेषां नामान्यहं ब्रुवे।।१५४।।
बीजपूरं च परशुं कार्मुकं च त्रिशूलकम्।
चक्राब्जपाशोत्पलानि कलभाग्रविषाणयुक्।।१५५।।
शुण्डायां रत्नकलशमित्थमायुधनिर्णयः।
सर्वं द्वाविंशसङ्ख्याकं तर्पणं च प्रजायते।।१५६।।
षड्बीजान्ते चतुर्थ्यन्तं तत्तन्नाम समुच्चरेत्।
पठित्वा सकलं मूलममुकङ्गणपं वदेत्।
तर्पयाम्यग्निजायान्तो मन्त्रो मूलान्तरान्तरः।।१५७।।
विघ्नो विनायको वीरः शूरो वरद एव च।
इभवक्त्रश्चैकदन्तो लम्बोदरगणेश्वरौ।।१५८।।
क्षिप्रप्रसादनश्चैव महागणपतिस्तथा।
एवं विंशचतुष्काः स्युस्ततो युग्मानि तर्पयेत्।।१५९।।

युग्मबीजं वदेदादौ गणेशस्य तदुत्तरम्।
प्राग्वत्तद्युग्ममाभाष्य मूलेनान्तरितानि च ।।१६०।।
श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौमिदं तेषां क्रमाद्बीजचतुष्ककम्।
एवं षोडशसङ्ख्यानि चतुष्काणि भवन्त्यपि ।।१६१।।
श्रीगणेशबीजपूर्वान्तांस्तर्पयेच्च विनायकान्।
मूलेनान्तरिताश्चैव चतुष्का जिनसङ्ख्यकाः ।।१६२।।
तर्पयेद्विधिवत् प्राग्वन्मूलमन्त्रान्तरान्तरे।
ह्रीं गं वसुन्धराशङ्खौ तर्पणीयौ च पूर्ववत् ।।१६३।।
अत्रादौ स्त्रीपुमानन्ते बीजयोर्विपरीतता।
ग्लौं गं वसुमतीपद्मनिध्योर्बीजन्तु तर्पणे ।।१६४।।
एवमष्टौ तर्पणानि मूलेनान्ते प्रतर्पयेत्।
भवन्ति वेदवेदाब्धिसङ्ख्यकास्तर्पणक्रमाः ।।१६५।।

तान्त्रिक तर्पण-विधि—अब मैं तान्त्रिकों के लिये हितकारी तर्पणविधि को कहता हूँ। पहले मूल मन्त्र से तर्पण करने के प्रश्चात् मन्त्रवर्णों से इस प्रकार तर्पण करना चाहिये—मूल मन्त्र (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानाय स्वाहा) से चार बार, ॐ से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ह्रीं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, क्लीं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ग्लौं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गणपतये से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, वरवरद से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, सर्वजनं मे वशमानय से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार।

इसके बाद आयुध-तर्पण इस प्रकार करना चाहिये—ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं वीं बीजपूरशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं पं परशुशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं कां कार्मुकशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं त्रिं त्रिशूलशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं चं चक्रशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं पं पद्मशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं पां पाशशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं उं उत्पलशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं कं कलभाग्रविषाणशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ

श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं शुं शुण्डशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं रं रत्नकलशशक्तिं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार।

इसके पश्चात् दस विनायकों का तर्पण इस प्रकार किया जाता है—ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं विघ्नगणेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं विनायकगणेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं वीरगणेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं शूरगणेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं वरदगणेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं इभवक्त्रगणेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं लम्बोदरगणेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं गणेश्वरगणेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं छिप्रप्रसादनगणेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं महागणपतिगणेशं तर्पयामि से चार बार एवं मूल मन्त्र से चार बार।

इसके पश्चात् युग्म तर्पण इस प्रकार किया जाता है—श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं लक्ष्मीमहागणपत्यौ तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं सिद्ध्यामोदौ तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं समृद्धिप्रमोदौ तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं कान्तिसुमुखौ तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं मदनावतिदुर्मुखौ तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं मदद्रवाविघ्नौ तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं द्राविणीविघ्नकर्तारौ तर्पयामि से चार बार एवं मूल मन्त्र से चार बार।

इसके बाद विनायक-तर्पण इस प्रकार करना चाहिये—मूल मन्त्र से चार बार, गं विघ्नेशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं विघ्नराजं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं हेरम्बं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं महाविघ्नं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं उच्छिष्टं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं क्षिप्रनायकं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं सिद्धित्रृंद्धीशं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं वीरविघ्नं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं लक्ष्मीनायकं तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं ऊर्ध्वनायकं तर्पयामि से चार बार एवं मूल मन्त्र से चार बार।

तत्पश्चात् निधि-तर्पण स प्रकार करना चाहिये—ह्रीं गं वसुधाराशङ्खनिधी तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं ह्रीं शङ्खनिधिवसुधारे तर्पयामि से चार बार, मूल

मन्त्र से चार बार, ग्लौं गं वसुमतीपद्मनिधी तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं ग्लौं पद्मनिधिंवसुधारे तर्पयामि से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार।

मूलमन्त्रं चतुर्वारं पूर्वं सन्तर्पयेत्ततः।
स्वबीजाद्यस्वाहान्तानि युग्मान्येवं प्रतर्पयेत् ॥१६६॥
गणपानां ततः षट्के निधिं युग्मं प्रतर्पयेत्।
मध्ये मध्ये मूलमन्त्रं चतुर्वारमिति क्रमात्।
भवेदष्टोत्तरशतं लघुतर्पणमीरितम् ॥१६७॥
महागणपतिं पुष्टिं चत्वारि मिथुनानि च।
षड्गणेशान्निधियुगमेवमेतत्त्रयोदश ॥१६८॥

लघुतर्पण—लघुतर्पण एक सौ आठ होते हैं, जो इस प्रकार किये जाते हैं—मूल मन्त्र से चार बार, ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं महागणपतिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, महागणपतिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ग्लौं गं महापुष्टिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, पुष्टिं तर्पयाति स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं लक्ष्मीगणनायकौ तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं आमोदसिद्धी तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं प्रमोदसिद्धी तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं सुमुखकान्ती तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं दुर्मुखमदनावती तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं विघ्नमदद्रवे तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं विघ्नकर्ताद्राविण्यौ तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, शं शङ्खनिधिवसुधारे तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूलं मन्त्र से चार बार, पं पद्मनिधिवसुमती तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार।

अथाव्यस्तानि चैतानि चान्तरा मूलतर्पणम्।
कृतञ्च द्विशतञ्चाष्टाधिकमाद्यन्तयोस्तथा ॥१६९॥
मूलं तदा तु द्विशतञ्जायते षोडशाधिकम्।
तर्पणं मध्यमञ्चैतन्महागणपतेर्मतम् ॥१७०॥

महागणपतिमत से मध्यम तर्पण—महागणपति के मतानुसार मध्यम तर्पण इस प्रकार किया जाता है—मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं नारायणसहितां लक्ष्मीं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं लक्ष्मीसहितं नारायणं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ह्रीं हरसहितां गौरीं तर्पयामि स्वाहा से चार बार,

मूल मन्त्र से चार बार, ह्रीं गौरीसहितं हरं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, क्लीं कामसहितां रतिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, क्लीं रतिसहितं कामं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ग्लौं वराहसहितां महीं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ग्लौं महीसहितं वराहं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं महागणपतिसहितां लक्ष्मीं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं लक्ष्मीसहितं महागणपतिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं आमोदसहितां सिद्धिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं सिद्धिसहितमामोदं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं प्रमोदसहितां समृद्धिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं समृद्धिसहितं प्रमोदं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं सुमुखसहितां कान्तिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं कान्तिसहितं सुमुखं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं दुर्मुखसहितां मदनावतीं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं मदनावतीसहितं दुर्मुखं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं विघ्नसहितां मदद्रवां तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं मदद्रवासहितं विघ्नं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं विघ्नकर्तृसहितां द्राविणीं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं द्राविणीसहितं विघ्नकर्तारं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, शं शङ्खनिधिसहितां वसुधारां तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, शं वसुधारासहितं शंखनिधिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, पं पद्मनिधिसहितां वसुमतीं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, पं वसुमतीसहितां पद्मनिधिं तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, पुनः मूल मन्त्र से चार बार।।१६९-१७०।।

अथवा पूर्ववत् कुर्य्यादादौ मूलेन तर्पणम्।
ततश्च मूलमन्त्रस्य चैकैकेनाक्षरेण च ।।१७१।।
मूलमन्त्रस्यान्तरेण कुर्य्यादेवं चतुश्चतुः ।
गजाश्विनेयतुल्यं तज्जायते च ततः परम् ।।१७२।।
पुनर्मध्यप्रकारेण तर्पयेदिति जायते ।
महागणपतेः पूर्णं तर्पणं तन्त्रवैदिकम् ।।१७३।।

अथवा पूर्ववत् सर्वप्रथम मूलमन्त्र के साथ 'तर्पयामि स्वाहा' लगाकर चार बार तर्पण करने के उपरान्त मन्त्र के प्रतिवर्ण के साथ 'तर्पयामि स्वाहा' लगाते हुये चार-चार बार तर्पण करना चाहिये। एक वर्ण से चार बार तर्पण करने के पश्चात् पुनः मूल

मन्त्र से चार बार तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार कुल दो सौ सत्तावन तर्पण हो जाता है; इसे इस प्रकार करना चाहिये—मूल मन्त्र से चार बार, ॐ तर्पयामि स्वाहा से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, श्रीं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ह्रीं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, क्लीं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, ग्लौं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, गं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, णं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, पं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, तं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, यें से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, वं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, रं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, वं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, रं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, दं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, सं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, वँ से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, जं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, नं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, में से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, वं से चार बार, शं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, मां से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, नं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, यं से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, स्वां से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, हां से चार बार, मूल मन्त्र से चार बार, पुनः मूल मन्त्र से चार बार।

इसके बाद पुनः मध्यम प्रकार से दो सौ सोलह बार तर्पण करने से महागणपति का तान्त्रिक एवं वैदिक तर्पण पूर्ण हो जाता है।।१७१-१७३।।

कामनाङ्गप्रभेदैस्तु तर्पणं वक्ष्यतेऽधुना।
पुष्करे तर्पयेद्देवं मोक्षार्थं शुद्धवारिभिः ।।१७४।।
लक्ष्मीकामेन गोदुग्धैर्मूर्ध्नि तर्प्यो गजाननः।
गुह्यप्रदेशे मधुना कामार्थं तर्पयेद्विभुम् ।।१७५।।
आकर्षणार्थं वश्यार्थं नेत्रयोर्मधुना तु तम्।
घृतेन राजवश्याय देवं पृष्ठे प्रतर्पयेत् ।।१७६।।
तथा चैरण्डतैलेन रण्डावश्याय तर्पणम्।
प्रीतेर्विवृद्ध्यै स्कन्धे तु पयोभिस्तर्पयेद्विभुम् ।।१७७।।
क्षीरेण दध्ना मधुना तुण्डे तत्पुत्रवृद्धिकृत्।
एवं यः पूजयेत् सम्यग्गणेशं मम वल्लभम्।
तस्य भुक्तिश्च मुक्तिश्च जायते नात्र संशयः ।।१७८।।

कामनाभेद से तर्पण—अब विभिन्न प्रकार की कामनाओं के अनुसार गणपति के अलग-अलग अंगों पर तत्तत् द्रव्यों से किये जाने वाले तर्पण को कहा जा रहा है। मुक्ति-प्राप्ति के लिये शुद्ध जल से देवता के शुण्ड पर तर्पण करना चाहिये। लक्ष्मी

की प्राप्ति के लिये गजानन के मस्तक पर गोदुग्ध से तर्पण करना चाहिये। काम-प्राप्ति के लिये विभु गजानन के गुह्यप्रदेश पर मधु से तर्पण करना चाहिये। आकर्षण एवं वशीकरण की सिद्धि के लिये गजानन के दोनों नेत्रों पर मधु से तर्पण करना चाहिये। राजा को वशीभूत करने के लिये गजानन की पीठ पर घृत से तर्पण करना चाहिये तथा रण्डा (विधवा स्त्री) को वशीभूत करने के लिये एरण्ड़ (रेंड़ी) के तेल से पीठ पर तर्पण करना चाहिये। प्रीति की वृद्धि के लिये देव के कन्धे पर दुग्ध से तर्पण करना चाहिये। गजानन के सूँड़ पर दुग्ध, दधि एव मधु से किया गया तर्पण साधक के पुत्रों की वृद्धि करने वाला होता है।

जो साधक इस प्रकार से मेरे प्रिय गणेश का सम्यक् रूप से पूजन करता है, उसे भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१७४-१७८।।

अनेनैव सुतेन्द्रेण दिवोदासो विवासितः।
कल्पयित्वा वेदबाह्यं मार्गं कलियुगप्रियम्॥१७९॥
आनीताश्च महत्योऽत्र दक्षाम्नायस्य देवताः।
तदुपासनतो लोकैः स्वस्वधर्म्मो विगर्हितः॥१८०॥
अस्वादज्ञस्तु प्लक्षस्थवारुण्याः काङ्क्षते फलम्।
क्षुधातुरस्तु भूमिष्ठं दूरीकृत्य कशेरुकम्॥१८१॥
दिवोदासीयलोकैस्तु दृष्ट्वा त्वरितकौतुकम्।
अन्तःप्रधारितो धर्म्मो वामान्ते कौलिकादिकः॥१८२॥
राज्ञो धर्मं प्रजा भुङ्क्ते प्रजापापन्तु भूपतिः।
तत्पातकेन भूपोऽसौ काशीतः प्रेषितो दिवम्।
मया च काश्यां वसतिः कृता पुत्रप्रसादतः॥१८३॥

इस श्रेष्ठ पुत्र गणेश के द्वारा ही निर्वासित दिवोदास ने कलियुग में अतिशय प्रिय वेदबाह्य मार्ग की कल्पना की और दक्षिणम्नाय के महान् देवताओं को यहाँ ले आया, जिनकी उपासना करते हुये लोग अपने-अपने धर्म से घृणा करने लगे। स्वाद को न जानने वाले लोग प्लक्षस्थ वारुणी से फल की आकांक्षा करने लगे एवं भूख से व्याकुल लोग भूमि पर होने वाले अन्न का त्याग कर कसेरु (जलीय पौधा) से भूख मिटने की कामना करने लगे।

दिवोदासीय लोक के निवासियों द्वारा इस तेज कौतुक को देखकर आपस में एक नये वाममार्गी धर्म का सृजन किया गया, जो कि आगे चलकर कौलिक आदि कहलाये। राजा के धर्म का फल प्रजा को मिलता है और प्रजा के पाप का फल राजा

को भोगना पड़ता है। उस पाप के कारण यह राजा काशी से स्वर्ग भेज दिया गया और पुत्र की कृपा से मैने काशी को अपना निवासस्थान बनाया।।१७९-१८३।।

ये ये वामपथे देवा गणकेन नियोजिताः।
काशीप्रवेशकामार्थं ते ते सन्तोषिताः परैः ॥१८४॥
तत्र चीनागणैर्देवैर्वाममार्गेण तर्पणम्।
याचितं तन्मया दत्तं तन्त्रेषु प्रतिपादितम् ॥१८५॥
तन्मार्गनिरता वीरा जायन्ते क्षत्रियादयः।
स्त्रियो भवन्ति योगिन्यो विप्रस्तत्परिवर्ज्जयेत् ॥१८६॥
दिवोदासस्य राज्यान्ते प्राप्ते कलियुगे च तैः।
उपद्रुता वेदमार्गे विहिताच्च द्विजातयः ॥१८७॥
दुर्जनानान्तु ते भीत्या हिमाचलमुपाश्रिताः।
तत्रापि तैरभिद्रुत्य धर्म्मलोपार्थमुद्यतम् ॥१८८॥

गणक द्वारा जो-जो देवता वाम मार्ग में नियोजित किये गये, वे सभी काशी में प्रवेश करने की इच्छा-हेतु आपस में एक-दूसरे को ढ़ाढ़स बँधाते रहे। वहाँ पर (काशी की सीमा के बाहर) अगणित देवताओं द्वारा तर्पण की याचना करने पर मैंने उन्हें तन्त्रों में प्रतिपादित मार्ग का उपदेश दिया। उस मार्ग का अनुसरण करने वाले वीर लोग क्षत्रिय आदि होते हैं एवं स्त्रियाँ योगिनियाँ होती हैं। ब्राह्मणों को उस मार्ग का अनुसरण नहीं करना चाहिये।

दिवोदास के राज्य की समाप्ति एवं कलियुग का आगमन होने पर वाममार्गियों द्वारा प्रताड़ित द्विजातियों ने वैदिक मार्ग का त्याग कर दिया और दुर्जनों के भय से वीरों ने हिमाचल का आश्रय ग्रहण किया; लेकिन वहाँ भी उन दुर्जनों से प्रताड़ित होकर वे धर्मत्याग-हेतु उद्यत हो गये।।१८४-१८८।।

तदा विप्रैः स्तुतश्चाहं बहुभिर्वैदिकैः स्तवैः।
तेषां मध्यात्समुद्भूतं मम लिङ्गं मुखान्वितम् ॥१८९॥
तद्विलोक्य तु ते वीराः साष्टाङ्गं प्रणता जगुः।
देवदेव त्वदुक्तस्य मार्गस्यायं व्यतिक्रमः।
क्रियते वैदिकैर्मूर्खैस्तदुद्धारार्थमुद्यताः ॥१९०॥
गङ्गाजलादप्यधिकं पावनं कारणं त्विदम् ॥१९१॥
कन्दमूलफलादिभ्यः पवित्रं स्वादु पोषकृत्।
एतन्मांसं वयं दद्म उद्धारार्थं त्रिजन्मनाम् ॥१९२॥

नानातीर्थसमुद्भूता अनेकविधिसंस्कृताः ।
भोगमोक्षप्रदा मत्स्यास्तानेभ्यो दातुमुद्यताः ॥१९३॥
संसारस्य ह्यसारस्य सारं सारङ्गलोचनाः ।
अर्द्धाङ्गे या त्वया देव विष्णुना हृदये कृता ॥१९४॥
उत्सङ्गे ब्रह्मणा चापि देवेन्द्रेण निजासने ।
वयं कारुणिकास्तात ह्येतेभ्यो दातुमुद्यताः ॥१९५॥
षण्मांसैश्च षडन्नैश्च षट्तीर्थैर्देवसंयुता ।
षट्सुगन्धा षड्रसाश्च मुद्रा दातुं समुद्यताः ॥१९६॥
ता एते नैव गृह्णन्ति यष्टव्यं पशवो यथा ।
स्वर्णपात्रस्थपरममन्नं हित्वा तृणाशिनः ॥१९७॥

उस समय ब्राह्मणों ने अनेक वैदिक मन्त्रों से मेरा स्तवन किया और तब उनके बीच में मुखयुक्त मेरा लिङ्ग प्रकट हुआ। उसे देखकर उन वीरों ने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुये इस प्रकार कहा—हे देवदेव! वैदिक मार्ग के उद्धार-हेतु उद्यत होकर ये मूर्ख वैदिक आपके द्वारा प्रतिपादित मार्ग का व्यतिक्रम कर रहे हैं। यह कारण (मद्य) गंगाजल से भी अधिक पवित्र है। कन्द-मूल-फल आदि से भी पवित्र, स्वादु एवं पोषण करने वाले इस मांस को तीनों जन्मों से उद्धार-हेतु हम इन्हें देना चाहते हैं। अनेक तीर्थों में उत्पन्न, अनेक विधियों द्वारा संस्कृत एवं भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली इन मछलियों को हम इन्हें देने के लिये उद्यत हैं। इस असार संसार का सार मृगनयनियाँ हैं, जो आपके द्वारा अर्द्धाङ्ग में, विष्णु के द्वारा हृदय में, ब्रह्मा के द्वारा गोद में एवं इन्द्र के द्वारा अपने आसन पर अधिष्ठित की हुई हैं। हे तात! हम कारुणिक लोग उनको भी देने के लिये प्रस्तुत हैं। छः प्रकार के मांस, छः प्रकार के अन्न, देवताओं से समन्वित छः तीर्थ, छः प्रकार के सुगन्ध एवं छः प्रकार के रस से युक्त मुद्रा को प्रदान करने हेतु हम तैयार हैं। इन सबको ये लोग ग्रहण नहीं कर रहे हैं; ठीक वैसे ही जैसे कि यज्ञार्ह पशु स्वर्णपात्र में रखे हुये परमान्न का त्याग करके तृणभक्षण में ही प्रवृत्त होते हैं।।१८९-१९७।।

तदा मया धर्मपादरक्षार्थं गदितं वचः ।
शृण्वन्तु मद्वचो वीराः सर्वप्राणिकृपायुतम् ॥१९८॥
अस्मिन्पापे कलौ लोका नेया नो कौलिके पथि ।
अतिक्षुद्रादियोनीनां दशस्वेकः प्रजायते ॥१९९॥
कृमियोनिषु तेषां तु दशके चोन्दुरादिकः ।
दशके चोन्दुरादीनां विडालादिः प्रजायते ॥२००॥

तेषां तु दशके पक्षी कश्चिदेकः प्रजायते।
तन्मध्ये दशके कश्चिन्मृगजातिषु जायते॥२०१॥
तेषां दशकमध्ये च महिषो वा वृषो भवेत्।
तेषां तु दशके कश्चित्खरो वा करभो भवेत्॥२०२॥
भवेत्तद्दशके कश्चिद्धयादीनाञ्च जातिषु।
तेषां तु दशके कश्चिन्नरो वा कुञ्जरो भवेत्॥२०३॥
आयुर्वै यस्य कालेन भावयन्तु सदा त्विमम्।
तेषामपि मनुष्याणां मध्यादेकः प्रजायते॥२०४॥
कश्चिद्धर्मं पुरस्कृत्य मुक्तोऽहमिति जायते।
तेषां दशकमध्ये तु कश्चिद्वर्णः प्रजायते॥२०५॥
तेषां तु दशके कश्चिदनुलोमो भवेज्जनः।
तेषान्तु दशके कश्चित्प्राप्नुयाद् द्विजतां नरः॥२०६॥

तदनन्तर मैंने (शिव ने) धर्मपाद की रक्षा के लिये उनसे कहा कि हे वीरों! समस्त प्राणियों के लिये दया से युक्त मेरे वचनों को सुनो। इस पापपूर्ण कलियुग में हमारे कौलमार्ग में लोगों को प्रवृत्त होना चाहिये। दस अतिशय क्षुद्र योनियों में से एक योनि कृमियों की होती है। दस कृमियोनियों में से एक योनि चूहे आदि की होती है। दस चूहों में कोई एक विडाल होता है, दस विडाल में कोई एक पक्षी होता है, दस पक्षियों के मध्य कोई एक मृगजाति का होता है, दस मृगजातियों में कोई एक महिष अथवा वृष होता है, उन दस में कोई एक खर (गदहा) अथवा हाथी होता है, उन दस में से कोई एक घोड़े आदि जाति का होता है और उन दस के मध्य कोई एक मनुष्य अथवा कुञ्जर (सिंह) होता है। काल द्वारा निर्धारित आयु के अनुसार ये सब बराबर होते रहते हैं। उन मनुष्यों में भी कोई एक ऐसा होता है, जो किसी धर्म का अनुसरण करके 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा मानता है। उन दस मनुष्यों में से कोई एक श्रेष्ठ जाति का होता है, उन दस में से कोई एक अनुलोम (वर्णशंकर जाति का) होता है और उन दस में से कोई द्विजता प्राप्त करता है।।१९८-२०६।।

द्विजानां दशके कश्चिद्विप्रो भवति कष्टतः।
तेषां तु दशके कश्चित्कर्म्मनिष्ठः प्रजायते॥२०७॥
कर्मिणां दशके कश्चिद्धवेदाशीलवान्नरः।
तेषां तु दशके कश्चिद्योगी भवति बालकः॥२०८॥
योगिनां दशके कश्चिदेको ज्ञानी प्रजायते।
ज्ञानिनां दशके कश्चिन्मुक्तो भवति वा न वा॥२०९॥

एवं मोक्षः सुदुःसाध्यः संसारोऽयं चिरं स्थितः ।
सर्व एव हि मुक्ताः स्युः प्रवृत्ताः कौलिके पथि ।
ब्रह्मसृष्टिविनाशश्च तूर्णमेव भविष्यति ॥२१०॥
एवं प्रतारिता वीरा ननृतुर्मदमोहिताः ।
वयं मुक्ता वयं मुक्ता अन्योन्यञ्जघ्नुरोजसा ॥२११॥
पुनः प्रमुदिताः सर्वे वचनञ्चेदमब्रुवन् ।
अहो पशुजना यूयं निरयं परमं गताः ॥२१२॥
ते वरं याचतास्मभ्यं स्वोद्धारार्थं भवान्तरे ।

दस द्विजों में से कोई एक बहुत कष्ट से विप्र होता है और उन दस विप्रों में से कोई एक कर्मनिष्ठ होता है। दस कर्मनिष्ठों में से कोई एक मनुष्य आचारवान होता है और उन दस आचारवान विप्रों में से कोई एक बालक योगी होता है। दस योगियों में से कोई एक ज्ञानी होता है और दस ज्ञानी योगियों में से कोई एक मुक्त होता है अथवा नहीं भी होता। इस प्रकार अतिशय कष्ट सहन करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव हो जाती है। यह संसार चिर काल से वर्तमान है। कौलमार्ग में प्रवृत्त होकर यदि सभी मुक्त होने लगें तो शीघ्र ही ब्रह्मा की इस सृष्टि का विनाश हो जायेगा। इस प्रकार प्रताड़ित होने पर सभी वीर साधक मद से मोहित होकर नृत्य करने लगे और 'हम मुक्त हैं, हम मुक्त हैं' इस प्रकार कहते हुये अपने-अपने तेज से एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। और वे सभी प्रमुदित होकर इस प्रकार कहने लगे—अहो! तुम सब पशु लोग घोर नरक में जाओगें। दूसरे जन्म में अपने उद्धार के लिये तुम सब हम लोगों से वर माँगो।।२०७-२१२।।

ततः प्रमुदितैर्विप्रैर्याचितोऽयं वरस्तदा ॥२१३॥
अयं यः स कपालीनो लिङ्गरूपी प्रदृश्यते ।
अस्माकं तत्र रमतां मनःस्वव्यभिचारितम् ॥२१४॥
इति श्रुत्वा तदा वीरा वचनञ्चेदमब्रुवन् ।
सत्यं भवतु तच्चात्र पशुभिर्याचितन्तु यत् ॥२१५॥
ब्रह्मविष्णुमहेशादिशक्तिसूर्य्यदिवौकसाम् ।
नाथानस्मान् विहायाद्य पशुभिः किन्नु याच्यते ॥२१६॥

तदनन्तर प्रमुदित विप्रों ने यह वर माँगा कि यह जो कापालिक लिङ्गस्वरूप दिखलाई पड़ रहा है, उसी में हम सबका मन निरन्तर रमण करता रहे। उन विप्रों की इस प्रकार की याचना को सुनकर वीरों ने कहा कि पशुओं द्वारा यहाँ जो याचना की

गई है, वह सत्य हो। आकाशचारी ब्रह्मा, विष्णु, महेश, आदिशक्ति, सूर्य के स्वामी-स्वरूप हम सबको छोड़कर पशु और माँग ही क्या सकते हैं।।२१३-२१६।।

वीराय मदिरा मन्त्रो मुद्रा मत्स्यः पलानि च।
अहो दैन्यं वयं भोगमोक्षदाः कौलिका जनाः।
भोगेन मुक्तिरस्माकं सा त्यक्ता पशुभिर्जनैः ।।२१७।।
भगे लिङ्गं समाधाय यत्सुखं समवाप्यते।
तेनार्चितोऽन्तरात्मायं मुक्तो भवति तत्क्षणात् ।।२१८।।
जठराग्नौ हूयते यत्त्वनेकविधिसंस्कृतम्।
फलं तेन तु तुष्टश्चेदन्तरात्मा विमुच्यते ।।२१९।।
यदैव हृदयङ्गच्छेत्सुधातोऽप्यधिका सुरा।
तदैवं सकलाः क्लेशा नाशं यान्ति विमुच्यते ।।२२०।।
यदैव गन्धो मुद्राया नासिकाञ्च प्रधावति।
अमृतानामयं सारः शफरः परिकीर्त्तितः ।।२२१।।
तद्भोगादमृतत्वं चेन्नास्ति किं वैदिके पथि।

वीरों के लिये मदिरा, मन्त्र, मुद्रा, मत्स्य एवं मांस ही श्रेष्ठ हैं। अहो! अत्यन्त कष्टकर स्थिति है कि हम कौलिक लोग भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाले हैं; भोग से ही हमारे यहाँ मुक्ति होती है और उसी का पशुजनों द्वारा त्याग कर दिया गया।

भग में लिङ्ग को प्रवेश कराकर जो सुख प्राप्त होता है, उससे पूजित होकर यह अन्तरात्मा तत्क्षण ही मुक्त हो जाती है। अनेक प्रकार के संस्कृत पदार्थों से जठराग्नि में जो हवन किया जाता है, उससे सन्तुष्ट होकर अन्तरात्मा मुक्त हो जाती है, यही उसका फल है। अमृत से भी अधिक श्रेष्ठ सुरा जैसे ही हृदय में प्रवेश करती है, वैसे ही समस्त क्लेशों का अन्त हो जाता है और आत्मा मुक्त हो जाती है। मुद्रा का गन्ध जैसे ही नासिका में प्रविष्ट होता है, वैसे ही आत्मा मुक्त हो जाती है। यह शफरी (चमकदार छोटी मछली) अमृतों का सार कही गई है, उसके भोग से ही यदि अमृतत्व की प्राप्ति होती है तो फिर ऐसा क्या है, जो वैदिक मार्ग में नहीं है।।२१७-२२१।।

अहो शृण्वन्तु पशवस्तन्त्रसारमिदं वचः ।।२२२।।
पण्डितो वापि मूर्खो वा दीक्षितो वाप्यदीक्षितः।
मुद्राः शतसहस्रन्तु कृत्वा मोक्षमवाप्नुयात् ।।२२३।।
मुद्रायाः करणञ्चैवं शिक्षणीयं कदाचन।
चामुण्डाद्या महादेव्यो भैरवाद्या महाबलाः ।।२२४।।

मुद्राभिरेव तृप्यन्ति न पुष्पादिकपूजनैः।
महापूजा कृता तेन येन मुद्राष्टकं कृतम्॥२२५॥
स यत्पदमवाप्नोति तन्न ब्रह्मा न शङ्करः।
अवश्यमेव मुक्तिः स्यात्सहस्रभगदर्शनात्॥२२६॥

हे पशुओं! तन्त्रों के सारस्वरूप इन वचनों को सुनो। पण्डित हो अथवा मूर्ख, दीक्षित हो अथवा अदीक्षित; सौ हजार मुद्राओं को करके वे सभी मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार कभी भी मुद्रा करने की शिक्षा देनी चाहिये। चामुण्डा आदि महादेवियाँ एवं महाबलशाली भैरव आदि भी पुष्प आदि द्वारा किये गये पूजन से तृप्त नहीं होते; अपितु मुद्रा द्वारा ही तृप्त होते हैं। जिसके द्वारा आठ मुद्राओं को कर लिया जाता है, उसके द्वारा महापूजा सम्पन्न कर ली जाती है और उसे जिस पद की प्राप्ति होती है, वह पद ब्रह्मा अथवा शंकर को भी नहीं मिलता। एक हजार भगों के दर्शन से अवश्य ही मुक्ति ही प्राप्ति हो जाती है।।२२२-२२६।।

पुरा कौलिकमार्गस्य निन्दा वै विष्णुना कृता।
तत्पातकवशाज्जातो मत्तो दशरथात्मजः॥२२७॥
यत्तेन निन्दिता शक्तिस्तत्सीता रक्षसा हृता।
दुःखञ्च समनुप्राप्तं वियोगश्चानुकालिकः॥२२८॥
शरीरं वैभवं लब्ध्वा पुनस्तेन कृतन्तपः।
तदा गोपकुले जातः सदा शक्तिनिषेवकः॥२२९॥
शरीरार्धेन बलिभिर्नित्यमासवसेवकः।
षोडशस्त्रीसहस्राणाञ्जातोऽसौ भगदर्शनात्॥२३०॥
मोक्षाधिकारिपशवः श्रृणुतैतद्धितं वचः।
विना मांसं विना मद्यं विना मत्स्यं च मैथुनम्॥२३१॥
विना मुद्रामन्यतमं भवेन्नास्तीष्टसाधनम्।
पशुभिर्याचितं यत्तु किमु चैतत्तदेव हि॥२३२॥

प्राचीन काल में विष्णु ने कौलिक मार्ग की निन्दा की थी, जिस पाप के कारण वे दशरथ के पुत्र हुये और उन्होंने जो शक्ति की निन्दा की थी, उसी के फलस्वरूप उनकी सीता का राक्षस ने हरण किया। इसके कारण उन्हें अतीव दुःख प्राप्त हुआ और समयानुसार वियोग भी सहन करना पड़ा। तदनन्तर पुनः शरीररूपी वैभव प्राप्त करके उन्होंने तप किया और उस तप के फलस्वरूप गोपकुल में जन्म ग्रहण करके सदा शक्ति के सहचारी बने। अपने आधे शरीर से सोलह हजार स्त्रियों के भगदर्शन के फलस्वरूप ही वे उच्छिष्टरूप में प्रतिदिन आसवसेवी हुये।

मोक्ष के अधिकारी हे पशुओं! इस हितकर वचन को सुनो। मांस, मद्य, मत्स्य, मैथुन एवं मदिरा में किसी एक के विना कभी भी इष्टसाधन सम्भव नहीं है; अतः तुम पशुओं द्वारा जो याचना की गई है, क्या वह ऐसे ही मिल जायेगी?।।२२७-२३२।।

एवमुक्तेषु वीरेषु मुनयः शंसितव्रताः।
अन्तः प्रफुल्लवदनाः शान्तिपूर्वं वचो जगुः ॥२३३॥
वयन्तु पशवो विप्रा अन्नप्राणा विलोकिताः।
यूयं सिंहाः सिंहवच्च सदा मांसनिषेवकाः ॥२३४॥
पशूनां च यथा तृप्तिः शाद्वलेनैव जायते।
अन्नेन च तथास्माकं न मांसं भक्षितुं क्षमाः ॥२३५॥
सिंहानां तु यथा भक्ष्यं मांसं नान्नं कदाचन।
तथैव वीरसिंहानां भक्ष्यं मांसादिकं किल ॥२३६॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषां प्रोचुस्ते च महेश्वरम्।
त्वां सेवयितुमिच्छन्ति पशवो विप्ररूपिणः ॥२३७॥
तस्मात्पशुपतिस्त्वं च नेपालेऽत्र स्थिरो भव।
इत्युक्त्वा ते पुनः पीत्वा मद्यं मत्तास्तथाभवन् ॥२३८॥

वीरों के इस प्रकार कहने पर सद्व्रती प्रसन्नमुख मुनिगणों ने शान्ति-पूर्वक कहा कि हम विप्रगण तो पशु हैं और अन्न में ही प्राण को देखते हैं; लेकिन आप सब तो सिंह हैं और सिंह के समान सदैव मांस का सेवन करते रहते हैं। जिस प्रकार पशुओं की शाद्वल (घास) से ही तृप्ति होती है, उसी प्रकार हमारी तृप्ति अन्न से ही हो जाती है। हम सब मांसभक्षण में समर्थ नहीं हैं। जिस प्रकार सिंहों का भोजन मांस ही होता है, अन्न नहीं; उसी प्रकार वीरसिंहों का भोजन भी मांस आदि ही है।

विप्रों के इस प्रकार के वचनों को सुनकर उन वीरों ने महेश्वर से कहा कि ये विप्ररूपी पशुगण आपकी सेवा करना चाहते हैं; इसलिये आप पशुपति हो जायँ और यहीं नेपाल में ही स्थित रहें। इतना कहकर वे पुनः मद्य पीकर मत्त हो गये।

तदा नानाविधैः स्तोत्रैर्विप्रैः सन्तोषितो ह्यहम्।
तदा तेभ्यो मया प्रोक्तं व्रियतां व्रियतामिति ॥२३९॥
उक्तं तैश्च पुनर्देव कथं मुक्तिः कलौ भवेत्।
येनास्माकं भवेच्छ्रेयस्तद्धर्मं वद नः प्रभो ॥२४०॥

उस समय विप्रों द्वारा किये गये अनेक प्रकार के स्तोत्रों से सन्तुष्ट होकर उनसे मैंने कहा कि 'वर माँगो, वर माँगो।' तब उन विप्रों ने कहा कि हे देव! कलियुग में

मुक्ति किस प्रकार प्राप्त होगी? हे प्रभु! जिसके करने से हमलोगों का कल्याण हो, उस धर्म को हमलोगों से आप कहें।।२३९-२४०।।

इति तेषां वचः श्रुत्वा मया तत्त्वं निरूपितम्।
ज्ञानं विना न मोक्षोऽत्र ज्ञानं धर्म्मादृते न हि।
तस्माद् द्विजाः प्रकर्त्तव्यं वेदोक्तं कर्म्म नित्यशः ।।२४१।।
यथा पिष्टेन बडिशमत्र गुप्तं निपात्यते।
मत्स्यानां ग्रहणार्थन्तु तद्वत्तन्त्रनिषेवणम् ।।२४२।।
कश्चिन्मत्स्यो दैवयोगाच्चूर्णभोक्ता न विद्यते।
तदाऽस्य जायते तृप्तिर्जीवनं च भवेद्यथा ।।२४३।।
तथैव वाममार्गे च ज्ञाननिर्दग्धकल्मषाः।
भवन्ति मुक्ता नान्ये च तस्मात्तं परिवर्ज्जयेत् ।।२४४।।
ये वाममार्गनिरता वेदबाह्यानुसारतः।
स्वधर्म्ममेव शंसन्ति वचस्तेषां न मानयेत् ।।२४५।।
अस्मिन् कलियुगे घोरे यथाशक्ति करोति यः।
सेवनं वेदमार्गस्य कलौ तस्य जनिर्न हि ।।२४६।।
यमलोके न निरये पाताले नैव नैव च।
यद्ब्राह्मणे जन्म कलौ स एव निरयः स्मृतः ।।२४७।।
अतः परं प्रवक्ष्यामि गणेशेन हताश्च ये।
सत्कार्यार्थं दिवोदासनिस्सारार्थञ्च देवताः ।।२४८।।

इस प्रकार के उनके वचनों को सुनकर मैंने तत्त्व का निरूपण किया। इस संसार में ज्ञान के विना मोक्ष नहीं होता और धर्म के विना ज्ञान नहीं हो सकता; इसलिये द्विजों को प्रतिदिन वेदोक्त कर्म का पालन करना चाहिये। जिस प्रकार मछली को पकड़ने के लिये आटे से वडिश (वंशी या कटिया) को छिपाकर जल में ड़ाला जाता है, उसी प्रकार तन्त्र का भी सेवन करना चाहिये। जिस प्रकार दैवयोग से कोई मछली चूर्ण का भोजन न करने वाली होने पर भी तृप्त रहती है एवं उसका जीवन भी सुरक्षित रहता है, उसी प्रकार वाममार्ग में भी ज्ञान-प्राप्ति द्वारा पापों को भस्म करने वाले ही मुक्त हो पाते हैं; अन्य लोग मुक्त नहीं हो पाते। इसलिये उस वाममार्ग का परित्याग कर देना चाहिये। वाममार्ग में तल्लीन जो लोग केवल अपने धर्म की ही प्रशंसा करते रहते हैं, वेदविरुद्ध होने के कारण उनकी बातों को नहीं मानना चाहिये।

इस घोर कलियुग में जो यथाशक्ति वेदमार्ग का सेवन करता है, उसका कलियुग

में पुनर्जन्म नहीं होता। न वह यमलोक-गमन करता है, न नरक में जाता है और न ही पाताल-गमन करता है। कलियुग में ब्राह्मण में जन्म होना ही नरक कहा गया है।

अब मैं सत्कार्य-सम्पादन के लिये तथा दिवोदास को सत्त्वहीन बनाने के लिये गणेश द्वारा हरण किये गये देवताओं के विषय में कहता हूँ।।२४१-२४८।।

काममन्त्रनिरूपणम्

आनीतास्तास्तु मम वै पार्वत्याश्चापि वल्लभाः।
गणेशशासनात्कामो दग्धोऽपि पुनरुत्थितः ॥२४९॥
दिवोदासस्य भवने सर्वेषां हृदये स्थितः।
तस्य मन्त्रान् प्रवक्ष्यामि लोकद्वयफलप्रदान् ॥२५०॥

काममन्त्र-विवेचन—मेरे एवं मेरी प्रिया पार्वती के द्वारा लाये गये, दग्ध होने पर भी गणेश की इच्छा के कारण पुनर्जीवित तथा दिवोदास के भवन में सबके हृदय में विराजमान कामदेव के दोनों लोकों में फल प्रदान करने वाले मन्त्रों को अब मैं कहता हूँ।।२४९-२५०।।

आदौ क्लींबीजरूपोऽस्य मन्त्र एकाक्षरो मतः।
सम्मोहनो मुनिश्छन्दो गायत्रं देवता स्मरः।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥२५१॥

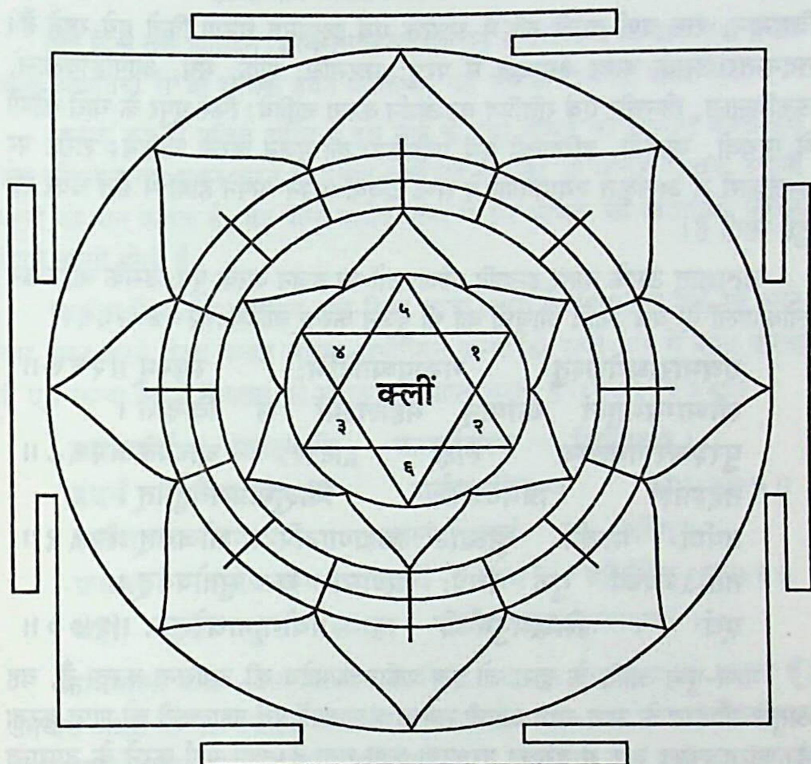
एकाक्षर काममन्त्र—काम का प्रथम मन्त्र 'क्लीं' है, जो बीजस्वरूप एकाक्षर है। इसके ऋषि सम्मोहन, छन्द गायत्री एवं देवता स्मर (कामदेव) कहे गये हैं। छः दीर्घ स्वरों से समन्वित बीजमन्त्र से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—क्लां हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, क्लूं शिखायै वषट्, क्लैं कवचाय हुं, क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्, क्लः अस्त्राय फट्।।२५१।।

रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तगन्धानुलेपनम्।
नानारत्नौघमुकुटभूषणैर्भूषितं शुभम् ॥२५२॥
पाशाङ्कुशाविक्षुचापं पुष्पेषून् दधतं करैः।
उपविष्टं रक्तपद्मे कामदेवं विभावये ॥२५३॥

कामध्यान—रक्त वस्त्र धारण किये हुये, रक्त वर्ण वाले, रक्त गन्ध का लेप लगाये हुये, अनेक रत्नों से निर्मित मुकुट एवं आभूषणों से विभूषित, हाथों में पाश अंकुश धनुष एवं बाण धारण किये हुये, रक्तकमल पर आसीन कल्याणप्रद कामदेव का मैं स्मरण करता हूँ।।२५२-२५३।।

पद्ममष्टदलं कृत्वा मध्येऽनङ्गं समर्चयेत्।
कर्णिकायां च षट्पत्रे कोणेष्वङ्गानि पूजयेत् ॥२५४॥
देवाग्रतस्तु मध्यान्तमर्चयेत्केशरेषु च।
मोहिनीं क्षोभिणीं चैव त्रासिनीं स्तम्भिनीं ततः ॥२५५॥
आकर्षिणीं द्राविणीं ह्लादिनीं क्लिन्नां च क्लेदिनीम्।
षट्पत्रे मदनानङ्गमन्मथाः कुसुमाह्वयाः ॥२५६॥
अनङ्गकुसुमातुरा ह्यनङ्गशिशिरापि च।
अनङ्गमेखलानङ्गदीपिका च ततः परम् ॥२५७॥
सर्वा ध्येयाः पद्महस्ताः सालङ्काराश्च तद्बहिः।
पद्मे षोडशपत्राढ्ये स्वाग्रतः परिपूजयेत् ॥२५८॥
युवती विप्रलम्भा च ज्योत्स्ना सूरुमदद्रवा।
सुरता वारुणी लोला लीला सौदामनी तथा ॥२५९॥
कामच्छत्रा चन्द्ररेखा शुकी च मदनाह्वया।
योनिर्मायावती चेति तरुण्यः सस्मिताननाः ॥२६०॥
कह्लारहस्ताः कामार्त्ताः पत्राग्रे परिचारकान्।
विलासविभ्रमौ मोहं शोकं कामस्य पूजयेत् ॥२६१॥
मदनातुरापत्रपौ युवानं चन्दनं तथा।
रतिप्रियं चूतपुष्पं ग्रीष्मं तापनमूर्जकम् ॥२६२॥
हेमन्तं शिशिरं चापि मदन्ते पुष्पसायकाः।
एते चार्पिततूणीराः शोणस्त्रीसक्तमानसाः ॥२६३॥
इक्षुचापाश्च तद्बाह्ये चाष्टपत्रदलेऽर्चयेत्।
परभूः सारसाक्षश्च शुको मेघस्ततः परम् ॥२६४॥
आपाङ्गोरुविलासौ च हीनचीरो रतिप्रियः।
भूगृहस्य च कोणे च चतस्रः पूजयेदिमाः ॥२६५॥
माधव्याख्या मालती च हरिणाक्षी मदोत्कटा।
श्वेतचामरसद्धस्ताः श्यामा भूषितविग्रहाः ॥२६६॥
इन्द्रादींश्च ततो बाह्ये वज्रादीन्यपि पूजयेत्।

कामपूजन यन्त्र—कामपूजन यन्त्र इस प्रकार का होता है—अष्टदल कमल का निर्माण करके उसके मध्य में अनङ्ग का सम्यक् रूप से अर्चन करने के बाद उसकी कर्णिका में षट्कोण बनाकर उसके कोणों में अङ्गों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात्



उस कमल के केशरों में देवता के आगे से आरम्भ कर क्रमश: मोहिनी, क्षोभिणी, त्रासिनी, स्तम्भिनी, आकर्षिणी, द्राविणी, ह्लादिनी एवं क्लिन्ना का पूजन करके मध्य में क्लेदिनी का अर्चन करना चाहिये। षट्पत्रों में अनङ्गमदना, अनङ्गमन्मथा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गकुसुमातुरा, अनङ्गशिशिरा एवं अनङ्गमेखला का तथा मध्य में अनङ्गदीपिका का पूजन करना चाहिये। पूजन करते समय अपने-अपने हाथों में कमल धारण की हुई एवं समस्त अलंकारों से विभूषित इनके स्वरूपों का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर पुन: षोडशदल कमल का निर्माण कर उसके दलों में अपने आगे से आरम्भ कर तरुणी, प्रसन्न मुख वाली, हाथों में कह्लारपुष्प ली हुई एवं कामपीड़ित युवती, विप्रलम्भा, ज्योत्स्ना, सूरु, मदद्रवा, सुरता, वारुणी, लोला, लीला, सौदामिनी, कामच्छत्रा, चन्द्ररेखा, शुकी, मदनाह्वया, योनि एवं मायावती का क्रमश: अर्चन करना चाहिये। इसके बाद दलों के अग्रभाग में काम के परिचारकों—विलास, विभ्रम, मोह, शोक, मदनातुर, आपत्रप, युवान, चन्दन, रतिप्रिय, चूतपुष्प, ग्रीष्म, तापन, ऊर्जक, हेमन्त, शिशिर एवं पुष्पसायक का क्रमश: अर्चन करना चाहिये। ये सभी तूणीर में

विद्यमान, रक्त वर्ण वाली स्त्री में आसक्त एवं इक्षुधनुष धारण किये हुये रहते हैं। तदनन्तर उसके बाहर अष्टदल में परभू, सारसाक्ष, शुक, मेघ, आपाङ्गविलास, ऊरुविलास, हीनचीर एवं रतिप्रिय का अर्चन करना चाहिये। फिर भूपुर के चारो कोणों में माधवी, मालती, हरिणाक्षी एवं मदोत्कटा का पूजन करना चाहिये। शरीर पर अलंकारों से अलंकृत श्यामवर्णा ये सभी देवियाँ अपने-अपने हाथों में श्वेत चँवर ली हुई रहती हैं।

तत्पश्चात् उसके बाहर इन्द्रादि लोकपालों का यजन करके पुनः उसके बाहर उन लोकपालों के वज्र आदि आयुधों का भी पूजन करना चाहिये।।२५४-२६६।।

एवमाराधयेद्यस्तु गन्धपुष्पादिभिः स्मरम् ॥२६७॥
सौभाग्यमतुलं कामान् महालक्ष्मीं स विन्दति।
पुरश्चरणमेतस्य लक्षं द्वादश चोच्यते ॥२६८॥
तद्दशांशं त्रिमध्वक्तैः किंशुकप्रसवैर्हुनेत्।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणानपि भोजयेत् ॥२६९॥
ततोऽभ्यर्च्य गुरुं विप्रैः प्रणम्य च सुतोषयेत्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः ॥२७०॥

गन्ध-पुष्प आदि के द्वारा जो इस प्रकार कामदेव की उपासना करता है, वह अतुल सौभाग्य के साथ-साथ अपनी समस्त कामनाओं एवं महालक्ष्मी को प्राप्त करता है। बारह लाख जप से इसका पुरश्चरण कहा गया है। जप पूर्ण करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त किंशुक (पलास) की कलियों से जप का दशांश हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् हवन का दशांश तर्पण एवं तर्पण का दशांश मार्जन करने के बाद ब्राह्मणों को भोजन भी कराना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणों द्वारा गुरु का अर्चन करने के पश्चात् उन्हें प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर प्रयोगों में संलग्न होना चाहिये।।२६७-२७०।।

अशोककुसुमैः स्वादुत्रयाक्तैस्त्रिदिनं हुनेत्।
अष्टाधिकं सहस्रं यः सर्वेषां स प्रियो भवेत् ॥२७१॥
गोघृतेन सुसम्पातमष्टोत्तरशतं हुनेत्।
सम्यक्प्रपूजिते वह्नौ मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥२७२॥
सम्पातं सर्पिषां यो वै स्वां नारीं भोजयेत्प्रिये।
आज्ञानुवर्तिनी सास्य भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥२७३॥
दध्यक्तलाजहोमेन प्रत्यहं मण्डलावधि।
वाञ्छिताँल्लभते मन्त्री कन्या सापि प्रियं पतिम् ॥२७४॥

तीन दिनों तक प्रतिदिन त्रिमधु-सिक्त अशोकपुष्प से इस मन्त्र के द्वारा एक हजार आठ आहुतियों से जो साधक हवन करता है, वह सबका प्रिय हो जाता है।

सम्यक् रूप से पूजित अग्नि में इस मन्त्र के द्वारा गोघृत का सम्पात करते हुये एक सौ आठ बार हवन करने के पश्चात् अवशिष्ट घृत का जो मन्त्रज्ञ साधक अपनी पत्नी को पान कराता है, वह पत्नी प्रत्येक जन्म में उस साधक की आज्ञा का पालन करने वाली होती है।

चालीस दिनों तक प्रतिदिन दधि-सिक्त लाजा (धान के लावा) से एक सौ आठ बार हवन करने वाला मन्त्रज्ञ साधक अभीप्सित कन्या को पत्नी-रूप में प्राप्त करता है एवं कन्या अपने प्रियतम को पतिरूप में प्राप्त करती है।।२७१-२७४।।

मालामन्त्रं प्रवक्ष्यामि कामदेवस्य सिद्धिदम्।
हृदयं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय च ॥२७५॥
सर्वजनसम्मोहनाय ज्वलद्वह्निमयं वदेत्।
प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम कीर्तयेत् ॥२७६॥
वशं कुरु कुरु स्वाहा मन्त्रो नागकृताक्षरः।

काममाला मन्त्र—अब कामदेव के सिद्धि-प्रदायक मालामन्त्र को कहता हूँ। उनचास अक्षरों का यह मन्त्र इस प्रकार का कहा गया है—ॐ कामदेवाय सर्वजनप्रियाय सर्वजनसम्मोहनाय ज्वलद्वह्निमयं प्रज्वल सर्वजनस्य हृदयं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा।

षड्दीर्घयुतक्लींबीजैः षडङ्गविधिरीरितः ॥२७७॥
आदौ कराङ्गुलीष्वेतान् वर्णान् कामस्य चिन्तयेत्।
द्रामाद्यां द्राविणीं देवीं द्रोमाद्यां क्षोभिणीमपि ॥२७८॥
क्लीं च वशीकरीं न्यस्येत्क्लूं क्लीमाद्यां महेश्वरीम्।
आकर्षिणीं च सः पूर्वां सम्मोहिनीं हमादिकाम् ॥२७९॥
काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसञ्ज्ञकाः।
मीनकेतुरिमे न्यस्याः पञ्चाङ्गेष्वङ्गुलीषु च ॥२८०॥
चत्वारिंशन्मन्त्रवर्णानकारादिस्थले न्यसेत्।
मातृकाया नासिकाङ्गेऽप्यङ्गेष्वथ ततः परम् ॥२८१॥
जठरे हृदये कण्ठे वक्त्रे नसि च पञ्चसु।
न्यस्येद्वर्णत्रयं शेषं व्यापकत्वेन सन्न्यसेत् ॥२८२॥
पुनः सम्पूर्णमनुना व्यापकं पुनराचरेत्।

छः दीर्घ स्वरों से युक्त क्लीं बीजमन्त्र (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। तदनन्तर प्रथमतः हाथ की अंगुलियों में काम के इन वर्णों के साथ बीजशक्तियों का इस प्रकार न्यास करना चाहिये—ॐ द्रां द्राविण्यै नमः अंगुष्ठाभ्यां नमः, ॐ द्रों क्षोभिण्यै नमः तर्जनीभ्यां नमः, ॐ क्लीं वशीकर्यै नमः मध्यमाभ्यां नमः, ॐ क्लूं महेश्वर्यै नमः अनामिकाभ्यां नमः, ॐ क्लीं आकर्षिण्यै नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ सः सम्मोहिन्यै नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। तदनन्तर काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज एवं मीनकेतु का पाँचो अंगुलियों में पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये। तदनन्तर मालामन्त्र के चालीस वर्णों का अकारादि मातृकाओं के स्थान पर इस प्रकार न्यास करना चाहिये—

१. ॐ क्लीं कां नमः दक्षनासापुटे।
२. ॐ क्लीं मं नमः वामनासापुटे।
३. ॐ क्लीं दें नमः दक्षनेत्रे।
४. ॐ क्लीं वां नमः वामनेत्रे।
५. ॐ क्लीं यं नमः दक्षकर्णे।
६. ॐ क्लीं सं नमः वामकर्णे।
७. ॐ क्लीं वें नमः दक्षगण्डे।
८. ॐ क्लीं जं नमः वामगण्डे।
९. ॐ क्लीं नं नमः उर्ध्वोष्ठे।
१०. ॐ क्लीं प्रिं नमः अधरोष्ठे।
११. ॐ क्लीं यां नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ।
१२. ॐ क्लीं यं नमः अधोदन्तपंक्तौ।
१३. ॐ क्लीं सं नमः जिह्वाग्रे।
१४. ॐ क्लीं वें नमः कण्ठे।
१५. ॐ क्लीं जं नमः दक्षबाहुमूलाद्यङ्गुल्याग्रन्तम्।
१६. ॐ क्लीं नं नमः वामबाहुमूलाद्यङ्गुल्याग्रन्तम्।
१७. ॐ क्लीं सं नमः दक्षोरुमूले।
१८. ॐ क्लीं म्मों नमः दक्षजानुनि।
१९. ॐ क्लीं हं नमः दक्षगुल्फे।
२०. ॐ क्लीं नां नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले।
२१. ॐ क्लीं यं नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे।
२२. ॐ क्लीं ज्वं नमः वामोरुमूले।
२३. ॐ क्लीं लं नमः वामजानुनि।

२४. ॐ क्लीं द्वं नमः वामगुल्फे।
२५. ॐ क्लीं ह्विं नमः वामपादाङ्गुलिमूले।
२६. ॐ क्लीं मं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे।
२७. ॐ क्लीं यं नमः दक्षपार्श्वे।
२८. ॐ क्लीं प्रं नमः वामपार्श्वे।
२९. ॐ क्लीं ज्वं नमः पृष्ठे।
३०. ॐ क्लीं लं नमः नाभौ।
३१. ॐ क्लीं सं नमः जठरे।
३२. ॐ क्लीं वं नमः हृदये।
३३. ॐ क्लीं जं नमः दक्षस्कन्धे।
३४. ॐ क्लीं नं नमः वामस्कन्धे।
३५. ॐ क्लीं स्यं नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्।
३६. ॐ क्लीं हं नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्।
३७. ॐ क्लीं दं नमः हृदयादिदक्षपादान्तम्।
३८. ॐ क्लीं यं नमः हृदयादिवामपादान्तम्।
३९. ॐ क्लीं मं नमः हृदयादिगुह्यान्तम्।
४०. ॐ क्लीं मं नमः हृदयादिमूर्द्धान्तम्।
४१. ॐ क्लीं वं नमः जठरे।
४२. ॐ क्लीं शं नमः हृदये।
४३. ॐ क्लीं कुं नमः कण्ठे।
४४. ॐ क्लीं रुं नमः मुखे।
४५. ॐ क्लीं कुं नमः नासिकायाम्।

शेष तीन वर्ण (रु स्वा हा) से व्यापक न्यास करना चाहिये।।२७७-२८२।।

ततश्च मातृकार्णानां बृहन्न्यासं समाचरेत् ॥२८३॥
कामबीजप्रकुटितां मात्रामुक्त्वा च युग्मकम्।
भ्यान्तं नमः समुच्चार्य्य मातृकाङ्गेषु विन्यसेत् ॥२८४॥
रतियुक्तं न्यसेत्कामं कामदं प्रीतिसंयुतम्।
कान्तां च कामयुक्तां हि कान्तिमन्तञ्च मोहिनीम् ॥२८५॥
कामाङ्गं कमलायुक्तं कामचारं विलासिनीम्।
कामयुक्तां कल्पनाञ्च श्यामलां कामुकान्विताम्।
शुचिस्मितां न्यसेत्कामवर्धनेन समन्विताम् ॥२८६॥

रमायुक्तं विशालाक्षं रमणं लोलजिह्विकाम्।
दिगम्बरां रतिनाथं रमाञ्चातिरतिप्रियम्।
रात्रिनाथं कुब्जिकाञ्च रमाकान्तञ्च कान्तया ॥२८७॥
नित्यया रममाणञ्च कल्परूपां निशाकरम्।
नन्दकं भोगिनीयुक्तं नन्दनं कामदायुतम्।
सुलोचनां नन्दिनञ्च नन्दयन्तं प्रलापिनीम् ॥२८८॥
पञ्चबाणं च मदनीं रतिभङ्गकलिप्रियाम्।
पुष्पधन्वा मृगाक्षी च सुमुखा च महाधनुः।
क्रमणो नलिनीयुक्तो भ्रमणो यजिनीयुतः ॥२८९॥
मन्मथो मदनायुक्तो मोर्भङ्गश्चापि मालया।
शान्तश्च मुग्धया युक्तो भ्रामको रमया युतः ॥२९०॥
शृङ्गश्च भ्रमया युक्तो भ्रान्ताचारस्तु लोलया।
भ्रमावहश्चञ्चलया मोहनो दीर्घजिह्वया ॥२९१॥
रतिप्रियां मोदकं च मोहाक्षीं लोलमेव च।
मोहवर्धनशृङ्गिण्यो मदनं पाटलां तथा ॥२९२॥
मन्मथं मदनां चापि मालां मातङ्गमेव च।
भृङ्गनायकहंसिन्यौ गायकं विश्वतोमुखीम् ॥२९३॥
गीतिज्ञं जगदानन्दं नर्तकं रमणीमपि।
क्ष्वेलकं कान्तिसंयुक्तं चोन्मत्तं कलकण्ठिकाम् ॥२९४॥
मत्तं वृकोदरायुक्तं मेज्यौ श्यामां विलासिनम्।
सर्वोत्तमायुतं लोभवर्धनं न्यस्य चिन्तयेत् ॥२९५॥

इसके बाद मातृकाओं से मातृकाङ्गों में इस प्रकार बृहत् न्यास करना चाहिये—

१. ॐ क्लीं अं रतिकामाभ्यां नमः शिरसि।
२. ॐ क्लीं आं प्रीतिकामदाभ्यां नमः मुखवृत्ते।
३. ॐ क्लीं इं कान्ताकामाभ्यां नमः दक्षनेत्रे।
४. ॐ क्लीं ईं मोहिनीकान्तिमद्भ्यां नमः वामनेत्रे।
५. ॐ क्लीं उं कमलाकामाङ्गाभ्यां नमः दक्षकर्णे।
६. ॐ क्लीं ऊं विलासिनीकामचाराभ्यां नमः वामकर्णे।
७. ॐ क्लीं ऋं कल्पनाकामाभ्यां नमः दक्षनासापुटे।
८. ॐ. क्लीं ॠं कामुकाश्यामलाभ्यां नमः वामनासापुटे।

९. ॐ क्लीं ऌं शुचिस्मिताकामवर्धनाभ्यां नमः दक्षगण्डे।
१०. ॐ क्लीं ॡं रमाविशालाभ्यां नमः वामगण्डे।
११. ॐ क्लीं एं लोलजिह्विकारमणाभ्यां नमः ऊर्ध्वोष्ठे।
१२. ॐ क्लीं ऐं दिगम्बरारतिनाथाभ्यां नमः अधरोष्ठे।
१३. ॐ क्लीं ओं रमातिरतिप्रियाभ्यां नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ।
१४. ॐ क्लीं औं कुब्जिकारात्रिनाथाभ्यां नमः अधोदन्तपंक्तौ।
१५. ॐ क्लीं अं कान्तारमाकान्ताभ्यां नमः जिह्वाग्रे।
१६. ॐ क्लीं अः नित्यारममाणाभ्यां नमः कण्ठे।
१७. ॐ क्लीं कं कल्परूपानिशाकराभ्यां नमः दक्षबाहुमूले।
१८. ॐ क्लीं खं भोगिनीनन्दकाभ्यां नमः दक्षकूर्परे।
१९. ॐ क्लीं गं कामदानन्दनाभ्यां नमः दक्षमणिबन्धे।
२०. ॐ क्लीं घं सुलोचनानन्दिनाभ्यां नमः दक्षकराङ्गुलिमूले।
२१. ॐ क्लीं ङं प्रलापिनीनन्दयद्भ्यां नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे।
२२. ॐ क्लीं चं मदनीपञ्चबाणाभ्यां नमः वामबाहुमूले।
२३. ॐ क्लीं छं कलिप्रियारतिभङ्गाभ्यां नमः वामकूपरि।
२४. ॐ क्लीं जं मृगाक्षीपुष्पधन्वद्भ्यां नमः वाममणिबन्धे।
२५. ॐ क्लीं झं सुमुखामहाधनुर्भ्यां नमः वामकराङ्गुलिमूले।
२६. ॐ क्लीं ञं नलिनीक्रमणाभ्यां नमः वामकराङ्गुल्यग्रे।
२७. ॐ क्लीं टं यजिनीभ्रमणाभ्यां नमः दक्षोरुमूले।
२८. ॐ क्लीं ठं मदनामन्मथाभ्यां नमः दक्षजानुनि।
२९. ॐ क्लीं डं मालामोभङ्गाभ्यां नमः दक्षगुल्फे।
३०. ॐ क्लीं ढं मुग्धाशान्ताभ्यां नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले।
३१. ॐ क्लीं णं रमाभ्रामकाभ्यां नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे।
३२. ॐ क्लीं तं भ्रमाशृङ्गाभ्यां नमः वामोरुमूले।
३३. ॐ क्लीं थं लोलाभ्रान्तचाराभ्यां नमः वामजानुनि।
३४. ॐ क्लीं दं चञ्चलाभ्रमावहद्भ्यां नमः वामगुल्फे।
३५. ॐ क्लीं धं दीर्घजिह्वामोहनाभ्यां नमः वामपादाङ्गुलिमूले।
३६. ॐ क्लीं नं रतिप्रियामोदकाभ्यां नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे।
३७. ॐ क्लीं पं मोहाक्षिलोलाभ्यां नमः दक्षपार्श्वे।
३८. ॐ क्लीं फं शृङ्गिणीमोहवर्धनाभ्यां नमः वामपार्श्वे।
३९. ॐ क्लीं बं पाटलामदनाभ्यां नमः पृष्ठे।
४०. ॐ क्लीं भं मदनामन्मथाभ्यां नमः नाभौ।

४१. ॐ क्लीं मं मालामातङ्गाभ्यां नमः जठरे।
४२. ॐ क्लीं यं हंसिनीभृङ्गनायकाभ्यां नमः हृदये।
४३. ॐ क्लीं रं विश्वतोमुखीगायकाभ्यां नमः दक्षस्कन्धे।
४४. ॐ क्लीं लं गीतिज्ञाजगदानन्दाभ्यां नमः गलपृष्ठे।
४५. ॐ क्लीं वं रमणीनर्तकाभ्यां नमः वामस्कन्धे।
४६. ॐ क्लीं शं कान्तिक्ष्वेलकाभ्यां नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यग्रे।
४७. ॐ क्लीं षं कलकण्ठिकोन्मत्ताभ्यां नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यग्रे।
४८. ॐ क्लीं सं वृकोदरामत्ताभ्यां नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।
४९. ॐ क्लीं हं मेज्याभ्यां नमः हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम्।
५०. ॐ क्लीं ळं श्यामाविलासीभ्यां नमः हृदयादिगुह्यान्तम्।
५१. ॐ क्लीं क्षं सर्वोत्तमालोभवर्धनाभ्यां नमः हृदयादिमूर्धान्तम्।।२८३-२९५।।

प्राग्वत्पूजादिकं तद्वत्कृष्णपीठे समर्चयेत्।
प्रयोगाश्चापि कर्त्तव्याः कृष्णगोपालसम्भवाः ।।२९६।।
त्रयोदश्यां शुक्लपक्षे सोमवारे सहस्रकम्।
अष्टोत्तरं च ताम्बूलं गजपुष्करभक्षितम् ।।२९७।।
पुरुषत्वमवाप्नोति सत्पुत्रं द्रावयेत्प्रियाम्।

तदनन्तर कृष्णपीठ पर पूर्ववत् पूजन आदि करके सम्यक् रूप से काम का अर्चन करना चाहिये। इसके पश्चात् कृष्णगोपाल-संभव प्रयोगों का अनुष्ठान करना चाहिये। शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को जब सोमवार हो तब एक हजार आठ ताम्बूलपत्रों को हाथी के सूँड़ द्वारा भक्षण करने से भोक्ता को पुरुषत्व की प्राप्ति होती है और उसकी पत्नी सत्पुत्र को जन्म देती है।।२९६-२९७।।

अथ कामस्य गायत्री प्रोच्यते पूजनादिकम्।
संन्यास एकाक्षरवन्मुनिर्वात्स्यायनो मतः ।।२९८।।
कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि।
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् ।।२९९।।
षणववतिसहस्राणि जपोऽस्य परिकीर्त्तितः।
सर्वान् कामानवाप्नोति परत्रापि च सद्गतिम् ।।३००।।

अब पूजनादि के लिये कामगायत्री को कहता हूँ। एकाक्षर मन्त्र के सदृश इसका न्यास किया जाता है एवं इसके ऋषि वात्स्यायन कहे गये हैं। कामगायत्री है— कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्। मन्त्र के छियानवे हजार

जप से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है। इस मन्त्र की सिद्धि हो जाने पर साधक इस लोक में अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है एवं दूसरे लोक में भी उसे सद्गति की प्राप्ति होती है।।२९८-३००।।

प्रथमन्तु गणेशेन दिवोदासमहीपतेः।
अन्तःपुरे प्रेषितोऽयं नारीणां हृदयं गतः ॥३०१॥
अपास्य च ततो धर्म्मं राज्ञो हृदयमाविशत्।
मन्दधर्मः शापितो यस्तदा काश्या विवासितः ॥३०२॥
तस्माद् गणेशादन्येन कामो मत्तोऽपि चापरः।
विष्णुः काममयो यस्मात्तस्मात्कामः सतां गतिः ॥३०३॥
अन्तःपुरे गते कामे दिवोदासस्य तेजसा।
दन्दह्यमानो गणपस्तत्सहायार्थमुद्यतः ॥३०४॥
तदा ध्यात्वा महाकालं महामायां च शाश्वतीम्।
तदा तयोः प्रभावेण दृष्टवान्परमं पतिम् ॥३०५॥

सर्वप्रथम गणेश द्वारा भेजा गया यह काम राजा दिवोदास के अन्त:पुर में जाकर उसकी रानियों के हृदय में प्रवेश गया और वहाँ से धर्म को दूर करने के उपरान्त राजा के हृदय में प्रविष्ट हो गया; फलस्वरूप वह धर्म के प्रति उदासीन हो गया और उसे शाप देकर काशी से बहिष्कृत कर दिया गया। इसके बाद गणेश द्वारा प्रेषित काम ने दूसरे विलक्षण लोगों को भी मत्त कर दिया। क्योंकि विष्णु भी काममय हो गये, इसलिये काम सज्जनों की अन्तिम गति हो गया। अन्त:पुर में गया हुआ काम दिवोदास के तेज से जब दग्ध होने लगा तब उसकी सहायता-हेतु गणेश प्रयत्नशील हुये और महाकाल एवं शाश्वती (पृथिवीरूपी) महामाया का ध्यान करके उन दोनों के प्रभाव से उन्होंने परमपति को देखा।।३०१-३०५।।

तस्मिन्नुदभवत्काचिद्वर्णाली ब्रह्मवादिनः।
तामेव च जपंस्तस्थौ वर्षमात्रं विमुक्तितः ॥३०६॥
मणिकर्णिकातटे तस्य सिद्धयः समुपस्थिताः।
तदा ख्यातः काशिकायामसौ सिद्धिविनायकः ॥३०७॥
सिद्धये स मनुष्याणां नानारूपधरो भवेत्।
लोभद्वेषादिकान् सर्वान् वासयामास तत्र तु ॥३०८॥
स मन्त्रः केवलं कोलवाचको मोक्षदायकः।
यत्प्रसादाद्दिवोदासो गुप्तसेनः प्रपञ्चितः ॥३०९॥

तस्मात्प्रपञ्चमन्त्रोऽयं तन्त्रेषु प्रकटीकृतः।
उद्धारार्थमविप्राणां गायत्र्येषा मयोदिता ॥३१०॥

उसमें से ब्रह्मा के वर्णों की एक पंक्ति (मन्त्र) उद्भूत हुई और वे गणेश सबकुछ त्याग कर मणिकर्णिका के तट पर बैठकर उसी वर्णपंक्ति का जप करते रहे; फलस्वरूप उनकी सिद्धियाँ उपस्थित हो गईं और उसी समय से वे गणेश सिद्धिविनायक के नाम से काशी में प्रसिद्ध हो गये। सिद्धि प्रदान करने के लिये उन सिद्धिविनायक ने अनेकों मनुष्यों का रूप धारण किया एवं वहाँ पर लोभ-द्वेष आदि सभी को प्रतिष्ठित कर दिया। वह मन्त्र केवल कोलों को मुक्ति प्रदान करने वाला था, जिसकी कृपा से गुप्तसेन दिवोदास ने अपना विस्तार किया। इसीलिये तन्त्रग्रन्थों में प्रपञ्चमन्त्र के रूप में इसे प्रकट किया गया और ब्राह्मणातिरिक्त लोगों के उद्धार-हेतु यह गायत्री में कही गई है।।३०६-३१०।।

सर्वेऽपि मन्त्रा भो देवा देवसायुज्यकारकाः।
तस्य चान्तर्गताः पञ्च मन्त्रा येभ्यो मया कृतः ॥३११॥
पञ्चाम्नायस्य विषयस्तं मन्त्रं कथयाम्यथ।
महाकालस्य यो वाची स आदौ प्रणवो मनुः ॥३१२॥
माहामायावाचिका तु हृल्लेखा परिकीर्तिता।
जीववाची हंस इति द्व्यक्षरोऽयं तृतीयकः ॥३१३॥
जीवकर्म्मच्छेदकरं ज्ञानं यत्प्रोच्यते बुधैः।
स एव सोऽहमिति चेद् द्व्यर्णो मन्त्रश्चतुर्थकः ॥३१४॥
यस्मात्प्रपञ्च उद्भूतो देवतृप्तिकरश्च यः।
स स्वाहा द्व्यक्षरो मन्त्रः पञ्चमः परिकीर्त्तितः ॥३१५॥
एवमष्टाक्षरश्चायं मन्त्रराजो निरूपितः।

हे देवताओं! समस्त मन्त्र देवता का सायुज्य प्रदान करने वाले हैं; उनमें से पाँच मन्त्रों को मैंने बनाया है। वे पाँचो मन्त्र पाँच आम्नायों से सम्बद्ध हैं। अब उन मन्त्रों को मैं कहता हूँ। जो महाकाल का वाचक है, वह प्रणव (ॐ) प्रथम मन्त्र है। द्वितीय मन्त्र 'ह्रीं' है, जो कि महामाया का वाचक है। जीववाची द्व्यक्षर 'हंसः' मन्त्र तृतीय स्थानस्थ है। चतुर्थ मन्त्र 'सोऽहम्' है, जो कि विद्वानों द्वारा जीव के कर्मों का उच्छेद (विनाश) करने वाला एवं ज्ञानस्वरूप है; यह दो अक्षरों वाला है। जिससे इस समस्त प्रपञ्च की उत्पत्ति हुई है और जो देवताओं को तृप्ति प्रदान करने वाला है, वह दो अक्षरों वाला 'स्वाहा' मन्त्र पाँचवाँ है। इस प्रकार यह मन्त्रराज (ॐ ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा) आठ अक्षरों वाला कहा गया है।।३११-३१५।।

यतो ब्रह्मा प्रपञ्चादिः स एवास्य मुनिः स्मृतः ॥३१६॥
गायन्तं त्रायते यस्माद्गायत्रं छन्द ईरितम्।
यस्मादपि स एकोऽपि तेजसोऽन्तो न विद्यते।
परम्पदेन यत्प्रोक्तं परं ज्योतिश्च देवता ॥३१७॥
आदौ तु मातृकान्यासः केवलं प्रथमं स्मृतः।
सबिन्दुमातृकान्यासो द्वितीयः परिकीर्त्तितः ॥३१८॥
कलादिमातृकान्यासस्तृतीयः परिकीर्त्तितः।
केशवादिकमातृणां चतुर्थो न्यास उच्यते ॥३१९॥
शिवशक्त्यात्मको न्यासः पञ्चमोऽत्र समीरितः।
मायाबीजादिकः षष्ठो मातृकान्यास उच्यते ॥३२०॥
श्रीबीजादिकमातृणां सप्तमो न्यास उच्यते।
मातृकाकामबीजाद्यास्तन्न्यासश्चाष्टमो मतः ॥३२१॥
नवमो ह्रींरमाकामबीजपूर्वास्तु मातृकाः।
प्रपञ्चपूर्वाणां मन्त्रो मातृणां दशमः स्मृतः ॥३२२॥
व्यापकत्वाच्च कालस्य न ध्यानं न च पूजनम् ॥३२३॥

यतः इस जगत्प्रपञ्च के आदिपुरुष ब्रह्मा हैं; अतः वे ही इस मन्त्र के ऋषि कहे गये हैं। जिसका गान करने से त्राण (रक्षा) होता है, वह गायत्री इस मन्त्र का छन्द है। जो एक ही है और जिसके तेज का कोई अन्त नहीं है, जो 'परं' पद से कहा गया है, वह परंज्योति ही इस मन्त्र का देवता है। इसका प्रथम न्यास केवल मातृकाक्षरों से एवं द्वितीय न्यास सानुस्वार मातृकाक्षरों से करना चाहिये। तृतीय स्थान पर कलामातृका न्यास होता है एवं उसके बाद चतुर्थ केशवादि मातृका न्यास किया जाता है। पञ्चम न्यास शिव-शक्त्यात्मक होता है। मातृकाओं के पूर्व 'ह्रीं' लगाकर षष्ठ न्यास एवं मातृकाओं के पूर्व 'श्रीं' बीज लगाकर सप्तम न्यास किया जाता है। मातृकावर्णों के पूर्व कामबीज 'क्लीं' लगाकर अष्टम न्यास होता है। मातृकाक्षरों के पूर्व 'श्रीं ह्रीं क्लीं' इन तीनों बीजों को लगाकर नवम न्यास किया जाता है एवं मातृकाओं के साथ प्रपञ्चमन्त्र (ॐ ह्रीं हंसः सोहं स्वाहा) को संयुक्त कर दशम न्यास किया जाता है। काल के सर्वव्यापी होने के कारण इसका ध्यान और पूजन नहीं किया जाता।

लक्षाष्टकं मनोरस्य पुरश्चरणमुच्यते।
उग्रताराद्यतिक्रूरस्तारादिश्चैव साधकः ॥३२४॥
अनेन पुटितो जप्तो वर्णलक्षमितो यदि।

आगत्य मन्त्रदेवस्तु जायते साध्यकिङ्करः ।
महाकालप्रभावेण स्वर्गिभ्यो नान्यथा भवेत् ॥३२५॥

इस मन्त्र का पुरश्चरण आठ लाख जप से कहा गया है। साधक यदि उग्रतारा और अतिक्रूरतारा से पुटित करके इस मन्त्र का वर्णलक्ष संख्या में जप करता है तो मन्त्र के देवता स्वयं उपस्थित होकर यथासम्भव साधक के दास हो जाते हैं। महाकाल के प्रभाव से वह स्वर्गस्थ देवताओं के समान हो जाता है।।३२४-३२५।।

समिधस्तु वटप्लक्षपिप्पलोदुम्बरोद्भवाः ।
तिलसिद्धार्थाज्यहविर्होमद्रव्याष्टकं मतम् ॥३२६॥

वर, पाकड़, पीपल एवं गूलर की समिधा तथा तिल, सरसों, गोघृत और हवि (खीर)—ये आठ हवन-द्रव्य कहे गये हैं।।३२६।।

होमार्थं पूजयेद्विप्रान् सिद्धमन्त्रस्ततो भवेत् ।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्य्याणि प्रयोगः कथ्यतेऽधुना ॥३२७॥
दशायुतं विधानेन तदर्धमथवा पुनः ।
कार्य्यस्यैवानुसारेण हुनेद् द्रव्याष्टकेन च ॥३२८॥
चौरशत्रुभयव्याधिसर्पराक्षसदोषतः ।
चतुःशतं तदर्धं वा तदर्धं वा हुनेत्ततः ॥३२९॥
क्षुद्ररोगेषु जातेषु तत्तद्दोषानुसारतः ।
रससङ्ख्यासहस्राणि हुनेद् द्रव्याष्टकेन च ॥३३०॥
एतद् द्विगुणतश्चाथ चतुर्गुणत एव वा ।
भूतावेशग्रहावेशकृत्यादीन् सुविनाशयेत्॥३३१॥

हवन करने के लिये पहले ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये; ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और इस सिद्ध मन्त्र के द्वारा किये गये सभी कार्य भी सिद्ध होते हैं।

अब प्रयोगों को कहता हूँ। विधानपूर्वक एक लाख अथवा पचास हजार अथवा कार्य की गुरुता-लघुता के अनुसार उससे भी कम या अधिक उपर्युक्त आठ द्रव्यों से हवन करना चाहिये। चोर अथवा शत्रु-भय, रोगभय, सर्पभय अथवा राक्षसभय की स्थिति में दोषानुसार चार सौ, दो सौ अथवा एक सौ हवन करना चाहिये। क्षुद्र रोगों के होने पर उनके दोष के अनुसार उक्त द्रव्याष्टक से छः हजार हवन करना चाहिये। इसी प्रकार भूतावेश की दशा में बारह हजार एवं ग्रहावेश अथवा कृत्या आदि का दोष उपस्थित होने पर चौबीस हजार की संख्या में हवन करने पर निश्चित ही उन सबका विनाश हो जाता है।।३२७-३३१।।

शास्त्रोक्तं तु क्रमं हित्वा जपपूजादिकृत्तु यः।
वामे वा कौलिके मार्गे ग्रस्यते भैरवादिभिः॥३३२॥
स्मृतिभ्रंशो भवेद्यस्य होमद्रव्याष्टकेन च।
सहस्रसङ्ख्यहोमेन स्वप्नो भवति तत्क्षणात्॥३३३॥
प्रत्येकं द्विसहस्रं यो हुनेद् द्रव्याष्टकेन च।
अपस्मारं स्मृतिभ्रंशं शोषदोषं स नाशयेत्॥३३४॥
द्रव्याष्टकं त्रिमध्वक्तं हुनेत्तस्य तु भोग्यतः।
देवेन्द्रस्य महालक्ष्मीस्तल्लक्ष्म्या लज्जतेतराम्॥३३५॥
लक्षं लक्षार्धकं वापि त्रिमध्वक्तं तु यो हुनेत्।
द्रव्याष्टकं त्रिवर्षार्वाक् तस्य लोकत्रयं वशे॥३३६॥
वश्यादिसाधनं प्रोक्तं त्विह द्रव्याष्टकेन च।
वृद्ध्यादिकं विजानीयाद्धोमं तं कार्य्यगौरवात्॥३३७॥

जो साधक वाममार्ग अथवा कौलमार्ग में शास्त्रविहित क्रम का त्याग करके जप-पूजन आदि करता है, वह भैरव आदि के द्वारा ग्रसित कर लिया जाता है। जिसकी स्मरणशक्ति क्षीण हो जाती है, उसे उक्त द्रव्याष्टक से एक हजार हवन करने पर तत्क्षण स्वप्न होता है। जो साधक द्रव्याष्टक के प्रत्येक द्रव्य से दो-दो हजार हवन करता है, वह अपस्मार, स्मृतिभ्रंश एवं शोषदोष का विनाश कर देता है। त्रिमधु (घृत, मधु, शक्कर) से सिक्त द्रव्याष्टक से जो हवन करता है, उसकी लक्ष्मी के समक्ष देवेन्द्र की महालक्ष्मी भी लज्जित हो जाती है। जो साधक तीन वर्षों तक त्रिमधु-सिक्त द्रव्याष्टक से प्रतिदिन एक लाख अथवा पचास हजार की संख्या में हवन करता है, उसके वश में तीनों लोक हो जाता है। इन आठ द्रव्यों से वश्यादि के साधन में कार्य की गुरुता-लघुता के अनुसार हवन की संख्या में वृद्धि या न्यूनता करनी चाहिये।

शुद्धैस्तिलैस्तु लक्षं यो होमं कुर्य्याद्यथाविधि।
महापापानि तस्याशु प्रलयं यान्ति नान्यथा॥३३८॥
लक्षं कमलहोमेन महालक्ष्मीः प्रजायते।
हविष्यैः पुष्टिदो होमो घृतहोमो यशस्करः॥३३९॥
मालतीपुष्पहोमोऽपि सर्ववश्यप्रदो भवेत्॥३४०॥
सामुद्रं लवणं हुत्वा तथा वश्यं प्रसाधयेत्।

जो विधिपूर्वक शुद्ध तिल से एक लाख की संख्या में हवन करता है, उसके अत्युत्कट पाप भी शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं। कमल के फूलों से एक लाख हवन

करने पर अपार धन प्राप्त होता है। खीर से किया गया हवन पुष्टि प्रदान करता है एवं घृत से किया गया हवन यश:प्राप्ति कराता है। मालती के फूलों से किया गया हवन वश्यप्रद होता है। सामुद्रिक नमक से हवन करने पर भी वशीकरण होता है।

अथ शालिसमुद्भूतांस्तण्डुलान् साधु चूर्णयेत् ॥३४१॥
मधुरत्रयसंयुक्ततच्चूर्णेनैव साधकः ।
साध्यप्रतिकृतिं कुर्य्यात्सम्यक्सम्पूज्य तां स्पृशेत् ॥३४२॥
प्राणस्थापनमन्त्रन्तु जपेत्साष्टशतं ततः ।
विभज्य जुहुयान्मन्त्री तां न्यासक्रमतो निशि ॥३४३॥
सप्तरात्रं प्रकुर्वाणो नरं वा स्त्रियमेव वा ।
वशीकरोति सोऽप्येवं नात्र कार्य्या विचारणा ॥३४४॥
सामुद्रलवणस्यापि पुत्तल्या फलमीदृशम् ।

साधक द्वारा शालि (जड़हन धान) के चावल के चूर्ण में मधुरत्रय (घृत, मधु, शक्कर) मिलाकर उससे साध्य व्यक्ति अथवा स्त्री की प्रतिमा बनाने के उपरान्त सम्यक् रूप से उसका पूजन करने के पश्चात् उसका स्पर्श करते हुये प्राण-स्थापन मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के बाद उस प्रतिमा का विभाजन करके न्यासक्रम से सात रात्रियों में हवन करने से निश्चित रूप से साध्य वशीभूत हो जाता है। चावलचूर्ण के स्थान पर सामुद्र लवण से प्रतिमा बनाकर उक्त क्रिया करने पर भी उक्त फल की ही प्राप्ति होती है।।३४१-३४४।।

प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन् वटाग्नौ जुहुयाद् घृतम् ॥३४५॥
अष्टोत्तरशतं मन्त्री भासितं पतितं च यत् ।
पूर्णौषधिविपक्वेन पञ्चगव्येन पूरिते ॥३४६॥
चुल्ल्यां संस्थापितेऽधस्ताद्वहिः कुम्भे प्रदापयेत् ।
तावत्सङ्ख्यं च सञ्जप्य गृह्णीयात्सर्वसिद्धिदम् ॥३४७॥
लक्षणाद् गात्रलेपाच्च तिलकक्रियया तथा ।
मस्तके धारणात्सद्यः सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः ॥३४८॥
भूतप्रेतपिशाचादिविषरोगादिनाशनम् ।
सर्ववश्यकरं पुंसां श्रीसौभाग्यजयप्रदम् ॥३४९॥
सहस्रसङ्ख्यके होमे तदानीं गुरवे बुधः ।
पलं पलार्धकं वापि दद्याद्धेम्नो वरस्य च ॥३५०॥
कल्पवृक्षाद्यथा देवा लभन्ते वाञ्छितं फलम् ।
एवं सिद्धिं प्रपञ्चाख्यमन्त्रेण गणपस्य हि ॥३५१॥

तत्सन्निधौ समाजग्मू राजकीया महाजनाः ।
स एव सर्वशास्त्राणां वक्ताऽभूज्जगतो गुरुः ॥३५२॥
विना विप्रान् सर्वजनास्तन्त्रमार्गे प्रकीर्त्तिताः ।

इसके पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक को वट काष्ठ की अग्नि में एक सौ आठ बार घृत से हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् जली हुई एवं बाहर गिरी हुई समिधा तथा पञ्चगव्य के साथ में पूर्णौषधि को एक घड़े में भरकर उस घड़े को चूल्हे पर रखकर चूल्हे में आग जलाकर पाक करना चाहिये। तदनन्तर उसे मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित करने से वह औषधि समस्त प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाली हो जाती है। इस औषधि को शरीर में लगाने से या तिलक लगाने से या धारण करने से सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इसके प्रयोग से भूत-प्रेत, पिशाच, विष, रोग आदि का नाश होता है। इसके माध्यम से सबको वशीभूत किया जा सकता है एवं मनुष्यों को लक्ष्मी, सौभाग्य तथा विजय प्राप्त होता है। एक हजार हवन के बाद साधक को अपने गुरु को एक पल अथवा आधा पल सुवर्ण प्रदान करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिये। जिस प्रकार देवगण कल्पवृक्ष से वाञ्छित फल प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार गणेश के इस प्रपञ्चमन्त्र से साधक सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार की सिद्धि प्राप्त होने पर उस साधक के समीप राजकीय पदाधिकारियों का समागम होने लगा। वह समस्त शास्त्रों का वक्ता होकर जगद्गुरु हो गया और ब्राह्मणों के अतिरिक्त सबको उसने तन्त्रमार्ग में संलग्न कर दिया।।३४५-३५२।।

मकारपञ्चकेनैव जातं सर्वत्र पूजनम् ॥३५३॥
शनैश्शनैः समभवत्पृथिव्यां क्वचिदीदृशः ।
मपञ्चमन्त्रमाहात्म्याद्राजापि भ्रान्तमानसः ॥३५४॥
मन्नाम्ना कल्पितैर्ग्रन्थैः क्षुद्रदेवरता जनाः ।
मपञ्चकस्य सेवातो धर्म्मं पश्यन्ति ते न हि ॥३५५॥
प्राप्नुवन्ति द्रुतं सिद्धिं गणेशस्य प्रभावतः ।
अहो साक्षात्परब्रह्म अहो गुरुपतिस्त्वयम् ।
अहोऽष्टसिद्धिनाथोऽयं सर्वविद्याविशारदः ॥३५६॥
मथित्वा चतुरो वेदानस्मद्भाग्यात्कृपालुना ।
दर्शितः कौलिकः पन्था भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥३५७॥

तन्त्रमार्ग में सर्वत्र पञ्चमकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मदिरा, मैथुन) से ही पूजन किया जाता है। धीरे-धीरे कुछ ऐसा हुआ कि पृथिवी पर मपञ्चक मन्त्र के माहात्म्य

से राजा का मन भी भ्रमित हो गया। क्षुद्र देवताओं की आराधना में संलग्न जन मेरे नाम से कल्पित ग्रन्थों के प्रभाव से पञ्चमकार के सेवन को ही धर्म मानने लगे और गणेश के प्रभाव से शीघ्र सिद्धियाँ प्राप्त करने लगे। वे मानने लगे कि गणेश ही साक्षात् परम ब्रह्म हैं और यही गुरुओं के गुरु हैं। यही आठो सिद्धियों के स्वामी हैं और यही सर्वविद्याविशारद हैं। हमलोगों के भाग्य से ही इस कृपालु के द्वारा चारो वेदों का मन्थन करके भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करने वाले कौलिक मार्ग का प्रवर्तन किया गया है।।३५३-३५७।।

इति नृणां वचः श्रुत्वा जग्मुर्विप्राश्च तं प्रति।
स तेषां सम्यगातिथ्यं कृत्वा तुष्टाव चागमम्।।३५८।।
अहो विप्रा जीवहिंसाप्रधानं यज्ञकर्म्म तु।
न कर्तव्यो गुरुप्रोक्तो यज्ञो यागो मपञ्चकः।।३५९।।
तपश्चापि न कर्तव्यमात्मा दुःखी प्रजायते।
तान्त्रिकं कर्म्म कर्तव्यं वैदिकं न कदाचन।।३६०।।
वैदिकाः पशवः प्रोक्ता जीवन्मुक्तास्तु तान्त्रिकाः।
कुर्वन्त्याभ्यन्तरं कर्म्म तत्त्वमेतद्विचार्य्यताम्।।३६१।।
यद्दीयते प्राप्यते तद्वेदशास्त्रादिसम्मतम्।
दुःखं यदात्मनो दत्त्वा कथं सौख्यं प्रलभ्यते।।३६२।।
सुखबीजेन संसाध्यं महत्सौख्यं द्विजोत्तमाः।
तस्माल्कौलं समासाद्य लोकद्वयसुखप्रदम्।
मुक्ता भवन्तु भो विप्रास्त्यज्यतां वेदकर्म्म तत्।।३६३।।
जातानि बहुवर्षाणि चाहोरात्राणि कुर्वताम्।
काचिद् दृष्टा तत्र सिद्धिः प्रत्यक्षं दृश्यतामिदम्।।३६४।।
प्राणाग्निहोत्रं तन्त्रोक्तं कर्म्म षट्कप्रकाशितम्।
त्यक्त्वा तदग्निहोत्रन्तु चर्य्यतां दृश्यतामिदम्।।३६५।।
इति तद्वचनं श्रुत्वा सरस्वत्या विमोहिताः।
त्यक्त्वाखिलं वेदमार्गं प्रविष्टा वामकौलयोः।।३६६।।

लोगों के इस प्रकार के वचनों को सुनकर विप्रगण भी उसके पास गये और उसने आये हुये उन विप्रों का सत्कार करके उन्हें प्रसन्न किया। उसने कहा कि हे विप्रों! जीवहिंसा-प्रधान यज्ञकर्म कभी नहीं करना चाहिये; अपितु गुरु-प्रोक्त पञ्चमकार का सेवन ही वास्तविक यज्ञ होता है। तपस्या भी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उससे आत्मा

को दुःख होता है। तान्त्रिक कर्म ही करना चाहिये, वैदिक कर्म कदापि नहीं करना चाहिये। वैदिकों को पशु और तान्त्रिकों को जीवन्मुक्त कहा गया है। वे तान्त्रिक आभ्यन्तर कर्म करते हैं, इस तत्त्व को आप सब समझें। शास्त्रों का यह मत है कि जो दिया जाता है, वही प्राप्त होता है; फिर स्वयं को दुःख देकर सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है? हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों! सुख के बीज से ही महासुख का साधन किया जा सकता है; इसलिये दोनों लोकों में सुख प्रदान करने वाले कौलिक मार्ग को अपनाकर आप सब भी मोक्ष प्राप्त करें। हे विप्रों! आप सब उस वैदिक कर्म का त्याग कर दें, जिसका बहुत वर्षों तक दिन-रात अनुष्ठान करते रहने पर किसी-किसी को सिद्धि प्राप्त होती दिखाई देती है; जबकि यहाँ सिद्धि प्रत्यक्ष हो जाती है। वैदिक कर्म में कथित अग्निहोत्र का त्याग करके आप सब तन्त्रोक्त षट्कर्म-गत प्राणाग्निहोत्र का आचरण करें। इस प्रकार के उसके वचनों को सुनकर सरस्वती द्वारा सम्मोहित उन विप्रों ने भी वेदमार्ग का पूर्णतः परित्याग कर दिया और वे सभी वाम तथा कौलमार्ग में प्रविष्ट हो गये।।३५८-३६६।।

प्राणाग्निहोत्रकथनम्

प्राणाग्निहोत्रं प्रवक्ष्यामि गणेशेन प्रदर्शितम्।
ज्ञानिनां त्वरिता सिद्धिरन्येषां पतनं द्रुतम्।
उपविष्टः प्रसन्नात्मा प्राङ्मुखः स्थिरमानसः।
अतिमृद्वासनं बद्ध्वा पद्मासनमृजुर्भवेत्।।३६७।।
शक्तिरूपात्मकं चिन्त्यं मूलाधारे त्रिकोणकम्।
मायाबीजन्तु तन्मध्ये चिन्तनीयं गुणात्मकम्।।३६८।।
प्राग्रकोणात्त्रिकोणेषु त्रिकोणांस्त्रीन् विचिन्तयेत्।
हकारं चापि तन्मध्ये ध्यायेत्सत्त्वगुणात्मकम्।।३६९।।
हकारान्तर्गतं ज्योतिश्श्वेतो भास्करसन्निभम्।
सात्त्विकेन हकारेण वेष्टितं तच्च चिन्तयेत्।।३७०।।
स हकारो राजसेन ईकारेण समन्वितः।
तामसेन तु रेफेण समाक्रान्तन्तु तद्द्वयम्।।३७१।।

प्राणाग्निहोत्र—अब मैं गणेश द्वारा प्रदर्शित प्राणाग्निहोत्र को कहता हूँ, जिससे ज्ञानियों को सद्यः सिद्धि प्राप्त होती है एवं दूसरे लोगों का पतन होता है। स्थिरचित्त होकर प्रसन्न मन से पूर्व दिशा की ओर मुख कर अत्यन्त कोमल आसन पर पद्मासन लगाकर सीधा बैठ जाना चाहिये। इसके बाद मूलाधार में शक्तिरूपात्मक त्रिकोण का

चिन्तन करते हुये उसके मध्य में त्रिगुणात्मक मायाबीज 'ह्रीं' का चिन्तन करना चाहिये। फिर अपने सामने वाले कोण से प्रारम्भ करके त्रिकोण के अन्य कोणों में तीन गुणों का चिन्तन करना चाहिये। पहले कोण के मध्य में सत्त्वगुणात्मक हकार अवस्थित है; उस हकार के अन्दर प्रखर सूर्य के समान दीप्तिमान ज्योति विराजमान है। वह ज्योति सात्त्विक हकार से वेष्टित है—ऐसा चिन्तन करना चाहिये। वह हकार राजस ईकार से समन्वित है और वे दोनों (हकार एवं ईकार) तामस रकार से सम्यक् रूप से आक्रान्त हैं।।३६७-३७१।।

मूलाधार इति ध्यात्वा पञ्चकुण्डानि तत्र तु।
मध्ये प्राच्यां प्रतीच्यां च कौबेर्य्यां दक्षिणे तथा ।।३७२।।
सर्वदा ज्वलदग्नीनि तानि कुण्डानि भावयेत्।
मध्यादिपूर्वतस्तत्र ज्ञेयाः पञ्चाग्नयो ह्यमी ।।३७३।।
आवसथ्यश्च सत्यश्च गार्हपत्यो हुताशनः।
तथा चाहवनीयोऽग्निरन्वाहार्य्यश्च पञ्चमः ।।३७४।।
प्रभाजालनिदानांश्च ज्ञानरूपान्निरञ्जनान्।
द्वादशान्तःस्थितांस्तांश्च कल्पादित्यान् विचिन्तयेत् ।।३७५।।

मूलाधार में मध्य, पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में स्थित पाँच कुण्डों की कल्पना करके यह भावना करनी चाहिये कि उन पाँचों कुण्डों में सदैव अग्नि प्रज्वलित रहती है। वहाँ मध्य से आरम्भ कर क्रमशः पाँचों कुण्डों में ये पाँच अग्नियाँ अवस्थित रहती हैं—मध्य कुण्ड में आवसथ्य अग्नि, पूर्व कुण्ड में सत्य अग्नि, पश्चिम कुण्ड में गार्हपत्य अग्नि, उत्तर कुण्ड में आहवनीय अग्नि एवं दक्षिण कुण्ड में अन्वाहार्य अग्नि। ये सभी अग्नियाँ प्रज्वलित किरणों से बँधी हुई, ज्ञानस्वरूप एवं निष्कलङ्क हैं। द्वादशान्त में स्थित उन अग्नियों का कल्पादित्य के समान चिन्तन करना चाहिये।

मातृकार्णानाज्यरूपान्व्यत्ययात्तत्र होमयेत्।
त्रं क्षं हं सं षमिति तु ज्ञेया वर्णाश्च पञ्च च ।।३७६।।
ध्येया मरकतप्रख्याः शास्त्रदिज्ञानकारकाः।
शं वं लं रं यं च ध्येयाः पञ्च गोमेदसन्निभाः।
सैंहिकेयस्य पञ्चैते संग्रामे विजयप्रदाः ।।३७७।।
मं भं बं फं पमिति च वर्णाः पञ्च शनेर्मताः।
नीलेन्द्रेण समा ध्येया मन्त्रसिद्धिप्रदायकाः ।।३७८।।
नं धं दं थं तमिति च ध्येया विद्रुमसन्निभाः।
भौमस्यैते द्यूतकलिराजद्वारेषु सिद्धिदाः ।।३७९।।

णं ढं डं ठं टमित्येते वर्णाः शुक्रस्य कीर्त्तिताः।
चिन्तनीया वज्रनिभा यात्राकार्य्यशुभङ्कराः ॥३८०॥
ञं झं जं छं चमिति च पुष्परागसमत्विषः।
गुरोरेते विवाहादिकार्य्यादिषु सुशोभनाः ॥३८१॥
ङं घं गं खं कमित्येते ध्येया वैदूर्य्यसन्निभाः।
केतोरेते शत्रुनाशकरा ध्येया मनीषिभिः ॥३८२॥
अः अं औं ओं च ऐं ए च ऌं ॡं मौक्तिकसन्निभाः।
ॠं ऋं ऊं उं च ईं इं आं अं चैतेऽर्कसन्निभाः।
वर्णा हीरकसंकाशा राजकार्य्यकरा इमे ॥३८३॥
एवं ध्यात्वा सखेटार्णांस्ततो होमं समाचरेत्।

वहाँ पर आज्यरूपी मातृकाओं का विपरीतक्रम से हवन करना चाहिये। उन विपरीतमातृकाओं में से त्रं क्षं हं सं षं—इन पाँच मातृकाओं का ध्यान मरकतरूप में करना चाहिये। ये पाँचों मातृकायें शास्त्रादि का ज्ञान कराने वाली होती हैं। इसके बाद शं वं लं रं यं—ये पाँच मातृकायें गोमेद के समान हैं। राहु की ये पाँचों मातृकायें युद्ध में विजय प्रदान करने वाली कही गई हैं। मं भं बं फं पं—ये पाँच शनि की मातृकायें कही गई हैं। इनका वर्ण नीलम के समान जानना चाहिये और ये मन्त्रों की सिद्धि प्रदान करने वाली कही गई हैं। विद्रुम (मूँगे) के समान वर्ण वाली भौम की मातृकायें नं धं दं थं तं हैं, जो द्यूत, कलह एवं राजदरबार में सिद्धि प्रदान करने वाली हैं। णं ढं डं ठं टं—ये शुक्र की मातृकायें कही गई हैं। ये सभी वज्र अर्थात् हीरे के समान वर्ण वाली तथा यात्रा में शुभ करने वाली हैं। गुरु की मातृकायें ञं झं जं छं चं हैं। ये सभी पुखराज के समान कान्ति वाली हैं तथा विवाहादि कार्यों में शुभ करने वाली हैं। वैडूर्य के समान वर्ण वाली केतु की मातृकायें ङं घं गं खं कं हैं। मनीषियों को इनका ध्यान शत्रुविनाशिका के रूप में करना चाहिये। अः अं औं ओ ऐं एं ऌं ॡं मातृकायें मोतियों के समान तथा ॠं ऋं ऊं उं ई इं आं अं मातृकायें सूर्य-सदृश हैं। ये सभी मातृकायें हीरे के समान वर्ण वाली हैं तथा राजकार्यों को करने वाली हैं। इस प्रकार ग्रहसहित वर्णों का ध्यान करने के उपरान्त हवन करना चाहिये।।३७६-३८३।।

क्षं शं मं नं णं च ञं ङं अः एं ऊं आवसथ्यके ॥३८४॥
लं वं भं धं ढं च झं घं अं ॡं उं सत्यकुण्डके।
हं लं बं दं डं च जं गं औं ॡं ईं जुहुयात्ततः ॥३८५॥
अग्नावाहवनीयाख्ये सं रं फं थं ततश्च ठम्।
छं खं ओं ऋं च इंकारमन्वाहार्य्ये हुनेत्सुधीः ॥३८६॥

षं यं पं तं टं च चं कं ऐं ॠं आं गार्हपत्यके।
क्षकाराद्यान्नकारान्तान् व्यस्तान् वर्णान् क्रमाद् हुनेत् ॥३८७॥

विद्वान् साधक को क्षं शं मं नं णं ञं ङं अ: एं ऊं वर्णों से आवसथ्य अग्नि में, लं वं भं धं ढं झं घं अं ऌं उं वर्णों से सत्य अग्नि में, हं लं बं दं डं जं गं औं ॡं ई वर्णों से आहवनीय अग्नि में, सं रं फं थं ठं छं खं ओं ॠं इं वर्णों से अन्वाहार्य अग्नि में तथा षं यं पं तं टं चं कं ऐं ॠं अं वर्णों से गार्हपत्य अग्नि में हवन करना चाहिये। इसके पश्चात् क्ष से लेकर न तक विखरे वर्णों से क्रमश: हवन करना चाहिये।

तारं मायां च तं वर्णं हंसः सोहं ततः परम्।
स्वाहेत्युक्त्वा प्रोक्तकुण्डे हुनेदेकैकमक्षरम् ॥३८८॥
अकारस्तु परब्रह्मरूपी ध्येयस्ततो हुनेत्।
एवं हुत्वा शब्दजातं सर्वं शास्त्रादिकं हुनेत् ॥३८९॥
आवसथ्याभिधे कुण्डे हंबीजेन गुरूक्तितः।
स्पर्शादिकान् वायुगुणान्यंबीजेनेन्द्रकुण्डके ॥३९०॥
सर्वरूपाणि जुहुयाद्रंबीजेन च पश्चिमे।
वम्बीजेन रसान् सर्वान् हुनेत्कुण्डे तथोत्तरे ॥३९१॥

तार एवं माया (ॐ ह्रीं) के पश्चात् उक्त वर्ण, फिर 'हंस: सोहं स्वाहा' कहकर एक-एक वर्ण से कथित कुण्ड़ में हवन करना चाहिये। 'अ'कार का परब्रह्मरूप में ध्यान करके उससे हवन करना चाहिये। इस प्रकार हवन करने के पश्चात् गुरु से आज्ञा प्राप्त कर शब्दरूपी समस्त शास्त्रों का 'हं' बीज से आवसथ्य कुण्ड में हवन करना चाहिये। वायु गुण वाले स्पर्श आदि वर्णों का पूर्व कुण्ड में 'यं' बीज से हवन करना चाहिये। समस्त रूपों का 'रं' बीज से पश्चिम कुण्ड में हवन करना चाहिये एवं उत्तर कुण्ड़ में समस्त रसों का 'वं' बीज से हवन करना चाहिये।।३८८-३९१।।

लम्बीजेन हुनेत्सर्वान् गन्धान् दक्षिणकुण्डके।
प्रलयानलसङ्काशज्वलदग्निष्वहर्निशम् ॥३९२॥
होमं कुर्वीत कुण्डेषु मातृकावर्णसंयुतम्।
नित्यशुद्धपरानन्दचिद्रूपोऽसौ विराजते ॥३९३॥
ध्रुवय्रज्ञादिकं होमं जपान्तं तत्तु पूर्ववत्।
पञ्चाशत्सङ्ख्यया कृत्वा न्यस्य तावद्यथाविधि ॥३९४॥
जीवन्मुक्तो भवेन्मन्त्री चिरञ्जीवी च जायते।
तेजसा सूर्य्यकल्पोऽसौ कर्ता हर्ता च शम्भुवत् ॥३९५॥

प्रत्यहं विधिनानेन भोजनं कुरुते यदि।
गार्हपत्यादिकुण्डेषु क्रमाद् ग्रासांस्तु होमयेत्।
अथर्वपरिशिष्टोक्तैर्मन्त्रैरेतैस्तु पञ्चभिः ॥३९६॥
गार्हपत्यग्नये हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः।
अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्योर्ध्वं गच्छन्तु स्वाहा ॥३९७॥
अन्वाहार्य्येऽपाने गगनरुचयः पावकाः।
अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्योर्ध्वाधस्तिर्य्यग्गच्छन्तु स्वाहा ॥३९८॥
आहवनीये व्याने रक्तवर्णाः शुचयः पावकाः।
अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्य तिर्य्यगूर्ध्वाधो गच्छन्तु स्वाहा ॥३९९॥
आवसथ्ये समाने सुप्रभावर्णाः शुचयः पावकाः।
अग्निं विहृत्यात्मानमुपचर्य्य तिर्य्यगूर्ध्वाधस्समं गच्छन्तु स्वाहा ॥४००॥

सभी गन्धों का 'लं' बीज से दक्षिण कुण्ड में हवन करना चाहिये। प्रलयानल के समान अहर्निश ज्वलित अग्नि वाले कुण्डों में मातृकावर्णों से युक्त बीजों से हवन करना चाहिये। ऐसा करने से वह साधक नित्य शुद्ध परानन्द चिद्रूप होकर सुशोभित होता है। तदनन्तर जप के अन्त में पूर्ववत् पचास की संख्या में ध्रुवयज्ञादिक होम करके यथाविधि उतना ही न्यास करना चाहिये। ऐसा करने से साधक जीवन्मुक्त होकर चिरंजीवी हो जाता है। वह सूर्य के समान तेज से युक्त हो जाता है एवं शिव के समान कर्ता-हर्ता हो जाता है। इस विधि से यदि प्रतिदिन भोजन करता है तो गार्हपत्यादि कुण्डों में अथर्वपरिषिष्ट में पठित 'गार्हपत्यग्नये.........समं गच्छन्तु स्वाहा' इन पाँच मन्त्रों से क्रमशः पाँच ग्रासों का हवन करना चाहिये।।३९२-४००।।

एवं होमं विधायाथ मन्त्रमेतमुदीरयेत्।
एवं भावनया सर्वमश्नीयादुच्यते मनुः ॥४०१॥
अहं वैश्वानरो भूत्वा जुहोम्यन्नं चतुर्विधम्।
पञ्चमेन विधानेनोर्ध्वाधस्तिर्य्यक्षु गच्छतु ॥४०२॥
स्वाहान्तोऽयं चतुस्त्रिंशद्वर्णमन्त्र उदाहृतः।
तूष्णीं होमं विधायाथ संस्कृतान्नेन मन्त्रवित् ॥४०३॥
अमृतेत्यादिमन्त्रेण पीत्वा च चुलुकोदकम्।
आचम्य विधिना पश्चाच्छुद्धाचमनमाचरेत् ॥४०४॥
मूलाधारं समारभ्य द्वादशान्तावधि स्मरेत्।
जीवात्मानं जगद्व्याप्तं नित्यमेकमनन्यगम् ॥४०५॥

है। इस प्रकार विप्रों को उद्बोधित करके उनसे वाममार्ग को कहा। साथ ही ज्ञातृओं (उद्बुद्ध जनों) को भुक्ति-मुक्ति प्रदान करने वाले अनेक मन्त्रों के द्वारा उन्हें शिष्य बनाया।।४०९-४१९।।

वाग्वादिनीमन्त्रकथनम्

शक्तित्रयात्मको मन्त्रो वाग्वादिन्याः प्रकीर्त्यते।
प्रणवं वदयुग्मं च वाग्वादिनि पदं वदेत्।।४२०।।
ह्रीं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनीति महाक्षोभं वदेत्कुरु।
सौरुक्त्वा मोक्षमुच्चार्य्य कुरुष्व प्रणवं वदेत्।।४२१।।
वाग्वादिन्या मनुः प्रोक्त एकोनत्रिंशदक्षरः।
नवभिश्च नगैर्बाणैर्जायतेऽस्य मनुत्रयम्।।४२२।।
ब्रह्मादीनां त्रयाणां तु वाग्देव्यस्तत्र देवताः।
उत्पत्तिस्थितिनाशानां कारिकास्ताः प्रकीर्तिताः।।४२३।।
नास्याः पूजा न च ध्यानं न च्छन्दो न च किञ्चन।

वाग्वादिनी मन्त्र—अब वाग्वादिनी के शक्तित्रयात्मक मन्त्र को कहा जा रहा है। वाग्वादिनी का उनतीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ वद वद वाग्वादिनि ह्रीं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि महाक्षोभं कुरु सौः मोक्षं कुरुष्व ॐ। इसके नव, सात और पाँच अक्षरों से तीन मन्त्र (१. ॐ वद वद वाग्वादिनि, २. ह्रीं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि एवं ३. सौः मोक्षं कुरु) बनते हैं। इसमें पहले मन्त्र के देवता ब्रह्मा, दूसरे के विष्णु और तीसरे के शिव हैं। ये उत्पत्ति, स्थिति और विनाशकारक कहे गये हैं। इस मन्त्र का पूजन, ध्यान, छन्द आदि कुछ भी नहीं होता।।४२०-४२३।।

गणेशस्य प्रसादेन वर्णलक्षजपाद् द्रुतम्।।४२४।।
वाक्सिद्धिं समवाप्नोति कार्य्योत्पत्त्यादिकं हृदि।
चिन्तयित्वा तथा मन्त्रखण्डं जप्त्वा वदेत्सकृत्।।४२५।।
तदा सा भारती सत्या शापानुग्रहवादिनी।
मौनादस्य स्थिरा सिद्धिरशक्तौ मितभाषणात्।।४२६।।

इस मन्त्र का वर्णलक्ष (उनतीस लाख) जप करने पर गणेश की कृपा से शीघ्र ही वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। कार्य की उत्पत्ति-स्थिति-विनाश का हृदय में चिन्तन करके मन्त्रखण्ड का जप कर कोई एक वाक्य बोलने पर शापानुग्रहवादिनी वह वाणी सत्य हो जाती है। आशय यह है कि प्रथम मन्त्रखण्ड (ॐ वद वद वाग्वादिनि) के साथ 'उत्पत्तिं कुरु' का, द्वितीय मन्त्रखण्ड (ह्रीं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि) के साथ 'स्थितिं

कुरु' का एवं तृतीय मन्त्रखण्ड (सः मोक्षं कुरु) के साथ 'विनाशं कुरु' का मन में चिन्तन करना चाहिये। मौन रहने से अथवा मितभाषण से इस मन्त्र की सिद्धि स्थिर रहती है।।४२४-४२६।।

ततः प्रोक्ता गणेशेन त्रिंशद्व्याख्या तु भैरवी।
वद वद वाग्वादिनि ऐमित्येको नवाक्षरः ॥४२७॥
क्लिन्ने क्लेदिनि इत्युक्त्वा महाभागे वदेत्कुरु।
भैरवी देवता चात्र वर्णलक्षजपो भवेत् ॥४२८॥
न च पूजादिकं न्यासा मपञ्चकनिषेवणम्।
केवलं सिद्धये प्रोक्तं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥४२९॥
ज्ञातं यैर्गुरुमार्गेण सिद्धास्ते नात्र संशयः।
एताभ्यामेव मन्त्राभ्यां बहवः कौलिकाः कृताः ॥४३०॥

तदनन्तर गणेश द्वारा भैरवी की तीस प्रकार से व्याख्या की गई। उसमें से एक नवाक्षर मन्त्र है—'वद वद वाग्वादिनि ऐं' एवं दूसरा मन्त्र है—'क्लिन्ने क्लेदिनि महाभागे कुरु'। इन दोनों मन्त्रों के देवता भैरवी हैं तथा वर्णलक्ष इनका जप किया जाता है। इन मन्त्रों के अनुष्ठान में न्यास-पूजा आदि का विधान नहीं है; अपितु इनकी सिद्धि के लिये मात्र पञ्चमकार के सेवन का ही विधान है, जो कि सभी तन्त्रों में गुप्त है। इसका ज्ञान जिनको गुरुमार्ग से हो जाता है, वे निश्चित रूप से सिद्ध हो जाते हैं। इन्हीं दोनों मन्त्रों के द्वारा अनेकों कौलिकों ने सिद्धि प्राप्त की है।।४२७-४३०।।

अथ वक्ष्ये विप्रगोप्यां देवीं त्रिपुरभैरवीम्।
कौलिके वाममार्गे च सिद्धान्ते द्रुतसिद्धिदाम् ॥४३१॥
हकारं च सकारं च रेफमैकारसंयुतम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं वाग्भवं कूटमुच्यते ॥४३२॥
हकारञ्च सकारञ्च ककारञ्च तथा रवौ।
नादबिन्दुसमायुक्ते ईकारे योजयेत्तदा।
पञ्चवर्णात्मकं कूटं कामराजाभिधं मतम् ॥४३३॥
हकारञ्च सकारञ्च रेफमैकारसंयुतम्।
विसर्गाढ्यं तृतीयन्तु कूटं वर्णत्रयात्मकम् ॥४३४॥
तृतीयबीजे बिन्द्वाढ्यं स्त्रीणामुक्तं न सर्गयुक् ॥४३५॥
आदौ सकारः पश्चाद्धस्त्रिभिः कूटत्रयेऽपि च।
पठनीयस्तथा तासां देयो मन्त्रः सुसिद्धये ॥४३६॥

त्रिपुरभैरवी मन्त्र—अब मैं विप्रों के लिये गोप्य त्रिपुरभैरवी के मन्त्र को कहता हूँ। यह मन्त्र कौलिक मार्ग, वाम मार्ग एवं सिद्धान्त मार्ग में सद्यः सिद्धि प्रदान करने वाला है। संयुक्त हकार, सकार एवं रकार को नादबिन्दु (सानुनासिक स्वर=ँ) से युक्त करने पर निष्पन्न स्वरूप 'ह्स्रैं' वाग्भव कूट कहा जाता है। हकार, सकार, ककार तथा रकार को ईकार के साथ युक्त करके नादबिन्दु से संयुक्त करने पर निष्पन्न स्वरूप 'ह्स्क्रीं' को कामराज कूट कहा जाता है। हकार एवं सकार को रेफ एवं ऐकार से संयुक्त कर उसे विसर्ग से सुशोभित करने पर तीन वर्णों वाला 'ह्स्रैः' तीसरा कूट होता है। यह तृतीय कूट विसर्ग के स्थान पर बिन्दु से युक्त होकर (ह्स्रैं) स्त्रियों के लिये प्रयोज्य होता है। मन्त्र की सिद्धि के लिये स्त्रियों को तीनों कूटों के आदि में सकार लगाकर (स्ह्स्रैं, स्ह्स्क्रीं, स्ह्स्रैः) मन्त्र प्रदान करना चाहिये एवं उन्हें उक्त स्वरूप में ही मन्त्रों का पाठ करना चाहिये।।४३१-४३६।।

पंक्तिश्छन्दो मुनिः प्रोक्तो दक्षिणामूर्त्तिसञ्ज्ञकः।
देववन्दितपादाब्जा देवी त्रिपुरभैरवी।।४३७।।
आपादं नाभितस्त्वोघमानानि हृदयात्परम्।
आहृन्मूर्द्धगतं चान्त्यं चैवं बीजत्रयं न्यसेत्।।४३८।।
आद्यं सव्ये परं दक्षे तृतीयमुभयोर्न्यसेत्।
ऐं हृत् क्लीं च शिरः प्रोक्तं सौरन्त्येन शिखा मता।।४३९।।
ऐं वर्म्म क्लीं च नेत्रं स्यात्सौरास्त्रं परिकीर्तितम्।
मूर्ध्न्याधारे हृदि न्यस्यं मनोः कूटत्रयं पुनः।।४४०।।
कुर्वीत देहसन्नाहं त्रिभिर्बीजैस्तदुच्यते।
मणिबन्धे करतले कराग्रे च क्रमान्न्यसेत्।।४४१।।
आदौ दक्षे ततो वामे कक्षकूर्प्परपाणिषु।
पुनर्दक्षे च वामे च पादयोश्च तथा न्यसेत्।
पादान्ते हृदये लिङ्गे संहारक्रमतो न्यसेत्।।४४२।।

इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति और देवता देवत्ताओं द्वारा आराधित चरणकमलों वाली देवी त्रिपुरभैरवी हैं। इस मन्त्र के प्रथम कूट 'स्ह्स्रैं' का न्यास पाँव से नाभि तक, दूसरे कूट 'स्हस्क्री' का न्यास नाभि से हृदय तक और तीसरे कूट 'स्ह्स्रैः' का न्यास हृदय से मूर्धा तक करना चाहिये।

ऐं क्लीं सौः—इन तीन बीजों में से 'ऐं' से बाँयें, 'क्लीं' से दाँयें एवं 'सौः' से दोनों तरफ न्यास करना चाहिये। ऐं ह्रीं क्लीं से शिर में, सौः से शिखा में, ऐं से कवच

में, क्लीं से नेत्र में और सौ: से अस्त्रन्यास करना चाहिये। मूर्धा में ऐं का, मूलाधार में क्लीं का और हृदय में सौ: का न्यास करना चाहिये।

इसके बाद अपने शरीर को देवीमय बनाने के लिये तीनों बीजों से क्रमश: दाँयें हाथ के मणिबन्ध, करतल और कराग्र में न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् पहले दक्षकूर्पर, दक्षकक्ष एवं दक्ष पाणि में न्यास करने के बाद वाम कूर्पर, वामकक्ष एवं वामपाणि में न्यास करना चाहिये। फिर दाँयें और बाँयें पैरों में न्यास करके संहारक्रम से पादान्त, हृदय एवं लिङ्ग में न्यास करना चाहिये।।४३७-४४२।।

अथ सृष्टिक्रमेणैव बीजान्यङ्गेषु विन्यसेत्।
आदौ वामे ततो दक्षे कर्णयोश्चिबुके तत: ।।४४३।।
शङ्खयोश्च मुखे चैव नेत्रयोश्च तथा न्यसेत्।
बाहुद्वये च हृदये कूर्प्परद्वितये कटौ ।।४४४।।
जानुनोर्व्यञ्जने चापि पादयोर्मलनिर्गमे।
पार्श्वद्वये च हृदये स्तनयुग्मे गले तथा ।।४४५।।

इसके बाद सृष्टिक्रम से पहले बाँयें कान में, फिर दाँयें कान में, तत्पश्चात् क्रमश: ठुड्डी, दोनों कनपटी, मुख, दोनों नेत्र, दोनों भुजा, हृदय, दोनों कूर्पर (कोहनी), दोनों जानु (घुटना), व्यञ्जन (लिङ्ग), दोनों पैर, गुदाद्वार, दोनों पार्श्व, हृदय, दोनों स्तन तथा गले में बीजों का न्यास करना चाहिये।।४४३-४४५।।

नवयोन्यात्मको न्यास: प्रोक्तो बीजत्रयेण तु।
लिङ्गे रत्यै नम इति चाद्यबीजेन विन्यसेत् ।।४४६।।
प्रीत्यै नमश्च हृदये मध्यबीजेन विन्यसेत्।
मनोभवायै हृदये भ्रुवोर्मध्ये तृतीयकम् ।।४४७।।
सौ: क्लीं ऐमिति बीजैश्च स्थानेष्वेव पुनर्न्यसेत्।
अमृतेशीं च योगेशीं विश्वयोनिं क्रमादिमा:।
विलोमबीजैर्विन्यस्य मूर्त्तिन्यासमथाचरेत् ।।४४८।।

ऐं क्लीं सौ:—इन तीन बीजों से नवयोन्यात्मक न्यास कहा गया है। 'ऐं रत्यै नम:' से लिङ्ग में, 'क्लीं प्रीत्यै नम:' से हृदय में एवं 'सौ: मनोभवायै नम:' से भ्रूमध्य में न्यास करना चाहिये। पुन: 'सौ: अमृतेश्यै नम:' से लिङ्ग में, 'क्लीं योगेश्यै नम:' से हृदय में एवं 'ऐं विश्वयोन्यै नम:' से भ्रूमध्य में—इस प्रकार विलोम बीजों से न्यास करने के बाद मूर्तिन्यास करना चाहिये।।४४६-४४८।।

स्ह्रोमितीशानरूपाय ततो मनोभवाय च।
नम इत्यन्तः प्रोच्याधरेशानं न्यसेद् बुधः ॥४४९॥
स्ह्रें तत्पुरुषरूपाय मकरध्वजकात्मक।
नमः प्रोच्य न्यसेद्वक्त्रे हृदये तु ततो न्यसेत् ॥४५०॥
ह्स्त्रूं अघोररूपाय कन्दर्प्पस्यात्मने नमः।
ह्स्त्रीं वामदेवरूपाय मन्मथस्यात्मने नमः ॥४५१॥
एतद् गुह्ये प्रविन्यस्य न्यस्येच्च पदयोस्तथा।
ह्स्कं सद्योजातात्मने कामदेवाय नम इत्यपि ॥४५२॥
ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखैः क्रमात्।
प्रविन्यस्येत्ततः पञ्च बाणानङ्गेषु विन्यसेत् ॥४५३॥
ह्रां ह्रीं क्लां क्लीं हूमिति च पञ्च बाणाः प्रकीर्तिताः।
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमङ्गुलीषु क्रमान्न्यसेत् ॥४५४॥
क्षोभणद्रावणाकर्षवश्योन्मादाश्च नामतः।
ललाटे च भ्रुवोर्मध्ये मुखकर्णाक्षिकण्ठके ॥४५५॥
हृन्नाभिलिङ्गे विन्यस्या एता अष्टौ च शक्तयः।
सुभगाद्या भगा त्वन्या तृतीया भगसर्पिणी ॥४५६॥
चतुर्थी तु पराजेया पञ्चमी भगमालिनी।
अनङ्गानङ्गकुसुमा प्रोक्ता चानङ्गमेखला ॥४५७॥
अनङ्गमदना सर्वा मदविभ्रममन्थराः।
ध्येयाः कुसुम्भवसना हरित्काञ्चिकिकाः शुभाः ॥४५८॥
वाक्कामवूं पुनः स्त्री सस्ताराः पञ्चोदितास्त्वमी।

'स्ह्रों ईशानरूपाय मनोभवाय नमः' से शिर पर, 'स्ह्रें तत्पुरुषरूपाय मकरध्वजकात्मकाय नमः' से मुख में, 'ह्स्त्रूं अघोररूपाय कन्दर्पस्यात्मने नमः' से हृदय में, 'ह्स्त्रीं वामदेवरूपाय मन्मथस्यात्मने नमः' से गुह्यप्रदेश में और 'ह्स्कं सद्योजातात्मने कामदेवाय नमः' से दोनों पैरों में न्यास करना चाहिये। तदनन्तर क्रमशः ऊपर, पूरब, दक्षिण, उत्तर, पश्चिम में न्यास करने के बाद पाँच बाणों से अंगों में न्यास करना चाहिये। ह्रां, ह्रीं, क्लां, क्लीं, हूं—ये पाँच बाण कहे गये हैं। इसके बाद अंगुष्ठ से आरम्भ कर कनिष्ठा-पर्यन्त पाँचो अंगुलियों में नामग्रहण करते हुये क्षोभण, द्रावण, आकर्षण, वश्य एवं उन्मादन का न्यास करना चाहिये।

इसके बाद ललाट में सुभगा, भ्रूमध्य में भगा, मुख में भगसर्पिणी, दोनों कानों

में पराजेया, दोनों आँखों में भगमालिनी, कण्ठ में अनङ्गा, हृदय में अनङ्गकुसुमा, नाभि में अनङ्गमेखला एवं लिंग में अनङ्गमदना—इन आठ शक्तियों का न्यास करना चाहिये। ये सभी शक्तियाँ मदमत्त, मन्थर गति वाली, कुसुम्भ रंग का वस्त्र धारण की हुई एवं हरिद्वर्ण की काञ्ची (धान्याम्ल) का पान करने वाली हैं। ये सभी वाक्, काम, वूं, स्त्री: एवं तार—इन पाँचो से उदित हुई हैं।।४४९-४५८।।

न्यासं कुर्य्याद् भूषणाख्यं तत: स तु निगद्यते ।।४५९।।
न्यस्येच्छिरसि भ्रूमध्ये कर्णाक्षियुगले नसि ।
गण्डयोरोष्ठयोर्दन्तपंक्त्योरास्ये न्यसेत्स्वरान् ।।४६०।।
चिबुकेऽथ गले कण्ठे पार्श्वयो: स्तनयुग्मके ।
दोर्मूलयो: कूर्प्परयो: पाण्योस्तत्पृष्ठदेशत: ।।४६१।।
हस्तद्वये हमित्येकं तत्पृष्ठे च तु नित्यकम् ।
नाभौ गुह्ये पुनश्चोर्वोर्जानुनोर्जङ्घयोस्तथा ।।४६२।।
स्फिजोश्च गुल्फयो: पश्चाच्चरणाङ्गुष्ठयोर्द्वयो: ।
ग्रैवेये च तथा कट्यां हृदये दलकुण्डले ।
वामकुण्डलके मूर्ध्नि वलये पानके तथा ।।४६३।।

तत्पश्चात् भूषण नामक न्यास करना चाहिये, जो इस प्रकार होता है। शिर, भ्रूमध्य, दोनों कान, दोनों आँख, दोनों नासाछिद्र, दोनों गाल, दोनों ओष्ठ, दोनों दन्तपंक्ति, जिह्वाग्र एवं जिह्वामूल में सोलह स्वरों का न्यास करना चाहिये। इसके बाद चिबुक (ठुड्डी), गला, कण्ठ, दोनों पार्श्व, दोनों स्तन, दोनों भुजा, दोनों कूर्पर, दोनों हथेली, दोनों करपृष्ठ, दोनों हाथ, अस्त्र, अस्त्रपृष्ठ, नाभि, गुह्य, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों जाँघ, दोनों नितम्ब, दोनों गुल्फ (टखना), दोनों पैर, दोनों अँगूठा, ग्रैवेय (गला), कटि, हृदय, दक्षकुण्डल, वामकुण्डल, मूर्धा, वलय एवं पानक आदि स्थानों में व्यञ्जनों का न्यास करना चाहिये।।४५९-४६३।।

हृदयस्थारुणाम्भोजकर्णिकामध्यसंस्थिताम् ।
जपाकुसुमसङ्काशामरुणाम्बरभूषणाम् ।।४६४।।
स्मितसौधमहामोहां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ।
विश्वसौन्दर्य्यसर्वस्वजन्मसागररूपिणीम् ।।४६५।।
ब्रह्माब्जनेत्ररुद्रेशशिवाक्षैर्मण्डसञ्ज्ञितै: ।
मण्डिताङ्गीं महादेवीं मुक्ताजपवटीधराम् ।।४६६।।
पुस्तकालंकृतकरां वरदाभयधारिणीम् ।

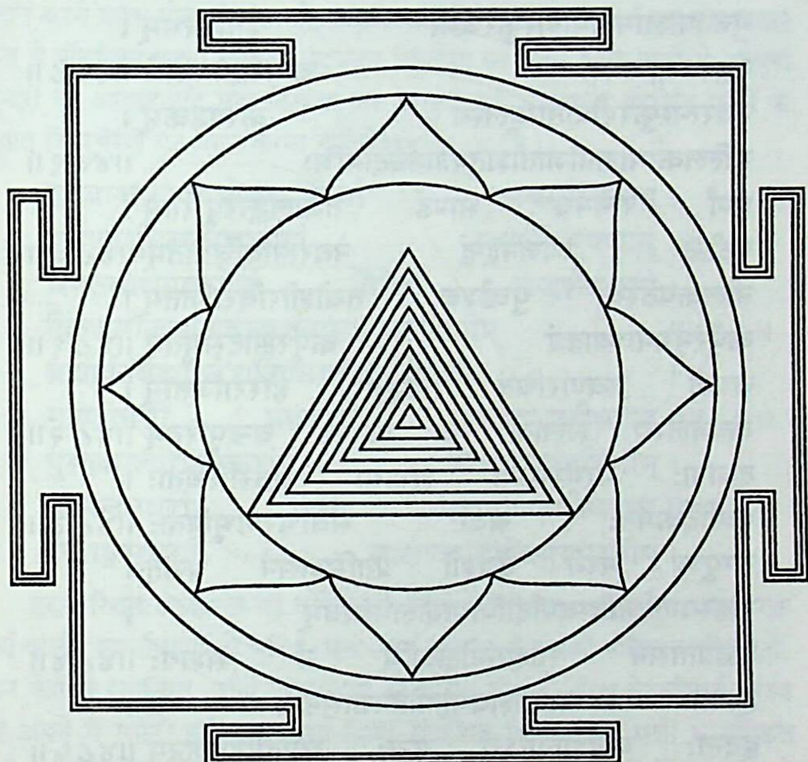
आनन्दमधुरां देवीं मदाघूर्णितलोचनाम्।
रक्ताङ्गरागसुभगां ध्यायेत्त्रिपुरभैरवीम्॥४६७॥

त्रिपुरभैरवी-ध्यान—हृदयस्थ लाला कमल की कर्णिका के मध्य में विराजमान, जपापुष्प-सदृश रक्त वस्त्र एवं आभूषण धारण की हुई, अमृत-सदृश मुस्कान से समस्त जगत् को मुग्ध करती हुई, तीन नेत्रों वाली, शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण की हुई, विश्व के समस्त सौन्दर्य की सागर-स्वरूपिणी, ब्रह्मा विष्णु शिव एवं रुद्राक्ष के आभूषणों से आभूषित, हाथों में मोतियों की जपमाला पुस्तक वरद एवं अभय धारण की हुई, प्रसन्न मुख वाली, मद से भ्रममाण नेत्रों वाली, रक्त अंगराग से शोभायमान महादेवी त्रिपुरभैरवी का ध्यान करना चाहिये।।४६४-४६७।।

पूजायन्त्रं प्रवक्ष्यामि भैरवीबालयोरथ।
नवयोन्यात्मकं कुर्य्यान्मण्डलं गुरुमार्गतः॥४६८॥
हकारञ्च सकारञ्च रेफमौकारसंयुतम्।
बिन्दुद्वययुतं चाग्रे त्रिकोणे मध्यमे न्यसेत्॥४६९॥
योन्यष्टके कामबीजं बहिरष्टदलं लिखेत्।
केशरेषु स्वरा लेख्या द्वन्द्वशोऽग्रदलेषु च॥४७०॥
कचटांस्तपयान्वर्णाञ्छक्षौ च विलिखेत्क्रमात्।
क्रमाद्दलानां ग्रन्थींश्च प्रणवाभ्यां ततश्चरेत्॥४७१॥
दलाग्रेषु त्रिशूलानि बहिर्भूपुरमालिखेत्।
शूलाग्रेषु लिखेद्वर्णान् क्रमात्त्रिभ्यश्च पूर्वतः॥४७२॥
खगघाङ्ङछजांश्चापि झञठाण्डढणांस्तथा।
थदधान्नफबांश्चापि भसराल्लँवषांस्तथा॥४७३॥
वृत्तद्वयं च तद्बाह्ये वीथिकायां च मातृकाः।
चतुरस्त्रत्रयं कुर्य्यात्तद्बाह्ये देवतार्चनम्॥४७४॥

पूजन यन्त्र—अब भैरवी एवं बाला के पूजन यन्त्र को कहता हूँ। गुरुमार्ग से नवयोन्यात्मक मण्ड़ल का निर्माण करके आगे त्रिकोण के मध्य में 'हस्रौः' लिखकर आठ योनियों में कामबीज लिखना चाहिये। उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर उसके केशरों में दो-दो स्वरों को लिखकर आगे क्रे दलों में क्रमशः कवर्ग चवर्ग टवर्ग तवर्ग पवर्ग यवर्ग शवर्ग तथा क्ष वर्ण को लिखना चाहिये; साथ ही दलों की ग्रन्थियों में प्रणव लिखना चाहिये। फिर दलों के आगे त्रिशूल लिखकर उसके बाहर भूपुर बनाना चाहिये। त्रिशूलों के आगे तीन-तीन वर्णों—ख-ग-घ, ङ-छ-ज, झ-ञ-ठ, ड-ढ-ण,

थ-द-ध, न-फ-ब, भ-स-र एवं ल-व-ष—को क्रमशः लिखना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर दो वृत्त बनाकर उसकी वीथि में मातृकाओं का अंकन करके उसके बाहर तीन चतुरस्र बनाकर उसके बाहर देवता का अर्चन करना चाहिये। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होता है—



यन्त्रमध्ये देवपृष्ठाः प्रादक्षिण्येन पूजयेत्।
द्वादशैताश्चाद्यवीथ्यामेकस्यां दिशि तु त्रयम्॥४७५॥
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री अम्बिकेच्छे ततः परम्।
ज्ञानोत्क्रिया कुब्जिका च बिम्बा देवी विषघ्निका॥४७६॥
दुस्तरा च तथा नन्दा ध्यानमासां निरूप्यते।
विप्रा वेदविदो यूयं तच्छृणुध्वं समाहिताः॥४७७॥

यन्त्र के मध्य में देवता के पीछे स्थित इन बारह पीठशक्तियों का प्रथम वीथि में चारो दिशाओं में तीन-तीन के क्रम से उनके नाममन्त्र से इस प्रकार पूजन करना चाहिये—ॐ वामायै नमः, ॐ ज्येष्ठायै नमः, ॐ रौद्र्यै नमः, ॐ अम्बिकायै

नमः, ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ उत्क्रियायै नमः, ॐ कुब्जिकायै नमः, ॐ बिम्बायै नमः, ॐ विषघ्निकायै नमः, ॐ दुस्तरायै नमः, ॐ नन्दायै नमः। अब इनके ध्यान को कहता हूँ। हे वेदज्ञ विप्रों! आप सब सावधान होकर उसका श्रवण करें।।४७५-४७७।।

मुक्ताफलामलमणिस्फुरच्छत्रं शशिप्रभम्।
गङ्गातरङ्गधवलं चामरद्वयमद्रिजे ॥४७८॥
नवरत्नस्फुरद्दीप्तताम्बूलस्य करण्डकम्।
मल्लिकामालतीजातीशतपत्राढ्यदामभिः ॥४७९॥
पूर्णं रत्नमयं भाण्डं तथालङ्कारपूरितम्।
पटीञ्च व्यजनद्वन्द्वं नवरत्नविचित्रितम् ॥४८०॥
नीलकण्ठस्य पुच्छैश्च तथोशीरविराजितम्।
कर्पूरमृगनाभ्याढ्यं कर्पूरक्षोदसंयुतम् ॥४८१॥
चषकं स्वर्णरचितं कङ्कतीं हीरराजिताम्।
कज्जलस्य शलाकां च करण्डं चन्द्रपूरितम् ॥४८२॥
दधानाः परमेशान्यः शक्तयः पीठसंस्थिताः।
पूर्वादिक्रमतः सर्वाः सर्वाभरणभूषिताः ॥४८३॥
सम्पूज्य मध्ये देवेशीं प्रेतसिंहासनं यजेत्।
रक्तस्वर्णाकृतिस्वर्णदीप्तिमत्कलमव्ययम्।
पञ्चप्रेतासनं साक्षान्मोक्षदायि न संशयः ॥४८४॥
ह्स्कोः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय च।
हृदन्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः स्यात्पीठपूजनम् ॥४८५॥
सिहासनं च सम्पूज्यं चक्रैर्व्याकुलसुन्दरीम्।
आवाहनाद्या मुद्राश्च दर्शयित्वा प्रदर्शयेत्।
वरमुद्रां चाभयाख्यां ध्यायेत्त्रिपुरभैरवीम् ॥४८६॥

मोतियों के समान निर्मल मणियों से दीप्तिमान छत्र, गङ्गा के तरङ्गों के सदृश धवल एवं चन्द्रप्रभा से समन्वित दो चँवर, दीप्यमान नव रत्नों से प्रकाशित ताम्बूल-करण्ड़क, मल्लिका मालती जाती एवं शतपत्री से सुशोभित करधनी, रत्नों से भरे भाण्ड़ एवं अलंकारों से अलंकृत कनात, नव रत्नों से समन्वित होने के कारण चित्र-विचित्र चन्दन लगे नीलकण्ठपुच्छ से बने दो पंखे, कपूर कस्तूरी कर्पूररज से समन्वित सुवर्ण-निर्मित चषक, हीरा-जटित कंघी एवं बाँस से निर्मित सुवर्ण-जटित काजल

लगाने वाली शलाका को धारण की हुई देवी की समस्त शक्तियाँ समस्त आभरणों से अलंकृत होकर पीठ पर पूर्वादि क्रम से विद्यमान हैं। इनके मध्य में देवेशी का पूजन करने के उपरान्त प्रेतसिंहासन का पूजन करना चाहिये। रक्त स्वर्ण के समान आकृति वाला, स्वर्ण से दीप्यमान, अस्पष्ट ध्वनि वाला एवं अव्यय पञ्चप्रेतासन साक्षात् मोक्ष प्रदान करने वाला होता है। 'ह्स्कौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' इस षोड़शाक्षर मन्त्र से पीठपूजन करना चाहिये। तदनन्तर सिंहासन का पूजन करके चक्रों से परिपूर्ण सुन्दरी को आवाहनादि मुद्रा दिखला कर वरमुद्रा एवं अभयमुद्रा प्रदर्शित करने के पश्चात् त्रिपुरभैरवी का ध्यान करना चाहिये।।४७८-४८६।।

हृदयस्थारुणाम्भोजकर्णिकां मध्यसंस्थिताम्।
जपाकुसुमसङ्काशारुणां स्वर्णविभूषणाम्।।४८७।।
स्मितसौधमहामोहां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्।
विश्वसौन्दर्य्यसर्वस्वजन्मसागररूपिणीम्।।४८८।।
ब्रह्मार्कविष्णुरुद्रेशशिवाख्यैर्मञ्चसंज्ञिकैः।
मण्डिताङ्गीं महादेवीं मुक्ताजपवटीधराम्।।४८९।।
पुस्तकालङ्कृतकरां वरदाभयधारिणीम्।
आनन्दमधुरां देवीं मदाघूर्णितलोचनाम्।।४९०।।
रक्ताङ्गसुभगां साक्षाद्ध्यायेत्त्रिपुरभैरवीम्।

हृदय-स्थित रक्तकमल की कर्णिका के मध्य में संस्थित, जपाकुसुम-सदृश रक्त वर्ण वाली, स्वर्णाभूषणों से भूषित, मन्द-मन्द मुस्कान से सबको मोहित करने वाली, तीन नेत्रों से समन्वित, शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण की हुई, विश्व के सौन्दर्यसर्वस्व को अपने में समेटी हुई, ब्रह्मा-सूर्य-विष्णु-सदाशिव-शिव-संज्ञक मञ्चों से मण्ड़ित शरीर वाली, मोतियों की जपमाला पुस्तक वरद एवं अभय को हाथों में धारण करने वाली, प्रसन्न मुख वाली, मद से चलायमान नेत्रों वाली, रक्त वर्ण के अंगों से शोभायमान महादेवी त्रिपुरभैरवी का साक्षात् ध्यान करना चाहिये।।४८७-४९०।।

मुद्राविंशतिसङ्ख्याकास्ततो देव्यै प्रदर्शयेत्।।४९१।।
वराभये पुस्तकाक्षमाले चांकुशपाशकौ।
चापबाणे कपालं च कमलं चायुधं तथा।
कपालाख्यं वामहस्ततलं कुर्य्यात्कपालवत्।।४९२।।
आवाहनाद्या आदौ स्युश्चतस्रोऽन्ते च पञ्च च।
दर्शनीया योनिमुद्रास्तासां लक्षणमुच्यते।।४९३।।

योनिमुद्रा हृदि क्षिप्ता त्रैलोक्यं क्षोभिणी भवेत्।
त्रैलोक्यद्राविणी चास्य त्रैलोक्याकर्षिणी भ्रुवोः ।।४९४।।
त्रैलोक्यवशकृद्भाले ह्लादकृद् ब्रह्मरन्ध्रके।

उक्त प्रकार से महादेवी त्रिपुरभैरवी का ध्यान करने के पश्चात् देवी के लिये बीस प्रकार की मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिये। वर, अभय, पुस्तक, अक्षमाला, अंकुश, पाश, धनुष, बाण, कपाल, कमल एवं आयुध मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिये। बाँयें करतल को कपाल के सदृश बनाने से कपालमुद्रा होती है। आरम्भ में आवाहनादि चार मुद्रायें एवं अन्त में पाँच प्रकार की योनिमुद्रा प्रदर्शित करने से बीस मुद्रायें हो जाती हैं। अब इन पञ्चविध योनिमुद्राओं का लक्षण कहता हूँ।

योनिमुद्रा को हृदय में क्षिप्त करने से तीनों लोक क्षुब्ध हो जाते हैं; अत: यह त्रैलोक्यक्षोभिणी मुद्रा होती है। इसी स्थिति में यह तीनों लोकों को द्रवित भी करती है; अत: त्रैलोक्यद्राविणी मुद्रा भी कहलाती है। इस योनिमुद्रा को भौंहों में प्रक्षिप्त करने से तीनों लोकों का आकर्षण होता है; अत: त्रैलोक्याकर्षिणी मुद्रा कहलाती है। ललाट में योनिमुद्रा का प्रक्षेप करने से तीनों लोक वशीभूत होता है; अत: यह त्रैलोक्यवशकारिणी मुद्रा हो जाती है एवं ब्रह्मरन्ध्र में प्रक्षिप्त होने पर तीनों लोकों को आह्लादित करने के कारण त्रैलोक्याह्लादकारिणी मुद्रा हो जाती है।।४९१-४९४।।

ततः षडङ्गावरणं पीठस्योपरितोऽर्चयेत् ।।४९५।।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिग्दिक्षु च क्रमात्।
अग्निकोणे रतिं पश्चात्प्रीतिमुत्तरकोणके ।।४९६।।
मनोभवान्दक्षकोणे ततो बाणान् समर्च्चयेत्।
द्वौ द्वावर्वागुदक्चैकमग्रे कामांश्च बाणवत् ।।४९७।।
तत्र सम्पूजयेदेताः पूर्वादिक्रमतो बुधः ।
अनङ्गकुसुमा चाद्या द्वितीयानङ्गमेखला ।।४९८।।
तृतीयानङ्गमदनाऽग्रेऽनङ्गमदनातुरा ।
शुभगा पञ्चमी देवी भगाग्रे भगसर्पिणी ।।४९९।।
भगमालात्र सर्वत्र देवपृष्ठं च पूर्वदिक् ।

इसके बाद पीठ के ऊपर अग्नि आदि दिशाओं में क्रमश: षडंगावरण-पूजन करना चाहिये। मध्य त्रिकोण के मध्य में अग्नीशासुर क्रम से इनका पूजन करना चाहिये—

१. ऐं हृदयाय नमः हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि।

२. क्लीं शिरसे स्वाहा शिर:शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि।

३. सौ: शिखायै वषट् शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि।

४. ऐं कवचाय हुम् कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि।

५. क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि।

६. सौ: अस्त्राय फट् अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि।

पूजन करने के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिता: सन्तु नम:' कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

तदनन्तर द्वितीय आवरण में मध्य त्रिकोण के तीनों कोणों में इनका पूजन करना चाहिये—

१. ॐ रत्यै नम: रतिश्रीपादुकां पूजयामि (अग्निकोण में)।

२. ॐ प्रीत्यै नम: प्रीतिश्रीपादुकां पूजयामि (उत्तरकोण में)।

३. ॐ मनोभवायै नम: मनोभवाश्रीपादुकां पूजयामि (दक्षिणकोण में)।

पूजन करने के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिता: सन्तु नम:' कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

तदनन्तर तृतीय आवरण में पाँच बाणों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. ह्रां क्षोभणबाणाय नम: क्षोभणश्रीपादुकां पूजयामि।

२. ह्रीं द्रावणबाणाय नम: द्रावणश्रीपादुकां पूजयामि।

३. क्लां आकर्षणबाणाय नम: आकर्षणश्रीपादुकां पूजयामि।

४. क्लीं वशीकरणबाणाय नम: वशीकरणश्रीपादुकां पूजयामि।

५. हुं उन्मादनबाणाय नम: उन्मादनश्रीपादुकां पूजयामि।

पूजन करने के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिता: सन्तु नम:' कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

तदनन्तर चतुर्थ आवरण में बाणों के समान ही पाँच कामदेवों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. क्लीं कामाय नम: कामश्रीपादुकां पूजयामि।

२. क्लीं मन्मथाय नम: मन्मथश्रीपादुकां पूजयामि।

३. क्लीं कन्दर्पाय नमः कन्दर्पश्रीपादुकां पूजयामि।

४. क्लीं मकरध्वजाय नमः मकरध्वजश्रीपादुकां पूजयामि।

५. क्लीं मीनकेतवे नमः मीनकेतुश्रीपादुकां पूजयामि।

पूजन करने के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तुरीयावरणार्चनम्।।

पञ्चम आवरण में पूर्वादि क्रम से अनङ्गकुसुमा आदि आठ का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. क्लीं अनङ्गकुसुमायै नमः अनङ्गकुसुमाश्रीपादुकां पूजयामि (दूसरे त्रिकोण में)।

२. क्लीं अनङ्गमेखलायै नमः अनङ्गमेखलाश्रीपादुकां पूजयामि (तीसरे त्रिकोण में)।

३. क्लीं अनङ्गमदनायै नमः अनङ्गमदनाश्रीपादुकां पूजयामि (चौथे त्रिकोण में)।

४. क्लीं अनङ्गमदनातुरायै नमः अनङ्गमदनातुराश्रीपादुकां पूजयामि (पाँचवें त्रिकोण में)।

५. क्लीं सुभगायै नमः सुभगाश्रीपादुकां पूजयामि (छठे त्रिकोण में)।

६. क्लीं भगायै नमः भगा श्रीपादुकां पूजयामि (सातवें त्रिकोण में)।

७. क्लीं भगसर्पिण्यै नमः भगसर्पिणीश्रीपादुकां पूजयामि (आठवें त्रिकोण में)।

८. क्लीं भगमालायै नमः भगमालाश्रीपादुकां पूजयामि (नवें त्रिकोण में)।

पूजन करने के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्।।४९५-४९९।।

अष्टयोनिषु ब्राह्मयाद्या बाह्ये चाष्टदलद्वयम् ।।५००।।
ब्राह्म्या युक्तश्चासिताङ्गो रुरुर्माहेश्वरीयुतः ।
चण्डः कौमारिकायुक्तः क्रोधः स्याद्वैष्णवीयुतः ।।५०१।।
वाराह्या च तथोन्मत्तो माहेन्द्र्या च कपालभृत् ।
चामुण्डाभीषणौ महालक्ष्मीः संहारसंयुता ।।५०२।।
दीर्घस्वराष्टको बिन्दुयुक्तानामहृदान्विताः ।
क्रमात्स्युरष्टशक्तीनां पूजनेऽष्टौ मनूत्तमाः ।।५०३।।
न हृद्भैरवमन्त्रेषु स्वरा ह्रस्वाः सबिन्दुकाः ।
कामरूपश्च मलयस्ततः कोल्लगिरिः स्मृतः ।।५०४।।

कुल्मान्तकवचौ हारे ह्यतो जालन्धरः परः ।
उड्डीयानं देवकोटं पीठाष्टकमुदाहृतम् ॥५०५॥
ग्रन्थिस्थानेषु सम्पूज्यं पश्चिमादिक्रमेण तु ।
हेतुकं भैरवं त्वाद्यं द्वितीयं त्रिपुरान्तकम् ॥५०६॥
वेतालमग्निजिह्वं च कालान्तककपालिनौ ।
एकपादं भीमरूपं ततो बाह्ये तु भूपुरे ॥५०७॥
पूजयेल्लोकपालाँश्च ऊर्ध्वाधः क्रमतो यजेत् ।
ब्रह्माणं चैव विष्णुं चाप्यर्चयेत्पश्चिमादितः ।
वम्पूर्वो बटुको ङेऽन्तो हृदयान्तस्तथैव च ॥५०८॥

षष्ठ आवरण में अष्टदल के बाहर पूर्वादि क्रम से ब्राह्मी आदि अष्टशक्तियों को अष्टभैरवों के साथ संयुक्त करते हुये पूर्वादि क्रम से इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. आं क्लीं ब्राह्मीयुक्तासिताङ्गभैरवाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
२. ईं क्लीं माहेश्वरीयुक्तरुरुभैरवाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
३. ऊं क्लीं कौमारीयुक्तचण्डभैरवाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
४. ॠं क्लीं वैष्णवीयुक्तक्रोधभैरवाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
५. ॡं क्लीं वाराहीयुक्तोन्मत्तभैरवाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
६. ऐं क्लीं माहेन्द्रीयुक्तकपालभैरवाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
७. औं क्लीं चामुण्डायुक्तभीषणभैरवाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
८. अः क्लीं महालक्ष्मीयुक्तसंहारभैरवाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।

पूजन करने के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम्॥

सप्तम आवरण में अष्टदलों की सन्धियों में पूर्वादि क्रम से कामरूपादि अष्टपीठों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. अं क्लीं कामरूपाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
२. इं क्लीं मलयाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
३. उं क्लीं कोल्लगिरये नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
४. ऋं क्लीं कुल्मान्तकाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
५. ऌं क्लीं कवचहाराय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।
६. एं क्लीं जालन्धराय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।

७. ओं क्लीं उड्डीयानाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।

८. अं क्लीं देवकोटाय नमः श्रीपादुकां पूजयामि।

पूजन करने के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्।।

अष्टम आवरण में भूपुर की प्रथम वीथि में पश्चिमादि क्रम से हेतुकादि भैरवों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. क्लीं हेतुकभैरवाय नमः हेतुकभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।

२. क्लीं त्रिपुरान्तकभैरवाय नमः त्रिपुरान्तकभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।

३. क्लीं वेतालभैरवाय नमः वेतालभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।

४. क्लीं अग्निजिह्वभैरवाय नमः अग्निजिह्वभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।

५. क्लीं कालान्तकभैरवाय नमः कालान्तकभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।

६. क्लीं कपालीभैरवाय नमः कपालीभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।

७. क्लीं एकपादभैरवाय नमः एकपादभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।

८. क्लीं भीमभैरवाय नमः भीमभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।

पूजन करने के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यमष्टमावरणार्चनम्।।

नवम आवरण में भूपुर की द्वितीय वीथि में दस दिक्पालों का पूजन क्रमशः इस प्रकार करना चाहिये—

१. क्लीं इन्द्राय नमः इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि।

२. क्लीं अग्न्यै नमः अग्निश्रीपादुकां पूजयामि।

३. क्लीं यमाय नमः यमश्रीपादुकां पूजयामि।

४. क्लीं निर्ऋतये नमः निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि।

५. क्लीं वरुणाय नमः वरुणश्रीपादुकां पूजयामि।

६. क्लीं वायवे नमः वायुश्रीपादुकां पूजयामि।

७. क्लीं कुबेराय नमः कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि।

८. क्लीं ईशानाय नमः ईशानश्रीपादुकां पूजयामि।

९. क्लीं ब्रह्मणे नमः ब्रह्मश्रीपादुकां पूजयामि।

१०. क्लीं अनन्ताय नमः अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि।

पूजन करने के उपरान्त 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर निम्न मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चनम्।।

इसी प्रकार 'वं वटुकाय नमः' मन्त्र से वटुक का भी पूजन करना चाहिये।

आदौ त्रिकोणं तद्बाह्ये वृत्तं च चतुरस्रकम्।
पूर्वमन्त्रैः समभ्यर्च्य बटुकादींस्ततः परम्।
बलिमन्त्रैश्च बलयो देया यन्त्रान्वदाम्यथ ।।५०९।।
एह्येहि देवीपुत्रान्ते बटुकान्ते च नाथ च।
कपिलान्ते जटाभारभास्वरान्ते त्रिनेत्र च।
ज्वालामुखेति सर्वान्ते विघ्नान्नाशय नाशय ।।५१०।।
सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्णद्वयं वदेत्।
पञ्चपञ्चादशार्णोऽयं स्वाहान्तो बटुकस्य तु ।।५११।।
पात्रान्तरेण गृह्णीयात्पूर्वं स्थापितपात्रतः।
तोयं गृहीत्वा वामाङ्गुष्ठेन वै विसृजेद्बलिम् ।।५१२।।

वटुकबलि—सर्वप्रथम त्रिकोण वृत्त चतुरस्र बनाकर पूर्वोक्त 'वं वटुकाय नमः' मन्त्र से वटुकादि का पूजन करने के पश्चात् बलिमन्त्र से उन्हें बलि प्रदान करना चाहिये। एतदर्थ पूजन पीठ के ईशान कोण में भूमि पर 'ॐ ऐं ह्रीं हूं व्यापकमण्डलाय नमः' से त्रिकोण वृत्त चतुरस्र बनाकर 'ॐ वटुकाय बलिमण्डलाय नमः' से पूजन करने के पश्चात् उस पर बलिद्रव्य-सहित बलिपात्र रखकर 'ॐ वटुकनाथाय बलिद्रव्याय नमः' से उसका पूजन करने के उपरान्त उस पात्र में से अन्य पात्र में बलिद्रव्य लेकर उस दूसरे पात्र को बाँयें हाथ के अँगूठे और अनामिका से पकड़कर 'ॐ एह्येति देवीपुत्र वटुकनाथ कपिल जटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इस पचपन अक्षरों वाले बलिमन्त्र से बलि प्रदान करना चाहिये।।५०९-५१२।।

ॐ यां योगिनीभ्यः स्वाहा सवर्णं योगिनीपदम्।
हुं फट् स्वाहेति धृत्यर्णो योगिनीनां बलौ मनुः ।।५१३।।
वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां मध्ये च पातयेद्बलिम्।
सद्बीर्य्ययुक्तं क्षं प्रोच्य स्थाने क्षेत्रे निपानभूः ।।५१४।।
धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्णद्वयं वधूः।
अग्नेरष्टनवार्णोऽयं क्षेत्रपालबलेर्मनुः ।।५१५।।

अङ्गुष्ठतर्ज्जनीभ्यां च तर्जन्या चैकयापि च।

योगिनी-बलि—पीठ के आग्नेय कोण में पूर्ववत् मण्डल बनाकर 'योगिनी-बलिमण्डलाय नमः' मन्त्र से पूजन करने के बाद आधार पर बल्यन्न रखकर 'ॐ यां योगिनीभ्यः हुं फट् स्वाहा' मन्त्र के द्वारा वामांगुष्ठ एवं अनामा से बलिपात्र में रखकर योगिनियों को बलि प्रदान करना चाहिये।

क्षेत्रपाल बलि—पीठ के नैर्ऋत्य कोण में बलिमण्डल बनाकर पूजन करके उस पर बलिद्रव्य-समन्वित पात्र रखकर 'क्षेत्रपालबलिद्रव्याय नमः' से पूजन करके 'ॐ क्षं स्थानक्षेत्रपाल धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इस चौबीस अक्षर वाले मन्त्र का उच्चारण करते हुये बाँयें हाथ की अनामिका और अंगूठे से बलि प्रदान करना चाहिये। इनकी बलि अंगूठे और तर्जनी से भी दी जाती है।।५१३-५१५।।

गां गीं गूं गणपतये वर वरद शर्व च ।।५१६।।
जनं मे वशमानय बलिं गृह्णद्वयं वदेत्।
स्वाहान्ता एकत्रिंशच्च मनौ वर्णाः प्रकीर्तिताः ।।५१७।।
वामाङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां प्रोक्ष्याग्रे बलिमुत्सृजेत्।
निर्माल्यभोजिनी चास्य देवी त्रिपुरचण्डिका ।।५१८।।

गणेश-बलि—पीठ के वायव्य कोण में पूर्ववत् मण्डल बनाकर उसका पूजन करके उस पर बलिपात्र में बलि रखकर बलि का पूजन करके 'गां गीं गूं गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इस इकतीस अक्षरों वाले मन्त्र से बाँयें हाथ के अंगूठे एवं मध्यमा से बलिपात्र को पकड़कर बलि प्रदान करना चाहिये। इसमें निर्माल्य की बलि पाने वाली देवी त्रिपुरचण्डिका होती है।।५१६-५१८।।

न जपेत्त्रिशतो न्यूनं साधकस्तु कदाचन।
तत्सम्प्रदायशुद्धात्मगुरोर्लब्ध्वा मनुं सुधीः ।।५१९।।
प्रजपेत्सिद्धये सूर्य्यलक्षं मन्त्रं दृढव्रतः।
तत्सहस्रं प्रजुहुयात् पलाशकुसुमैर्नवैः।
त्रिस्वादुयुक्तैरश्वारिकुसुमैरथवा हुनेत् ।।५२०।।
रक्ताम्बरः प्रीतमना मौक्तिकाभरणैर्युतः।
चन्दनागुरुकर्पूरकृतगात्रानुलेपनः ।।५२१।।
ब्रह्मचर्य्यरतः शान्तो विरतः परषड्गुणे।
सर्वभूतसुहृन्मौनी कुमारीपूजको भवेत् ।।५२२।।

साधक को कभी भी तीस से कम की संख्या में त्रिपुरभैरवी मन्त्र का जप नहीं

करना चाहिये। विद्वान् साधक को अपने सम्प्रदाय के शुद्ध अन्तःकरण वाले गुरु से मन्त्र प्राप्त करके दृढ़व्रत होकर बारह लाख की संख्या में मन्त्रजप करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त पलाश के नूतन पुष्पों अथवा अश्वारि (कनैल) के पुष्पों से बारह हजार की संख्या में हवन करना चाहिये।

साधनाकाल में साधक को लाल वस्त्र धारण करना चाहिये, सदा प्रसन्न रहना चाहिये, मोतियों से निर्मित आभूषण धारण करना चाहिये, शरीर पर चन्दन-अगर एवं कपूर का लेप लगाना चाहिये, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये, रागादि से शून्य रहना चाहिये, दूसरों के छः गुणों से दूर रहना चाहिये, समस्त प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव रखना चाहिये, मौनाचरण करना चाहिये एवं कुमारियों का पूजन करना चाहिये।

अथैतस्या एकबीजप्रयोगो वक्ष्यतेऽधुना।
नवकुन्दनिभां देवीं मुक्ताजालविभूषिताम्।
मुक्ताकलापविद्याक्षमालाराजच्चतुर्भुजाम् ॥५२३॥
एतस्याः प्रथमम्बीजं लक्षं जपति संयतः।
कविता जायते तस्य नानावृत्तार्थशोभना ॥५२४॥

एकबीज-प्रयोग—अब इस त्रिपुरभैरवी के एक बीज के प्रयोग को कहता हूँ। नूतन कुन्दपुष्प के सदृश प्रभा वाली, मोतियों से बने आभूषण से विभूषित, मुक्ता-कलाप-विद्या एवं अक्षमाला से सुशोभित चार भुजाओं वाली देवी के प्रथम बीज (ह्स्रैं) का संयत चित्त से जो एक लाख की संख्या में जप करता है, वह अनेक छन्द एवं अर्थों से शोभायमान कविता को करने में समर्थ हो जाता है।।५२३-५२४।।

अथ द्वितीयबीजस्य ध्यानादिकमिदं स्मृतम्।
रक्तां सुरतरोर्मूलविलसन्मणिपीठगाम् ॥५२५॥
पाशञ्च बीजपूरञ्च बाणानङ्कुशमेव च।
कपालञ्च धनुश्चेति षड्भुजैर्दधतीं भजे ॥५२६॥
रक्तैरलंकृतां पुष्पैर्मदाघूर्णितलोचनाम्।
हेलाविलाससम्पन्नां नवयौवनसुन्दरीम् ॥५२७॥
देवीं ध्यात्वा जपेद्बीजं यो लक्षं मध्यतो वशी।
त्रैलोक्यं क्षोभयेदाशु पूर्ववत्सिद्धिभागसौ ॥५२८॥

द्वितीय बीज (ह्स्क्रीं) का ध्यान आदि इस प्रकार कहा गया है। कल्पतरु के नीचे सुशोभित लाल मणियों से निर्मित पीठ पर विराजमान, छः भुजाओं में क्रमशः पाश बीजपूर बाण अंकुश कपाल एवं धनुष धारण की हुई, रक्तपुष्पों से अलंकृत, मद के

कारण घूमती नेत्रों वाली, भ्रूविलास से सम्पन्न नवयौवन-सम्पन्न परमसुन्दरी का मैं भजन करता हूँ—इस प्रकार देवी का ध्यान करके बीज का एक लाख की संख्या में जप करने वाला मध्यलोक (भूलोक) को वशीभूत कर सकता है, तीनों लोकों को शीघ्र क्षुब्ध कर सकता है एवं पूर्ववत् सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है।।५२५-५२८।।

अथो तृतीयबीजस्य वक्ष्ये ध्यानादिकं खलु।
अक्षमालासुधाकुम्भमुद्रापुस्तकधारिणीम् ।।५२९।।
नवकुन्देन्दुसङ्काशां राजन्मौक्तिकभूषणाम्।
शक्तिं सच्चिन्मयं ध्यात्वा बीजं सारस्वतं वशी।
यो जपेज्जायते तस्य कविता भुवि सम्मता ।।५३०।।

अब तीसरे बीज (ह्स्त्रैं) के ध्यान आदि को कहता हूँ। अक्षमाला, अमृतकलश, मुद्रा एवं पुस्तक धारण करने वाली, प्रस्फुटित कुन्दपुष्प की कान्ति के सदृश दीप्तिमान तथा मोतियों के आभूषणों से सुशोभित सच्चिन्मय शक्ति का ध्यान करके जो जितेन्द्रिय साधक सारस्वत बीज का जप करता है, उसकी कविता पृथिवी पर सर्वमान्य होती है।।५२९-५३०।।

पलाशपुष्पैस्त्रिस्वादुयुतैर्होमायुतद्वयम् ।
कुर्य्यात्सरस्वतीतुष्ट्यै सौभाग्यानां गृहं हि सः ।।५३१।।
जातीकरञ्जकशमीबटोद्भवसमिद्वरैः।
बिल्वप्रसूनैस्त्रिस्वादुयुतैर्होमं समाचरेत्।
परनारीनृपाणां च रञ्जनं भवति ध्रुवम् ।।५३२।।
मालतीवकुलोद्भूतैर्दलैश्चन्दनवारिणा ।
सिक्तैर्हुनेत् क्रमात्तस्य कवित्वमभिजायते ।।५३३।।

त्रिमधुराक्त पलाशपुष्पों से बीस हजार आहुतियों द्वारा हवन करने से सरस्वती तुष्ट होती हैं और वह साधक सौभाग्यों का आगार बन जाता है। जाती, करंज, शमी और वट की श्रेष्ठ समिधाओं के साथ त्रिमधुराक्त बेल के फूलों से हवन करने वाला साधक निश्चित रूप से परनारियों एवं राजाओं को आनन्दित करने वाला होता है। मालती एवं वकुलपुष्प की पंखुड़ियों को चन्दनजल से सिक्त करके क्रमशः हवन करने से कवित्व शक्ति प्राप्त होती है।।५३१-५३३।।

अनुलोमविलोमेन मध्यस्थं साध्यकर्म्मयुक्।
मनुं प्रजप्य होतव्यं लोणराजिकया ततः।
नरनारीनृपाँश्चैव वशयेन्नात्र संशयः ।।५३४।।

त्रिस्वादुयुग्बिल्वफलैर्होमो मर्त्त्यावरञ्जनः ।
साधकस्य समृद्धिश्च कमलाया भवेदपि ।।५३५।।
त्रिस्वादुयुग्गुडूचीभिर्होमो रोगारिनाशनः ।
गुप्तरूपा स्थिता काश्यामेवं त्रिपुरभैरवी ।।५३६।।

अनुलोम और विलोम मन्त्र के मध्य में साध्य कर्म को रखकर जप करके नमक और राई से हवन करने पर साधक निश्चित ही नर, नारी और राजा को वशीभूत कर लेता है। त्रिमधुराक्त बिल्वफल के हवन से मनुष्यों को आनन्द-प्राप्ति होती है एवं साधक के लक्ष्मी की वृद्धि होती है। त्रिमधुराक्त गुडूची के हवन से रोगरूपी शत्रु का विनाश होता है। इस प्रकार काशी में त्रिपुरभैरवी गुप्त रूप से विद्यमान हैं।

अथ सम्पत्प्रदां वक्ष्ये देवीं त्रिपुरभैरवीम् ।
आहूतां गणनाथेन कौलिकाचारपूजिताम् ।।५३७।।
हकारं च सकारं च खकारं च फरौ तथा ।
ऋकारस्वरसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम् ।
पञ्चवर्णात्मकं कूटं प्रथमं परिकीर्त्तितम् ।।५३८।।
द्वितीयं बीजमृजमैः कात्कौ स्याच्च तृतीयकम् ।
एवं मन्त्रः समाख्यातो द्विरावृत्त्या षडङ्गकम् ।।५३९।।
प्राग्वदस्याश्चरेन्न्यासं ध्यानमस्या निरूप्यते ।

सम्पत्प्रदा भैरवी—अब गणेश द्वारा अवाहित एवं कौलिकाचार से पूजित सम्पत्प्रदा त्रिपुरभैरवी देवी को कहता हूँ। इनका मन्त्र है—'हस्ख्फ्रें ह्स्रौं ह्सौं' (ज्ञानार्णव के अनुसार मन्त्र है—ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं ह्स्रौं)। मन्त्र की दो आवृत्ति से इसका कराङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—हस्ख्फ्रें हृदयाय नमः, ह्स्रौं शिरसे स्वाहा, ह्सौं शिखायै वषट्, हस्ख्फ्रें कवचाय हुम्, ह्स्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्सौं अस्त्राय फट्। अब इसके ध्यान को कहता हूँ।।५३७-५३९।।

उद्यत्सूर्य्यसहस्राभां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम् ।।५४०।।
नानालङ्कारसुभगां सर्व्ववैरिनिकर्त्तनीम् ।
स्त्रवद्रुधिरमुण्डालिललितां रक्तवाससम् ।।५४१।।
डमरुञ्च त्रिशूलं च खड्गं खेटकमेव च ।
पिनाकं च शरान् पाशानङ्कुशं पुस्तकं तथा ।।५४२।।
अक्षमालां च बिभ्राणां शवसिंहासनस्थिताम् ।

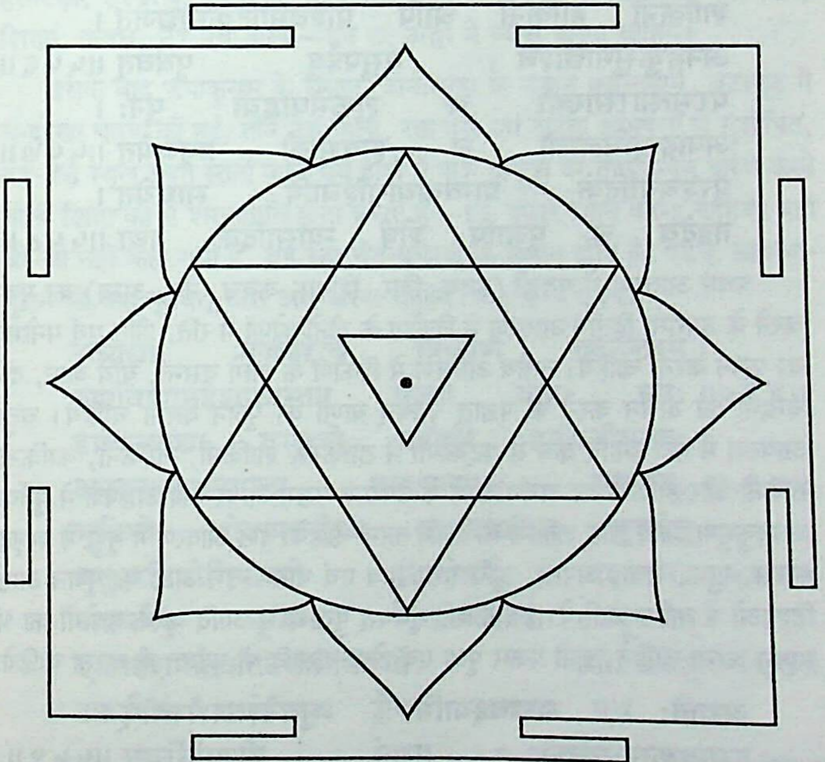
उदित होते हजारों सूर्यों के सदृश किरणों से समन्वित, चूड़ा में चन्द्रमा को धारण

की हुई, तीन नेत्रों वाली, अनेक अलंकारों से अलंकृत, समस्त वैरियों का उच्छेद करने वाली, बहते हुये रक्त वाले मुण्ड़ों की माला से शोभायमान, रक्त वस्त्र धारण की हुई, ड़मरु त्रिशूल खड्ग खेटक पिनाक बाण पाश अंकुश पुस्तक एवं अक्षमाला को हाथों में घुमाती हुई शवों के सिंहासन पर विराजमान देवी सम्पत्प्रदा का ध्यान करना चाहिये।

एवं ध्यात्वा यजेत्पीठं प्रथमं पीठमन्त्रतः ।।५४३।।
अघोरे ऐं ओं चं घोरे मायां घोरद्वयान्तरम् ।
श्रीं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते पदं वदेत् ।
रुद्ररूपेभ्यो ह्रीं श्रीं च देवार्णः पीठमन्त्रकः ।।५४४।।
ततः पूज्यास्तु पीठस्य शक्तयः पृष्ठदेशतः ।
वामां ज्येष्ठां च रौद्रीं च कालीं च वरलोचनाम् ।।५४५।।
कलाढ्यां च बलाढ्यां च यजेद्धिंकारिणीं ततः ।
बलप्रमथिनीञ्चैव सर्वभूतदमां तथा ।।५४६।।
द्वादशैताः क्रमाद्देव्यो मदनीं च मनोन्मनीम् ।
पूजापीठं समुद्धृत्य प्राग्वदङ्गानि पूजयेत् ।।५४७।।
रत्यादित्रयमभ्यर्च्य तथानङ्गादिकान् यजेत् ।
ब्राह्म्यादियुग्मं सम्पूज्य वसुपत्रेषु मातृकाः ।
भूपुरे लोकपालाँश्च सायुधान् परमेश्वरि ।।५४८।।
अन्यः सर्वः प्रयोगोऽयं त्रिपुराभैरवीसमः ।

इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त सर्वप्रथम पीठमन्त्र से पीठपूजन करना चाहिये। तैंतीस अक्षरों का पीठमन्त्र इस प्रकार है—अघोरे ऐं ॐ घोरे ह्रीं घोर ह्रीं घोर ह्रीं श्रीं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यो ह्रीं श्रीं। इस मन्त्र से पीठपूजन करने के पश्चात् वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, वरलोचना, कलाढ्या, बलाढ्या, हिंकारिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी, मदनी तथा मनोन्मनी—इन बारह पीठशक्तियों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् पूजापीठ का उद्धार करके पूर्ववत् षडंग पूजन करना चाहिये। तदनन्तर रति, प्रीति एवं मनोभवा—इन तीन का अर्चन करने के बाद अनंगकुसुमा, अनंगमेखला, अनंगमदना, अनंगमदनातुरा, सुभगा, भगा, भगसर्पिणी एवं भगमाला का अर्चन करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मी-असितांग, माहेश्वरी-रुरु, कौमारी-चण्ड, वैष्णवी-क्रोध, वाराही-उन्मत्त, माहेन्द्री-कपाल, चामुण्डा-भीषण एवं महालक्ष्मी-संहार—इन आठ युग्मों का पूजन अष्टपत्रों में करने के पश्चात् भूपुर में दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। हे परमेश्वरि! इसके अन्य सभी प्रयोग त्रिपुरभैरवी के समान ही होते हैं।।५४३-५४८।।

चैतन्यभैरवीमन्त्रस्त्र्यक्षरः कथ्यतेऽधुना ।
सहावकारसंयुक्तौ प्रथमं बीजमीरितम् ॥५४९॥
सकलैरीसमायुक्तैर्द्वितीयं बीजमुच्यते ।
सहरौद्रीसमायुक्ता विसर्गान्तास्तृतीयकम् ॥५५०॥
उद्यद्भानुसहस्राभां नानालङ्कारभूषिताम् ।
मुकुटोर्ध्वलसच्चन्द्ररेखां रक्ताम्बराचिताम् ॥५५१॥
पाशाङ्कुशधरां नित्यां वामहस्तकपालिनीम् ।
वरदाभयशोभाढ्यां पीनोन्नतघनस्तनीम् ॥५५२॥
एवं ध्यात्वा यजेद्देवीं पूर्वसिंहासने स्थिताम् ।
द्विरावृत्त्या षडङ्गानि न्यस्येत्सर्वाङ्गलक्षणम् ॥५५३॥
त्रिकोणं चैव षट्कोणं वसुपत्रं ततः परम् ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥५५४॥



चैतन्यभैरवी मन्त्र—अब चैतन्यभैरवी के त्र्यक्षर मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र के तीनों अक्षर एक-एक बीज हैं; वे तीन बीज हैं—स्हैं स्क्ल्हीं स्हौः। उदीयमान हजारो सूर्यों के सदृश आभा वाली, अनेक अलंकारों से विभूषित, मुकुट के ऊपर शोभित चन्द्ररेखा वाली, रक्त वस्त्र से आच्छादित, सदा पाश एवं अंकुश धारण करने वाली, बाँयें हाथ में कपाल ली हुई, वरद एवं अभय से सुशोभित, बड़े-बड़े उन्नत स्तनों वाली—इस रूप में ध्यान करके सिंहासनस्थ देवी का पूजन करने के उपरान्त उपर्युक्त तीन बीजों की दो आवृत्ति से कराङ्ग न्यास करना चाहिये। इसके बाद त्रिकोण, षट्कोण, अष्टदल और चार द्वारों से समन्वित भूपुर बनाकर उसमें अर्चन करना चाहिये।।५४९-५५४।।

प्रथमावरणं चात्र षडङ्गैः परिकल्पयेत्।
रत्यादिकास्ततः पूज्यास्त्रिकोणाग्रे वसन्तकम्।
वामे कामं विधुं दक्षे यजेद्बाणाँश्च पूर्ववत्।।५५५।।
डाकिनीं शाकिनीं चैव लाकिनीं काकिनीं ततः।
शाकिनीं हाकिनीं चापि पश्चिमादिक्रमाद्यजेत्।
अनङ्गकुसुमाद्याश्च वसुपत्रेषु पूर्ववत्।।५५६।।
परभृत्सारसाख्यौ च शुकमेघाह्वयौ पुनः।
अपाङ्गभ्रूविलासौ च हावभावौ प्रपूजयेत्।।५५७।।
पुरश्चर्यादिकं प्राग्वत्प्रयोगाँश्चापि साधयेत्।
तद्वदेव च पूजापि शेषं न्यासादिकं तथा।।५५८।।

प्रथम आवरण में षडङ्गों (हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र, अस्त्र) का पूजन करने के उपरान्त द्वितीय आवरण में त्रिकोण के तीनों कोणों में रति, प्रीति एवं मनोभवा का पूजन करना चाहिये। तृतीय आवरण में त्रिकोण के आगे वसन्त, बाँयें काम, दाँयें चन्द्रमा का अर्चन करने के पश्चात् पूर्ववत् बाणों का पूजन करना चाहिये। चतुर्थ आवरण में पश्चिमादि क्रम से षट्कोणों में डाकिनी, शाकिनी, लाकिनी, काकिनी, राकिनी और हाकिनी का अर्चन करने के उपरान्त पञ्चम आवरण में अष्टपत्रों में पूर्ववत् अनङ्गकुसुमा आदि आठ शक्तियों का अर्चन करना चाहिये। षष्ठ आवरण में भूपुर में परभृत्, सारस, शुक, मेधा, अपाङ्ग, भ्रूविलास, हाव एवं भाव—इन आठ का पूजन आठो दिशाओं में करना चाहिये। इसके बाद पूर्ववत् पुरश्चरण आदि करके प्रयोगों का भी साधन करना चाहिये। इसी प्रकार पूजा एवं शेष न्यासादि भी पूर्ववत् ही करना चाहिये।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भुवनेश्वरभैरवीम्।
हसावकारसंयुक्तौ प्रथमं बीजमीरितम्।।५५९।।

हंसकला ह्रींसमेता द्वितीयं बीजमुच्यते ।
हसावौकारसंयुक्तौ विसर्गान्तं तृतीयकम् ।
षड्दीर्घान्वितमध्येन बीजेनोक्तं षडङ्गकम् ।।५६०।।
जपाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमप्रभाम् ।
चन्द्ररेखां जटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवाससम् ।।५६१।।
नानालङ्कारसुभगां पीनोन्नतघनस्तनीम् ।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्दधानां च शिवां श्रये ।।५६२।।
चैतन्यभैरवीवत्स्याद्यद्यन्नोक्तमिहाथ तत् ।
षडङ्गावरणं चात्र पूर्ववत्परितो यजेत् ।।५६३।।

भुवनेश्वरी भैरवी—अब मैं भुवनेश्वरी भैरवी को कहता हूँ। उद्धार करने पर मन्त्र होता है—ह्सैं ह्स्क्ल्ह्रीं ह्सौः। इसमें तीन कूट हैं। मध्य बीज 'ह्स्क्ल्ह्रीं' के छः दीर्घ स्वरूपों से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है। इसका षड्दीर्घ स्वरूप है—ह्स्क्ल्ह्रां, ह्स्क्ल्ह्री, ह्स्क्ल्ह्रूं, ह्स्क्ल्ह्रैं, ह्स्क्ल्ह्रौं, ह्स्क्ल्ह्रः। इन्हीं से क्रमशः हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्र—इन छः अङ्गों में न्यास करना चाहिये।

इसके बाद जपाकुसुम के समान, अनारपुष्प के समान कान्तिमान, जटाजूट में चन्द्ररेखा धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली, रक्त वस्त्र एवं अनेक आभूषणों से सुशोभित, बड़े-बड़े स्थूल उन्नत स्तनों वाली एवं हाथों में पाश अंकुश वर तथा अभय धारण करने वाली शिवा की मैं शरणागति होता करता हूँ—इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। यहाँ जो-जो नहीं कहा गया है, वह सब चैतन्यभैरवी के समान होता है। षडङ्ग आवरण-पूजन भी यहाँ पूर्ववत् चारो ओर करना चाहिये।।५५९-५६३।।

रत्याद्याः पूजयेद्देवि त्रिकोणे तदनन्तरम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तत्र पूज्या बहिः पुनः ।।५६४।।
डाकिन्याद्या वसुदले षड्दले हाकिनीमुखाः ।
अनङ्गकुसुमाद्याश्च ब्राह्म्याद्याश्च समन्ततः ।।५६५।।
भूबिम्बे लोकपालाँश्च बटुकाद्याँश्च पूजयेत् ।
चतुःषष्टियोगिनीभ्यो हृदन्तोऽयं दशाक्षरः ।।५६६।।
अष्टपत्रेषु भूबिम्बे त्वेकोच्चारेण पूजयेत् ।
एकादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमोऽर्चयेत् ।।५६७।।
जपादिकं प्रयोगाश्च ज्ञेयाः प्राग्वत्त एव हि ।

प्रथम आवरण में षडङ्ग पूजन करने के बाद द्वितीय आवरण में रति, प्रीति एवं

मनोभवा का त्रिकोण में पूजन करने के पश्चात् उन कोणों के बाहर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का पूजन करना चाहिये। तृतीय आवरण में डाकिनी, शाकिनी, लाकिनी, काकिनी, राकिनी और हाकिनी का पूजन षट्कोण के छ: कोणों में करना चाहिये। अनङ्गकुसुमा आदि आठ एवं ब्राह्मी आदि आठ का पूजन एक साथ अष्टदल में करना चाहिये। भूपुर में दिक्पालों और बटुकों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर 'चतु:षष्टियोगिनीभ्यो नम:' इस दशाक्षर मन्त्र का एक बार उच्चारण करके अष्टपत्रों में और भूपुर में चौंसठ योगिनियों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद 'एकादशकोटिमहायोगिनीभ्यो नम:' मन्त्र से अर्चन करना चाहिये। इस मन्त्र के जप आदि एवं प्रयोगों को पूर्ववत् ही जानना चाहिये।।५६४-५६७।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भैरवीं कमलेश्वरीम् ।।५६८।।
हसस्थाने सहेत्युक्त्वा सर्वं मन्त्रादि पूर्ववत् ।
राज्ञा ज्ञाता ततः शप्ता तुहिनागेऽभवन्नदी ।।५६९।।
त्यक्तस्तया वाममार्गो राजभीत्या तु मत्कृते ।
यतो लब्धं तया दु:खं कलौ ख्यातिं गमिष्यति ।।५७०।।
पुनस्तेषु च देवेषु प्रत्यक्षेयं भविष्यति ।
अवर्णाद्याश्च वर्णाश्च भविष्यन्ति वरप्रदाः ।।५७१।।
त्यक्त्वा मपञ्चकं पूजां कृत्वा ये चैव मत्पराः ।
अस्यास्तीरे पुरीश्वर्य्या न च तेषु प्रसीदति ।।५७२।।

कमलेश्वरी भैरवी—अब मैं कमलेश्वरी भैरवी को कहता हूँ। मन्त्र है—स्हैं स्ह्क्ल्हीं स्हौ:। इसके तीन अक्षर हैं। यह मन्त्र राजा द्वारा ज्ञात होने के पश्चात् अभिशप्त होकर हिमालय में नदी-स्वरूप हो गया। राजभय से उस नदीस्वरूपा देवी ने मेरे लिये वाममार्ग का त्याग कर दिया, जिसके फलस्वरूप उसे कष्ट उठाना पड़ा। आगे चलकर कलियुग में उसे प्रसिद्धि मिलेगी और पुन: यह देवताओं में प्रत्यक्ष होगी; साथ ही अवर्णादि वर्ण वरप्रद होंगे। जो लोग पञ्चमकार का त्याग कर मत्परायण होकर पूजन करके इस नदी के तीर पर पुरश्चरण करेंगे, उन पर यह कभी प्रसन्न नहीं होगी।

भुवनेशी भैरवी तु कृत्वा रूपान्तरं मम ।
कार्य्यार्थं बहवः शिष्याः कौलिका वामनाः कृताः ।
तस्माद्ध्यानाद्यर्चनादि प्राग्वद्दक्षिणमार्गतः ।।५७३।।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हसराद्यां च भैरवीम् ।
भुवनेश्वरभैरव्या बीजादौ हसरान्पठेत् ।।५७४।।

त्रयाणामपि बीजानां प्रथमं व्यञ्जनात्मकम्।
हसराद्याँस्तथा विद्यात्प्राग्वत्पूजादिकं मतम्॥५७५॥

भुवनेशी भैरवी ने मेरा रूप धारण करके कार्य-सिद्धि के लिये बहुत से वाममार्गी कौलिकों को शिष्य बनाया; इसलिये इसका ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् दक्षिण मार्ग से ही करना चाहिये। अब मैं हसराद्या भैरवी को कहता हूँ। भुवनेश्वरी भैरवी का प्रथम बीज 'ह्स्रां' होता है। तीनों बीजों में प्रथम बीज व्यंजनात्मक होता है। इसके पूजन आदि पूर्ववत् ही होते हैं।।५७३-५७५।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सिद्धां कौलेशभैरवीम्।
आद्यन्तबीजयो रेफरहिता हसरादिकाः॥५७६॥
कौलेश्वरी भवेद्विद्या कौलिकानां सुसिद्धिदा।
सम्पत्प्रदा भैरवीवत्सर्वं ध्यानादिकं मतम्॥५७७॥

कौलेशभैरवी—अब मैं कौलेशभैरवी के सिद्ध मन्त्र को कहता हूँ। प्रथम एवं तृतीय हसरादि बीज रेफ-रहित होकर कौलेश्वरी विद्या हो जाती है, जो कि कौलिकों को शोभन सिद्धि प्रदान करने वाली होती है। इसका ध्यान-पूजन आदि सबकुछ सम्पत्प्रदा भैरवी के समान ही जानना चाहिये।।५७६-५७७।।

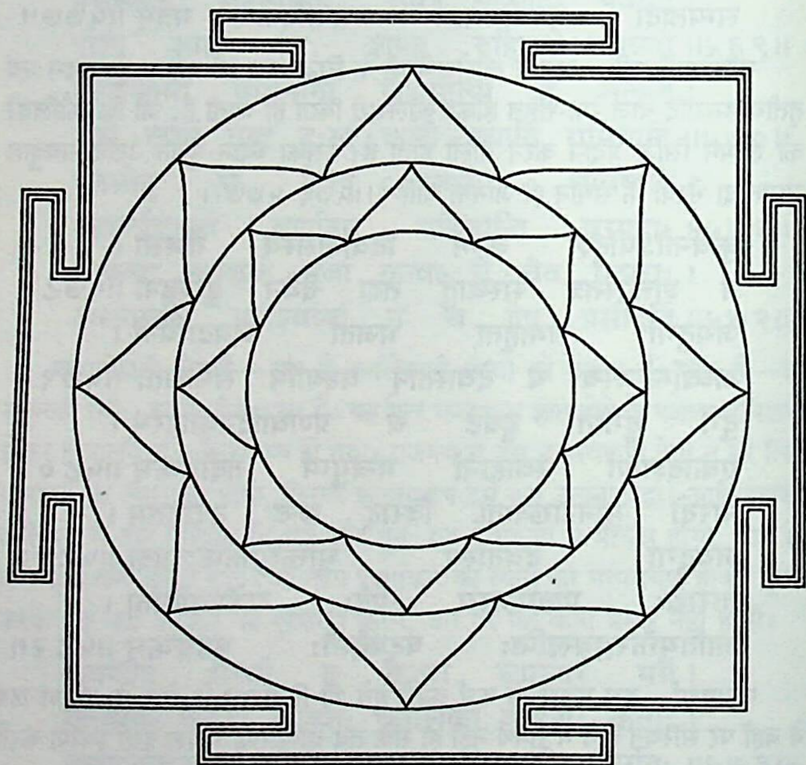
कुर्वन्तोऽपीदृशं कर्म्म दिवोदासस्य तेजसा।
न शक्तास्तत्र संस्थातुं तदा देवेन ढुण्ढिना॥५७८॥
जयदुर्गा समाहूता भजतां जयदायिनी।
ऊर्ध्वाम्नायस्य ये देवास्तान् वक्ष्यामि समासतः॥५७९॥
दुर्गे दुर्गेति दुर्घटे च प्रणवादिनवाक्षरम्।
एकादशार्णं स्वाहान्तं मन्त्रयुग्मं तदीयकम्॥५८०॥
नारदो मुनिराख्यातो विराट् छन्द उदाहृतम्।
जयदुर्गा देवतास्य भुक्तिमुक्तिफलप्रदा॥५८१॥
ताराद्यैः पञ्चमन्त्रस्य पदैः सर्वेशधीर्मता।
जातियुक्तैरङ्गक्लृप्तिः षट्पदैस्तैः षडङ्गकम्॥५८२॥

जयदुर्गा—इस प्रकार के कर्म करते हुये भी दिवोदास के तेज के कारण जब वे वहाँ पर संस्थित होने में समर्थ नहीं हो सके तब ढुण्ढिराज गणेश द्वारा स्मरण करते ही जय प्रदान करने वाली जयदुर्गा का आवाहन किया गया। ऊर्ध्वाम्नाय के देवताओं को अब मैं विस्तार से कहता हूँ। जयदुर्गा के दो मन्त्र हैं, उनमें से प्रथम नवाक्षर मन्त्र है—ॐ दुर्गे दुर्गेति दुर्घटे' तथा दूसरा एकादशाक्षर मन्त्र है—'ॐ दुर्गे दुर्गेति दुर्घटे

स्वाहा' (अन्य तन्त्रों में यह मन्त्र दशाक्षर एवं द्वादशाक्षर है—'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' एवं 'ॐ नमः दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा)। इसके ऋषि नारद, छन्द विराट् एवं देवता भोग-मोक्षरूपी फल प्रदान करने वाली जयदुर्गा कही गई हैं। प्रणव-पूर्वक इस मन्त्र के पाँचो पद साक्षात् दुर्गा-स्वरूप कहे गये हैं। मन्त्र के छः पदों को जातियुक्त करके उनसे इसका षडङ्गन्यास और षडङ्गपूजन किया जाता है।।५७८-५८२।।

अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वं चतुरस्त्रत्रयावृतम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं कुङ्कुमादिभिरुद्धरेत् ।।५८३।।

पूजन-यन्त्र—तीन चतुरस्त्र अर्थात् भूपुर से आवृत एवं चार द्वारों से समन्वित दो अष्टदल कमल का कुंकुम से निर्माण करने से देवी का पूजन यन्त्र बन जाता है। इसका स्वरूप इस प्रकार का होता है—



कुर्य्यात् स्वपीठपूजायां नवशक्तिसमर्चनम्।
प्रभा माया जया चैव सुप्रभा च विशुद्धिका ।।५८४।।

नादिनी सुप्रभावापि विजया सिद्धिदा तथा।
एकवह्निशरक्लीबहीनैरद्भिः प्रपूजयेत् ॥५८५॥
तारो वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय।
हुं फट् नमः सिद्धमनुः पीठं चानेन पूजयेत् ॥५८६॥
आसनं मनुना तेन दद्यान्मूलेन कल्पयेत्।
मूर्त्तिमावाह्य तस्यान्तः पूजयेच्चन्दनादिभिः ॥५८७॥

यन्त्र में पीठपूजा करने के पश्चात् प्रभा, माया, जया, सुप्रभा, विशुद्धिका, नादिनी, सुप्रभावा, विजया एवं सिद्धिदा—इन नौ शक्तियों का 'ॐ स्वाहा फट्' (ॐ प्रभायै स्वाहा फट् इत्यादि) मन्त्र का उच्चारण करते हुये जल से पूजन करना चाहिये। 'ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' इस सिद्ध मन्त्र से पीठ का पूजन करने के उपरान्त इसी मन्त्र से आसन प्रदान कर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके उसका आवाहन करने के बाद चन्दनादि से उस मूर्ति का पूजन करना चाहिये।।५८४-५८७।।

क्रमादावरणाङ्गैश्च जयादिसुप्रभादिभिः।
देवायुधैर्दिगीशैश्च हेतिभिर्ध्यानमुच्यते ॥५८८॥
मेघाभां चन्द्रमुकुटां सिंहास्यां त्रीक्षणां करैः।
चक्रं खड्गं चर्म्म दरं दधानां च क्रमाद्भजे ॥५८९॥
जया च विजया कीर्त्तिः प्रीतिश्चापि प्रभा मता।
श्रद्धा मेधा श्रुतिश्चेति ओमाद्यक्षरपूर्विकाः ॥५९०॥
असिर्दरो गदा खड्गपाशाङ्कुशशरा धनुः।
इत्यायुधानि प्रोक्तानि लक्षाणां पञ्चकं जपेत् ॥५९१॥
दशांशं जुहुयादाज्यैस्तर्पणादि ततश्चरेत्।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्सुधीः ॥५९२॥

तत्पश्चात् प्रथम आवरण में यन्त्र के मध्यबिन्दु में षडङ्गपूजन करना चाहिये। द्वितीय आवरण में अष्टदल में जया आदि शक्तियों का, तृतीय आवरण में दूसरे अष्टदल में देवी के आयुधों का एवं चतुर्थ आवरण में भूपुर में दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहये।

देवी का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—मेघ-सदृश वर्ण वाली, मुकुट में चन्द्रमा को धारण की हुई, सिंह-सदृश मुख वाली, तीन नेत्रों वाली तथा हाथों में क्रमश: चक्र, खड्ग, चर्म एवं शंख धारण की हुई देवी का मैं ध्यान करता हूँ।

जया, विजया, कीर्ति, प्रीति, प्रभा, श्रद्धा, मेधा एवं श्रुति—इन शक्तियों के नाम

के आदि में ॐ (ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः इत्यादि) लगाकर पूजन करना चाहिये। तलवार, शङ्ख, गदा, खड्ग, पाश, अंकुश, बाण एवं धनुष—ये आठ देवी के आयुध कहे गये हैं।

पुरश्चरण-हेतु इनके मन्त्र का पाँच लाख की संख्या में जप करने के पश्चात् जप का दशांश पचास हजार हवन करना चाहिये। फिर कृत हवन का दशांश पाँच हजार तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र को सिद्ध करने के बाद उससे प्रयोगों को करना चाहिये।।५८८-५९२।।

इमं मन्त्रं जपेद्भूयः प्रविशेत्क्षेत्रसङ्गरम्।
अशेषेण रिपुं हन्यान्नात्र कार्य्या विचारणा ।।५९३।।
विवादे व्यवहारादौ जप्तो विजयदो भवेत्।
अनया विद्ययास्त्राणि शस्त्राणि सुबहून्यपि ।।५९४।।
सञ्जप्तानि च संग्रामे सम्यग्विजयदानि तु।
एतदाराधनाद्देवा दिवोदासोऽभवत्क्षणात्।
संग्रामे सैन्यवर्गस्य क्षयमालोक्य मोहितः ।।५९५।।
योच्चारणार्थमानीता दिवोदासस्य भूभुजः।
वनदुर्गा स्थिता गङ्गापारे तस्या मनुं शृणु ।।५९६।।

इस मन्त्र का बार-बार जप करते हुये युद्धक्षेत्र में जाने पर योद्धा निश्चित रूप से समस्त शत्रुओं का विनाश कर देता है। विवाद, व्यवहार आदि में जप करने से यह मन्त्र विजय प्रदान करता है। इस मन्त्र से बहुत से अस्त्र-शस्त्रों को अभिमन्त्रित करके युद्ध में जाने पर वे सभी सम्यक् रूप से विजय प्रदान करने वाले होते हैं। हे देवताओं! इस मन्त्र की आराधना के प्रभाव से ही युद्ध में सैन्यवर्ग का क्षण भर में ही विनाश देखकर दिवोदास मोहित हो गया। तब राजा दिवोदास के द्वारा गंगापार में स्थित वनदुर्गा को लाया गया; अब उस वनदुर्गा के मन्त्र का श्रवण करो।।५९३-५९६।।

उत्तिष्ठ पुरुषीत्युक्त्वा किं स्वपिषि भयं वदेत्।
मे शमयेति चोच्चार्य्य पश्चाद् ब्रूयात्स्थितं तथा ।।५९७।।
यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवतीति च।
शमयाग्निवधूश्चेति मन्त्रो नगगुणार्णकः ।।५९८।।
स्वकार्य्यं साधयित्वैवं गणनाथेन कीलिता ।।५९९।।
एनां जपेच्च निष्कीलां तदा सिद्धिः प्रजायते ।।६००।।
ओं ह्रीं दुं दुं पुनर्दुं च प्रथमं बीजपञ्चकम्।
मन्त्रादौ योजयेदन्ते दुं ह्रीमोमिति मन्त्रवित् ।।६०१।।

निष्कीला जायते विद्या साधकानां सुसिद्धिदा।

वनदुर्गा मन्त्र—वनदुर्गा का सैंतीस अक्षरों का मन्त्र है—'उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे शमय स्थितं यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा'। अपने कार्य का साधन करने के पश्चात् इस मन्त्र को गणनाथ द्वारा कीलित कर दिया गया है। निष्कीलित करके इस मन्त्र का जप करने से सिद्धि प्राप्त होती है। मन्त्रज्ञ साधक को निष्कीलन-हेतु मन्त्र के आदि में 'ॐ ह्रीं दुं दुं दुं' इन पाँच बीजों को एवं अन्त में 'दुं ह्रीं ॐ' संयुक्त करना चाहिये। (मन्त्रस्वरूप होता है—ॐ ह्रीं दुं दुं दुं उत्तिष्ठ पुरुषि किं स्वपिषि भयं मे शमय स्थितं यदि शक्यमशक्यं वा तन्मे भगवति शमय स्वाहा दुं ह्रीं ॐ)। निष्कीलित होने पर यह विद्या साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाली हो जाती है।।५९७-६०१।।

आरण्यको मुनिः प्रोक्तो ह्यनुष्टुप् छन्द ईरितम्।।६०२।।
वनदुर्गा देवताऽस्य सर्वशत्रुविनाशिनी।
ऋत्वष्टाष्टभूबाणैर्मन्त्रार्णैः स्यात्षडङ्गकम्।।६०३।।
दक्षपादाङ्गुलीमूले गुल्फे जानुनि चोरुके।
गुदे लिङ्गे तथा मूलाधारे च जठरे तथा।।६०४।।
पार्श्वयुग्मे हृदि कुचद्वन्द्वे कण्ठे च सन्धिषु।
करयोर्वदने नासागण्डयुक्कर्णयुग्मके।।६०५।।
भ्रूमध्ये मूर्धनि मनोर्वर्णा न्यस्या यथाविधि।

इस वनदुर्गा मन्त्र के ऋषि आरण्यक, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता समस्त शत्रुओं का विनाश करने वाली वनदुर्गा कही गई हैं। इस मन्त्र के छः, आठ, आठ, एक, पाँच एवं नव वर्णों से इस प्रकार षडङ्ग न्यास किया जाता है—उत्तिष्ठ पुरुषि हृदयाय नमः, किं स्वपिषि भयं मे श शिरसे स्वाहा, मय स्थितं यदि शक्यं शिखायै वषट्, अ कवचाय हुम्, शक्यं वा तन्मे नेत्रत्रयाय वौषट्, भगवति शमय स्वाहा अस्त्राय फट्।

मन्त्र के प्रत्येक वर्ण का यथाविधि क्रमशः दक्षपादांगुलिमूल, गुल्फ, दोनों जानु, दोनों ऊरू, गुदा, लिङ्ग, मूलाधार, जठर, दोनों पार्श्व, हृदय, दोनों स्तन, कण्ठ, सन्धियाँ, दोनों हाथ, मुख, दोनों नासाच्छिद्र, दोनों गाल, दोनों कान, भ्रूमध्य एवं मूर्धा में न्यास करने से मन्त्रवर्णन्यास सम्पन्न होता है।।६०२-६०५।।

विद्युन्निभां त्रिनेत्रां च ह्यरुणे पङ्कजे स्थिताम्।।६०६।।
चक्रं दरं वराभीती हस्तेषु दधतीं शुभाम्।
स्वर्णोद्यत्कान्तिवसनां शशिमौलिं वनस्थिताम्।।६०७।।

प्रसन्नां पुष्पभूषाढ्यां पार्श्वोद्यन्मृगशाविकाम् ।
इति ध्यात्वा यजेद्देवीं पीठे पूर्वोदिते ततः ॥६०८॥
पूर्वमङ्गानि पूज्यानि तत आर्य्यादिका यजेत् ।
चक्राद्यस्त्राणि मातॄश्च लोकेशानायुधानि च ॥६०९॥
आर्य्या दुर्गा च भद्रा च भद्रकाल्यम्बिका तथा ।
क्षेम्या च वेदगर्भा च शाङ्करी चाष्टमी मता ॥६१०॥
शङ्खचक्रासिखेटेषु धनुः शूलं गदेति च ।

देवी वनदुर्गा विद्युत् के समान दीप्तिमान हैं, उनके तीन नेत्र हैं, वे वन में रक्तकमल पर विराजमान हैं, हाथों में चक्र शंख वर एवं अभय धारण की हुई हैं, स्वर्ण-सदृश कान्तिमान (पीला) वस्त्र धारण की हुई हैं, उनके शीर्ष पर चन्द्रमा है, प्रसन्न हैं, वे पुष्प-निर्मित आभूषणों से सुशोभित हैं, उनके दोनों ओर मृगशिशु उछल-कूद कर रहे हैं—इस प्रकार ध्यान करके पूर्वोक्त पीठ पर देवी का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर प्रथम आवरण में अङ्गों का पूजन करने के उपरान्त द्वितीय आवरण में आर्य्या, दुर्गा, भद्रा, भद्रकाली, अम्बिका, क्षेम्या, वेदगर्भा एवं शाङ्करी—इन आठ का पूजन करना चाहिये। फिर तृतीय आवरण में शङ्ख, चक्र, तलवार, ढाल, धनुष, शूल एवं गदा—इन आयुधों का पूजन करने के बाद चतुर्थ आवरण में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, ऐन्द्री, वाराही, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी—इन आठ मातृकाओं का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् पञ्चम आवरण में दश दिक्पालों (इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा, अनन्त) का पूजन करने के बाद षष्ठ आवरण में दिक्पालों के आयुधों (वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म और चक्र) का अर्चन करना चाहिये।।६०६-६१०।।

वेदलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्तिलैः ॥६११॥
व्रीह्याज्यतिलदुग्धान्नैर्दुर्गां सञ्चिन्त्य चानले ।
तर्प्पणं मार्ज्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनं तथा ॥६१२॥
धनधान्यादिभिः सम्यक्तोषयित्वा निजं गुरुम् ।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री वाञ्छितार्थान् प्रसाधयेत् ॥६१३॥

तत्पश्चात् मन्त्र का चार लाख की संख्या में जप करने के पश्चात् दुर्गा का सम्यक् रूप से चिन्तन करते हुये तिल, चावल, गोघृत एवं दुग्धान्न से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मणाराधन (ब्राह्मण-भोजन) करने के उपरान्त अपने गुरु को धन-धान्यादि प्रदान करते हुये सम्यक्

रूप से सन्तुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध किये गये मन्त्र द्वारा मन्त्रज्ञ को आकांक्षित विषयों का साधन करना चाहिये।।६११-६१३।।

दुर्गां प्रयोगभेदेन चिन्तयेद्वनवासिनीम्।
ध्यायेच्छ्रियं श्यामलाङ्गीं हयारेर्मूर्धनि स्थिताम्।।६१४।।
शङ्खचक्रासिबाणांश्च तर्जनीचर्म्म खेटकम्।
चापं च दधतीं हस्तैः सुप्रसन्नाननां भजे।।६१५।।
प्रत्यहं प्रजपेन्मन्त्री स्वरक्षार्थं शतं सदा।
सहस्रं च तदन्ते च प्रयोगान् कर्त्तुमर्हति।।६१६।।
यद्यदुद्दिश्य च मनुं सहस्रं वायुतं जपेत्।
अचिराल्लभते तत्तदसाध्यमपि साधकः।।६१७।।
प्रातःस्नायी न्यासपूर्वं स्मरन्देवीमनन्यधीः।
नित्यं सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं साधकसत्तमः।।६१८।।
क्रूरसर्पग्रहाद्यांश्च दोषान् प्रशमयेत्सुधीः।
हुनेदारण्यकतिलैराजिकाभिश्च वा हुनेत्।।६१९।।
अपामार्गसमिद्धिर्वा नाशयेत्सकलान् गदान्।
अपस्मारादिकान्मन्त्री नात्र कार्य्या विचारणा।।६२०।।
न्यग्रोधोत्थसमिद्धिश्च सशुङ्गाभिर्हुनेत्सुधीः।
दशाहतो वाञ्छितार्थसिद्धिर्भवति नान्यथा।।६२१।।
त्र्यहं वा सप्तरात्रं वा चेधैं रास्नासमुद्भवैः।
एकैकं सकलं मन्त्री हुनेद्वाञ्छितसिद्धये।।६२२।।

वनवासिनी दुर्गा—प्रयोगभेद से वनवासिनी दुर्गा का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिये—सिंह के मस्तक पर विराजमान तथा हाथों में शंख, चक्र, तलवार, बाण, तर्जनी में चर्म एवं धनुष धारण की हुई प्रसन्न मुख वाली देवी श्यामलाङ्गी का मैं भजन करता हूँ।

मन्त्रज्ञ साधक को अपनी रक्षा के लिये प्रतिदिन इस मन्त्र का एक सौ बार जप करना चाहिये। फिर उसके बाद एक हजार बार जप करके साधक प्रयोगों को करने में समर्थ हो जाता है। साधक जिस-जिस उद्देश्य से इस मन्त्र का एक हजार अथवा दश हजार जप करता है, असाध्य होने पर भी उस-उस उद्देश्य को वह शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है। प्रातःकाल स्नान करने के बाद न्यास सम्पन्न कर एकाग्र मन से देवी का ध्यान करके प्रतिदिन मन्त्र का एक हजार जप करने वाला श्रेष्ठ साधक क्रूर सर्प ग्रह

आदि के दोषों का प्रशमन कर देता है। जंगली तिल से, राई से अथवा अपामार्ग की समिधा से प्रतिदिन हवन करने वाला मन्त्रज्ञ साधक निःसन्दिग्ध रूप से अपस्मार (मृगी) आदि समस्त रोगों का विनाश कर देता है। दस दिनों तक (वट की) कलियों के सहित वटवृक्ष की समिधा से हवन करने वाले साधक को निश्चित रूप से अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है। अभीष्ट-सिद्धि के लिये साधक को रास्ना (ओषधिविशेष) से प्रज्वलित अग्नि में उपर्युक्त प्रत्येक द्रव्यों से अलग-अलग तीन दिनों तक अथवा सात रात्रियों तक हवन करना चाहिये।।६१४-६२२।।

त्रिंशच्छरान् सिताग्रांश्च विधाय जुहुयाद् बुधः।
कटुतैलैः सहस्रं वा ह्ययुतैस्तदनन्तरम्।।६२३।।
सम्पाततैलरसनान्समभ्यर्च्य यथाविधि।
पूर्ववत्प्रजपेन्मन्त्रं ताञ्छरानपि भूपतिः।।६२४।।
शुद्धाचारश्च धीरश्च धन्वी संग्राममानसः।
गृहीत्वा परसेनायां मध्ये गच्छेदभीतवत्।
साधनानि दिशः सर्वाः समन्तात्सफलास्तदा।।६२५।।
स आगत्य पुनर्भूयो गुरुं धान्यैर्धनैरपि।
वस्त्रालङ्करणैश्चापि तोषयेज्जयदायिनम्।।६२६।।

तीस बाणों के अग्रभाग में कपूर लगाकर एक हजार अथवा सरसो का तेल लगाकर दस हजार हवन करने के बाद उच्छिष्ट तेल को धनुष की ड़ोरी में लगाकर सम्यक् रूप से पूजन करके पूर्ववत् मन्त्र का जप करने के उपरान्त आचारनिष्ठ एवं धैर्ययुक्त राजा युद्धसज्ज होकर हाथ में धनुष-बाण धारण कर निर्भय होकर शत्रुसेना के मध्य जाकर चारो ओर यदि उन बाणों का सन्धान करता है तो उसके वे बाण सफल होते हैं। तत्पश्चात् युद्धभूमि से लौटकर राजा द्वारा धन-धान्य, वस्त्र-अलंकार आदि प्रदान करते हुये अपने गुरु को सन्तुष्ट करने से विजय की प्राप्ति होती है।

अष्टाधिकशतेनाथ जपेन शवभस्म च।
निक्षिपेद्यस्य शिरसि स विद्विष्टो भवेज्जनैः।
देशाद्देशान्तरं चैव सदा भ्राम्यति काकवत्।।६२७।।
कारस्करद्रुमोत्थैश्च पत्रैर्वायुनिपातितैः।
सहस्रं जुहुयात्पादरजोभिः सहवैरिणः।।६२८।।
उच्चाटोऽथ भवेत्सद्यो विषवृक्षसमुद्भवैः।
पुष्पैर्हुनेत्सहस्रं च सेनां संस्तम्भयेद् बुधः।।६२९।।

तावद्भिस्तस्य पत्रैश्च मन्त्री सेनां निवर्त्तयेत्।

शवभस्म को इस मन्त्र के एक सौ आठ जप से अभिमन्त्रित करके जिसके शिर पर प्रक्षिप्त कर दिया जाता है, उस व्यक्ति के सभी लोग विरोधी हो जाते हैं और वह काक के समान बराबर एक देश से दूसरे देश में भटकता रहता है। हवा के कारण गिरे हुये कारस्कर वृक्ष के पत्तों के साथ शत्रु की पदधूलि को मिलाकर एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने से शत्रु का सद्यः उच्चाटन हो जाता है।

विद्वान् साधक विषवृक्ष के पुष्पों द्वारा एक हजार हवन करके शत्रुसेना को स्तम्भित कर देता है एवं उसी विषवृक्ष के पत्रों से एक हजार हवन करके उस सेना को वापस भेज देता है।।६२७-६२९।।

विषवृक्षसमुद्भूतां शत्रोः प्रतिकृतिं शुभाम् ।।६३०।।
कृत्वा प्रतिष्ठितप्राणां खण्डखण्डीकृतां निशि।
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां काकोलूकवसायुतैः ।।६३१।।
होमाद्रिपुर्नाशमेति ह्युन्मत्तसमिधा तथा।
होमान्मत्तो रिपुर्नूनं भवत्येव सहस्रतः ।।६३२।।
वैरिणः प्रतिमां कृत्वा सम्यक् संस्थापितानिलाम्।
विषत्रिकटुकालिप्तां सम्यगुष्णजले क्षिपेत् ।।६३३।।
प्रजपेच्च मनुं सद्यो ज्वराक्रान्तो भवेद्रिपुः।
दुग्धाभिषेकतः शान्तिर्भवत्यस्य न संशयः ।।६३४।।
प्रतिमां विषवृक्षोत्थां निक्षिपेदुष्णवारिणि।
उन्मादश्च रिपोः सद्यः पूर्ववच्छान्तिरीरिता ।।६३५।।

विषवृक्ष (जहरीला पेड़) की लकड़ी से शत्रु की सुन्दर प्रतिमा बनाकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करने के बाद रात्रि में उसे टुकड़ों में विभक्त करके कृष्णपक्ष के चतुर्दशी की रात्रि में उन प्रतिमाखण्ड़ों को काक एवं उल्लू की वसा (चर्बी) के साथ मिलाकर हवन करने से शत्रु का नाश हो जाता है।

धतूरे की समिधा से एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने पर शत्रु निश्चित ही पागल हो जाता है। शत्रु की प्रतिमा बनाकर उसे सम्यक् रूप से हवा में स्थापित करके उसमें विष और त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) का लेप लगाकर उसे गर्म जल में डुबोकर मन्त्र का जप करने से शत्रु ज्वर से आक्रान्त हो जाता है। तत्पश्चात् दूध से उस प्रतिमा का अभिषेक करने पर शत्रु को शान्ति प्राप्त होती है अर्थात् ज्वर से छुटकारा मिल जाता है। विषैले पेड़ की लकड़ी से प्रतिमा बनाकर उसे गर्म जल में डुबोने से शत्रु

तत्काल उन्मत्त हो जाता है। पुनः इसकी शान्ति भी पूर्ववत् दुग्धाभिषेक से हो जाती है।।६३०-६३५।।

सूर्य्यबिम्बवदारक्तां शूलतर्जनिकाधराम्।
ध्यात्वायुतं प्रजप्याथ मारयेद्रिपुसञ्चयम् ।।६३६।।
असिखेटकरार्कस्था क्रुद्धा सा वनवासिनी।
संस्मृता मन्त्रजापेन शमयेच्छत्रुसञ्चयम् ।।६३७।।
शरचापकरां सिंहस्थितां पावकसन्निभाम्।
कारस्करद्रुसमिधां ह्ययुतं जुहुयात्सुधीः ।।६३८।।
रोगिणोः वैरिणः सर्वे जायन्ते चाचिरात्तदा।
विषवृक्षोत्थितैः पत्रैरभिनाशं प्रयान्ति च ।।६३९।।

तर्जनी में त्रिशूल धारण की हुई सूर्यबिम्ब के समान रक्त वर्ण वाली देवी का ध्यान करके इस मन्त्र का दस हजार की संख्या में जप करने से शत्रुओं का संहार होता है। सूर्यमण्ड़ल में अवस्थित तलवार-ढाल से युक्त क्रुद्ध वनवासिनी का स्मरण करते हुये मन्त्र का जप करने से शत्रुओं का शमन होता है। धनुष-बाण लेकर सिंह पर सवार अग्निवर्णा देवी का स्मरण करते हुये कारस्कर वृक्ष की समिधा से दस हजार हवन करने पर थोड़े ही दिनों में रोगों और सभी वैरियों का विनाश हो जाता है। विषवृक्ष के पत्तों से हवन करने पर शत्रुओं का समूल नाश हो जाता है।।६३६-६३९।।

तद्वृक्षसुमनोभिः स्यादुच्चाटः करिणां ध्रुवम्।
राजवृक्षसमिद्धोमाद्रोगा नश्यन्ति दन्तिनाम् ।।६४०।।
विषवृक्षप्रसूनैश्च त्रिमध्वक्तैरिभव्रजः।
वशी भवेत्तथा शीघ्रं पत्रैरादित्यकोत्थितैः ।।६४१।।
त्रिस्वादुयुक्तैः करिणो जातिमन्तो भवन्ति च।
अभ्यङ्गः पञ्चगव्येन लोकरक्षाकरः स्मृतः ।।६४२।।
करिणां मनुजानां च प्राग्वै तन्त्रविदुत्तमैः।
सर्पिस्तिलैर्नित्यकटुराजिकापञ्चगव्यकैः ।।६४३।।
हविस्तण्डुलकैश्चैव प्रत्येकं तु सहस्रशः।
जुहुयादिभसङ्घानां वृद्धिर्भवति नान्यथा ।।६४४।।

विषवृक्ष के पुष्पों से हवन करने पर निश्चित रूप से हाथियों का उच्चाटन होता है। राजवृक्ष की समिधा से हवन करने पर हाथियों की रोगों से मुक्ति होती है। त्रिमधुराक्त विषवृक्ष के पुष्पों से हवन करने पर हाथियों का समूह शीघ्र ही वशीभूत

हो जाता है। त्रिमधु-सिक्त अर्कपत्रों से हवन करने पर उत्तम कुल वाले हाथियों की प्राप्ति होती है। पञ्चगव्य से अभ्यङ्ग करने पर लोकरक्षा होती है। तन्त्रज्ञानियों द्वारा पूर्ववत् गोघृत, तिल, नित्य कटु, राई, पञ्चगव्य, खीर एवं चावल—इन प्रत्येक से अलग-अलग एक-एक हजार हवन करने से हाथियों और मनुष्यों की वृद्धि होती है।।६४०-६४४।।

महान्तं ब्रह्मवृक्षं च च्छित्त्वा निर्भिद्य पञ्चधा।
दिक्क्रमेणैव पञ्चाथ आयुधानि प्रकल्पयेत् ।।६४५।।
सम्यङ्नित्यं गदा शङ्खो नन्दकश्चक्रशार्ङ्गकौ।
कौमोदकीति- क्रमतोऽप्युक्तमायुधपञ्चकम् ।।६४६।।
निक्षिप्य पञ्चगव्ये च जपेत्पञ्चसहस्रकम्।
तावच्चाज्येन जुहुयात्सम्पातं तत्र पातयेत् ।।६४७।।
भूयश्च पूर्वसङ्ख्याकं जपं कुर्य्याद्विचक्षण:।
विदध्याद्दैवतान् पञ्च पञ्चगव्यप्रपूरितान् ।।६४८।।
मध्ये हि तेष्वायुधानि निक्षिपेद्भूतले समे।
कुर्य्याच्छान्तिं ततो मन्त्रैर्बलिं हव्यं निजै: शुभै: ।।६४९।।
नगरग्रामदेशानां कारयेत्क्षेममीदृशम्।
यत्रेयं क्रियते रक्षा कमला तत्र वर्धते ।।६५०।।
धनधान्यसमृद्धि: स्याद्रिपुचौरभयं न च।

विशाल ब्रह्मवृक्ष (पलाश) को काटने के बाद उसको पाँच टुकड़ों में विभक्त कर दिशाओं के क्रम से पाँच आयुधों का निर्माण करना चाहिये। वे पाँच आयुध क्रमश: इस प्रकार हैं—कौमोदकी गदा, शंख, नन्दक (तलवार), चक्र एवं शार्ङ्ग (धनुष)। फिर इन सबको पञ्चगव्य में डूबोकर मन्त्र का पाँच हजार जप करने के उपरान्त गोघृत से पाँच हजार हवन करके सम्पात घृत को उन आयुधों पर गिरा देना चाहिये। इसके बाद पुन: पाँच हजार मन्त्रजप करना चाहिये। फिर पञ्चगव्य में डूबोये हुये उन पाँच दैवायुधों को आधे भाग तक समतल भूमि में प्रक्षिप्त कर अपने कल्याण-हेतु हवनीय द्रव्यों से बलि प्रदान करते हुये मन्त्रों से शान्ति करनी चाहिये। ग्राम-नगर-देश का भी इसी प्रकार कल्याण करना चाहिये। जहाँ पर यह रक्षा की जाती है, वहाँ पर लक्ष्मी की वृद्धि होती है, वह स्थान धन-धान्य से समृद्ध होता है एवं उस स्थान पर शत्रुभय तथा चोरभय नहीं होता।।६४५-६५०।।

पद्मैर्नृपं वशीकुर्य्यात्तत्पत्नीमुत्पलैरपि ।।६५१।।

ब्राह्मणान् कुमुदैर्हुत्वा कह्लारैर्विश एव च।
शूद्राँल्लवणहोमेन ग्रामं जातीप्रसूनकैः ॥६५२॥
शङ्खचक्रगदाम्भोजहस्तं सञ्चिन्तयेच्छुभम्।
रविबिम्बे मुकुन्दं च मनुप्रोक्तेऽष्टलिङ्गकम् ॥६५३॥
प्रजपेद्वाथ पुरुषो भगवत्पादयोरथ।
सर्वसिद्धिकरः प्रोक्तः प्रकारोऽयं सुमन्त्रिभिः ॥६५४॥
साध्यनामाक्षरैः सम्यग्विदर्भितमनुं लिखेत्।
यन्त्रे मृदं कुलालस्य करलग्नां प्रगृह्य च ॥६५५॥
तया कृता या प्रतिमा तस्या हृदि च सन्न्यसेत्।
संस्थापित्वाभिमुख्येन सप्ताहं प्रजपेन्मनुम्।
सन्ध्यात्रये शतं चाष्टाधिकं वश्यो भवेत्तु सः ॥६५६॥

कमलों के हवन से राजा को एवं उत्पलों के हवन से रानी को वशीभूत करना चाहिये। एवमेव कुमुदों के हवन से ब्राह्मणों को, कह्लारों के हवन से वैश्यों को, लवणहोम से शूद्रों को तथा जातिपुष्पों के हवन से ग्राम को वशीभूत किया जा सकता है।

सूर्यमण्ड़ल में हाथों में शंख-चक्र-गदा-पद्म लिये मुकुन्द का सम्यक् रूप से चिन्तन करते हुये मनु-प्रोक्त अष्टलिङ्ग का जप करना चाहिये अथवा पुरुष भगवत्पाद का चिन्तन करना चाहिये। मन्त्रज्ञों के लिये यह समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाला होता है।

यन्त्र में साध्य नाम-विदर्भित मन्त्र लिखने के उपरान्त कुम्हार के चाक पर उसके द्वारा स्थापित मुलायम मिट्टी को लेकर उससे साध्य की प्रतिमा का निर्माण करके उस प्रतिमा के हृदय में मन्त्रलिखित यन्त्र को प्रविष्ट कराकर उस प्रतिमा को अपने सामने स्थापित करके एक सप्ताह तक तीनों सन्ध्याओं में एक सौ आठ-एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करने से वह साध्य सांधक के वशीभूत हो जाता है।।६५१-६५६।।

व्रीहीन् हुनेदष्टशतं प्रत्यहं वत्सराद्भवेत्।
व्रीहिमान् गोपयोभिश्च पशुमान्भवति ध्रुवम् ॥६५७॥
घृतहोमान्मन्त्रिणः स्यात्काञ्चनाप्तिर्महीयसी।
दध्ना च सर्वसिद्धिः स्यादन्नैरन्नसमृद्धियुक् ॥६५८॥
मधुहोमेन रत्नानां निधिर्भवति नान्यथा।
दूर्वाहोमेन दीर्घायुर्मन्त्री भवति निश्चितम् ॥६५९॥

श्वेतगुञ्जाः समानीय कुडवप्रमिताः शुभाः ।
एतन्मन्त्रं तु जप्त्वा ता विकिरेच्छत्रुसैन्यके ॥६६०॥
मन्त्रोत्तमः सुजप्तः स तेनाऽसौ वैरिणश्चमूः ।
ज्वरादिकैर्महारोगैः पीडिता सा नृणां चिरम् ॥६६१॥
सेनाधिपतिमुख्यानां परस्परविरोधतः ।
एवं ह्युपद्रवैर्नानाविधैर्नाशं प्रयाति च ॥६६२॥

एक वर्ष तक प्रतिदिन धान्य की आठ सौ आहुतियों द्वारा हवन करने से निश्चित रूप से साधक धान्य-सम्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार गोदुग्ध से हवन करने पर पशुओं से सम्पन्न हो जाता है, घी से हवन करने पर मन्त्रज्ञ साधक को प्रचुर सुवर्ण की प्राप्ति होती है, दही से हवन करने पर सभी सिद्धियाँ मिलती हैं, अन्न से हवन करने पर साधक अन्न से समृद्ध होता है, मधु से हवन करने पर साधक रत्नों का भण्डार हो जाता है एवं दूब से हवन करने पर साधक को दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

सोलह ग्राम श्वेत गुञ्जा लाकर उसे इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके शत्रुसेना पर प्रक्षिप्त करने के पश्चात् इस श्रेष्ठ मन्त्र का जप करने से वह शत्रुसेना दीर्घ काल तक ज्वरादि महान् रोगों से पीड़ित हो जाती है, सेनापतियों में परस्पर विरोध हो जाता है और अनेक प्रकार के उपद्रवों से वह शत्रुसेना विनाश को प्राप्त हो जाती है।।६५७-६६२।।

दुर्गादेव्याः बीजरूपमन्त्रनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बीजरूपं महामनुम् ।
दुरित्येकाक्षरो मन्त्रः सर्वमन्त्रोत्तमो मतः ॥६६३॥
ऋषिः काश्यप उद्दिष्टो गायत्री छन्द ईरितम् ।
देवता तु भवेद् दुर्गा षडङ्गानां विधिस्तथा ।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन विसर्गेणान्वितेन च ॥६६४॥

दुर्गा का बीजरूप महामन्त्र—अब मैं बीजरूप महामन्त्र को कहता हूँ। 'दुः' यह एक अक्षर का सर्वश्रेष्ठ मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि काश्यप, छन्द गायत्री और देवता दुर्गा कही गई हैं। इस बीज के विसर्गयुक्त छः दीर्घ रूपों (दाः, दीः, दूः, दैः, दौः, दः) से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है।।६६३-६६४।।

दूर्वाश्यामां त्रिनेत्रां च कमलेऽष्टदले स्थिताम् ।
शूलं बाणं खड्गचक्रे शङ्खं खेटं शरासनम् ।
कपालानि च दक्षाधः क्रमेण दधतीं स्मरेत् ॥६६५॥

ध्यान—अपने आठ हाथों में दाहिने नीचे वाले हाथ से आरम्भ कर क्रमशः शूल, बाण, खड्ग, चक्र, शंख, खेट (मूसल), शरासन एवं कपाल धारण की हुई, दूर्वा-सदृश श्याम वर्ण वाली तथा तीन नेत्रों वाली अष्टदल कमल पर विराजमान देवी का स्मरण करना चाहिये।।६६५।।

चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः।
पूजादिकं प्रयोगादि नवदुर्गासमं स्मृतम् ।।६६६।।
ये ये भूपोपकाराय लक्ष्मीमन्त्राः सुरोधिताः।
गणेशेनैव काश्यां ते चार्थदास्तान् ब्रवीम्यहम् ।।६६७।।

इस एकाक्षर 'दुः' मन्त्र का चार लाख जप करने के उपरान्त तिलों से कृत जप का दशांश (चालीस हजार) हवन करना चाहिये। इसका पूजन एवं प्रयोग आदि नवदुर्गा के समान ही कहा गया है। राजा दिवोदास के उपकार के लिये जो-जो लक्ष्मीमन्त्र गणेश द्वारा सम्यक्तया रोधित किये गये थे, वे सभी काशी में फलप्रद थे; अब मैं उन्हें कहता हूँ।।६६६-६६७।।

नमः कमलवासिन्यै स्वाहा चेति दशाक्षरः।
ऋष्याद्या दक्षवद्देवी कमला समुदीरिता ।।६६८।।
देवीं च पद्मिनीं विष्णुपत्नीं तु वरदां मताम्।
तथा कमलरूपां च ङेनमोऽन्तां च विन्यसेत्।
पञ्चाङ्गेषु च ताराद्या ध्यानमस्या निरूप्यते ।।६६९।।
तडित्कान्तिं पद्मयुगवरदाभयसत्कराम्।
शरीरभासा भुवनं भासयन्तीं सरोजगाम् ।।६७०।।
काञ्चीमुकुटमञ्जीरनूपुरै रुचिरां श्रये।

लक्ष्मी मन्त्र है—'नमः कमलवासिन्यै स्वाहा'। यह भगवती लक्ष्मी का दशाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि आदि दक्षवत् हैं तथा देवी कमला देवता कही गई हैं। पाँच अंगों में इसका पञ्चाङ्गन्यास 'ॐ देव्यै नमः, ॐ पद्मिन्यै नमः, ॐ विष्णुपत्न्यै नमः, ॐ वरदायै नमः, ॐ कमलरूपायै नमः' इन पाँच मन्त्रों से किया जाता है। अब इसका ध्यान कहा जा रहा है।

विद्युत् के सदृश कान्तिमान, दो पद्म, वर एवं अभय से सुशोभित हाथों वाली, अपने शरीर की कान्ति से भुवन को प्रकाशित करती हुई, कमल पर आसीन तथा काञ्ची (करधनी), मुकुट, मञ्जीर (बिछिया) एवं नूपुर (घुंघुरु) से दमकती हुई देवी का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।।६६८-६७०।।

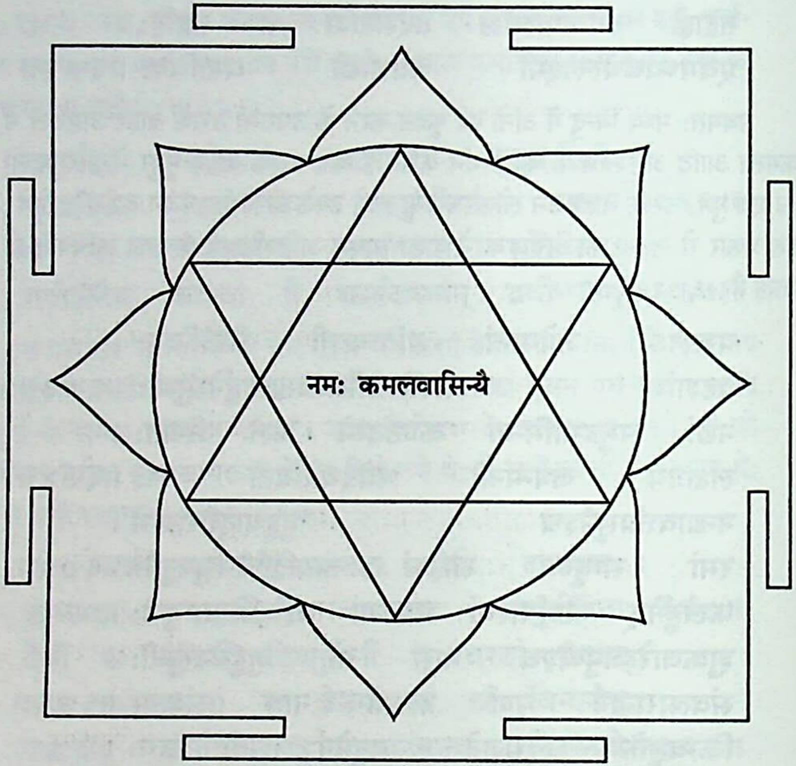
आदावङ्गानि तद्वाह्ये कमलाद्यष्टशक्तयः ।।६७१।।
तद्वाह्ये लोकपालाँश्च तदस्त्राणि च तद्वहिः ।
एवमभ्यर्चयेल्लक्ष्मीं भवेत्सद्यो धनाधिपः ।।६७२।।

प्रथमतः मध्य बिन्दु में अंगों का पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर अष्टदल में कमला आदि अष्टशक्तियों का अर्चन करने के बाद उसके बाहर भूपुर में लोकपालों का एवं पुनः उसके बाहर उन लोकपालों के आगे उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार से लक्ष्मी का अर्चन करने वाला साधक अतिशीघ्र ही धन का अधिपति हो जाता है।।६७१-६७२।।

पञ्चलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।
तद्दशांशं सरसिजैस्त्रिस्वाद्वक्तैर्हुनेत्सुधीः ।।६७३।।
नद्यां समुद्रगामिन्यां कण्ठदध्ने जले स्थितः ।
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्री भवेदर्थान्वितो नरः ।।६७४।।
नन्द्यावर्त्तप्रसूनैश्च जुहुयादुत्तराक्रमे ।
रमां सम्पूज्य साहस्रं तावद्विल्वैर्मधुप्लुतैः ।।६७५।।
फलैर्हुनेत् पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वा सिताम्बुजैः ।
शुक्रवारेब्जपुष्पैश्च मासं यो जुहुयात्सुधीः ।
संवत्सराद्धनं पूर्णं लभते नात्र संशयः ।।६७६।।
किम्बहूक्तेन भजते मनुमेनं जितेन्द्रियः ।
स वाञ्छितार्थान् लभते वसुधान्यसमृद्धियुक् ।।६७७।।

जितेन्द्रिय विद्वान् साधक को हविष्य का भक्षण करके मन्त्र का पाँच लाख की संख्या में जप करने के उपरान्त कृत जप का दशांश (पचास हजार) त्रिमधु-सिक्त कमलपुष्पों से हवन करना चाहिये। इसके बाद समुद्रगामिनी नदी के जल में कण्ठ-पर्यन्त खड़े होकर मन्त्र का तीन लाख जप करने वाला मन्त्रज्ञ मनुष्य धन-सम्पन्न हो जाता है। उत्तराम्नायक्रम से नन्द्यावर्त्तपुष्प से एक हजार हवन करने के बाद लक्ष्मी का पूजन करके मधु-सिक्त बेलफलों द्वारा एक हजार हवन करने से भी उक्त फल की ही प्राप्ति होती है। जो विद्वान् साधक पूर्णिमा अथवा शुक्ल पंचमी को श्वेत कमलों से एवं शुक्रवार को रक्तकमलों से प्रत्येक मास में हवन करता है, वह निःसन्दिग्ध रूप से एक वर्ष के भीतर भरपूर धन प्राप्त करता है। बहुत कहने से क्या लाभ; जो जितेन्द्रिय साधक इस मन्त्र का जप करता है, वह अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है एवं धन-धान्य तथा समृद्धि से युक्त हो जाता है।।६७३-६७७।।

कमलवासिनी-यन्त्र



गणेशोपासितलक्ष्मीमन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये गणेशेन काशीराज्याप्तये मम।
साम्बादित्यस्य रक्षोदिग्भागे लक्ष्मीरुपासिता।
लक्ष्मीविनायकस्तत्र प्रसिद्धोऽसौ गजाननः ॥६७८॥
दक्षिणेनैव मार्गेण तस्याः सिद्धिर्न वामतः।
सकारश्च हकारश्च कलरा वर्णपञ्चकम् ॥६७९॥
ईकारस्वरसंयुक्तं प्रथमं कूटमुच्यते।
हंबीजं तु द्वितीयं स्यात्प्रोक्तोऽयं त्र्यक्षरो मनुः ॥६८०॥
ऋषिर्हरिश्च गायत्री छन्दो लक्ष्मीश्च मोहिनी।
साम्राज्यदा देवतोक्ता कूटं बीजं प्रकीर्त्तितम् ॥६८१॥
शक्तिं श्रीं च षडङ्गानि षड्भिर्दीर्घैः समाचरेत्।

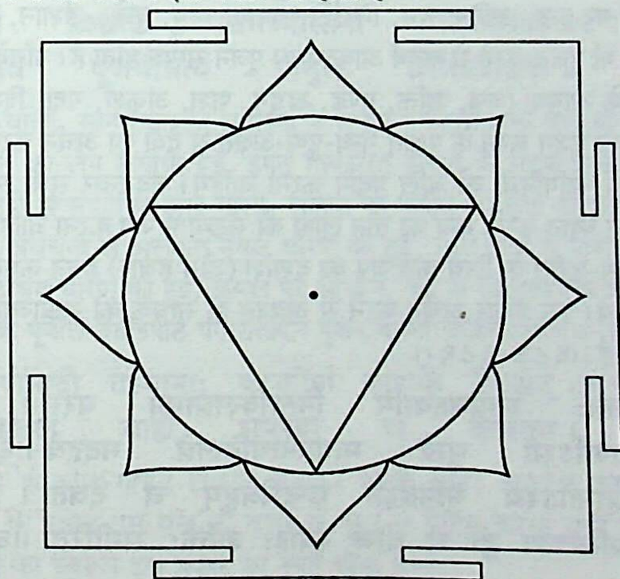
लक्ष्मीविनायक मन्त्र—मुझे काशी का राज्य प्राप्त कराने के लिये गणेश ने साम्बादित्य के नैर्ऋत्य भाग में जिस मन्त्र से लक्ष्मी की उपासना की थी और जिसके कारण वहाँ पर यह गजानन लक्ष्मीविनायक नाम से प्रसिद्ध हुआ, उस मन्त्र को अब मैं कहता हूँ। दक्षिणमार्ग से इस मन्त्र की उपासना करने पर ही सिद्धि प्राप्त होती है, वाममार्गीय उपासना से सिद्धि नहीं मिलती। तीन अक्षरों का मन्त्र कहा गया है— स्त्क्ल्रीं हं। इस मन्त्र के ऋषि हरि, छन्द गायत्री एवं देवता साम्राज्य प्रदान करने वाली मोहिनी लक्ष्मी कही गई हैं। कूट इसका बीज है एवं श्रीं शक्ति है। श्रीं के छः दीर्घ रूपों (श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौः श्रः) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।।६७८-६८१।।

अतसीपुष्पसङ्काशां रत्नभूषणभूषिताम् ।।६८२।।
शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणधरां करैः ।
षड्भिः कराभ्यां देवेशीं वरदाभयशोभिताम् ।।६८३।।

ध्यान—अतसी-पुष्प के सदृश वर्ण वाली, रत्न-निर्मित आभूषणों से विभूषित, छः हाथों द्वारा शंख, चक्र, गदा, पद्म, धनुष एवं बाण धारण की हुई तथा दो हाथों में वर एवं अभय से शोभायमान देवेशी का मैं ध्यान करता हूँ।।६८२-६८३।।

पूजायन्त्रं त्रिकोणं स्यादष्टपत्रं सभूपुरम् ।

पूजन यन्त्र—त्रिकोण, अष्टदल एवं भूपुर के निर्माण से इसका पूजन यन्त्र पूर्ण होता है। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



मध्ये प्रपूजयेद्देवीं षडङ्गानि ततो यजेत् ॥६८४॥
त्रिकोणकोणे गायत्रीं सावित्रीं च सरस्वतीम्।
ईशकोणात्क्रमेणैव ब्राह्मयाद्याश्च दलाष्टके ॥६८५॥
एकोच्चारक्रमेणैव भूपुरे मनुना पुरा।
अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमोऽस्त्विति ॥६८६॥
मन्त्रेण पूजयेत्पश्चादिन्द्रादीनायुधान्यपि।
पुनर्देवीं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥६८७॥
बटुकक्षेत्रपालेभ्यो योगिनीभ्यो बलिं हरेत्।
एवमष्टभुजां ध्यात्वा त्रिलक्षं प्रजपेत्सुधीः ॥६८८॥
तद्दशांशेन पद्मैस्तु हुनेत्साम्राज्यसिद्धये।
एवमर्चयतो लक्ष्मीं साम्राज्यं स्यादसंशयम् ॥६८९॥

यन्त्र के मध्य बिन्दु में देवी का पूजन करने के उपरान्त षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। यह प्रथम आवरण का पूजन होता है। तदनन्तर त्रिकोण के कोणों में गायत्री, सावित्री और सरस्वती का पूजन करने से द्वितीय आवरण का पूजन सम्पन्न होता है। इसके बाद अष्टदल में ईशान कोण से आरम्भ करके ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, ऐन्द्री, वैष्णवी, वाराही, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी का पूजन तृतीय आवरण में किया जाता है। भूपुर में 'स्ह्क्ल्रीं हं अष्टादशमहाकोटियोगिनीभ्यो नमः' मन्त्र से योगिनियों का पूजन करके वहीं पर इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा एवं अनन्त का भी पूजन करने से चतुर्थ आवरण का पूजन सम्पन्न होता है। पाँचवें आवरण में इन्द्रादि के आयुधों (वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, पद्म एवं चक्र) का पूजन करने के पश्चात् गन्ध-पुष्प-अक्षत से देवी का अर्चन करके बटुक, क्षेत्रपाल एवं योगिनियों को बलि प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर सुधी साधक को अष्टभुजा का ध्यान करके मन्त्र का तीन लाख की संख्या में जप करना चाहिये। इसके बाद साम्राज्य-प्राप्ति के लिये कृत जप का दशांश (तीस हजार) हवन कमलपुष्पों से करना चाहिये। इस प्रकार अर्चन करने से अवश्य ही साधक को साम्राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति होती है।।६८४-६८९।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नित्यक्लिन्नामनुं परम्।
भवार्णोऽसौ मुखे मायानित्यक्लिन्ने मदद्रवे ॥६९०॥
स्वाहान्तोऽस्य मुनिर्ब्रह्मा छन्दस्त्रिष्टुप् च देवता।
नित्यक्लिन्ना ह्रीं च बीजं स्वाहा शक्तिः समीरिता ॥६९१॥

क्लिन्नेति कीलकं प्रोक्तं हृदाद्येन समीरितम्।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां च शेषाणि कुर्य्यादङ्गानि साधकः ॥६९२॥
हृदये दृग्द्वये कर्णद्वये नासाद्वयेऽपि च।
लिङ्गे गुह्ये पादयोश्च मन्त्रार्णान् क्रमतो न्यसेत् ॥६९३॥

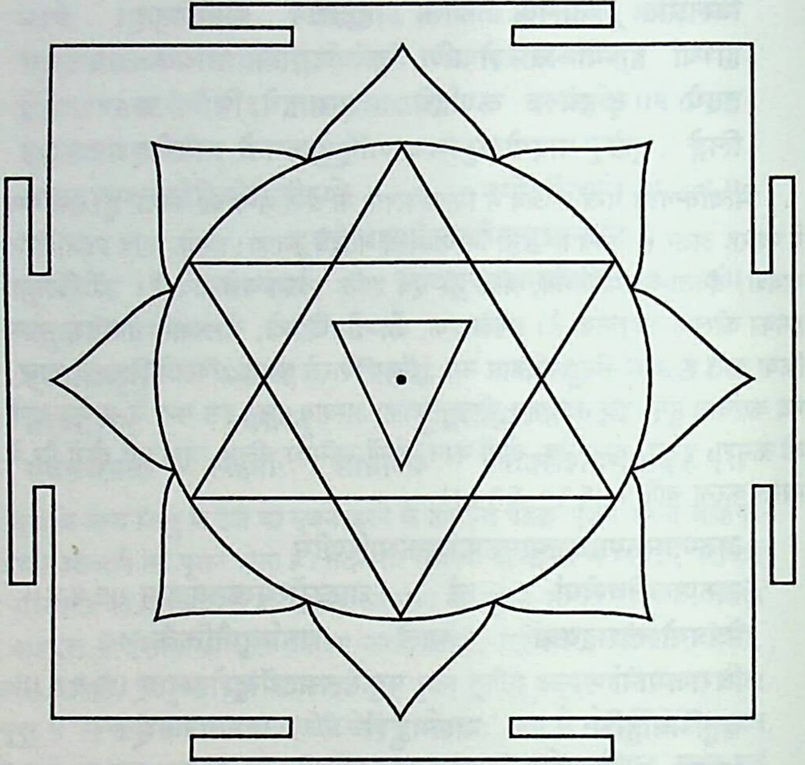
नित्यक्लिन्ना मन्त्र—अब मैं नित्यक्लिन्ना के श्रेष्ठ मन्त्र को कहता हूँ। इस मन्त्र में ग्यारह अक्षर हैं। मन्त्र है—ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता नित्यक्लिन्ना, बीज ह्रीं एवं शक्ति स्वाहा कहे गये हैं। 'ह्रीं क्लिन्ना' इसका कीलक कहा गया है। इसके एक, दो, दो, दो, दो, दो अक्षरों से षडङ्ग न्यास किया जात है; जैसे—ह्रीं हृदयाय नम:, नित्य शिरसे स्वाहा, क्लिन्ने शिखायै वषट्, मद कवचाय हुम्, द्रवे नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। इस मन्त्र के प्रत्येक वर्णों को क्रमश: हृदय, दोनों नेत्र, दोनों कान, दोनों नासिका, लिङ्ग, गुह्य एवं दोनों पैर में न्यस्त करना चाहिये।।६९०-६९३।।

अरुणामरुणाकल्पामरुणांशुकधारिणीम्।
अरुणस्त्रग्विलेपां तां चारुस्मेरमुखाम्बुजाम् ॥६९४॥
नेत्रत्रयोल्लसद्वक्त्रां भाले घर्माम्बुमौक्तिकैः।
विराजमानां मुकुटलसदर्धेन्दुशेखराम् ॥६९५॥
चतुर्भिर्बाहुभिः पाशमङ्कुशं पानपात्रकम्।
अभयं बिभ्रतीं पद्ममध्यासीनां मदालसाम् ॥६९६॥
ध्यात्वैवं पूजयेन्नित्यं प्रागुक्ते शक्तिपीठके।

रक्त वर्ण वाली, सान्ध्यकालीन लालिमा के समान मनोहारी, रक्त वस्त्र धारण की हुई, रक्तचन्दन का लेप लगायी हुई, ईषत् विकसित कमल के सदृश सुन्दर मुख वाली, तीन नेत्रों से सुशोभित मुख वाली, ललाट पर पसीने की बूंदों को धारण की हुई, शीर्ष पर अर्धचन्द्र से अलंकृत मुकुट धारण की हुई, चारो हाथों में पाश अंकुश पानपात्र एवं अभय धारण की हुई, कमल पर आसीन, मद से आलस्ययुक्त उस देवी का ध्यान करके पूर्वोक्त शक्तिपीठ पर प्रतिदिन पूजन करना चाहिये।।६९४-६९६।।

त्रिकोणमादौ तस्यान्तः षट्कोणं बाह्यके लिखेत् ॥६९७॥
पद्ममष्टदलं बाह्ये भूपुरेण च वेष्टितम्।

सर्वप्रथम षट्कोण-गर्भित त्रिकोण बनाकर उसके बाहर अष्टदल कमल का निर्माण करने के पश्चात् उस यन्त्र को बाहर से भूपुर से वेष्टित करना चाहिये। ऐसा करने से यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का स्पष्ट होता है—



तत्र मध्ये यजेद्देवीं चन्दनादिभिरुत्तमैः ॥६९८॥
कर्णिकायोनिमध्यस्थदेशे वाय्वीशवह्निषु ।
नैर्ऋत्यां पुरतो दिक्षु यजेदङ्गानि षट् क्रमात् ॥६९९॥
क्षोभिणीं मोहिनीं लोकां त्रिषु कोणेषु पूजयेत् ।
नित्यां निरञ्जनां क्लिन्नां क्लेदिनीं मदनातुराम् ।
मदद्रवां द्राविणीं च द्रावितां चाष्टपत्रके ॥७००॥
मदाविलां मङ्गलां च मन्मथार्त्तां मनस्विनीम् ।
महोन्मादां मानमयीं मायां मन्दां सितावतीम् ।
द्वारपार्श्वेषु कोणेषु दिक्षु द्वादश पूजयेत् ॥७०१॥
देव्यग्रद्वारके वामं पार्श्वमारभ्य पूजयेत् ।
लोकेशानपि तद्बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहिः ॥७०२॥

उपर्युक्त यन्त्र के मध्यबिन्दु में उत्तम चन्दनादि से देवी का पूजन करने के पश्चात्

कर्णिका एवं त्रिकोण के मध्यवर्ती स्थान में वायु ईश अग्नि नैर्ऋत्य सामने तथा दिशाओं में क्रमशः षडङ्गपूजन करना चाहिये। यह प्रथम आवरण का पूजन होता है। तत्पश्चात् त्रिकोण के तीनों कोणों में क्षोभिणी, मोहिनी एवं लोका का पूजन करने से द्वितीय आवरण का पूजन होता है। इसके बाद तृतीय आवरण में नित्या, निरंजना, क्लिन्ना, क्लेदिनी, मदनातुरा, मदद्रवा, द्राविणी और द्राविता का पूजन अष्टपत्र में करना चाहिये। तदनन्तर चतुर्थ आवरण में भूपुरद्वार के दोनों ओर, चारो कोण, चारो दिशाओं तथा ऊपर-नीचे देवी के सामने स्थित द्वार के बाँयीं ओर आरम्भ करके मदा, आविला, मंगला, मन्मथा, आर्ता, मनस्विनी, महा, उन्मादा, मानमयी, माया, मन्दा एवं सितावती—इन बारह देवियों का पूजन करना चाहिये। फिर पञ्चम आवरण में भूपुर के बाहर दश दिक्पालों का एवं उसके बाहर उन लोकपालों के दश आयुधों का पूजन षष्ठ आवरण में करना चाहिये।।६९८-७०२।।

ध्यात्वैवं प्रजपेल्लक्षमनुमेतं दशांशतः।
बन्धूकपुष्पैः स्वाद्वक्तैर्जुहुयाद्धविषाथ वा ।।७०३।।
तद्दशांशं कल्पयित्वा जलैः कर्पूरवासितैः।
आत्मानमभिषिच्याथ ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।।७०४।।
वित्तभूषाम्बराद्यैश्च तोषयेद् गुरुमात्मनः।
सिद्धे मन्त्रे प्रकुर्वीत प्रयोगान् मन्त्रवित्तमः ।।७०५।।
ततो विद्याप्रयोगार्हो नित्यार्चानिरतस्तथा।
सहस्रजापी तद्भक्तः कुर्य्यादुक्तं न चान्यथा ।।७०६।।

तदनन्तर देवी का ध्यान करके मन्त्रवर्ण की संख्या के बराबर लाख में अर्थात् ग्यारह लाख जप करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त बन्धूकपुष्प अथवा हविष्य से कृत जप का दशांश (एक लाख दस हजार) हवन करना चाहिये। पुनः कर्पूर-वासित जल से हवन का दशांश (ग्यारह हजार) तर्पण करने के बाद तर्पण का दशांश (एक हजार एक सौ) स्वयं का अभिषेक करके अभिषेक का दशांश (एक सौ दस) ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर प्रचुर धन, आभूषण, वस्त्र आदि प्रदान करते हुये अपने गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञश्रेष्ठ को प्रयोगों में प्रवृत्त होना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रप्रयोग में समर्थ वह देवीभक्त प्रतिदिन देवी का अर्चन एवं मन्त्र का एक हजार जप करके अग्रांकित प्रयोगों को करने में समर्थ हो जाता है; अन्यथा नहीं।।७०३-७०६।।

पद्मै रक्तैस्त्रिमध्वक्तैर्होमाल्लक्ष्मीमवाप्नुयात्।
तथैव कैरवै रक्तै राज्ञश्च स्ववशं नयेत् ।।७०७।।

समानरूपवत्सायाः शुक्लाया गोः पयःप्लुतैः ।
मल्लिकामालतीजातीशतपत्रैर्हुनेद्भवेत् ।
स्वर्णाप्तिः स्तम्भनं शत्रोर्नृपादीनां क्रुधोऽपि च ॥७०८॥
आज्याक्तैः करवीरोत्थैः प्रसूनैराहुतैर्ध्रुवम् ।
रक्ताम्बराणि वाणिज्यं भूतमर्त्यं वशं नयेत् ।
भूषावाहनवाणिज्यसिद्धयः स्युः स्ववाञ्छिताः ॥७०९॥
लवणैः सर्षपैर्गौरैरितरैर्वाथ होमतः ।
तत्तैलाक्तैर्निशामध्ये त्वानयेद्वाञ्छितां वधूम् ॥७१०॥
तैलाक्तैर्जुहुयात्कृष्णदरपुष्पैः निशान्तरा ।
मासादरातिस्तीव्रार्त्तिज्वरेण परिपीड्यते ॥७११॥
अरुष्कसुघृताक्तैस्तद्बीजैर्निशि च होमतः ।
व्रणाः शरीरे नश्येयुर्दुस्साध्याश्च चिकित्सकैः ॥७१२॥

त्रिमधु-सिक्त रक्तकमल के हवन से साधक लक्ष्मी प्राप्त करता है एवं त्रिमधुराक्त लाल कुमुद के हवन से राजा को अपने वश में कर लेता है। अपने ही समान रूप वाले बछड़े वाली श्वेत गौ के दूध से सिक्त मल्लिका के हवन से स्वर्ण की प्राप्ति, मालती के हवन से शत्रु-स्तम्भन, जाती के हवन से राजा का स्तम्भन तथा शतपत्री के हवन से क्रुद्ध व्यक्ति का स्तम्भन कर देता है। गोघृत से सिक्त कनैल के फूलों के हवन से रक्त वस्त्र का व्यवसाय बढ़ता है एवं मरणधर्मा प्राणी वशीभूत होते हैं। इससे भूषण, वाहन के साथ-साथ वाञ्छित व्यापार में भी सिद्धि मिलती है। नमक, अथवा सफेद अन्य सरसों को तैलाक्त करके आधी रात के समय हवन करने से वांछित स्त्री प्राप्त होती है। तैलाक्त काली शंखपुष्पी से मध्यरात्रि में हवन करने से एक माह के अन्दर शत्रु दुःखदायी ज्वर से पीड़ित हो जाता है। अरुष्क और उसके बीजों को घृताक्त करके रात्रि में हवन करने से चिकित्सकों द्वारा शरीर के दुःसाध्य व्रण (घाव) भी ठीक हो जाते हैं।।७०७-७१२।।

तैलेन दलिताङ्गस्तु रिपुर्याति यमालयम् ।
तथा तत्तैलसंसिक्तैर्बीजैरङ्कोलकैरपि ॥७१३॥
मरिचैः सर्षपाज्याक्तैर्निशि होमात्तु मानसे ।
वाञ्छितां वनितां कामज्वरार्त्तामानयेद् ध्रुवम् ॥७१४॥
मरिचैः सर्षपोपेतैः सप्तरात्रं हुतैर्निशि ।
धनमानकुलैर्नित्यं दुष्प्राप्यामानयेद्वधूम् ॥७१५॥

अन्नाद्यैर्जुहुयान्नित्यं शतमष्टोत्तरं तु वा।
तेनान्नपूर्णे भवने भोक्ता च भवति ध्रुवम्।
तण्डुलैराज्ययुक्तैश्च होमाच्छालीनवाप्नुयात्॥७१६॥

तैल-सिक्त अंकोलबीज के हवन से तैल-मर्दित अंग वाला शत्रु यमपुरी को प्रस्थान करता है। रात्रि में गोघृत-सिक्त मरिच एवं सरसों के हवन से मन में वाञ्छित स्त्री कामज्वर से पीड़ित होकर साधक के पास चली आती है। मरिच और सरसों मिलाकर आधी रात में सात रात्रियों तक नित्य हवन करने से धन, मान एवं कुल से दुष्प्राप्य स्त्री भी साधक के पास चली आती है। प्रतिदिन अन्न आदि से एक सौ आठ आहुतियों द्वारा हवन करने से साधक के घर में अन्नपूर्णा का वास होता है। चावल में गोघृत मिलाकर हवन करने से साधक को अन्न प्राप्त होता है।।७१४-७१६।।

साध्यर्क्षवृक्षसम्भूतविष्टपादरजः कृताम्।
राजीमरिचलवणैर्जुहुयात्पुत्तलीं निशि।
प्रपदाभ्यां च जङ्घाभ्यां जानुभ्यामूरुयुग्मतः॥७१७॥
नाभेरधस्ताद्धृदयाद् गलात्कण्ठात्तथैव च।
छित्त्वा शिरः सुतीक्ष्णेन शस्त्रेण जुहुयात्क्रमात्।
एवं द्वादशधा होमान्नरनारीनराधिपाः॥७१८॥
वश्या भवेयुः सर्वे हि ज्वरार्त्ताश्चास्य वाञ्छया।
प्रयान्ति निधनं चास्य वाञ्छया नान्ययोगतः।
पिष्टेन गुडयुक्तेन मरिचैर्जीरकैर्युताम्॥७१९॥
कृत्वा पुत्तलिकां साध्यज्ञानमुक्तामथो हृदि।
सनामहोमसम्पातघृते सम्पच्य तां पुनः।
स्पृशन्निजकराग्रेण सहस्रं प्रजपेन्मनुम्॥७२०॥
अभ्यर्च्य तद्घृताक्तेन भक्षयेत्तद्धिया जपन्।
नरनारीनृपास्तस्य वश्याः स्युर्मरणावधि॥७२१॥
तैरेव पिष्टैर्वृत्तं तु कृत्वा तन्मध्यतस्तथा।
साध्यनामस्फुटं कृत्वा प्राग्वत्सम्पाच्य भक्षणात्॥७२२॥
वश्यास्ते वत्सरं भूयः स्वनामार्थान्वितैस्तथा।
कृत्वा पिपच्य खादँस्तु वशयेत्तं तदर्थकम्॥७२३॥

साध्य नाम के नक्षत्रवृक्ष की लकड़ी को पीसकर उसके साथ साध्य की पदधूलि को मिलाकर साध्य की प्रतिमा बनाने के उपरान्त रात्रि में राई, मरिच एवं नमक के

साथ पुत्तली के पैरों, घुटनों, जङ्घाओं, ऊरुओं, नाभि का निम्न भाग, हृदय, गला, कण्ठ एवं शिर को तेज शस्त्र से अलग-अलग काटने के पश्चात् सबको मिलाकर उनसे बारह बार हवन करने से नर, नारी, राजा आदि सभी साधक के वशीभूत हो जाते हैं और साधक की इच्छा होने पर वे ज्वर-पीड़ित होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार साधक की इच्छानुसार साध्यवृक्ष-पिष्ट में गुड़, मरिच, जीरा मिलाकर पुत्तली का निर्माण करके अपने हृदय में साध्यनाम का उच्चारण करते हुये घृत से हवन करने के उपरान्त सम्पात घृत का पुन: पाक करके उसका स्पर्श करते हुये मन्त्र का एक हजार जप करने के बाद उसे घृताक्त करके मन ही मन उस प्रतिमा का भक्षण करते हुये मन्त्रजप करने से मनुष्य, स्त्री एवं राजा अपने जीवन-पर्यन्त उस साधक के वशीभूत हो जाते हैं। पूर्वोक्त पिष्ट से एक वृत्त बनाकर उस वृत्त के मध्य में साध्यनामाक्षर अंकित कर पूर्ववत् सम्यक् रूप से पाक करने के बाद भक्षण करने से साल भर के अन्दर साध्य साधक के वशीभूत हो जाता है। पुन: साधक द्वारा अपने नाम के साथ साध्यनाम को संयुक्त कर पाक करके एक वर्ष तक भक्षण करने से साध्य साधक की इच्छानुसार उसके वशीभूत हो जाता है।।७१७-७२३।।

नारिकेरपयोभिस्तु तर्पणाद्वनिता वशा।
कर्पूरवासितैस्तोयैर्मनुष्यान् वशयेत्स्थितान् ।।७२४।।
तर्पणाल्लवणाम्भोभिः सर्वे स्युस्तस्य किङ्कराः।
तथा लवणयुक्तेन तोयेन वनिता वशा ।।७२५।।
शुद्धेन वारिणा मासं तदर्धं तप्तवारकान्।
तर्प्पयेद्यस्य नाम्नैवं स तस्य स्याद्वशेऽनिशम् ।।७२६।।
केतकीवासितैर्जम्बूयुतै रम्भाफलोदकैः।
तर्पणाद्वनिता वश्या दद्युः प्राणानपि प्रियान् ।।७२७।।

नारियल-जल द्वारा तर्पण करने से स्त्री वशीभूत होती है। कपूर से सुगन्धित जल से तर्पण करने पर मनुष्य वश में होते हैं। लवणयुक्त जल द्वारा तर्पण करने से समस्त लोग उस साधक के दास हो जाते हैं। साथ ही लवणयुक्त जल के तर्पण से स्त्री वशगामिनी हो जाती है। शुद्ध जल में जल का आधा उष्ण ह्रीबेर मिलाकर उससे जिसका नाम लेकर तर्पण किया जाता है, वह सर्वदा उस साधक के वशीभूत रहता है। जल में केतकी, जामुन एवं रम्भाफल (केला) मिलाकर तर्पण करने से वनिता साधक के वश में हो जाती है एवं उसके लिये अपने प्राणों से भी प्रिय वस्तु को अर्पित कर देती है।।७२४-७२७।।

तर्पणाल्लवणाम्भोभिः सतिलैः किन्नरा वशाः ।
शुद्धेन वारिणा मासं तर्पणात् स्यान्निजं धनम् ।
नमेरुवासितैस्तोयैस्तर्पणाद् भूमिपा वशाः ॥७२८॥
कस्तूरीवासितैस्तोयैस्तर्पणाद् भूमिपा वशाः ।
चम्पकैर्वासितजलैस्तर्प्पणं सर्वरञ्जनम् ॥७२९॥
पाटलीशतपत्राभ्यां वासितैर्जलतर्पणैः ।
सर्वलोकचमत्कारी ध्रुवं भवति नित्यशः ॥७३०॥
कस्तूरीवासिताम्भोभिस्तर्पणं सर्वसिद्धिकृत् ।
इन्द्रचन्दनसौरभ्यवासिताम्भः प्रतर्पणैः ॥७३१॥
वाञ्छितार्थसुसंसिद्धिस्तर्पयेद्वैरिमृत्यवे ।
केवलोष्णोदकैस्तस्य तीव्रज्वरसमुद्भवः ॥७३२॥
निम्बपत्ररसोपेतैरम्बुभिस्तर्पणाद् द्विषाम् ।
जायतेऽन्योन्यवैरुद्ध्यं येन ते नाशमाप्नुयुः ॥७३३॥
तथैवात्युष्णसलिलैस्तर्पणाद् द्वेषिणो भृशम् ।
अतीसारादिभिर्दोषैरुदर्य्यै रोगमाप्नुयुः ।
सर्वविद्यास्वियं मुख्या देवी श्रीविद्यया समा ॥७३४॥

लवण-मिश्रित जल में तिल मिलाकर तर्पण करने से किन्नर वशीभूत होते हैं। एक मास तक शुद्ध जल द्वारा तर्पण करने से धन प्राप्त होता है। नमेरु (रुद्राक्ष अथवा पुन्नाग) से सुवासित जल द्वारा तर्पण करने पर राजा लोग वशीभूत होते हैं। कस्तूरी-वासित जल द्वारा तर्पण से भी राजा लोग वशीभूत होते हैं। चम्पापुष्प से सुवासित जल द्वारा तर्पण सबको आनन्ददायी होता है। पाटली (पाढ़र) एवं शतपत्र से सुवासित जल द्वारा प्रतिदिन तर्पण करने वाला साधक सभी लोकों में चमत्कारी हो जाता है। कस्तूरी-वासित जल से किया गया तर्पण समस्त सिद्धियाँ देने वाला होता है। इन्द्र चन्दन की सुरभि से सुवासित जल द्वारा तर्पण करने से अभीष्ट की प्राप्ति होती है। शत्रु की मृत्यु के लिये केवल उष्ण जल से तर्पण करना चाहिये। इससे शत्रु को तीव्र ज्वर उत्पन्न हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। निम्बपत्रों के रस से समन्वित जल द्वारा तर्पण करने से शत्रुओं में परस्पर द्वेष उत्पन्न हो जाता है, जिसके फलस्वरूप वे नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार अत्यन्त उष्ण जल से तर्पण करने पर बार-बार अतिसार आदि दोष के कारण शत्रुगण पेट-सम्बन्धी रोग से ग्रसित हो जाते हैं। सभी विद्याओं में यह विद्या मुख्य है और श्रीविद्या के समान है।।७२८-७३४।।

नित्यक्लिन्नामन्त्रनिरूपणम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नित्यक्लिन्नामनुं परम् ।
ॐ ह्रीमैमिति बीजानि नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ॥७३५॥
ॐ ह्रीं स्वाहेति तिथ्यर्णो मन्त्रोऽयं वाञ्छितार्थदः ।
ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो विराडुक्तं तु देवता ।
नित्यक्लिन्नाभिधा देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ॥७३६॥
विना वाग्भवबीजं तु द्विद्वियुग्मेषुबाणकैः ।
समस्तेनाङ्गषट्कं स्यान्नित्यक्लिन्नां स्मरेत्ततः ॥७३७॥

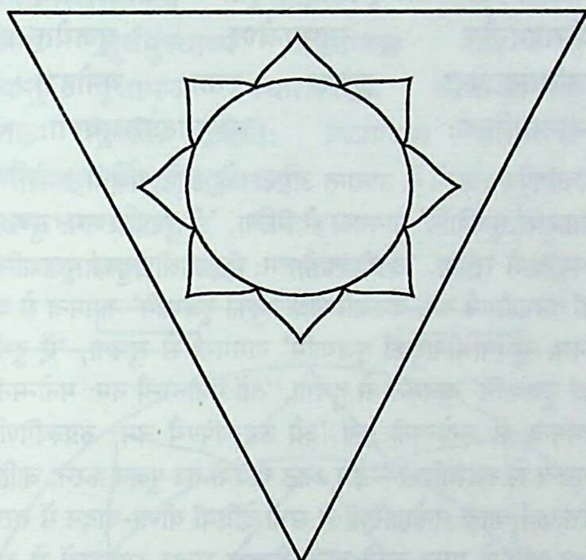
नित्यक्लिन्ना का अपर मन्त्र—अब मैं नित्यक्लिन्ना के परम मन्त्र को कहता हूँ। 'ॐ ह्रीं ऐं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ॐ ह्रीं स्वाहा'—पन्द्रह अक्षरों का यह मन्त्र अभीष्ट-प्रदायक है। इसके ऋषि सम्मोहन, छन्द विराट् एवं देवता धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप फल प्रदान करने वाली देवी नित्यक्लिन्ना कही गई हैं। समस्त मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास करने के उपरान्त नित्यक्लिन्ना का ध्यान करना चाहिये।।७३५-७३७।।

सुरासमुद्रमध्ये तु पृथुद्वीपं स्मरेद् बुधः ।
तेजोमयं तत्र वनं नानाकल्पद्रुमान्वितम् ॥७३८॥
भृङ्गालिमञ्जुनादेन मन्दवातेन सेवितम् ।
मनोज्ञतृणपुष्पाद्यैर्युक्ते माणिक्यमण्डपे ॥७३९॥
रत्नसिंहासनं तस्य मध्ये राजत्त्रिकोणके ।
तन्मध्येऽष्टदले देवीमुपविष्टां च संस्मरेत् ॥७४०॥
शीतांशुचूडामरुणाम्भोजाभां बिभ्रतीं करैः ।
पाशाङ्कुशौ कल्पवल्लीं कपालं दोर्युगेन च ।
वादयन्तीं कलां वीणां त्र्यक्षां नित्यां स्मराम्यहम् ॥७४१॥

विद्वान् साधक को सुरासमुद्र में तेज:सम्पन्न पृथुद्वीप का स्मरण करना चाहिये। उस द्वीप पर भ्रमरों की मनोज्ञ ध्वनि एवं मन्द-मन्द प्रवहमान वायु द्वारा सेवित अनेक कल्पवृक्षों से भरा हुआ एक वन है। उस वन के मध्य में मनोहारी तृणों एवं पुष्पों से समन्वित माणिक्य-निर्मित मण्डप के मध्य में रत्नों से निर्मित सिंहासन रखा है। वह सिंहासन मध्य में त्रिकोण से सुशोभित है। उस त्रिकोण के मध्य में एक अष्टदल है, जिस पर चूड़ा में चन्द्रमा को धारण की हुई रक्तकमल के समान दीप्तिमान देवी बैठी हुई हैं। वे अपने हाथों में पाश अंकुश कल्पवल्ली एवं कपाल धारण की हुई हैं। दो हाथों से छोटी वीणा को बजाती हुई तीन नेत्रों वाली नित्या का मैं स्मरण करता हूँ।।७३८-७४१।।

इति ध्यात्वा यजेत्पीठं चतुश्शक्तियुतं सुधीः।
सयोनिकर्णिकं पद्ममष्टपत्रविराजितम् ।।७४२।।

इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् साधक को चार शक्तियों से युक्त पीठ पर यजन करना चाहिये। यह पूजन त्रिकोण में अष्टदल कमल बनाकर करना चाहिये, जिसका रूप इस प्रकार का होता है—



आं द्राविण्यै च वामायै हृदुक्त्वैशानके यजेत्।
ईं स्यादाह्लादकारिण्यै ज्येष्ठायै हृद्धुदासने ।।७४३।।
ऊं क्षोभिण्यै च रौद्र्यै च नमः पश्चिमकोणके।
ऐं गुह्यशक्त्यै हृत्प्रोक्तं यजेन्मध्ये त्रिकोणके।
ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय हृदयान्ततः ।।७४४।।
पूज्यं त्रयोदशार्णेन देव्याश्चासनमुत्तमम्।
नित्यक्लिन्नां तत्र यजेद्वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ।।७४५।।

'ह्रीं आं द्राविण्यै वामायै नम: श्रीपादुकां पूजयामि' मन्त्र से त्रिकोण के ईशान कोण में, 'ह्रीं ईं आह्लादकारिण्यै ज्येष्ठायै नम: श्रीपादुकां पूजयामि' मन्त्र से नैर्ऋत्य कोण में, 'ह्रीं ऊं क्षोभिण्यै रौद्र्यै नम: श्रीपादुकां पूजयामि' से वायव्य कोण में तथा 'ह्रीं ऐं गुह्य शक्त्यै नम: श्रीपादुकां पूजयामि' मन्त्र से त्रिकोण के मध्य में पूजन करने के पश्चात् 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नम:' इस तेरह वर्ण वाले मन्त्र से देवी के उत्तम आसन

का पूजन करके वहीं पर वक्ष्यमाण मार्ग से नित्यक्लिन्ना का पूजन करना चाहिये।

केशरेष्वङ्गपूजा स्यात्पत्रेष्वेताः प्रपूजयेत्।
इं नित्यामीं सुभद्रां च मङ्गलां वनचारिणीम् ॥७४६॥
उ ऊं पूर्वामें सुभगामैं पूर्वां चापि दुर्भगाम्।
मनोन्मनीं च ओम्पूर्वामौं पूर्वां रुद्ररूपिणीम्।
चतुर्थ्यन्तहृदन्तेन नाममन्त्रेण पूजयेत् ॥७४७॥
वल्लकीवादनपरा ह्युष्णा रक्ता मनोहरा।
मदमन्थरगामिन्यः सुभूषाश्चारुभूषणाः ॥७४८॥

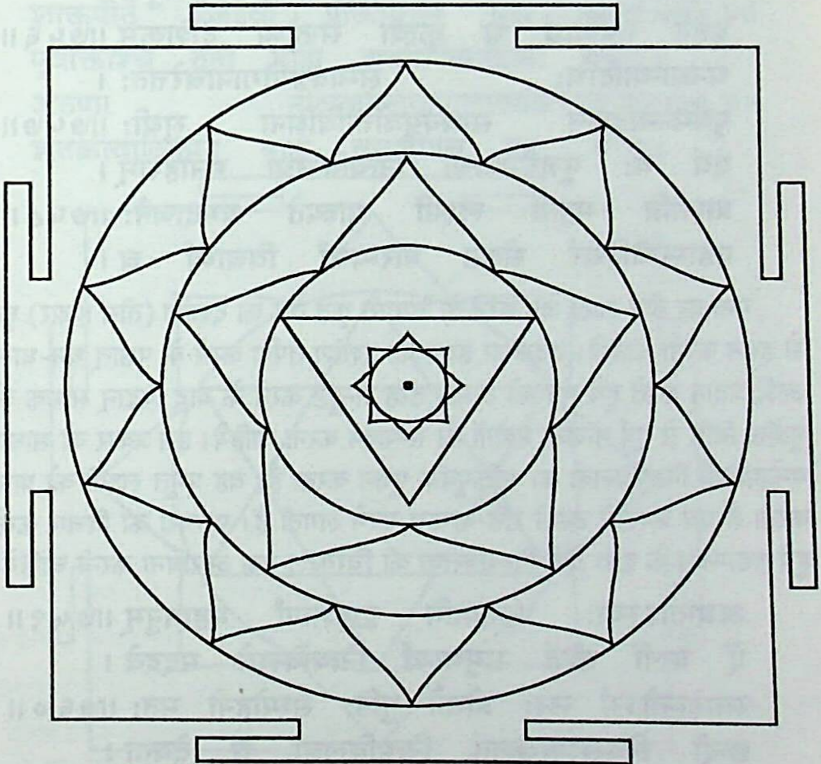
केशरों में अंगपूजन करने के उपरान्त अष्टदल के आठो पत्रों में क्रमशः 'इं नित्यायै नमः नित्याश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से नित्या, 'ईं सुभद्रायै नमः सुभद्राश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से सुभद्रा, 'उं मङ्गलायै नमः मङ्गलाश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से मङ्गला, 'ऊं वनचारिण्यै नमः वनचारिणीश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से वनचारिणी, 'एं सुभगायै नमः सुभगाश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से सुभगा, 'ऐं दुर्भगायै नमः दुर्भगाश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से दुर्भगा, 'ओं मनोन्मन्यै नमः मनोन्मनीश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से मनोन्मनी एवं 'औं रुद्ररूपिण्यै नमः रुद्ररूपिणीश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से रुद्ररूपिणी—इन आठ देवियों का पूजन करना चाहिये। तीक्ष्ण स्वभाव एवं रक्तवर्ण वाली मनोहारिणी ये सभी देवियाँ वीणा-वादन में तत्पर हैं, मद के कारण मन्थर गति से गमन करने वाली हैं तथा सुन्दर आभूषणों से अलंकृत हैं।

हव्यञ्जनाढ्यं कामस्य बीजं बिन्दुद्वयान्वितम्।
उच्चार्य्य ङेहृदन्तश्चानङ्गादीन् पूजयेत्क्रमात् ॥७४९॥
पञ्चपत्रेषु देव्यग्रप्रादक्षिण्येन ते तथा।
अनङ्गश्च स्मरो मन्मथाख्यः कामश्च मारकः।
पञ्चपुष्पेषुपाशाह्वेनाङ्कुशेक्षुधनुर्भृतः ॥७५०॥
पृष्ठभागे भ्रूणयुक्ता शक्तिस्तत्पार्श्वसंस्थिताः।
भूषायुक्ताः स्मरेद्वक्त्रकमलाः साधु पूजयेत् ॥७५१॥

त्रिकोण के बाहर पञ्चदल कमल बनाकर देवी के आगे से प्रदक्षिणक्रम से पञ्च-कामदेवों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—हं क्लीं अनङ्गाय नमः अनङ्गश्रीपादुकां पूजयामि, हं क्लीं स्मराय नमः स्मरश्रीपादुकां पूजयामि, हं क्लीं मन्मथाय नमः मन्मथश्रीपादुकां पूजयामि, हं क्लीं कामाय नमः कामश्रीपादुकां पूजयामि, हं क्लीं मारकाय नमः मारकश्रीपादुकां पूजयामि। ये पाँचों अपने हाथों में पंचपुष्प, पाश,

अंकुश और इक्षुधनुष धारण किये हुये हैं। इन सबके पार्श्व में स्थित आभूषणों से अलंकृत, कमलमुखी एवं गर्भवती पाँच शक्तियों का ध्यान करके उनका भी इनके पृष्ठभाग में सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये।।७४९-७५१।।

ततो बाह्ये दशदले देव्यग्रादिप्रदक्षिणम्।
षण्डान्तस्वरहीनञ्च ककारं बिन्दुभूषितम्।।७५२।।
एकैकं पूर्वमुच्चार्य्य ङेहृदन्तञ्च नाम च।
अयन्तु पूजामन्त्रः स्यात्सर्वासां चाप्यनुक्रमात्।।७५३।।
रतिश्च विरतिः प्रीतिः विप्रीतिश्च मतिस्तथा।
दुर्मतिर्निधृतिर्विधृतिस्तुष्टिश्चापि वितुष्टिका।।७५४।।
अरुणाभरणोपेता वीणाहस्ताः स्मिताननाः।
लोकपालास्ततो बाह्ये तदस्त्राणि ततो बहिः।।७५५।।



तदनन्तर उसके बाहर दशदल कमल बनाकर देवी के सामने वाले पत्र से प्रारम्भ

करके प्रदक्षिणक्रम से 'कं रत्यै नमः रतिश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से रति, 'कां विरत्यै नमः विरतिश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से विरति, 'किं प्रीत्यै नमः प्रीतिश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से प्रीति, 'कीं विप्रीत्यै नमः विप्रीतिश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से विप्रीति, 'कुं मत्यै नमः मतिश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से मति, 'कूं दुर्मत्यै नमः दुर्मतिश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से दुर्मति, 'कें निर्धृत्यैं नमः निर्धृतिश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से निर्धृति, 'कैं विधृत्यै नमः विधृतिश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से विधृति, 'कों तुष्ट्यै नमः तुष्टिश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से तुष्टि एवं 'कौं वितुष्टिकायै नमः वितुष्टिकाश्रीपादुकां पूजयामि' नाममन्त्र से वितुष्टिका का क्रमशः पूजन करना चाहिये। लाल वस्त्राभूषण-युक्त प्रसन्न मुख वाली ये सभी देवियाँ अपने-अपने हाथों में वीणा धारण की हुई हैं। तत्पश्चात् उसके बाहर दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।।४५२-४५५।।

वह्निलक्षं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं हुनेत्पुनः।
घृतेन तर्पणाद्यं च कृत्वा सन्तोष्य देशिकम्।।७५६।।
धनधान्यादिभिः सम्यक्प्रयोगानाचरेत्ततः।
पूर्वमन्त्रोदितान् सम्यक्पूर्वोक्तविधिना सुधीः।।७५७।।
एवं यः पूजयेद्भक्त्या नित्यक्लिन्नां मनोहराम्।
प्राप्नोति महतीं लक्ष्मीं याच्यते प्रमदाजनैः।।७५८।।
षडाम्नायैश्चिरं सेव्या पारम्पर्य्यं विचार्य्य च।

मन्त्र का तीन लाख जप करने के उपरान्त कृत जप का दशांश (तीस हजार) घृत से हवन करना चाहिये। तदनन्तर हवन का दशांश तर्पण करने के पश्चात् धन-धान्य आदि प्रदान करते हुये गुरु को अच्छी तरह सन्तुष्ट करने के बाद विद्वान् साधक को पूर्वोक्त विधि से पूर्व मन्त्रोक्त प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये। इस प्रकार जो साधक मनोहारिणी नित्यक्लिन्ना का भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह प्रभूत लक्ष्मी को प्राप्त करता है एवं प्रमदायें उससे रति-याचना करने लगती हैं। परम्परा का विचार करते हुये षडाम्नाय के द्वारा देवी नित्यक्लिन्ना की चिरकाल तक आराधना करनी चाहिये।

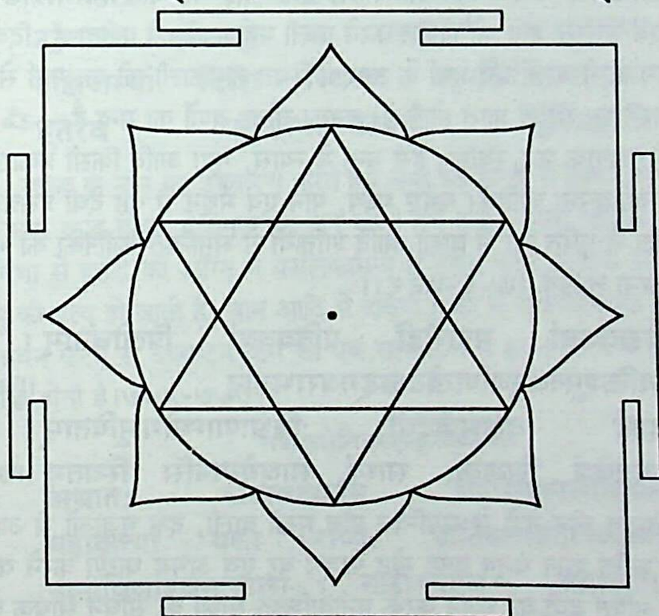
अथातोऽस्याः प्रवक्ष्यामि द्वादशार्णं महामनुम्।।७५९।।
ऐं क्लीं बीजं समुचार्य्य नित्यक्लिन्ने मदद्रवे।
स्वाहान्तोऽयं मनुः प्रोक्तो मुनिः सम्मोहनो मतः।।७६०।।
छन्दो निवृत्समाख्यातं नित्यक्लिन्ना च देवता।
वाग्भवेन षडङ्गानि कृत्वा देवीं विचिन्तयेत्।।७६१।।

रक्ताम्बरां रक्तवर्णां रक्तगन्धानुलेपनाम्।
कमलञ्च सृणिं पाशं कपालं बिभ्रतीं करैः ॥७६२॥
मदाकुलितसर्वाङ्गीं त्रिनेत्रां शशिशेखराम्।

अब मैं इस देवी नित्यक्लिन्ना के द्वादशाक्षर महामन्त्र को कहता हूँ। यह मन्त्र है— ऐं क्लीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा। इसके ऋषि सम्मोहन, छन्द निवृत् एवं देवता नित्यक्लिन्ना कही गई हैं। वाग्भव मन्त्र 'ऐं' से इसका षडङ्ग न्यास करने के उपरान्त देवी का ध्यान करना चाहिये।

रक्तगन्ध का अनुलेप लगाई हुई रक्त वर्ण वाली देवी रक्त वस्त्र धारण की हुई हैं। उसके हाथों में कमल सृणि (अंकुश) पाश एवं कपाल हैं। तीन नेत्रों वाली उस देवी का सर्वाङ्ग मद से व्याकुल है। वह अपने शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण की हुई हैं।।७५९-७६२।।

शाक्तपीठे यजेद्देवीं प्रोक्ताङ्गानि पुरा यजेत् ॥७६३॥
पूर्वोक्ताश्च ततो बाह्ये शक्तीर्नित्यादिका यजेत्।
अरुणा नीलकमलकपालाढ्यकराम्बुजा ॥७६४॥
शतक्रत्वादिकान् बाह्ये वज्रादींश्च ततः परम्।



ध्यानानन्तर शाक्त पीठ पर देवी का यजन करने के पश्चात् प्रथमत: पूर्वोक्त षडङ्ग-

पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके बाहर हाथों में नीलकमल एवं कपाल धारण की हुई रक्त वर्ण वाली नित्या आदि शक्तियों का पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर भूपुर में इन्द्रादि लोकपालों का यजन करने के उपरान्त उसके बाहर लोकपालों के वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।।७६३-७६४।।

अथ वक्ष्ये महाकालीं समस्तजनमोहिनीम् ।।७६५।।
आनीतां श्रीगणेशेन वाममार्गप्रचारिणीम् ।
त्वरितं वाममार्गेण ह्यस्याः सिद्धिः प्रजायते ।।७६६।।
दिवोदासोच्चाटकरां दुर्गाया उत्तरस्थिताम् ।
ॐ क्षें क्षें क्रें क्रेञ्च पशुं गृहाण कवचं वदेत् ।
अस्त्रं स्वाहा शक्रवर्णो मन्त्रः काल्या उदीरितः ।।७६७।।
न न्यासो न च मुद्रादिर्नात्र काचिद्विचारणा ।
यथेष्टभक्ष्यपानाभ्यां मैथुनेन प्रसीदति ।।७६८।।
उष्णतोयेन सम्पूर्णे कुम्भे चैवाथ कालिकाम् ।
ब्राह्म्यादिभिः शक्तिभिश्च युक्तां भक्त्या प्रपूजयेत् ।।७६९।।

महाकाली मन्त्र—अब श्री गणेश द्वारा लाई गई वाममार्ग में सञ्चरण करने वाली एवं समस्त जनों को मोहित करने वाली महाकाली को कहता हूँ। दिवोदास का उच्चाटन करने वाली एवं दुर्गा के उत्तर में स्थित महाकाली की वाममार्ग से उपासना करने पर सद्यः सिद्धि प्राप्त होती है। इनका चौदह वर्णों का मन्त्र है—ॐ क्षे क्षें क्रें क्रें पशुं गृहाणक फट् स्वाहा। इस मन्त्र में न्यास, मुद्रा आदि किसी प्रकार का कोई विचार नहीं करना चाहिये। यथेष्ट भक्ष्य, पान एवं मैथुन से यह देवी प्रसन्न होती हैं। उष्ण जल से पूरित घट में ब्राह्मी आदि शक्तियों से समन्वित कालिका का भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये।।७५६-७६९।।

पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं प्रतिवक्त्रां त्रिलोचनाम् ।
शक्तिशूलधनुर्बाणखेटखड्गवराभयान् ।।७७०।।
दक्षां दक्षभुजैर्देवीं बिभ्राणाम्भोगभूषिताम् ।
ध्यात्वैवं सिद्धकः साध्यं साधयेन्मनसि स्थितम् ।।७७१।।

प्रतिमुख तीन नेत्रों से समन्वित पाँच मुखों वाली, दक्ष भुजाओं से आरम्भ कर हाथों में शक्ति शूल धनुष बाण खेट खड्ग वर एवं अभय धारण करने वाली तथा भोगों से भूषित देवी का ध्यान करके मनोवाञ्छित साध्य का साधन साधक को करना चाहिये।।७७०-७७१।।

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा चण्डिकाष्टमी ॥७७२॥
प्रोक्ता ईशानपर्य्यन्तं कुम्भकुक्षिस्थिता इमाः।
कार्त्तिकेया तमोदेवी महाकाली भयापहा ॥७७३॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं घृताक्तैस्तिमिभिर्हुनेत्।
तर्पणादि ततः कृत्वा सिद्धो मन्त्रः प्रजायते ॥७७४॥

ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और चण्डिका— ये आठ देवियाँ कुम्भ की कुक्षि में पूर्व से लेकर ईशान-पर्यन्त स्थित रहती हैं। स्कन्दजननी तमोदेवी महाकाली भय को दूर करने वाली हैं। चतुर्दश वर्णात्मक महाकाली मन्त्र का चौदह लाख जप करने के उपरान्त घृत-सिक्त समुद्री मछलियों से हवन करने के बाद तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।७७२-७७४।।

नामोच्चारणसंरब्धरज्वा प्रज्वलितेऽनले।
जुहुयाद्वैरिणः क्रुद्धो देवीमन्त्रं जपँस्तथा ॥७७५॥
समिधः पिचुमन्दस्य बिभीताङ्गारहोमतः।
सप्ताहाद्वैरिणं हन्ति कालिकामन्त्रयोगतः ॥७७६॥
उच्चाटो ह्यपराह्ने च सन्ध्यायां मारणन्तथा।
दक्षिणस्यां दिशि स्थित्वा ग्रामादेर्दक्षिणामुखः।
एतैरेव भवेद्धोमस्तत्तत्कर्म सुसिद्ध्यति ॥७७७॥

साध्य के नाम का उच्चारण करते हुये बँधी हुई रस्सी से प्रज्वलित अग्नि में शत्रु के ऊपर क्रुद्ध होकर देवीमन्त्र का जप करते हुये हवन करना चाहिये। पिचुमन्द की समिधा से बहेड़े की अग्नि में कालिकामन्त्र से हवन करने से एक सप्ताह के भीतर शत्रु की मृत्यु हो जाती है। ग्राम आदि से दक्षिण दिशा में दक्षिणाभिमुख बैठकर मध्याह्न में हवन करने से उच्चाटन कर्म की एवं सायंकाल में हवन करने से मारण कर्म की सिद्धि होती है।७७५-७७७।।

गणेशसेवितमहाकृत्यामन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महागणपसेविताम्।
महाकृत्यां यथा नार्य्यः पातिव्रत्यव्रताच्च्युताः ॥७७८॥
नानाविधाश्चमत्कारा नारीभ्यश्च प्रदर्शिताः।
पातिव्रत्याद् भ्रंशितास्ताः पापराशिर्महानभूत् ॥७७९॥

स्त्रीषु कृत्यासु जातासु गार्हस्थ्ये भङ्गुरे सति।
पुरुषा यां समासाद्य गृहस्थाः सुखिनोऽभवन् ॥७८०॥
तां कृत्यां सम्प्रवक्ष्यामि गृहस्थाश्रममण्डनाम्।
ह्रीं महायोगिनीं प्रोच्य गौरीमुक्त्वा भुवेति च ॥७८१॥
न भयङ्करि हुञ्चेति मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः।
अङ्गिराश्च मुनिर्देवी गायत्री छन्द ईरितम् ॥७८२॥
एवं फडन्तं भुवनभयङ्करि शिरो मतम्।
पुनरेवं त्रिरावृत्त्या षडङ्गानि समाचरेत् ॥७८३॥

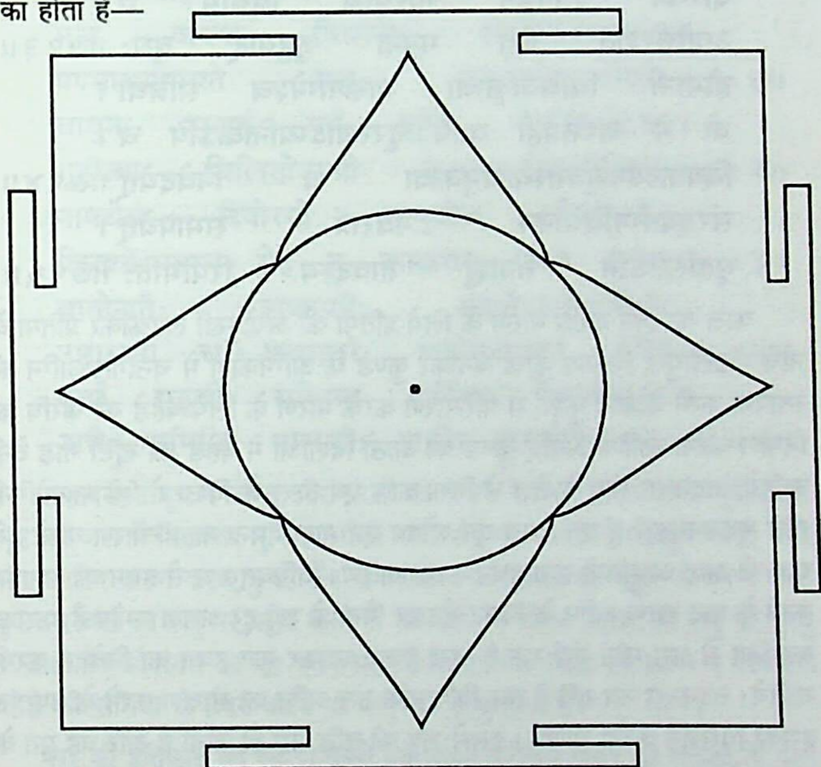
महाकृत्या मन्त्र—अब मैं महागणपति द्वारा सेवित महाकृत्या को कहता हूँ, जिसके द्वारा नारियों को उनके पातिव्रत्य व्रत से पतित किया गया था। इस महाकृत्या ने नारियों के समक्ष अनेक प्रकार के चमत्कार प्रदर्शित किये थे, जिसके परिणामस्वरूप वे नारियाँ पातिव्रत्य धर्म से स्खलित हो गईं और घनघोर पापराशि का प्रादुर्भाव हुआ। स्त्रियों में कृत्या के प्रवेश करते ही गार्हस्थ्य धर्म के नष्ट हो जाने पर गृहस्थ पुरुष लोग जिसको प्राप्त करके सुखी हुये, गृहस्थाश्रम के अलंकारस्वरूप उस कृत्या को अब मैं कहता हूँ। इसका षोडशाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं महायोगिनीं गौरीं भुवनभयङ्करि हुं। इस मन्त्र के ऋषि अङ्गिरा एवं छन्द देवी गायत्री कहे गये हैं; साथ ही भुवनभयङ्करि फट् इसका शिर कहा गया है। इसी प्रकार पुन: तीन आवृत्ति से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।।७७८-७८३।।

सिंहासीनां कृष्णमुखीं लम्बमानपयोधराम्।
दंष्ट्राकरालवदनां त्रिनेत्रां सर्वतोज्ज्वलाम् ॥७८४॥
कृष्णकञ्चुकसंवीतां विधूमाग्निसमप्रभाम्।
त्रिशूलचक्रचषकखट्वाङ्गवरपङ्कजाम् ॥७८५॥
लेलिहानां महाजिह्वां विद्युत्प्रेक्षणभीषणाम्।
ध्यात्वा कृत्यां विधानेन पूजयेन्मन्त्रवित्तमः ॥७८६॥

सिंह पर आसीन, कृष्णवर्ण मुख वाली, लम्बे स्तनों वाली, बड़े-बड़े दाँतों के कारण भयंकर मुख वाली, तीन नेत्रों वाली, चमकते काले वस्त्रों में लिपटी हुई, धूम-रहित अग्नि के समान आभा वाली, हाथों में त्रिशूल चक्र पानपात्र खट्वाङ्ग (मूठ में कपाल-जटित डण्डा) एवं वर धारण की हुई, लम्बी जिह्वा को बाहर निकालती हुई, तड़ित् विद्युत् के समान भयंकर स्वरूप का ध्यान करके मन्त्रज्ञ साधक को विधि-पूर्वक कृत्या का पूजन करना चाहिये।।७८४-७८६।।

भीषणां श्रीमतीं देव्या अग्रादारभ्य पूजयेत् ।
प्रतिष्ठाञ्च तथा विद्यां तद्बाह्ये तु चतुर्दले ॥७८७॥
पूर्वस्यां शाङ्करीं नाम शुभ्रवर्णाम्बरावृताम् ।
द्विभुजां सौम्यवरदां पाशाङ्कुशधरां शिवाम् ॥७८८॥
दक्षिणे मालिकां नाम लम्बजिह्वां भयङ्करीम् ।
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं नित्यमष्टोत्तरं शतम् ॥७८९॥
लोकेशार्चादिकं बाह्ये नियोगोऽस्याथ कथ्यते ।

इसका पूजन यन्त्र भूपुर-युक्त चतुर्दल पद्म होता है। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



अतिभयंकर देवी कृत्या के आगे से आरम्भ करके पूजन करना चाहिये। बिन्दु में देवी की प्रतिष्ठा करने के पश्चात् उससे बाहर चतुर्दल पद्म के पूर्व दल में श्वेत वस्त्रधारिणी शाङ्करी का, उत्तर दल में सौम्य स्वरूप वाली द्विभुजा वरदा का, पश्चिम दल में पाश एवं अंकुशधारिणी शिवा का तथा दक्षिण दल में लम्बी जिह्वा वाली

भयकारिणी मालिका का पूजन करने के पश्चात् चतुर्दल के बाहर भूपुर में दिक्पालों का पूजन करना चाहिये। पूजन करने के उपरान्त प्रतिदिन मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। अब इसके प्रयोगों को कहता हूँ।।७८७-७८९।।

कालं विदित्वा प्रतिमां मारणे चाप्यधोमुखीम् ।।७९०।।
तस्याधो मेखलायुक्तं त्रिकोणं वह्निकोणके ।
चन्द्रगौरं विधायाग्निं परिस्तीर्य्य शरैस्तृणैः ।।७९१।।
बिभीतकपरिध्या च कल्पयेद्वाऽस्य मारणे ।
जुहुयान्निम्बतैलाक्तैः काकोलूकोत्थविट्ककैः ।।७९२।।
दारयैनं शोषयैनं मारयेत्थं विधाय च ।
अष्टोत्तरशतं चैव मनुना जुहुयाद् बुधः ।।७९३।।
होमान्तं विधिवत्कृत्वा मारणाग्नेश्च सन्निधौ ।
यो मे कण्ठग्रहो वापि दूरस्थोऽप्यन्तिकेऽपि च ।
विषक्रव्यमसृक्तस्येत्थमुक्त्वा च निवेदयेत् ।।७९४।।
संरक्ष्याग्निविधानेन नवरात्रं समापयेत् ।
मृतस्तिष्ठति तेनाशुं तावदस्य रिपोर्मतिः ।।७९५।।

काल का ज्ञान करके मारण के लिये प्रतिमा को अधोमुखी लटकाकर प्रतिमा के नीचे मेखलायुक्त त्रिकोण कुण्ड बनाकर कुण्ड के अग्निकोण में चन्द्रगौर अग्नि की स्थापना करने के बाद कुशों से परिस्तरण करके मारण के लिये बहेड़े की परिधि का निर्माण करना चाहिये अर्थात् कुण्ड की आठो दिशाओं में बहेड़े की खूँटी गाड़ देनी चाहिये। तदनन्तर नीम के तेल से सिक्त काक एवं उल्लू के विष्ठा से 'ह्रीं महायोगिनीं गौरीं भुवनभयङ्करि हुं एनं दारय एनं शोषय एनं मारय' मन्त्र का उच्चारण करते हुये एक सौ आठ आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये। विधिवत् रूप से हवन का समापन करने के बाद मारण अग्नि के निकट बैठकर 'मेरा जो शत्रु दूर अथवा समीप है, उसका यह विष से भरा मांस एवं रक्त है' इस प्रकार कहकर कृत हवन का निवेदन करना चाहिये। तदनन्तर नव रात्रियों तक विधिपूर्वक उस अग्नि का संरक्षण करने के उपरान्त उसका विसर्जन करना चाहिये। इससे शत्रु की बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह मृत के समान हो जाता है।।७९०-७९५।।

अर्कक्षीरेण मरिचं पिष्ट्वा सिद्धार्थमेव च ।
जले सँल्लोड्य मन्त्रेण रिपुं ध्यात्वा निरुद्धदृक् ।।७९६।।
कृष्णाम्बरोत्तरीयोग्रपादेनाक्रम्य चेद्रिपुम् ।

वज्रं शूलमिति ध्यात्वा अद्भिस्तस्योपरि क्षिपेत्।
नवरात्रान्तरे शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ॥७९७॥
हरसिद्धे चितावह्नौ तैलसिक्तैर्बिभीतकैः।
जुह्वतो म्रियते शत्रुः सत्यमौशनसोदितम् ॥७९८॥
रिपोः प्रतिकृतिं ध्यात्वा - साध्यर्क्षफलकेऽनले।
अर्कक्षीरेण मरिचं पिष्ट्वा तत्रैव लेपयेत् ॥७९९॥
फट्कारं हृदये कृत्वा शिवं निर्माय कूपके।
क्षिपेत् कृष्णचतुर्दश्यां जप्त्वा मन्त्रं सहस्रशः ॥८००॥
सद्योऽवगाहनं कृत्वा तस्यामेव च लक्षकम्।
मन्त्रं जप्त्वा विधानेन भेदयेच्छिवमुद्रया।
षण्मासान्म्रियते शत्रुः सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥८०१॥
वायुना सूद्धृतं पत्रं शुष्कं बैभीतकन्ततः।
गृहीत्वा विलिखेन्मन्त्री कृष्णसर्पास्यशोणितैः ॥८०२॥
नामधेयं रिपोरन्ते वायुबीजं नियोजयेत्।
लिखने तस्य गेहे तु काकवद् भ्रमते ध्रुवम् ॥८०३॥
वातोद्धूतैः शुष्कपत्रैः काष्ठैरशनिपातितैः।
उष्ट्रास्थ्ना च शवाङ्गारैः शत्रोरुच्चाटनं भवेत् ॥८०४॥
दूर्वां गुडूचीं सम्पिष्य सर्पिषा तिलतण्डुलैः।
अन्नैः समिद्भिः पालाशैः शान्तिं कुर्य्याद्विचक्षणः ॥८०५॥

अकवन के दूध में मरिच और सरसों को पीसने के बाद मन्त्रोच्चारण-पूर्वक उस पिष्ट को जल में मिलाकर मुन्द्रित आँखों वाले शत्रु का स्मरण करते हुये काला वस्त्र और उत्तरीय धारण कर शत्रु को पाँव से दबाकर (मानसिक) वज्र-शूल का ध्यान करते हुये उस जल का शत्रु पर प्रक्षेप करने से नव रातों के भीतर निश्चित ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है। औशनस का यह वचन सत्य है कि हरसिद्ध चिता की अग्नि में तैलसिक्त बहेड़े की समिधा से हवन करने पर शत्रु की मृत्यु होती है।

शत्रु की प्रतिकृति का स्मरण करते हुए साध्य नामाक्षर नक्षत्र की लकड़ी के पटरे पर अकवन के दूध में मरिच को पीसकर उसी पर लेप करके उसके हृदय में फट्कार करके शिवलिङ्ग बनाकर उसे कृष्णचतुर्दशी को कूयें में डालकर मन्त्र का एक हजार जप करने के बाद उसी कूप में तत्काल स्नान करके पुनः मन्त्र का एक लाख जप करके शिवमुद्रा से उसका भेदन करने से छः महीने के भीतर शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

दोनों सन्ध्याओं में हवा से झड़े हुये बहेड़े के सूखे पत्ते को लेकर उस पर काले सर्प के मुख से निःसृत रक्त से शत्रु का नाम लिखने के अनन्तर वायुबीज लिखकर उस पत्ते को शत्रु के घर में फेंक देने से शत्रु काक के समान इधर-उधर भटकने लगता है।

हवा से झड़े सूखे पत्ते, वज्रपात से गिरी लकड़ी और ऊँट की हड्डी को मिलाकर चिता की अग्नि में हवन करने से शत्रु का उच्चाटन होता है। इसकी शान्ति के लिये बुद्धिमान साधक को दूब एवं गुरुच को पीसकर उसमें गोघृत, तिल, चावल, अन्न मिलाकर पलाश की समिधा से प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिये।

लक्ष्मीं बिल्वफलैः पत्रैर्नन्द्यावर्तैः श्रियं तथा।
रक्तपुष्पैरपामार्गैरिङ्गालैश्च समुद्रकैः।
मधुरत्रयसंसिक्तैरेभिः कुर्य्यात्तु वश्यकम् ॥८०६॥
शान्तिं कृत्वा विधानेन कृत्यामन्त्रमिमं जपेत्।
महाव्याधिप्रशमनं नित्यमष्टाधिकं शतम् ॥८०७॥
जपेदेकाग्रचित्तस्तु लोकवश्यकरं परम्।
मनसा चिन्तयेत्कृत्यां गजारूढां विहङ्गमाम् ॥८०८॥
तस्य वश्यम्भवेत्क्षिप्रमश्वारूढां तथा भजेत्।
चौरव्याघ्रमृगादीनां सलिलादिभयापहाम् ॥८०९॥
सप्ताभिमन्त्रितं तोयं पीत्वा मन्त्रसमाहितः।
मेधावी च भवेद्वाग्मी तावज्जप्त्वाभिषेकतः।
सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा विषमप्यमृतं भवेत् ॥८१०॥
पक्षं मासं द्विमासं वा षण्मासं वत्सरन्तु वा।
एवं यः कुरुते मर्त्यः स पुण्यां गतिमाप्नुयात् ॥८११॥

हल्दी, बेलफल, नन्द्यावर्तपत्र, लौंग, लाल फूल, अपामार्ग एवं समुद्री फेन को मधुरत्रय (मधु, घी, शक्कर) से सम्यक् रूप से सिक्त करके हवन करने से वशीकरण होता है। इसकी विधि-पूर्वक शान्ति करके इस कृत्यामन्त्र का प्रतिदिन एक सौ आठ बार जप करने से भयंकर व्याधियों का विनाश होता है। लोक-वशीकरण होता है। गजारूढ़ विहङ्गम कृत्या का मन में चिन्तन करके एकाग्रचित्त से कृत्यामन्त्र का जप करने से तीनों लोक शीघ्र ही साधक के वशीभूत हो जाता है। इसी प्रकार घोड़े पर सवार कृत्या का चिन्तन करते हुये जप करने से चोर, व्याघ्र, मृग, जल आदि से होने वाले भय का नाश होता है।

सात बार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित जल पीने से साधक मेधावी होता है। अभि-

मन्त्रित जल से अभिषेक करने पर वाग्मी होता है। सात बार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित विष भी अमृत हो जाता है।

जो मनुष्य एक पक्ष, एक मास, दो मास, छः मास अथवा एक वर्ष तक इस प्रकार करता है, वह सद्गति को प्राप्त करता है।।८०६-८११।।

सर्वोपद्रवनाशनायोपयुक्ता महाशान्तिः

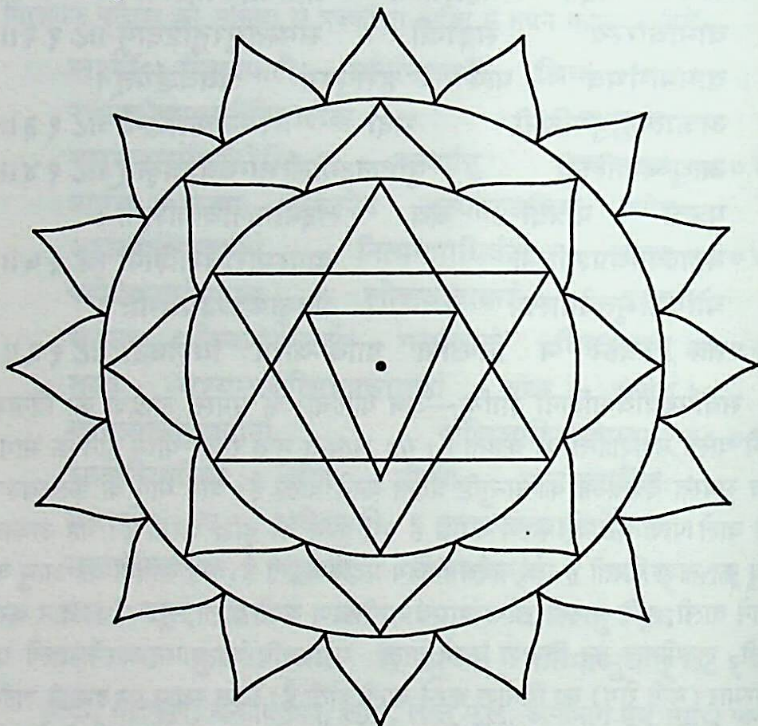
अथ वक्ष्ये महाशान्तिं सर्वोपद्रवनाशिनीम्।
वामाचारस्य सङ्गोप्त्रीं समस्तसुरतुष्टिदाम्।।८१२।।
वाममार्गभवं पापं हरेत्पुण्यं विवर्द्धयेत्।
अकालमृत्युमथिनी सदा विजयवर्द्धिनी।।८१३।।
आयुष्यपालिनी पुष्टिलक्ष्मीसौभाग्यवश्यकृत्।।८१४।।
पुत्रदा पौत्रदा चैव लक्ष्मीमलविनाशिनी।
महाव्याधिप्रशमिनी ह्यपस्मारविनाशिनी।।८१५।।
योगिनीभूतवेतालाः प्रेतकूष्माण्डपन्नगाः।
तत्र स्थाने न तिष्ठन्ति डाकिन्याद्या विशेषतः।।८१६।।

सर्वोपद्रवविनाशिनी शान्ति—अब वामाचार के समस्त उपद्रवों का विनाश करने वाली महाशान्ति को कहता हूँ। यह अत्यन्त गुप्त रखने योग्य होने के साथ-साथ समस्त देवताओं को सन्तुष्टि प्रदान करने वाली है। वाम मार्ग के फलस्वरूप होने वाले पापों का यह हरण करती है एवं पुण्य की वृद्धि करती है। यह अकाल मृत्यु का नाश करती है एवं सदैव विजय प्रदान करती है। यह साधक की आयु को बढ़ाने वाली, पुष्टि-लक्ष्मी-सौभाग्य एवं वशीकरण करने वाली, पुत्र-पौत्र प्रदान करने वाली, लक्ष्मीमल का विनाश करने वाली, महाव्याधि का शमन करने वाली एवं अपस्मार (मृगी रोग) का विनाश करने वाली होती है। जिस स्थान पर इसकी शान्ति की जाती है, उस स्थान पर योगिनी, भूत, वेताल, प्रेत, कूष्माण्ड, सर्प; विशेष कर डाकिनी नहीं रहती।।८१२-८१६।।

कृत्यामभ्यर्चयेद्वस्त्रे यथाविधिपुरःसरम्।
षोडशारं लिखेत्पद्मं योनियुक्तं सबिन्दुकम्।।८१७।।
तन्मध्येऽष्टदलं लेख्यमकारादि न्यसेत्क्रमात्।
तन्मध्ये रसकोणं तु लिखेन्मूलमनुं स्मरन्।।८१८।।
चन्द्रबिम्बं लिखेत्पद्मं तस्योर्ध्वं प्रेतमालिखेत्।
न्यस्येत्तन्मध्यगं कुम्भं वस्त्ररत्नविभूषितम्।।८१९।।

कुम्भमध्ये न्यसेत्कृत्यां सर्वलक्षणसंयुताम् ।
अर्चयेच्च यथान्यायं पायसन्तु निवेदयेत् ॥८२०॥

विधि-पूर्वक वस्त्र पर कृत्या का अर्चन करना चाहिये। योनि-युक्त एवं बिन्दु-सहित षोडशदल कमल बनाकर उसके मध्य में अष्टदल कमल बनाकर उसमें अकारादि को लिखना चाहिये। फिर उसके मध्य में षट्कोण बनाकर मूल मन्त्र का स्मरण करते हुये चन्द्रबिम्ब बनाना चाहिये। फिर उसके ऊपर प्रेत लिखना चाहिये।



उसके मध्य में वस्त्र एवं रत्न से विभूषित घट स्थापित करके उस घट में समस्त लक्षणों से युक्त कृत्या को स्थापित करके उसका पूजन करना चाहिये। साथ ही आवश्यकतानुसार पायस समर्पित करना चाहिये।।८१७-८२०।।

लोके शान्तां यजेद्देवीं तदग्रे होममाचरेत् ।
जुहुयादाज्यसंसिक्तापामार्गतिलसर्पिषा ॥८२१॥
दूर्वाम्रखदिराश्वत्थैः प्रत्येकं तु शताष्टकम् ।
कुण्डे च स्थण्डिले वापि होमकर्म्म समाचरेत् ॥८२२॥

तस्य दक्षिणपार्श्वे तु लक्ष्मीं ध्यायेद्यथाविधि।
कुम्भमध्ये न्यसेद्देवीं दक्षिणे तु श्रियं स्मरेत् ॥८२३॥
वामपार्श्वे यजेद्देवीं हृल्लेखां परमेश्वरीम्।
तस्या वै वामपार्श्वे तु पूजयेद् गणनायकम् ॥८२४॥
अयुतं मूलमन्त्रन्तु जपेन्मृत्युविनाशनम्।
लक्षं तु भ्रूणहत्यायां मद्यपाने सहस्रकम् ॥८२५॥
गुरुद्रोहे कोटिमितं तथा चाष्टोत्तरं शतम्।
ब्रह्मद्रोहे तु प्रयुतं गुरुतल्पगमे तथा।
मदात्ययादधर्मादौ पञ्चलक्षमितं जपेत् ॥८२६॥

लोक में शान्ति के लिये देवी का पूजन करके उसके सामने कुण्ड़ अथवा स्थण्डिल में गोघृत से संसिक्त अपामार्ग (चिड़चिड़ा), तिल, घृत, दूब, आम, खैर एवं पीपल—इन सबसे अलग-अलग एक सौ आठ-एक सौ आठ बार हवन करने के उपरान्त उसके दक्षिण पार्श्व में लक्ष्मी का ध्यान करते हुये उन्हें कुम्भ के मध्य में स्थापित करने के बाद उस कुम्भ के दक्षिण भाग में श्री का स्मरण करना चाहिये। फिर कुम्भ के वाम पार्श्व में देवी हृल्लेखा का पूजन करके उस हृल्लेखा के वाम पार्श्व में गणनायक का पूजन करने के पश्चात् अपमृत्यु की शान्ति के लिये दश हजार की संख्या में मूल मन्त्र का जप करना चाहिये।

इसी प्रकार भ्रूणहत्या-जनित पाप की शान्ति के लिये एक लाख, मद्यपान-जनित पाप की शान्ति के लिये एक हजार, गुरुद्रोह के कारण होने वाले पाप की शान्ति के लिये एक करोड़, ब्रह्मद्रोह-जनित पाप की शान्ति के लिये एक सौ आठ, गुरुतल्प-गमन (गुरु की शय्या पर शयन)-जनित पापशान्ति के लिये दस लाख तथा मदात्यय के कारण किये गये अधर्म-जनित पाप की शान्ति के लिये पाँच लाख की संख्या में मूल मन्त्र का जप करना चाहिये।।८२१-८२६।।

वामे वा कौलिके मार्गे कापाले गन्तुमिच्छति।
स चादौ साधयेन्मन्त्रमिमं परिमलाह्वयम् ॥८२७॥
पापनाशकरो यस्माच्छत्रुभीतिनिवारकः।
गुरुदोषाः शिष्यदोषा अधर्म्माङ्गभवाश्च ये।
ते सर्वे नाशमायान्ति मनोरस्य जपे कृते ॥८२८॥
दक्षिणाचारनिष्ठोऽपि दुःखनाशाय सेवयेत्।

जो साधक वाम, कौलिक अथवा कापालिक मार्ग को ग्रहण करना चाहता हो,

उसे सर्वप्रथम परिमल-नामक इस मन्त्र की साधना करनी चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र पापों का विनाश करने वाला एवं शत्रु-जनित भय का निवारण करने वाला हैं। इस मन्त्र का जप करने से गुरुदोष, शिष्यदोष एवं अधर्म-जनित दोष—ये सभी दोष विनष्ट हो जाते हैं। दक्षिणमार्ग का सेवन करने वाले को भी दुःख-नाश के लिये इस मन्त्र का आराधन करना चाहिये।।८२७-८२८।।

शष्कुल्यः फेणिका मुद्गा मांसन्तु वटकेण्डिराः ।।८२९।।
सौवीरं काञ्जिकं मद्यं स्वस्त्री शक्तिः प्रकीर्तिता ।
वृन्ताकशाको मत्स्यार्थे वामादधिकसिद्धिदः ।।८३०।।

शष्कुली (विविध प्रकार के पक्वान्न), फेणिका (दही), मूँग, मांस, वटक (पकौड़े), सौवीर (खट्टी कांजी), मट्ठा, मदिरा एवं अपनी स्त्री शक्ति कहे गये हैं। मत्स्य के स्थान पर वृन्ताकशाक (बैंगन) वाममार्ग से भी अधिक सिद्धिप्रद होता है।।८२९-८३०।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विघ्नं त्रैलोक्यमोहनम् ।
प्रपञ्चितं प्रपञ्चेऽपि शक्तिभिर्बहुधा तथा ।।८३१।।
दिवोदासस्य तपसा शाक्ते मार्गे न येऽविशन् ।
तदा सम्मोहनो नाम केदारस्य तु पश्चिमे ।।८३२।।
गणेशोऽभूत्तदा तेन सम्पूर्णं मोहितं पुरम् ।
तस्य मन्त्रं प्रवक्ष्यामि सोर्ध्वाम्नायेन सिद्धिदम् ।।८३३।।
वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं वदेत्ततः ।
गणपतिं वरयुग्मं दान्तं सर्वजनं वदेत् ।।८३४।।
मे वशमानय स्वाहा त्रयस्त्रिंशल्लिपिर्मनुः ।
मुनिस्तु गणपः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम् ।।८३५।।
त्रैलोक्यमोहनो विघ्नो देवता परिकीर्तितः ।
रुद्रेषुपञ्चवेदाङ्गनेत्रवर्णैर्मनोः क्रमात् ।।८३६।।
षडङ्गविधिरुद्दिष्टो ध्यानपूजादिकं ब्रुवे ।
महागणेशवत्सर्वं प्रयोगादिकमाचरेत् ।।८३७।।

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते ऊर्ध्वाम्नाय-गणपतिमन्त्रप्रकाशः सप्तदशः ।।१७।।

●

त्रैलोक्यमोहन विघ्न—अब मैं इस जगत् में शक्तियों के द्वारा अनेक प्रकार से प्रपञ्चित त्रैलोक्यमोहन विघ्न को कहता हूँ। दिवोदास के तेज के कारण जो लोग शाक्त मार्ग में प्रवेश नहीं कर सके, उस समय केदार के पश्चिम भाग में सम्मोहन-नामक गणेश उद्भूत हुये, जिन्होंने सम्पूर्ण नगर को मोहित कर दिया। उन सम्मोहन गणेश के ऊर्ध्वाम्नाय से सिद्धि प्रदान करने वाले मन्त्र को मैं कहता हूँ। तैंतीस अक्षरों का वह मन्त्र है—वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं गं गणपति वरवरद सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि गणप, छन्द गायत्री और देवता त्रैलोक्यमोहन विघ्न कहे गये हैं। मन्त्र के क्रमशः ग्यारह, पाँच, पाँच, चार, पाँच, तीन वर्णों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है, जो इस प्रकार होता है—वक्रतुण्डैकदंष्ट्राय क्लीं ह्रीं श्रीं हृदयाय नमः, गं गणपतिं शिरसे स्वाहा, वरवरद शिखायै वषट्, सर्वजनं कवचाय हुम्, मे वशमान नेत्रत्रयाय वौषट्, य स्वाहा अस्त्राय फट्। इसका ध्यान-पूजन आदि समस्त कृत्य महागणपति के समान ही करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रयोगादि में प्रवृत्त होना चाहिये।।८३१-८३७।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में
शिवप्रणीत 'ऊर्ध्वाम्नायगणपतिमन्त्रकथन' नामक
सप्तदश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।



अष्टादशः प्रकाशः

(पूर्वाम्नायगणपतिमन्त्रप्रकाशः)

विरिविघ्नेशगणपतिमन्त्रः

श्रीशिव उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पूर्वाम्नायगणेश्वरान्।
हृल्लेखां विरियुग्मं च गणपते वरद्वयम् ॥१॥
दकारं सर्वलोकं मे वशमानय ठद्वयम्।
पञ्चविंशाक्षरो मन्त्रः प्रोक्तोऽयं पुत्रपौत्रदः ॥२॥
मुनिर्गणक आख्यातश्छन्दो गायत्रमुच्यते।
देवता विरिविघ्नेशो दृष्टादृष्टफलप्रदः ॥३॥
वेदवेदेषु पञ्चार्णैः शरलोचनसङ्ख्यकैः।
विभक्तैर्मूलमन्त्रार्णैः षडङ्गानि समाचरेत् ॥४॥

विरिविघ्नेश गणपति मन्त्र—शिव जी बोले—अब मैं पूर्वाम्नाय के गणेश्वरों को कहता हूँ। मन्त्र है—विरि विरि गणपते वरवरद सर्वलोकं मे वशमानय स्वाहा। पच्चीस अक्षरों वाला यह मन्त्र पुत्र-पौत्र प्रदान करने वाला कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि गणक, छन्द गायत्री एवं देवता दृष्ट-अदृष्ट फल को प्रदान करने वाले विरिविघ्नेश कहे गये हैं। मूल मन्त्र को क्रमशः चार-चार-पाँच-पाँच-पाँच-दो वर्णों में विभक्त कर इस प्रकार षड़ङ्गन्यास करना चाहिये—विरि विरि हृदयाय नमः, गणपते शिरसे स्वाहा, वरवरद शिखायै वषट्, सर्वलोकं मे कवचाय हुम्, वशमानय नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्।।१-४।।

सिन्दूराभं त्रिनयनं वामोर्ध्वपाशधारिणम्।
दक्षोर्ध्वे चाङ्कुशं दक्षतले मध्ये कपालकम् ॥५॥
पुष्ट्या योनिं वामतलहस्तेनैव च बिभ्रतम्।
चन्द्रमौलिं हस्तिमुखं दक्षिणेन करेण च ॥६॥
पुष्ट्यालिङ्गितसर्वाङ्गं स्पृशन्त्या वामपाणिना।
लिङ्गाग्रन्तु गणेशस्य ऊर्ध्वयोः करयोर्द्वयोः ॥७॥

सन्दधानं पद्मयुग्ममेवं गणपतिं भजेत्।
यजेत्पीठे पुरा प्रोक्ते नवशक्तिसमन्विते ॥८॥

सिन्दूर-सदृश आभा वाले, तीन नेत्रों वाले, ऊपर के बाँयें हाथ में पाश एवं दाहिने हाथ में अंकुश धारण करने वाले, नीचे के दाहिने हाथ पर कपाल एवं बाँयें हाथ को पुष्टि की योनि पर रखे हुये, शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण किये हुये, हाथी के मुख वाले, पुष्टि द्वारा दाहिने हाथ से आलिङ्गित एवं बाँयें हाथ से लिङ्गाग्रभाग का स्पर्श किये जाते हुये, गणेश के ऊपर वाले दोनों हाथों में दो पद्म धारण किये हुये गणपति का भजन करना चाहिये। तदनन्तर पूर्ववर्णित नवशक्ति-समन्वित पीठ पर यजन करना चाहिये।

मूलमन्त्रेण क्लृप्तायां मूर्त्तावावाह्य पूजयेत्।
मिथुनानि यजेदादावामोदादीन् दिगम्बरान् ॥९॥
अङ्गानि पूजयेत्पश्चान्मातृश्चैव ततः सुधीः।
अर्चयँल्लोकपालाँश्च तदस्त्राणि ततो बहिः ॥१०॥
षडावरणसंयुक्तं विरिविघ्नेश्वरं यजेत्।

मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके उस मूर्ति में देवता का आवाहन करके पूजन करना चाहिये। पहले आमोद-दिगम्बर आदि मिथुनों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् षडङ्ग पूजन करने के बाद मातृकाओं का पूजन करना चाहिये। इसके बाद लोकपालों का और उनके आयुधों का अर्चन करना चाहिये। फिर उसके बाहर छः आवरणों से समन्वित विरिविघ्नेश्वर का पूजन करना चाहिये।।९-१०।।

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये विरिविघ्नेश्वरस्य तु ॥११॥
वरद्वयं दकारञ्च तदा लोकपदं वदेत्।
एकोनविंशत्यर्णोऽयं निवृच्छन्द उदाहृतम् ॥१२॥
न्यासः षट्त्रिंशदर्णोक्त एकैकं बीजपूर्वकः।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि ह्यूर्ध्वादूर्ध्वकरेषु तु ॥१३॥
बीजपूरं गदां चापं चक्रं मालां च दक्षिणे।
वामे पद्मं पाशबाणाब्जदं रत्नाढ्यकुम्भकम् ॥१४॥
पद्मद्वयकरां पुष्टिमङ्कस्थामरुणप्रभाम्।
आलिङ्गयन्तमरुणं स्रवन्मदकपोलकम् ॥१५॥
त्रिनेत्रं पीतवसनं दृढमुत्थापितध्वजम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं ध्यायेद्देवं गजाननम् ॥१६॥

अब विरिविघ्नेश्वर के अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—विघ्नेश्वर वरवरद लोकं मे वशमानय स्वाहा। उन्नीस अक्षरों वाले इस मन्त्र के ऋषि एवं देवता पूर्ववत् हैं, छन्द निवृत् है। बीजपूर्वक छत्तीस वर्णों से न्यास करना चाहिये (क से लेकर ह तक ३३ वर्ण एवं ळ क्ष अं मिलाने से छत्तीस वर्ण होते हैं)।

अब ध्यान कहता हूँ। दाहिने हाथों में नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः बीजपूर, गदा, चाप, चक्र एवं माला तथा बाँयीं ओर नीचे से ऊपर क्रमशः पद्म, पाश एवं बाण तथा दाँत पर रत्नपूरित कुम्भ धारण किये हुये, दोनों हाथों में कमल धारण की हुई अरुण वर्ण की कान्ति वाली पुष्टि को अङ्क में बैठाकर आलिङ्गन करने के कारण अरुण वर्ण वाले, कपोलों से बहते हुये मदजल वाले, तीन नेत्रों वाले, पीत वस्त्र धारण किये हुये, दृढ़ता-पूर्वक ध्वज को उठाये हुये, किरीट-कुण्ड़ल धारण किये हुये देव गजानन का ध्यान करना चाहिये।।११-१६।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा समुपासितम्।
काश्या बाह्ये च सौम्यस्थं विरिञ्चिगणनायकम्॥१७॥
ह्रीं विरिञ्चिपदं प्रोच्य ङेऽन्तं गणपतिं पुनः।
प्राग्वद्वदेद्वरादीनि षड्विंशत्यर्णको मनुः॥१८॥
वेदपञ्चेषुपञ्चेषुद्व्यर्णैरुक्तं षडङ्गकम्।
ध्यानपूजादिकं प्राग्वद्विशेषादस्य साधकः॥१९॥
साङ्गान् सार्थान् सकृच्छ्रुत्वा वेदान् पठति याज्ञिकः।
स्वयमेव प्रजायेत कर्त्ता हर्त्ता यथाविधि॥२०॥
वेदे लक्षमिता प्रोक्ता सर्वेषां तु पुरस्क्रिया।
मधुरत्रयसंयुक्तैः पूर्वोक्तैरष्टभिर्हुनेत्॥२१॥
एवं साधितमन्त्रस्तु प्रयोगान् कर्त्तुमर्हति।

विरिञ्चिगणनायक मन्त्र—अब मैं काशी के बाहर सौम्य स्वरूप में विराजमान एवं ब्रह्मा द्वारा सम्यक् रूप से उपासित विरिञ्चिगणनायक को कहता हूँ। छब्बीस अक्षरों का यह मन्त्र है—ह्रीं विरिञ्चि गणपतये वरवरद सर्वलोकं मे वशमानय स्वाहा। मन्त्र के क्रमशः चार-पाँच-पाँच-पाँच-पाँच एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। इनका ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् ही करना चाहिये। विशेषकर अनुष्ठान करने वाला साधक यदि अर्थज्ञान-पूर्वक अङ्ग-सहित वेदों का पाठ करता है तो वह स्वयं ही कर्ता एवं हर्ता हो जाता है। चार लाख जप से इसका पुरश्चरण कहा गया है। पूर्वोक्त आठ द्रव्यों को मधुरत्रय से सिक्त कर हवन करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक प्रयोग करने में समर्थ हो जाता है।।१७-२१।।

विकचोत्पलहोमेन वशयेत्सकलं जगत् ॥२२॥
तिलतण्डुलहोमेन श्रियमाप्नोत्यनिन्दिताम् ।
मोदकानाज्यसंयुक्तान् हुत्वा विजयमाप्नुयात् ॥२३॥
मधुरत्रयहोमेन राजानं वशमानयेत् ।
अभीष्टसाधनो होमो भक्ष्यभोज्यादिकैः कृतः ॥२४॥

विकसित उत्पल के हवन से साधक समस्त संसार को वशीभूत कर लेता है। तिल एवं चावल से हवन करने पर अनिन्दित लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। गोघृत-सिक्त लड्डुओं के हवन से विजय की प्राप्ति होती है। घी, मधु, शक्कर को मिलाकर हवन करके राजा को वशीभूत किया जा सकता है। भक्ष्य एवं भोज्य से हवन करने से अभीष्ट-साधन होता है।।२२-२४।।

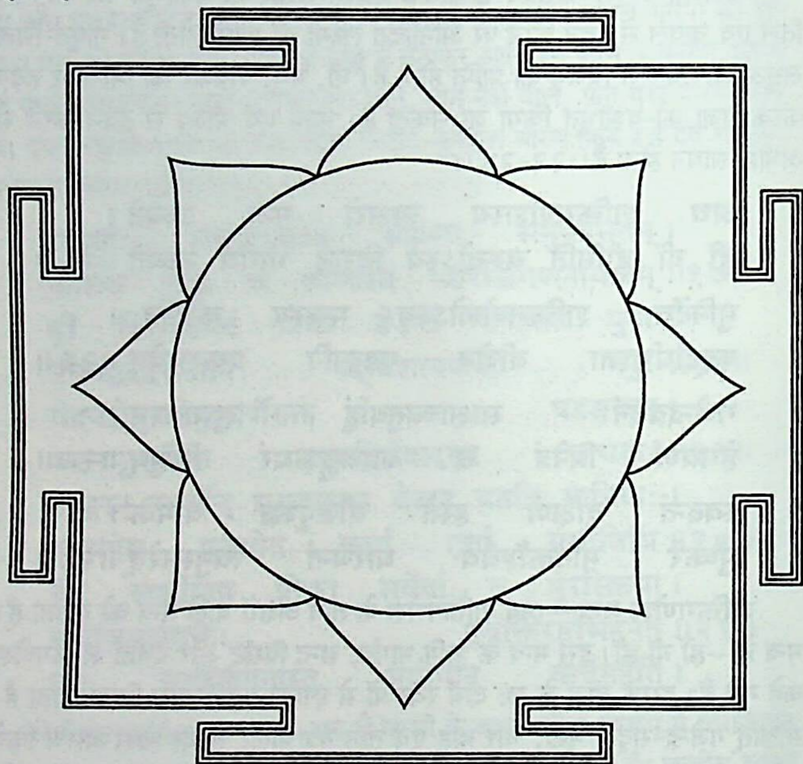
अथ शक्तिगणेशस्य त्र्यक्षरो मन्त्र उच्यते ।
ह्रीं ग्रीं ह्रीमिति च्छन्दोऽस्य विराड् भार्गव उच्यते ॥२५॥
मुनिर्देवः शक्तिगणेशोऽस्य मन्त्रस्य कीर्तितः ।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥२६॥
गजेन्द्रवदनं साक्षाच्चतुर्बाहुं सुचामरम् ।
हेमवर्णं त्रिनेत्रं च पाशाङ्कुशधरं विभुम् ॥२७॥
स्वदन्तं दक्षिणे हस्ते बीजपूरञ्च वामके ।
पुष्करे मोदकाँश्चैव धारयन्तं त्वनुस्मरेत् ॥२८॥

शक्तिगणेश मन्त्र—अब शक्तिगणेश के तीन अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ह्रीं ग्रीं ह्रीं। इस मन्त्र के ऋषि भार्गव, छन्द विराट् और देवता शक़्तिगणेश कहे गये हैं। इसके बीज के छः दीर्घ स्वरूपों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। साक्षात् गजेन्द्र-सदृश मुख, चार बाहु एवं तीन नेत्र वाले, सुन्दर चँवर धारण किये हुये स्वर्ण-सदृश वर्ण वाले, पाश एवं अंकुश धारण करने वाले, दाहिने हाथ में अपना दाँत एवं बाँयें हाथ में बीजपूर तथा सूँड़ से मोदकों को धारण किये हुये गणेश का स्मरण करना चाहिये।।२५-२८।।

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे तीव्रादिनवशक्तिके ।
अष्टपत्राम्बुजे देवं चतुरस्रत्रयावृते ॥२९॥
प्रथमाङ्गावृतिः प्रोक्ता द्वितीया मातृभिः स्मृता ।
तृतीया लोकपालैः स्याद्वज्राद्यैश्च चतुर्थिका ॥३०॥

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः।
तद्दशांशं प्रजुहुयादपूपैर्घृतसम्प्लुतैः ॥३१॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री काम्यकर्म्माणि साधयेत्।

पूर्वोक्त पीठ पर तीव्रा आदि नव शक्तियों का पूजन करना चाहिये। तीन भूपुर से समन्वित अष्टदल पद्म में देवता का पूजन करना चाहिये। पूजन यन्त्र इस प्रकार का होता है—



इसके बाद प्रथम आवरण में अंगपूजन, द्वितीय आवरण में अष्टपत्रों में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, आदि अष्टमातृकाओं का पूजन, तृतीय आवरण में लोकपालों का पूजन एवं चतुर्थ आवरण में लोकपालों के वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।

मात्र हविष्य-भक्षण करने वाले जितेन्द्रिय साधक को पुरश्चरण-हेतु उपर्युक्त मन्त्र का एक लाख जप पूर्ण करने के पश्चात् घृत-सिक्त अपूपो (पूओं) से जप का दशांश (दश हजार) हवन करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये।।२८-३१।।

शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तु पूजयित्वा विनायकम् ॥३२॥
अपूपैर्गुडसम्मिश्रैः पक्वान्नैश्च घृतप्लुतैः ।
मरिचैर्जीरकैश्चैव सैन्धवेन विमिश्रितैः ॥३३॥
देवस्य सन्निधौ मन्त्री जुहुयात्त्रिसहस्रकम् ।
गद्यपद्यमयी वाणी सप्ताहाद्भवति ध्रुवम् ॥३४॥
वश्यार्थी मधुहोमेन राजानं वशमानयेत् ।
कन्यार्थी जुहुयाल्लाजैस्तन्नामायुतमन्त्रतः ॥३५॥
एकां कन्यामथो सप्त भोजयेल्लभते वधूम् ।
चन्द्रसूर्य्यग्रहे प्राप्ते पलन्तु कपिलाघृतम् ॥३६॥
कर्षमात्रं वचाचूर्णं मिश्रीकृत्याभिमन्त्रयेत् ।
पिबेत्तु नियतो भूत्वा देवताध्यानतत्परः ॥३७॥
यावज्जीवं भवेत्तावन्नाश्नीयात्किमपीह सः ।
सप्ताहाज्जायते शीघ्रमपरो वाक्पतिर्यथा ॥३८॥
वन्ध्या तु स्नानदिवसे पूजयित्वा विनायकम् ।
निष्कार्धपादमानेन हरिद्रां सैन्धवं वचाम् ॥३९॥
गोमूत्रे कुडवे पिष्ट्वा सहस्रमभिमन्त्रयेत् ।
अन्नैः सुभक्ष्यभोज्यैश्च भोजयित्वा च कन्यकाः ॥४०॥
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा पिबेन्नारी तदौषधम् ।
ततः सा लभते पुत्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥४१॥

मन्त्रज्ञ साधक यदि शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि को विनायक का पूजन करने के उपरान्त देवता की सन्निधि में ही गुड़-मिश्रित पूआ एवं घृत-सिक्त पक्वान्न में मरिच, जीरा एवं सेन्धा नमक मिलाकर तीन हजार आहुतियों द्वारा हवन करता है तो एक सप्ताह के भीतर ही उस साधक की वाणी गद्य-पद्यमयी हो जाती है।

वशीकरण-सिद्धि का इच्छुक साधक मधु से हवन करके राजा को वशीभूत कर लेता है। पत्नीरूप में कन्या-प्राप्ति का इच्छुक साधक मन्त्र के साथ अभीष्ट कन्या का नामग्रहण करते हुये धान के लावा से दस हजार हवन करके एक अथवा सात कन्याओं को यदि भोजन कराता है तो अभीष्ट कन्या को पत्नीरूप में प्राप्त कर लेता है।

चन्द्र-सूर्य के ग्रहणकाल में एक पल कपिला गाय के घृत में एक कर्ष वचाचूर्ण मिलाकर उस मिश्रण को अभिमन्त्रित करने के उपरान्त आजीवन कुछ भी भक्षण न करने का व्रत धारण करके देवता के ध्यान में तल्लीन होकर साधक यदि उस मिश्रण का पान करता है तो एक सप्ताह के भीतर ही वह दूसरे बृहस्पति के समान हो जाता है।

वन्ध्या स्त्री रजोनिवृत्ति-स्नान के दिन विनायक का पूजन करने के उपरान्त एक निष्क (लगभग चार ग्राम) हल्दी, आधा निष्क सेन्धा नमक एवं एक निष्क का चतुर्थांश वचा को एकत्र कर सबको एक कुडव (लगभग पाँच सौ ग्राम) गोमूत्र में पीसकर मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करने के पश्चात् कुमारियों को भक्ष्य एवं भोज्य से रुचिकर भोजन कराकर गुरु को दक्षिणा प्रदान करने के बाद वह वन्ध्या स्त्री यदि उस ओषधि का पान करती है तो उसे सर्वलक्षणसम्पन्न पुत्र की प्राप्ति होती है।।३२-४१।।

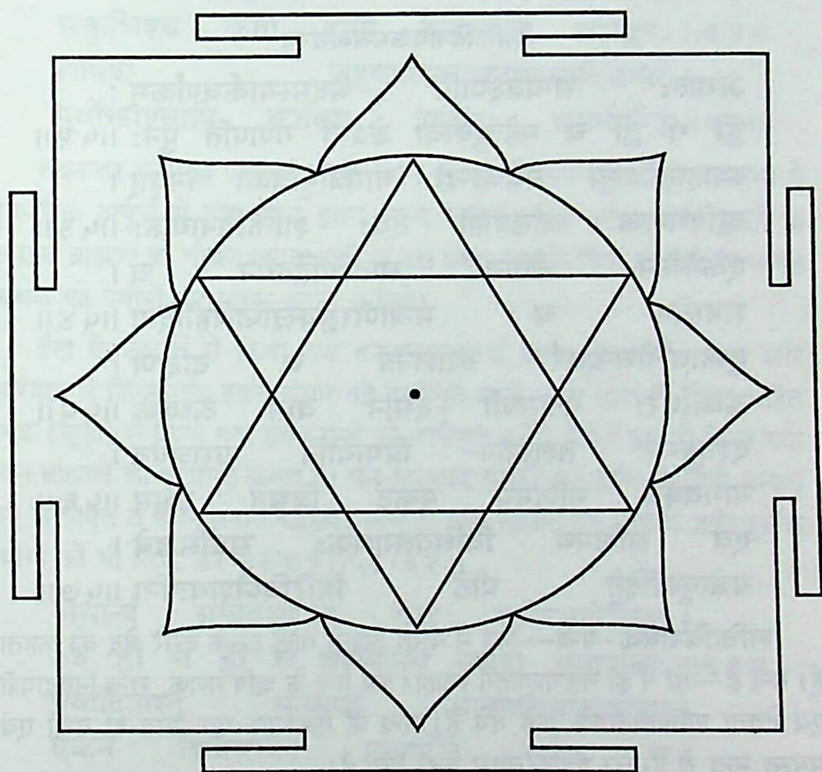
अथास्य भेदं वक्ष्यामि ताराद्यश्चतुरर्णकः।
ऋषिः शुक्रो निगदितश्छन्दो गायत्रमुच्यते ।।४२।।
देवता शक्तिगणपः सर्वसिद्धिकरः परः।
पूर्ववच्च षडङ्गानि ध्यानमस्य निरूप्यते ।।४३।।
हेमाभं हेमवस्त्रं च त्रिनेत्रं तुन्दिलं भुजैः।
पाशाक्षसूत्रदशनान् धारयन्तं तथाङ्कुशम् ।।४४।।
पुष्करेण दधानञ्च मोदकं हेमभूषणम्।
मध्याह्नादित्यसङ्काशं चारुशक्त्या समन्वितम् ।।४५।।

शक्तिगणेश का अन्य मन्त्र—अब मैं इस शक्तिगणेश मन्त्र के भेद को कहता हूँ। उक्त त्र्यक्षर मन्त्र के आदि में ॐ लगाने से चार अक्षरों का 'ॐ ह्रीं ग्रीं ह्रीं' मन्त्र हो जाता है। इस मन्त्र के ऋषि शुक्र, छन्द गायत्री और देवता समस्त श्रेष्ठ सिद्धियाँ प्रदान करने वाले शक्तिगणेश कहे गये हैं। इसका षडङ्ग न्यास पूर्व मन्त्र के समान ही किया जाता है। अब इसके ध्यान को कहता हूँ। स्वर्ण-सदृश कान्तिमान, स्वर्णवस्त्र धारण करने वाले, तीन नेत्र तथा बड़े पेट वाले, हाथों में पाश अक्षसूत्र दाँत तथा अंकुश धारण करने वाले, सूँड़ में मोदक लिये हुये, स्वर्णाभूषण से भूषित, मध्याह्नकालीन सूर्य के समान प्रकाशमान एवं मनोहर शक्तियों से समन्वित गणेश का ध्यान करना चाहिये।।४२-४५।।

ततः पूर्वोदिते पीठे देवमावाह्य पूजयेत्।
प्रथमावृत्तिरङ्गैः स्याद्दलषट्के ततः परम् ।।४६।।
पद्मे चाष्टदले वक्रतुण्डादींश्च दलाग्रतः।
मातृकाः पूजयेद्बाह्ये भूपुरे लोकपालकान् ।।४७।।
आयुधानि च तद्बाह्ये प्राग्वच्छेषं समापयेत्।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं तद्दशांशं समाहितः ।।४८।।

जुहुयाद् घृतसंयुक्तैस्तिलैर्मन्त्रविदुत्तमैः।
तर्पणादि ततः कुर्य्यादिवं सिद्धो भवेन्मनुः ॥४९॥

तदनन्तर पूर्वकथित पीठ पर आवाहन करके देवता का पूजन करना चाहिये। प्रथम आवरण में षट्कोण में षडङ्ग-पूजन, द्वितीय आवरण में अष्टदल में वक्रतुण्ड, सूर्यकर्ण, सुमुख, एकदन्त, विकट, विघ्नराज, विनायक और लम्बोदर का पूजन करने के बाद अष्टपत्रों के आगे ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर भूपुर में दिक्पालों का पूजन करने के पश्चात् उसके बाहर दिक्पालों के आयुधों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर शेष पूजन सम्पन्न करके समापन करना चाहिये। इसका पूजनयन्त्र इस प्रकार का होता है—



पूजन सम्पन्न करने के पश्चात् मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद मन्त्रज्ञ साधक को घृत-सिक्त तिलों से जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि शेष क्रिया करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।४६-४९।।

काम्यकर्म्म ततः कुर्य्याद्देशिको यतमानसः।
आज्यान्नैर्जुहुयान्नित्यमन्नवान् वत्सराद्भवेत् ॥५०॥
पायसाज्येन महतीं श्रियमाप्नोति मानवः।
रम्भातुल्यां लभेत्कन्यामेनं यो भजते नरः ॥५१॥

इसके बाद देशिक को व्रतनिष्ठ होकर काम्य कर्म का सम्पादन करना चाहिये। प्रतिदिन गोघृत और अन्न से हवन करने वाला साधक एक वर्ष के भीतर अन्नाधिपति हो जाता है। पायस और आज्य से हवन करने पर मनुष्य को महान् श्री की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य इस मन्त्र का सेवन करता है, वह रम्भा के समान सुन्दर पत्नी को प्राप्त करता है।।५०-५१।।

शक्तिविनायकमन्त्रकथनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भेदमस्यार्कवर्णकम्।
ह्रीं गं ह्रीं च महेत्युक्त्वा ङेऽन्तं गणपतिं पुनः ॥५२॥
स्वाहान्तोऽस्य भवेच्छन्दो गायत्रीपूर्विका निवृत्।
ऋषिर्गणक आख्यातो देवः शक्तिविनायकः ॥५३॥
एकेनैकेन चैकेन सप्तभिर्द्वितयेन च।
समस्तेन च मन्त्रार्णैरङ्गक्लृप्तिरिहोदिता ॥५४॥
मुक्तावलीचन्द्रधरं व्यालनेत्रं च दक्षिणे।
ऊर्ध्वाधरैः पद्मसृणी दधानं वाम ऊर्ध्वके ॥५५॥
दशकुम्भं तलस्थेन प्रियायोनिं प्रसन्नयेत्।
नागवक्त्रं मणिमयं मुकुटं बिभ्रतं प्रभुम् ॥५६॥
एवं सञ्चिन्त्य विधिवत्साधकः सर्वसिद्धये।
यजेत्पूर्वोदिते पीठे विरिविघ्नेशवर्त्मना ॥५७॥

शक्तिविनायक-मन्त्र—अब मैं बारह अक्षरों वाले इसके दूसरे भेद को कहता हूँ। मन्त्र है—ह्रीं गं ह्रीं महागणपतये स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि गणक, छन्द निवृद्गायत्री एवं देवता शक्तिविनायक कहे गये हैं। मन्त्र के एक-एक-एक-सात-दो वर्णों एवं समस्त मन्त्र से इसका षडङ्ग न्यास कहा गया है।

शीर्ष पर मोतियों की माला एवं चन्द्रमा को धारण करने वाले, सर्प-सदृश नेत्र वाले, दक्ष ऊर्ध्व हस्त में पद्म एवं निम्न हस्त में सृणि तथा वाम ऊर्ध्व हस्त में दस कुम्भ धारण करने वाले, वाम निम्न हस्त से प्रिया की योनि को प्रसन्न करने वाले, हस्ति-सदृश मुख वाले एवं मणि-जटित मुकुट धारण करने वाले प्रभु गणेश का

ध्यान करके साधक को समस्त सिद्धियों की प्राप्ति के लिये विरिविघ्नेश की रीति से पूर्वोक्त पीठ पर पूजन करना चाहिये।।५२-५७।।

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रमयुतं जुहुयात्ततः।
अपूपैर्घृतसंयुक्तैर्विधिवत् पूजितेऽनले ।।५८।।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् विधिवच्चरेत् ।।५९।।
इक्षुदण्डैः कृतो होमो राजलक्ष्मीं प्रयच्छति।
कदल्या नारिकेलैश्च होमो लोकवशङ्करः ।।६०।।
सतिलैः पृथुकैर्होमो राजानं वशमानयेत्।
सक्तुभिश्च कृतो होमो ब्राह्मणानां वशङ्करः ।।६१।।
सर्पिषा जुहुयात्सम्यग्धनधान्यादिसम्पदे।
पूर्वोक्ताश्चापि कर्तव्याः प्रयोगाः साधकैरिह ।।६२।।

तदनन्तर मन्त्र का एक लाख जप करने के पश्चात् विधि-पूर्वक पूजित अग्नि में घृत-सिक्त अपूपों से दश हजार हवन करना चाहिये। फिर तर्पण-मार्जन करने के उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

ईख के टुकड़ों से किया गया हवन राजलक्ष्मी प्रदान करता हैं। केला और नारियल से किया गया हवन संसार को वशीभूत करने वाला होता हैं, तिल-सहित पृथुक (चूड़ा) से किया गया हवन राजा को वशीभूत करता है एवं सत्तू से किया गया हवन ब्राह्मणों को वशीभूत करता है। धन-धान्यादि सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये सम्यक् रूप से गोघृत से हवन करना चाहिये। साथ ही साथ साधक इस मन्त्र के द्वारा पूर्वोक्त प्रयोगों को भी सिद्ध कर सकता है।।५८-६२।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं शक्तिगणेशितुः।
ॐ ह्रीं गं ह्रीं च वशमानय स्वाहा भवार्णकः ।।६३।।
पूर्वोदितास्तु मुन्याद्या मन्त्रार्णैरङ्गकल्पनम्।
एकेन द्वित्रियुग्मेन मन्त्रार्णेन समेन च।
बन्धूकाभं त्रिनेत्रं च नागास्यं शशिशेखरम्।
भोगिमालं गुणसृणी वरेक्षून् हस्तपङ्कजैः ।।६४।।
दधानं शुण्डया स्पृष्टभगं चालिङ्गितं तथा।
श्यामलाङ्ग्या लिङ्गपद्महस्तया भावयेद्धृदि ।।६५।।

पूर्वोक्तपीठे पूर्वोक्ता पूजा कार्य्या मनीषिणा।
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रमपूपैस्तद्दशांशतः।
घृताप्लुतैश्च जुहुयात्तर्पणादि ततश्चरेत्॥६६॥
ततो निजगुरुं ध्यात्वा धनधान्यैश्च तोषयेत्।
ततः काम्यप्रयोगाँस्तु तत्कल्पोक्तान् प्रसाधयेत्॥६७॥
स्वादुत्रयाप्लुतापूपैर्होमः कान्तावशङ्करः।
शक्तिं विना गणेशो न शक्तिश्चापि न तं विना॥६८॥
तस्माद् बुधैः साधनीयः सर्वथा शक्तिसङ्गमः।

अब मैं शक्तिगणेश के अन्य मन्त्र को कहता हूँ। ग्यारह अक्षरों का मन्त्र है— ॐ ह्रीं गं ह्रीं वशमानय स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि आदि पूर्वोक्त मन्त्र के समान ही होते हैं। मन्त्र के एक-दो-दो-तीन-तीन एवं समस्त वर्णों से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है।

बन्धूकपुष्प-सदृश आभा से समन्वित, तीन नेत्र एवं हस्तिमुख वाले, शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण करने वाले, सर्पों की माला धारण किये हुये, करकमलों में पाश अंकुश वर एवं ईक्षुदण्ड़ धारण किये हुये, सूँड़ के द्वारा हाथों में कमल धारण की हुई श्यामलाङ्गी के भग का स्पर्श किये हुये एवं उस श्यामलाङ्गी के द्वारा आलिङ्गित गणेश का हृदय में ध्यान करना चाहये।

तत्पश्चात् मनीषी साधक के द्वारा पूर्वोक्त पीठ पर उक्त विधि से पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का तीन लाख जप करके जप का दशांश घृत-सिक्त अपूपों से हवन करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये। इसके बाद अपने गुरु का ध्यान करके उन्हें धन-धान्य आदि प्रदान करके सन्तुष्ट करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रकल्पोक्त काम्य प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

त्रिस्वादु (घी, मधु, शक्कर) से संसिक्त अपूपों से किया गया हवन कान्ता को वशीभूत करने वाला होता है। विना शक्ति के गणेश और गणेश के विना शक्ति कभी नहीं रहते; अत: विद्वानों द्वारा सदा शक्तिसंगम की साधना करनी चाहिये।।६३-६८।।

भुवनेश्वरीशक्तिमन्त्रोपासना

तस्मादादौ प्रवक्ष्यामि शक्तिं श्रीभुवनेश्वरीम्॥६९॥
ह्रीमित्येकाक्षरं बीजं तस्या मन्त्रः प्रकीर्त्तितः।
ऋषिः शक्तिर्वशिष्ठश्च सूतश्छन्दोऽस्य कथ्यते॥७०॥

गायत्री देवता बोधसंविद्वाच्या कलापरा।
हकारस्तु भवेद्बीजमीकारः शक्तिरुच्यते ॥७१॥
रेफस्तु कीलकं प्रोक्तं नियोगोऽखिलसिद्धये।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि समाचरेत् ॥७२॥
संहारमातृकां सृष्टिमातृकां विन्यसेत्ततः।

भुवनेश्वरी मन्त्रोपासना—इसलिये सर्वप्रथम श्रीभुवनेश्वरी शक्ति को कहता हूँ। श्रीभुवनेश्वरी का एकाक्षर मन्त्र 'ह्रीं' कहा गया है। इसके ऋषि शक्ति, वशिष्ठ एवं सूत, छन्द गायत्री तथा देवता ज्ञान की प्रतीति कराने वाली अपरा कलास्वरूपा भुवनेश्वरी कही गई हैं। इस मन्त्र का बीज हकार, शक्ति ईकार एवं कीलक रकार कहा गया है। सर्वार्थ-सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घ स्वरों से समन्वित बीज से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है। तदनन्तर संहारमातृका न्यास एवं सृष्टिमातृका न्यास करना चाहिये। संहारमातृका न्यास इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं नमः पादयोः, ह्रीं नमः जङ्घयोः, ह्रीं नमः जान्वोः, ह्रीं नमः कटिभागद्वये, ह्रीं नमः पृष्ठे, ह्रीं नमः लिङ्गे, ह्रीं नमः नाभौ, ह्रीं नमः पार्श्वयोः, ह्रीं नमः स्तनयोः, ह्रीं नमः अंसयोः, ह्रीं नमः कर्णयोः, ह्रीं नमः मूर्ध्नि, ह्रीं नमः मुखे, ह्रीं नमः नेत्रयोः, ह्रीं नमः कर्णयुगसन्निधौ, ह्रीं नमः कर्णवेष्टनयोः।

सृष्टिमातृका न्यास इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे, ह्रीं नमः भाले, ह्रीं नमः नेत्रयोः, ह्रीं नमः कर्णयोः, ह्रीं नमः नासापुटयोः, ह्रीं नमः गण्डयोः, ह्रीं नमः दन्तपंक्तौ, ह्रीं नमः ओष्ठयोः, ह्रीं नमः जिह्वायाम्, ह्रीं नमः कण्ठे, ह्रीं नमः पृष्ठे, ह्रीं नमः सर्वाङ्गे, ह्रीं नमः हृदि, ह्रीं नमः स्तनयोः, ह्रीं नमः उदरे, ह्रीं नमः लिङ्गे।

देव्येकतापादनाय मन्त्रन्यासोऽथ वक्ष्यते ॥७३॥
भाले ह्रीं हृल्लेखायै मुखे ह्रूं भगनाम च।
ह्रूं रक्ता हृदये स्थाप्या गुदे ह्रीं च करालिका ॥७४॥
ह्रुं पादयोर्महोच्छुष्मा पञ्चवक्त्रेषु विन्यसेत्।
ऊर्ध्वोदग्याम्यपूर्वाशाप्रत्येकस्थेषु च क्रमात् ॥७५॥
न्यस्येत्कण्ठे च गायत्रीं सावित्रीं वामगे कुचे।
सरस्वतीं दक्षकुचे ब्रह्माणीं वामगेऽसके ॥७६॥
हृदि विष्णुं महेशं च दक्षिणेऽसे प्रविन्यसेत्।
ब्रह्माणं विन्यसेद्भाले गायत्र्या सहितं सुधीः ॥७७॥
विष्णुं कपोलदेशे तु सावित्र्या सहितं न्यसेत्।
महेशं वामगण्डे च वागीश्वर्य्या युतं न्यसेत् ॥७८॥

वामे धनपतिं युक्तं श्रिया श्रोत्राग्रके न्यसेत् ।।७९।।
स्मरं रत्या युतं वक्त्रे गणं पुष्ट्या युतं न्यसेत् ।
दक्षश्रोत्राग्रके मन्त्री निधी शक्तियुतौ न्यसेत् ।।८०।।
श्रवःकपोलान्तरयोर्वक्त्रमूले न्यसेत्ततः ।
गलमूले कुचयुगे वामांसे हृदि दक्षिणे ।।८१।।
अंसे पार्श्वयुगे चैताञ्न्यसेन्मन्त्री समाहितः ।
न्यस्येन्मातृरष्ट भाले चांसे पार्श्वे तथोदरे ।।८२।।
पार्श्वे चांसे च मन्त्रज्ञस्तथा पादे गले हृदि ।
व्यापयेन्मूलमन्त्रेण तनुं देवीं ततः स्मरेत् ।।८३।।

अब देवी से एकत्व-प्राप्ति के लिये मन्त्रन्यास को कहा जा रहा है। मन्त्रन्यास इस प्रकार किया जाता है—ह्रीं हृल्लेखायै नमः से भाल में, ह्रूं भगनासायै नमः से मुख में, ह्रूं रक्तायै नमः से हृदय में, ह्रीं करालिकायै नमः से गुदा में एवं ह्रूं महोच्छुष्मायै नमः से दोनों पैरों में न्यास करना चाहिये। पुनः ऊर्ध्व, उत्तर, दक्षिण, पूर्व एवं पश्चिम दिशा में स्थित पाँच मुखों में क्रमशः न्यास करना चाहिये।

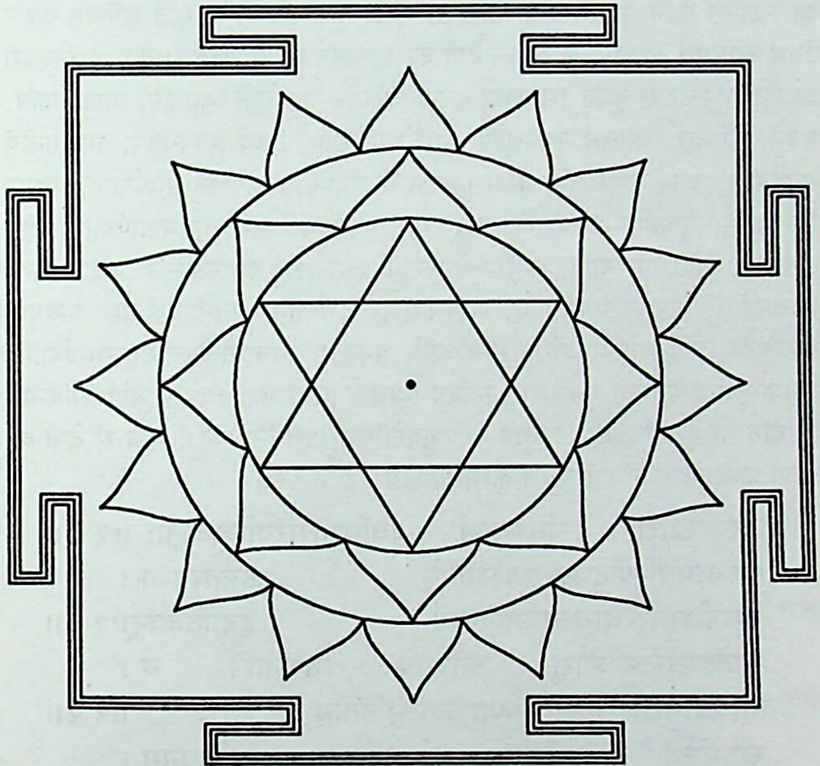
तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक को कण्ठ में गायत्री का, वाम स्तन में सावित्री का, दक्ष स्तन में सरस्वती का, वाम स्कन्ध पर ब्रह्माणी का, हृदय में विष्णु का, दक्षस्कन्ध पर महेश का, भाल में गायत्री-सहित ब्रह्मा का, कपोलप्रदेश में सावित्री-सहित विष्णु का, वाम गण्डस्थल पर वागीश्वरी-सहित महेश का, वामकर्ण के आगे श्री-समन्वित धनपति का, मुख में रति-सहित स्मर का, दक्षकर्ण के आगे पुष्ट-सहित गणेश का, कर्ण एवं कपोल के मध्य में शक्ति-सहित निधि का न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर वक्त्रमूल, गलमूल, कुचयुग्म, वामांस, हृदय, दक्षांस, दक्षपार्श्व, वामपार्श्व में न्यास करके अष्टमातृकाओं का क्रमशः भाल, अंस, पार्श्व, उदर, पार्श्व, पाद, गला, हृदय में न्यास करने के बाद 'ह्रीं नमः' से शिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर में व्यापक न्यास करके देवी का ध्यान करना चाहिये।।७३-८३।।

उद्यदादित्यरुचिरां शीतांशुकृतशेखराम् ।
पद्मासनां त्रिनेत्रां च पाशाङ्कुशवराभयैः ।
अलंकृतचतुर्बाहुं मन्दस्मितलसन्मुखीम् ।।८४।।
कुचभारविनम्राङ्गलतां देवीं हृदि स्मरेत् ।
आदौ कृत्वा तु षट्कोणं तद्बाह्येऽष्टदलाम्बुजम् ।।८५।।
तद्बाह्ये षोडशदलं चतुरस्त्रत्रयं बहिः ।
चतुर्द्वारसमोपेतं मण्डलं प्रोक्तमुत्तमम् ।।८६।।

उदीयमान सूर्य के सदृश दीप्तिमान, शीर्ष पर चन्द्रकिरणों को धारण की हुई, कमल पर विराजमान, तीन नेत्रों वाली, पाश अंकुश वर एवं अभय से अलंकृत चार भुजाओं वाली, मन्द मुस्कान से शोभायमान मुख वाली, स्तनभार से झुके अंगों वाली देवी का हृदय में स्मरण करना चाहिये।

तदनन्तर पूजन यन्त्र के निर्माण-हेतु सर्वप्रथम षट्कोण बनाकर उसके बाहर अष्टदल कमल बनाना चाहिये। फिर उसके बाहर षोडशदल कमल का निर्माण करने के पश्चात् उसके बाहर तीन भूपुर बनाना चाहिये। चार द्वारों से समन्वित यह उत्तम मण्डल कहा गया है। पूजन-यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



तत्र पीठं यजेत्पूर्वं नवशक्तिसमन्वितम्।
जया च विजया चैवाजिताख्या चापराजिता ॥८७॥
नित्या विलासिनी दोग्ध्री ह्यघोरा मङ्गला ततः।
एतास्तु शक्तयः पूज्याः केशरेषु च मध्यके ॥८८॥

दद्यान्मूलेनासनं तु मूर्त्तिं तेनैव कल्पयेत्।
देवीमावाहयेत्तस्यामङ्गावरणसंयुताम् ॥८९॥
पाशाङ्कुशवराभीतिधरा भूतनिभाश्च ताः।

सर्वप्रथम नव शक्तियों से समन्वित पीठ का पूजन करना चाहिये। वे नव शक्तियाँ हैं—जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा एवं मंगला। ये सभी पाश, अंकुश, वर एवं अभय को धारण की हुई हैं तथा जीवित प्राणियों के सदृश हैं। इन शक्तियों का पूजन कमलकेशरों एवं मध्य में करना चाहिये। इसके बाद पीठ पर 'ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' से पुष्पासन प्रदान करके यन्त्र को स्थापित करने के पश्चात् प्राणप्रतिष्ठा करके मूल मन्त्र से ही मूर्ति कल्पित करके उसमें अंग एवं आवरण से संयुक्त देवी का आवाहन करना चाहिये। देवी भुवनेश्वरी का षोड़शोपचार से पूजन इस प्रकार करना चाहिये—भुवनेशीं ध्यायामि, आवाहयामि, भुवनेश्वर्यै नमः, आसनं समर्पयामि, पाद्यं समर्पयामि, अर्घ्यं समर्पयामि, आचमनीयं समर्पयामि, स्नानं समर्पयामि, वस्त्रालङ्कारान् समर्पयामि, यज्ञोपवीतं समर्पयामि, गन्धान् समर्पयामि, पुष्पाणि समर्पयामि, तर्पयामि, भुवनेश्वर्यै नमः धूपमाघ्रापयामि, दीपं दर्शयामि, नैवेद्यं समर्पयामि, मध्ये मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं, ताम्बूलं समर्पयामि, कर्पूरनीराजनं दर्शयामि, भुवनेश्वर्यै नमः मन्त्रपुष्पं समर्पयामि, प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि, समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवती भुवनेश्वरी सुप्रीता सुप्रसन्ना वरदा भवतु। इसके बाद 'संविन्मये परे देवि परामृतरुचिप्रिये। अनुज्ञां देहि भुवनेशिपरिवारार्चनाय मे।' मन्त्र से देवी की आज्ञा प्राप्त कर आवरण-पूजन करना चाहिये।।८७-८९।।

हृल्लेखाद्या समभ्यर्च्य विविधाभरणोज्ज्वलाः ॥९०॥
मध्याग्रयाम्योदक्प्रत्यक्स्थानेषु क्रमतस्तथा।
अग्नीशासुरवायव्यकोणेष्वग्रे हृदादिकान्॥९१॥
यजेदस्त्रन्तथाशासु कोणाग्रे मिथुनानि च।
गायत्रीमरुणाभासामरुणाकल्पभूषिताम् ॥९२॥
चतुर्मुखीं करैर्दण्डं कुण्डिकामक्षमालिकाम्।
अभीतिं बिभ्रतीं तद्वद् ब्रह्माणं पुरतो यजेत्॥९३॥
सावित्रीं हस्तकमलैररिशङ्खगदाम्बुजम्।
बिभ्राणां पीतवसनां केयूराङ्गदभूषिताम्॥९४॥
किरीटहाररशनानूपुरैरुपशोभिताम् ।
तादृग्रूपमयं विष्णुं रक्षःकोणेऽग्रके यजेत्॥९५॥

शुभ्रां त्रिनेत्रामभ्यन्तः शुभ्रवस्त्रविराजिताम्।
टङ्काक्षसूत्राभयदवरयुक्तां चतुर्भुजाम् ॥९६॥
सरस्वतीं यजेद्वायोः कोणे चेशं च तादृशम्।
लक्ष्मीं प्रियाङ्कसंस्थां च दक्षेणालिङ्ग्य बाहुना ॥९७॥
पतिं कामेन कमलं धनदं च पृषोदरम्।
पीतं रत्नघटं रत्नकरञ्जं बिभ्रतीं यजेत् ॥९८॥
आग्नेये रमणाङ्कस्थां रतिं सव्येन पाणिना।
आलिङ्ग्य रमणं मद्ममन्यतो दधतीं स्मरेत्।
बन्धूकाभं बाणगुणसृणिचापकरञ्जकम् ॥९९॥
ऐशान्यां पूजयेत्सम्यग्विघ्नराजं प्रियान्वितम्।
सृणिपाशधरं कान्तावराङ्गस्पृक्करागुलिम् ॥१००॥
माध्वीपूर्णकपालाढ्यं विघ्नराजं दिगम्बरम्।
पुष्करे विगलद्रत्नस्फुरच्चषकधारिणम् ॥१०१॥
सिन्दूरसदृशाकारामुद्दाममदविह्वलाम्।
धृतरक्तोत्पलामन्यपाणिना तद्ध्वजस्पृशम्।
आश्लिष्टकान्तामरुणां पुष्टिमर्चेद्दिगम्बराम् ॥१०२॥
कर्णिकायां निधिं पूज्य षट्कोणस्याथ पार्श्वयोः।
आद्या त्वनङ्गकुसुमा ह्यनङ्गकुसुमातुरा ॥१०३॥
अनङ्गमदनान्या तु ह्यन्या भुवनपालिनी।
षष्ठी गगनवेगा स्याच्छशिशीर्षा च सप्तमी ॥१०४॥
अन्ते गगनरेखेषु पत्रेषु परितः स्थिताः।
पाशाङ्कुशवराभीतिकरा रक्ताः सुभूषिताः ॥१०५॥
ततः षोडशपत्रेषु कराली विकरालिका।
सरस्वती श्रीदुर्गोषा लक्ष्मीश्रुत्यौ स्मृतिर्धृतिः ॥१०६॥
श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्य्या षोडशशक्तयः।
खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याः प्रदक्षिणैः ॥१०७॥
ब्राह्मयाद्यास्तद्बहिः पूज्याः पत्रसन्धिषु दिक्क्रमात्।
पश्चाद् बहिः समभ्यर्च्याः शक्तयः परिचारिकाः ॥१०८॥
अनङ्गरूपानङ्गादिमदना मदनातुरा।
तथा भुवनवेगा स्यादग्रे भुवनपालिका ॥१०९॥

षष्ठी च सर्वशिशिरा तदग्रेऽनङ्गवेदना।
अनङ्गमेखला चेति तद्बाह्ये तु दिगीश्वरान्॥११०॥
रक्तां रक्तोज्ज्वलाकल्पां रक्तान्तायतलोचनाम्।
रक्तोत्पलकरां वामे दक्षिणे क्रमतस्त्विदम्॥१११॥
चषकं तालवृन्तं च ताम्बूलं छत्रचामरे।
दर्पणं चांशुकं पुष्पं बिभ्राणां दक्षिणैः करैः॥११२॥
वज्रादीन्यपि तद्बाह्ये पूजयेच्चोत्तमोत्तमे।
कौर्प्ये दिव्यावृते चित्ते चतुर्भिरपि चोत्तमा॥११३॥
हृल्लेखाद्यैस्तदङ्गैश्च लोकपालैस्तदायुधैः।
मध्यास्त्रावरणैः पूजाङ्गलोकेशतदस्त्रकैः॥११४॥
द्वाभ्यां कनिष्ठाङ्गलोकपालाभ्यां सा प्रवासके।
अनन्यगतिका पूजा ह्यङ्गैनैकेन कीर्त्तिता॥११५॥

तदनन्तर आवरण-पूजन के क्रम में प्रथम आवरण में विन्दु के बगल में देवी के समीप मध्य में 'ॐ हृल्लेखायै नमः हृल्लेखाश्रीपादुकां पूजयामि' बिन्दु से पूर्व 'ॐ गगनायै नमः गगनाश्रीपादुकां पूजयामि' बिन्दु से दक्षिण 'ॐ रक्तायै नमः रक्ताश्रीपादुकां पूजयामि' बिन्दु से उत्तर 'ॐ करालिकायै नमः करालिकाश्रीपादुकां पूजयामि' एवं बिन्दु से पश्चिम 'ॐ महोच्छुष्मायै नमः महोच्छुष्माश्रीपादुकां पूजयामि' कहते हुये नानाविध आभूषणों से भूषित हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका एवं महोच्छुष्मा का क्रमशः पूजन करने के पश्चात् 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि.........प्रथमावरणार्चनम्' कहते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये।

द्वितीय आवरण का पूजन षट्कोण में इस प्रकार करना चाहिये—
अग्निकोण में—ॐ ह्रां हृदयाय नमः हृदयश्रीपादुकां पूजयामि।
नैर्ऋत्यकोण में—ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा शिरःश्रीपादुकां पूजयामि।
वायव्यकोण में—ॐ ह्रीं शिखायै वषट् शिखाश्रीपादुकां पूजयामि।
ईशानकोण में—ॐ ह्रैं कवचाय हुम् कवचश्रीपादुकां पूजयामि।
पूज्य-पूजक के मध्य में—ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रश्रीपादुकां पूजयामि।
देवी के पश्चिम में—ॐ ह्रः अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि.........द्वितीयावरणार्चनम्' कहते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये।

तृतीयावरण का पूजन षट्कोणों में ही इस प्रकार करना चाहिये—

पूर्व में—ॐ गायत्र्यै नमः गायत्रीश्रीपादुकां पूजयामि। ॐ ब्रह्मणे नमः ब्रह्माश्रीपादुकां पूजयामि।

नैर्ऋत्य में—ॐ सावित्र्यै नमः सवित्रीश्रीपादुकां पूजयामि। ॐ विष्णवे नमः विष्णुश्रीपादुकां पूजयामि।

वायव्य में—ॐ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीश्रीपादुकां पूजयामि। ॐ रुद्राय नमः रुद्रश्रीपादुकां पूजयामि।

अग्निकोण में—ॐ श्रियै नमः श्रीश्रीपादुकां पूजयामि। ॐ धनपतये नमः धनपतिश्रीपादुकां पूजयामि।

पश्चिम में—ॐ रत्यै नमः रतिश्रीपादुकां पूजयामि। ॐ स्मराय नमः स्मरश्रीपादुकां पूजयामि।

ईशान में—ॐ पुष्ट्यै नमः पुष्टिश्रीपादुकां पूजयामि। ॐ गणपतये नमः गणपतिश्रीपादुकां पूजयामि।

षट्कोण के दक्षिण में—ॐ शङ्खनिधये नमः शङ्खनिधिश्रीपादुकां पूजयामि।

षट्कोण के वाम में—ॐ पद्मनिधये नमः पद्मनिधिश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि.........तृतीयावरणार्चनम्' कहते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये।

चतुर्थ आवरण का पूजन अष्टदल में पूर्वादि क्रम से इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ अनङ्गकुसुमायै नमः अनङ्गकुसुमाश्रीपादुकां पूजयामि।

२. ॐ अनङ्गकुसुमातुरायै नमः अनङ्गकुसुमातुराश्रीपादुकां पूजयामि।

३. ॐ अनङ्गमदनायै नमः अनङ्गमदनाश्रीपादुकां पूजयामि।

४. ॐ अनङ्गमदनातुरायै नमः अनङ्गमदनातुराश्रीपादुकां पूजयामि।

५. ॐ भुवनपालायै नमः भुवनपालाश्रीपादुकां पूजयामि।

६. ॐ गगनवेगायै नमः गगनवेगाश्रीपादुकां पूजयामि।

७. ॐ शशिरेखायै नमः शशिरेखाश्रीपादुकां पूजयामि।

८. ॐ गगनरेखायै नमः गगनरेखाश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि.........चतुर्थावरणार्चनम्' कहते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये।

पञ्चम आवरण का पूजन षोडश दल कमल में पूर्वादि क्रम से इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ कराल्यै नमः करालीश्रीपादुकां पूजयामि।

२. ॐ विकराल्यै नमः विकरालीश्रीपादुकां पूजयामि।

३. ॐ उमायै नमः उमाश्रीपादुकां पूजयामि।
४. ॐ सरस्वत्यै नमः सरस्वतीश्रीपादुकां पूजयामि।
५. ॐ श्रियै नमः श्रीश्रीपादुकां पूजयामि।
६. ॐ दुर्गायै नमः दुर्गाश्रीपादुकां पूजयामि।
७. ॐ उषायै नमः उषाश्रीपादुकां पूजयामि।
८. ॐ लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि।
९. ॐ श्रुत्यै नमः श्रुतिश्रीपादुकां पूजयामि।
१०. ॐ स्मृत्यै नमः स्मृतिश्रीपादुकां पूजयामि।
११. ॐ धृत्यै नमः धृतिश्रीपादुकां पूजयामि।
१२. ॐ श्रद्धायै नमः श्रद्धाश्रीपादुकां पूजयामि।
१३. ॐ मेधायै नमः मेधाश्रीपादुकां पूजयामि।
१४. ॐ मत्यै नमः मतिश्रीपादुकां पूजयामि।
१५. ॐ कान्त्यै नमः कान्तिश्रीपादुकां पूजयामि।
१६. ॐ आर्यायै नमः आर्याश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि.........पञ्चमावरणार्चनम्' कहते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये।

षष्ठ आवरण के पूजन में सोलह पत्रों की सन्धियों में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का तथा सन्धियों के बाहर अनङ्गरूपा आदि परिचारिका शक्तियों का इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. पूर्व में—ॐ ब्राह्मयै नमः ब्राह्मीश्रीपादुकां पूजयामि।
२. पूर्व मे—ॐ अनङ्गरूपायै नमः अनङ्गरूपाश्रीपादुकां पूजयामि।
३. अग्निकोण में—ॐ माहेश्वर्यै नमः माहेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि।
४. अग्निकोण में—ॐ अनङ्गमदनायै नमः अनङ्गमदनाश्रीपादुकां पूजयामि।
५. दक्षिण में—ॐ कौमार्यै नमः कौमारीश्रीपादुकां पूजयामि।
६. दक्षिण में—ॐ अनङ्गमदनातुरायै नमः अनङ्गमदनातुराश्रीपादुकां पूजयामि।
७. नैर्ऋत्यकोण में—ॐ माहेन्द्र्यै नमः माहेन्द्रीश्रीपादुकां पूजयामि।
८. नैर्ऋत्यकोण में—ॐ भुवनवेगायै नमः भुवनवेगाश्रीपादुकां पूजयामि।
९. पश्चिम में—ॐ वैष्णव्यै नमः वैष्णवीश्रीपादुकां पूजयामि।
१०. पश्चिम में—ॐ भुवनपालिकायै नमः भुवनपालिकाश्रीपादुकां पूजयामि।
११. वायव्यकोण में—ॐ वाराह्यै नमः वाराहीश्रीपादुकां पूजयामि।
१२. वायव्यकोण में—ॐ सर्वशिशिरायै नमः सर्वशिशिराश्रीपादुकां पूजयामि।

१३. उत्तर में—ॐ चामुण्डायै नमः चामुण्डाश्रीपादुकां पूजयामि।

१४. उत्तर में—ॐ अनङ्गवेदनायै नमः अनङ्गवेदनाश्रीपादुकां पूजयामि।

१५. ईशानकोण में—ॐ महालक्ष्म्यै नमः महालक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि।

१६. ईशानकोण में—ॐ अनङ्गमेखलायै नमः अनङ्गमेखलाश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि.........षष्ठावरणार्चनम्' कहते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये।

सप्तम आवरण में लोकपालों का पूजन भूपुर की प्रथम वीथि में इस प्रकार करना चाहिये—

१. लं इन्द्राय नमः इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि।

२. रं अग्नये नमः अग्निश्रीपादुकां पूजयामि।

३. मां यमाय नमः यमश्रीपादुकां पूजयामि।

४. क्षं निर्ऋतये नमः निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि।

५. वं वरुणाय नमः वरुणश्रीपादुकां पूजयामि।

६. यं वायवे नमः वायुश्रीपादुकां पूजयामि।

७. कुं कुबेराय नमः कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि।

८. हं ईशानाय नमः ईशानश्रीपादुकां पूजयामि।

९. आं ब्रह्मणे नमः ब्रह्माश्रीपादुकां पूजयामि।

१०. ह्रीं अनन्ताय नमः अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि.........सप्तमावरणार्चनम्' कहते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये।

अष्टम आवरण में भूपुर की द्वितीय वीथि में लोकपालों के अस्त्रों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. वं वज्राय नमः, २. शं शक्तये नमः, ३. दं दण्डाय नमः, ४. खं खड्गाय नमः, ५. पं पाशाय नमः, ६. अं अंकुशाय नमः, ७. गं गदायै नमः, ८. त्रिं त्रिशूलाय नमः, ९. पं पद्माय नमः, १०. चं चक्राय नमः।

तदनन्तर 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि.........अष्टमावरणार्चनम्' कहते हुये पुष्पाञ्जलि समर्पित कर 'पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये।

इसके बाद समग्र यन्त्र का पूजन धूप, दीप, नैवेद्य आदि से करना चाहिये। इस प्रकार यह उत्तमोत्तम पूजन होता है। वृश्चिक राशीस्थ सूर्य से आवृत चित्त वालों के लिये हृल्लेखा आदि, अंग, लोकपाल एवं आयुध-पूजन—इस प्रकार चार आवरणों

से युक्त पूजा भी उत्तम होती है। अंग, लोकपाल एवं उनके आयुध-पूजनरूप तीन आवरणों वाली पूजा मध्यम होती है। अंग एवं लोकपाल दो आवरणों द्वारा की गई पूजा कनिष्ठ कहलाती है, जो प्रवासकाल में की जाती है। आपत्काल में केवल अंगपूजा करने का ही विधान विहित है।।९०-११५।।

पूजालोपं न कुर्वीत भुवनेश्याः कदाचन।
सन्ध्यालोपे यथा पापं पूजालोपे तथा भवेत् ।।११६।।
सप्ताहपूजालोपे तु शापः पतति दारुणः।
शुक्रे तु दक्षिणी वामी रवौ पूजां न लोपयेत् ।।११७।।
सप्तशुक्रं मानवो यो निष्पूजो भवतीह सः।
द्वात्रिंशल्लक्षमानेन जपेन्मन्त्रं समाहितः ।।११८।।
तद्दशांशं हुनेदष्टद्रव्यैस्त्रिस्वादुसंयुतैः।
तर्पणादि ततः कुर्य्यान्मन्त्री शास्त्रोक्तवर्त्मना ।।११९।।

भुवनेश्वरी के पूजन का कभी भी लोप नहीं करना चाहिये। सन्ध्यालोप करने से अर्थात् सन्ध्या न करने से जिस प्रकार का पाप होता है, वैसा ही पाप पूजालोप से भी होता है। एक सप्ताह तक पूजन न करने से साधक दारुण शाप का भागी होता है। दक्षिणमार्गी साधक को शुक्रवार को एवं वाममार्गी साधक को रविवार को पूजन का त्याग नहीं करना चाहिये। इस लोक में जो मनुष्य सात शुक्रवारों तक विना पूजा किये रहता है, उसे व्रतनिष्ठ होकर मन्त्र का बत्तीस लाख जप करना चाहिये। फिर त्रिस्वादु-संसिक्त पूर्वोक्त आठ द्रव्यों से जप का दशांश (तीन लाख बीस हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक को शास्त्रोक्त मार्ग से तर्पण आदि करना चाहिये।

अथान्यदपि मन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते।
एकलिङ्गे शिवागारे दक्षिणामूर्तिमाश्रितः ।।१२०।।
बद्धपद्मासनो भस्मशायी च कुशविष्टरः।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णा चतुर्दशी ।।१२१।।
नित्यमिष्ट्वा शिवं शक्तिं जपेन्मन्त्रं सहस्रकम्।
दधिक्षौद्रघृताभ्यक्ता व्याघातसमिधो हुनेत् ।।१२२।।
ततः साग्रसहस्रेण ध्यायेत्सर्वेश्वरीमुखीम्।
ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रो नात्र कार्य्या विचारणा ।।१२३।।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधसमिधस्तथा।
तिलसर्षपदुग्धाज्यद्रव्याण्यष्टमितानि च ।।१२४।।

प्रतिद्रव्यन्तु होमेऽस्य ह्ययुतानां चतुष्टयम्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री सर्वान् कामान् प्रसाधयेत्॥१२५॥

अब मन्त्रपुरश्चरण की दूसरी विधि को कहता हूँ। एक लिङ्ग वाले शिवालय में दक्षिणामूर्ति का आश्रय ग्रहण करके भस्म लगाकर कुशासन पर पद्मासन में बैठकर कृष्णाष्टमी से आरम्भ कर कृष्णचतुर्दशी-पर्यन्त प्रतिदिन शिव एवं शक्ति का यजन करके मन्त्र का एक हजार जप करने के उपरान्त दधि, मधु एवं घृत से सिक्त प्रहार करने वाली समिधाओं से हवन करना चाहिये। इसके बाद एक हजार मन्त्रजप के द्वारा देवी भुवनेश्वरी का ध्यान करना चाहिये। ऐसा करने से निःसन्दिग्ध रूप से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

पीपल, गूलर, पाकड़ एवं वट की समिधा तथा तिल, सरसों, दुग्ध एवं गोघृत—इन आठ द्रव्यों में से प्रत्येक से अलग-अलग चालीस हजार हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है और उस सिद्ध मन्त्र से साधक समस्त काम्य कर्मों का साधन कर सकता है।।१२०-१२५।।

नित्यं सौभाग्यदं पञ्चविंशज्जप्त्वाभिषेचनम्।
मेधावी च भवेद्वाग्मी तावज्जप्ताम्बुपानतः॥१२६॥
जिह्वाग्रे न्यस्य सञ्जप्तं वाक्सिद्धिः कविता भवेत्।
तज्जप्तमञ्जनं वश्यं कर्पूरागुरुमिश्रितम्॥१२७॥
सासृग्भस्मारुणालेपैर्वश्याय तिलकक्रिया।
जानुमात्रजले स्थित्वा निश्चलो मीलितेक्षणः।
जपेत्सहस्रं तद्राव्यामिष्टामाकर्षयेत्स्त्रियम्॥१२८॥
लाजैः कन्यामवाप्नोति तिलैरारोग्यमश्नुते।
पुष्टिमान्दधिहोमेन तण्डुलैश्च तथा भवेत्॥१२९॥
ब्राह्मीरसयुताँल्लाजान् वचया च समन्वितान्।
त्रिसहस्रेणाभिसम्मन्त्र्य मासमेकं प्रभक्षयेत्।
बृहस्पतिसमो मन्त्री सर्वविद्याधिपो भवेत्॥१३०॥

पच्चीस बार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित जल से प्रतिदिन अभिषेक करने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। पच्चीस बार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित जल का पान करने से मनुष्य मेधावी एवं वाग्मी होता है। जिह्वा के अग्रभाग पर मन्त्र का न्यास करके सम्यक् रूप से जप करने से साधक को वाक्सिद्धि की प्राप्ति होती है एवं कविता-सिद्धि होती है। इसके जप द्वारा अभिमन्त्रित कपूर और अगुरु को मिलाकर बने अंजन से वशीकरण

होता है। वशीकरण-सिद्धि के लिये रक्त-मिश्रित भस्म के रक्त लेप से तिलक लगाना चाहिये। घुटने-पर्यन्त जल में निश्चल खड़े होकर आँखे बन्द कर मन्त्र का एक हजार जप करने से साधक रात्रि में अभीष्ट स्त्री का आकर्षित करने में समर्थ हो जाता है। इस मन्त्र के द्वारा धान के लावा से हवन करने पर विवाह होता है, तिल से हवन करने पर आरोग्य की प्राप्ति होती है, दधि से हवन करने पर मनुष्य पुष्टियुक्त होता है और चावल के हवन से भी यही फल होता है।

ब्राह्मीरस से समन्वित लाजा एवं वचा को मिलाकर उसे मन्त्र के तीन हज़ार जप से अभिमन्त्रित करने के बाद एक मास-पर्यन्त उसका भक्षण करने से मन्त्रज्ञ साधक वृहस्पति के समान समस्त विद्याओं का अधिपति हो जाता है।।१२६-१३०।।

अश्वत्थसमिधः स्वादुयुक्ता हुत्वा द्विजानसौ।
वशयेत्पद्महोमेन राज्ञस्तन्मन्त्रिणस्तथा ।।१३१।।
कुमुदै राजपत्न्याश्च ब्रह्मक्षेत्रप्रसूनकैः।
तण्डुलानां पिष्टकृतां प्रतिमां स्वादुसंयुताम् ।।१३२।।
कृतप्राणप्रतिष्ठां तां सञ्जप्तां मनुनामुना।
भक्षयेत्तामर्कवारे ततः कुर्य्याद्वशं नरम्।
राजानं प्रमदां वापि यं यं वाञ्छत्यनुत्तमम् ।।१३३।।
फलके भस्मना शक्तिं ससाध्यां सुलिखेत्सुधीः।
गर्भिण्यै दर्शयेदाशु सा सुखप्रसवा भवेत् ।।१३४।।

त्रिमधुराक्त पीपल की समिधा से किया गया हवन द्विजों को वशीभूत करता है, कमलों के हवन से राजा एवं कुमुदों के हवन से राजा का मन्त्री वशीभूत होता है; साथ ही ब्रह्मक्षेत्र (?) के पुष्पों द्वारा हवन करने से रानियाँ वशीभूत होती हैं। त्रिमधु-संयुक्त पिसे चावल से प्रतिमा बनाकर उसमें प्राणप्रतिष्ठा करके उस प्रतिमा को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर रविवार को भक्षण करने से साधक मनुष्य, राजा, प्रमदा के साथ-साथ सभी वाञ्छित व्यक्ति को वशीभूत कर लेता है। फलक पर भस्म से साध्य-सहित शक्ति का नाम लिखकर गर्भवती को दिखाने से वह सुखपूर्वक प्रसव करने वाली होती है।।१३१-१३४।।

अभिषेकविधानं तु वक्ष्यते वाञ्छितार्थदम्।
मण्डपे मण्डलं कुर्य्याद्देवीपीठान्वितं शुभम् ।।१३५।।
यथावत्पीठमभ्यर्च्य कलशान्विन्यसेत्सुधीः।
कर्णिकायां दलाग्रे तु स्वर्णरौप्यसुताम्रजान् ।।१३६।।

मार्त्तिकाँस्तत्र विन्यस्य पञ्चैकं वापि तन्त्रवित्।
महता वाद्यघोषेण मनुना स्थापयेत्सुधीः।
पूर्वोक्तैरुपचारैस्तु निजेष्टायै च मन्त्रवित् ॥१३७॥
घटेष्वेषु च सम्पूज्या मातरो दिक्क्रमाद्बुधैः।
यदि स्युः पञ्चकलशा मध्यादिषु यजेत्क्रमात् ॥१३८॥
हृल्लेखाद्याः पञ्च सुधीरभिषिञ्चेत्तदुत्तरम्।
प्रथमं घृतकुम्भेन कषायेण ततः परम् ॥१३९॥
तैलेन च कषायेण मधुना च ततः परम्।
द्विजवृक्षत्वचः क्वाथैरभिषिञ्चेत्ततः सुधीः ॥१४०॥
द्वारकुम्भदलैः पश्चादन्तराले समाचरेत्।
वक्त्रहस्तपदक्षालाचमनान्यपि मन्त्रवित् ॥१४१॥
एकैककलशस्नानानन्तरं पुनरेव हि।
कारयेत्तेन नीरेण त्वेवं शक्तो नरो भवेत् ॥१४२॥
ब्राह्मणान् भोजयेन्नानाविधैर्भक्ष्यैश्च तोषयेत्।
प्राप्नोति महतीं लक्ष्मीं सर्वदा विजयी भवेत् ॥१४३॥

वाञ्छा-पूरक अभिषेक-विधान—आकांक्षित वस्तु को प्रदान करने वाले अभिषेक-विधान को अब मैं कहता हूँ। तन्त्रज्ञ साधक को मण्डप में देवीपीठ से समन्वित मण्डल बनाकर विधि-पूर्वक पीठ का पूजन करने के उपरान्त उसके मध्य में और मण्डलकर्णिका के दलाग्रों में सुवर्ण, चाँदी, ताँबा और मिट्टी के पाँच अथवा एक कलश को गाजे-बाजे के साथ मन्त्रोच्चार-पूर्वक स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक को पूर्वोक्त उपचारों से अपने इष्टदेव का पूजन करके कलशों में दिशाक्रम से मातृकाओं का पूजन करना चाहिये। यदि पाँच कलश स्थापित हों तो सर्वप्रथम मध्य कलश का पूजन करने के पश्चात् दूसरे कलशों का पूजन करना चाहिये। फिर उन पाँच कलशों में मध्यादि क्रम से हृल्लेखा, गगना, रक्ता, करालिका और महोच्छुष्मा का विद्वान् साधक को पूजन करने के बाद अभिषेक करना चाहिये। वह अभिषेक सर्वप्रथम घृतकुम्भ से, तदनन्तर कषायकुम्भ से, उसके बाद तैलकुम्भ से, फिर कषायकुम्भ से, उसके पश्चात् मधुकुम्भ से और फिर द्विजवृक्ष के छाल से बने क्वाथ से करना चाहिये। द्वारकुम्भदलों के बाद दलान्तरालों में मुख-हाथ एवं पादप्रक्षालन तथा आचमन करना चाहिये। तदनन्तर प्रत्येक कलश से स्नान के पश्चात् पुनः इसी प्रकार करने से उस जल से मनुष्य शक्तिशाली हो जाता है। इसके बाद अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों से

ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये। ऐसा करने से साधक को महती लक्ष्मी की प्राप्ति होती है; साथ ही वह सर्वत्र सर्वदा विजयी होता है।।१३५-१४३।।

पलाशाश्वत्थबिल्वानां फलं ग्राह्यं पलार्धकम्।
अग्निमन्थलक्षसेव्यनाम्नोः कर्म्मविदुत्तमः ॥१४४॥
प्रसारिणीकाश्मरिकारोहिणीनां तदर्धकम्।
उदुम्बरीपाटलीन्दुकुभागाः परिकीर्तिताः ॥१४५॥
बृहत्क्वाथोदकेनैव पूरयेत्कलशं ततः।
आप्नोति प्रतिवर्षं च सेकाद्दीर्घायुरुत्तमम् ॥१४६॥
सुन्दरोऽनामयश्चैव सहितस्तेजसा रविः।
कमला किङ्करी तस्य तं दृष्ट्वा विविधामयाः।
नश्यन्ति वर्धते तस्य धनं धान्यसमाकुलम् ॥१४७॥
सर्वे देवा नमस्यन्ति तं दृष्ट्वा फणिनोऽपि वै।
न दशन्ति च तत्पुत्राः शयानाः पथि साधकम् ॥१४८॥

पलाश, पीपल एवं बेल—तीनों का फल आधा-आधा पल की मात्रा में लेकर सबको अग्निमन्थ मन्त्र के एक लाख जप से अभिमन्त्रित कर सेवन करने से साधक उत्तम विद्वान् होता है। प्रसारिणी, काश्मरी, आरोहिणी का आधा गूलर, गुलाब, कपूर से वृहत् क्वाथ बनाकर उससे कलश को पूर्ण करके उस क्वाथ से प्रतिवर्ष अभिषेक करने से दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। वह अतिशय सुन्दर, रोगरहित एवं अपने अप्रतिम तेज से सूर्य के समान होता है। कमला उसकी दासी होती है। उसे देखकर नाना प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं। उसके धन की वृद्धि होती है और वह धान्य से परिपूर्ण हो जाता है। सभी देवता उसे प्रणाम करते हैं एवं मार्गगमन करते सर्प उस साधक के सोये पुत्र को देखकर भी डँसते नहीं है।।१४४-१४८।।

अथ चात्र प्रवक्ष्यामि त्र्यक्षरं मन्त्रमुत्तमम्।
ऐं ह्रीं श्रीमिति पूर्वोक्ता मुन्याद्याश्चात्र कीर्त्तिताः।
आद्याद्येन च मध्येन दीर्घषट्कान्वितेन च।
अङ्गुल्यादिषडङ्गानि शेषन्यासाश्च पूर्ववत् ॥१४९॥
बन्धूकाभां त्रिनयनां चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
रत्नपात्रं वामहस्ते दक्षे पद्मं ततो मनुम् ॥१५०॥
जपेद् द्वादशलक्षं च जुहुयात्तद्दशांशतः।
त्रिस्वादुयुक्तहविषा तर्पणादि ततश्चरेत् ॥१५१॥

ततः प्रयोगान् कुर्वीत मन्त्री स्वेष्टफलाप्तये।
ब्रह्मवृक्षप्रसूनैश्च होमो लक्ष्मीप्रदो मतः ॥१५२॥
सञ्जपाद्वत्सरं ब्राह्मी सर्पिःपानात्कवित्वभाक्।
गौरसर्षपयुग्लोणहोमस्तु वशयेत्स्त्रियम्।
नरं नरपतिं वान्यं वशयेन्नात्र संशयः ॥१५३॥
आरग्वधोत्थैः कुसुमैः संसिक्तैश्चन्दनाम्भसा।
दुकूलयुक्तै रत्नौघै राज्यलक्ष्मीं च विन्दति ॥१५४॥
तिलतण्डुलसम्मिश्रैर्होमात्पूर्वोदितं फलम्।
पूर्वोदितान् प्रयोगांश्च कुर्य्यादत्रापि साधकः।
एवमाराधितो मन्त्रो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥१५५॥

उत्तम त्र्यक्षर मन्त्र—अब मैं यहाँ उत्तम त्र्यक्षर मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ऐं ह्रीं श्रीं। एकाक्षर मन्त्र के समान ही इसके ऋषि आदि कहे गये हैं। ऐं ह्रीं के छ; दीर्घ स्वरूपों से इसका करन्यास एवं षडङ्गन्यास करना चाहिये। शेष न्यास पूर्ववत् होते हैं।

बन्धूकपुष्प के सदृश आभा वाली, तीन नेत्रों वाली, शीर्ष पर अर्धचन्द्र को धारण की हुई तथा बाँयें हाथ में रत्नपात्र एवं दाहिने हाथ में पद्म धारण की हुई देवी का ध्यान करके मन्त्र का बारह लाख जप करने के पश्चात् त्रिस्वादु-युक्त हविष्य से जप का दशांश हवन करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक को अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिये प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

ब्रह्मवृक्ष अर्थात् पलाश के पुष्पों से किया गया हवन लक्ष्मी प्रदान करने वाला होता है। एक वर्ष तक ब्राह्मी रस में गोघृत मिलाकर उसे मन्त्रजप द्वारा अभिमन्त्रित करके पान करने से कविता करने की क्षमता प्राप्त होती है। पीली सरसों में नमक मिलाकर हवन करने से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। चन्दनजल से संसिक्त अमलतास के फूलों से हवन करने पर सामान्य मनुष्य, राजा अथवा अन्य किसी को भी वशीभूत किया जा सकता है। वस्त्र-समन्वित रत्नों के हवन से राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति होती है। तिल में चावल मिलाकर हवन करने से पूर्वकथित फल की प्राप्ति होती है। साधक पूर्ववर्णित प्रयोगों का भी इस मन्त्र से साधन कर सकता है। इस प्रकार आराधना करने पर यह मन्त्र भोग और मोक्ष—दोनों प्रदान करने वाला होता है।।१४९-१५५।।

अथान्यं त्र्यक्षरं वक्ष्ये द्रुतं वाग्विभवप्रदम्।
ऐं ह्लीं ऐमिति मुन्याद्या ज्ञेयाः पूर्वोदितास्तथा ॥१५६॥

आद्यन्तपुटितेनैव दीर्घयुग्मध्यमेन च।
जातिभाञ्जि षडङ्गानि विदध्यान्मन्त्रवित्तमः ॥१५७॥
एकाक्षरोदितं न्यासं कुर्य्यान्मन्त्रविदुत्तमः।
उद्यद्द्युतिं त्रिनयनां पीनवक्षोजनामिताम् ॥१५८॥
पद्मं च रत्नपात्रं च ह्यभयं च वरं तथा।
हस्तैर्दधानां रक्ताब्जसंस्थां च शशिशेखराम्।
मुक्ताहारसमायुक्तां भावयेद्भुवनेश्वरीम् ॥१५९॥

वाग्वैभवप्रद अन्य मन्त्र—अब अतिशीघ्र वाग्वैभव प्रदान करने वाले तीन अक्षरों वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ऐं ह्रीं ऐं। इस मन्त्र के ऋषि, छन्द आदि पूर्ववत् ही जानने चाहिये। मन्त्रज्ञ को इसका न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ऐं ह्रां ऐं हृदयाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं ऐं शिरसे स्वाहा, ॐ ऐं ह्रूं ऐं शिखायै वषट्, ॐ ऐं ह्रैं कवचाय हुम्, ॐ ऐं ह्रौं ऐं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ऐं ह्रः ऐं अस्त्राय फट्। हाथों में पद्म, रत्नपात्र, अभय एवं वर तथा शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण करके मोतियों के हार पे विभूषित होकर रक्तकमल पर विराजमान देवी भुवनेश्वरी का ध्यान करना चाहिये।।१५६-१५९।।

एकाक्षरोदिते पीठे पूजयेद् भुवनेश्वरीम्।
पूर्वोक्ताः पूर्ववत्पूज्या हृल्लेखाद्याश्च मन्त्रिणा ॥१६०॥
सम्पूजयेत्कोणषट्के पूर्ववन्मिथुनानि च।
किञ्जल्केषु षडङ्गानि पूजयेच्च दलेषु ताः।
ब्राह्म्याद्या निजनाथाङ्कस्थिताः स्मेराननालसाः ॥१६१॥
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तौ कपाल्यथ।
बिभीषणश्च संहारः प्रोक्तास्तत्पतयस्त्विमे ॥१६२॥
शूलं कपालं प्रेतं च क्षुद्रदुन्दुभिमेव च ॥१६३॥
बिभ्राणाः पाणिभिर्हस्तित्वग्वस्त्रा भीमविग्रहाः।
स्मर्तव्या वक्रकेशाश्च पूजाकाले सुमन्त्रिणा ॥१६४॥
दीर्घाद्या मातरः पूज्या ह्रस्वाद्या भैरवास्तथा।
तद्बाह्ये स्वरपत्रेषु करालाद्याः पुरोदिताः ॥१६५॥
पूज्यास्त्वनङ्गरूपाद्या लोकेशा हेतिभिः सह।
मनुं जपेत्तत्त्वलक्षं ब्रह्मवृक्षप्रसूनकैः ॥१६६॥
त्रिमध्वक्तै राजवृक्षपुष्पैर्वा तद्दशांशतः।
जुहुयात्तर्प्पणादीनि कुर्य्यान्मन्त्रस्य सिद्धये ॥१६७॥

एवं सूक्तविधानेन यो भजेद् भुवनेश्वरीम्।
मदविह्वलयोषाः स राज्ञश्च वशयेत्सुधीः।
एकाक्षरोदितान् सर्वान् प्रयोगानाचरेत्तथा॥१६८॥

मन्त्रज्ञ साधक को एकाक्षर मन्त्र में कथित पीठ पर देवी भुवनेश्वरी का पूजन करने के पश्चात् पूर्वोक्त हल्लेखा आदि का पूजन पूर्ववत् करना चाहिये। षट्कोणों में पूर्ववत् देवमिथुनों का पूजन करने के उपरान्त षट्कोण के किंजल्कों में षडङ्ग-पूजन करके उसके बाहर अष्टदल में अपने-अपने स्वामियों के गोद में अवस्थित प्रसन्न मुख वाली ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। इनके पतियों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्ड़भैरव, क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालीभैरव, बिभीषणभैरव एवं संहारभैरव। ये सभी अपने-अपने हाथों में शूल, कपाल, प्रेत एवं छोटी घण्टिका धारण किये हुये हैं; हस्तिचर्मरूप वस्त्र धारण किये हुये हैं, भयंकर शरीर तथा कुटिल केश वाले हैं। मन्त्रज्ञ साधक को पूजाकाल में माताओं के विशाल स्वरूप की एवं भैरवों के छोटे स्वरूप की पूजा करनी चाहिये। फिर उसके बाहर षोडश दलों में पूर्वोक्त कराली आदि का पूजन करने के पश्चात् अनङ्गरूपा आदि का पूजन करके अस्त्रों के सहित दस दिक्पालों का पूजन करना चाहिये।

मन्त्र की सिद्धि के लिये पाँच लाख जप करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त ब्रह्मवृक्ष (पलाश) अथवा राजवृक्ष के पुष्पों से जप का दशांश (पचास हजार) हवन करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार सम्यक् रूप से कथित विधान द्वारा जो साधक भुवनेश्वरी की आराधना करता है, वह मदविह्वला स्त्रियों एवं राजाओं को वशीभूत कर लेता है। साधक को एकाक्षर मन्त्र में कथित समस्त प्रयोगों को भी इस मन्त्र द्वारा साधित करना चाहिये।।१६०-१६८।।

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि त्र्यर्णयन्त्रादिसिद्धिदम्।
ओं ह्रीं क्रोमिति वह्न्यर्णो मुन्याद्येकाक्षरोदितम्॥१६९॥
कल्पयेन्माययाङ्गानि ध्यानमन्त्रो निरूप्यते।
अङ्कुशं च गुणाभीतिवराँश्च दधतीं करैः।
कमलस्थां प्रोद्यदर्ककान्तिं हृदि विभावयेत्॥१७०॥
पूर्वोदिते यजेत्पीठे हृल्लेखाद्या यथा पुरा।
किञ्जल्केषु षडङ्गानि ब्राह्म्याद्या दलमध्यतः॥१७१॥
ततः शक्रादयो बाह्ये हेतयोऽर्च्यास्तु तद्बहिः।
एवं यः पूजयेद्भक्त्या स भवेत्तु कुबेरवत्॥१७२॥

अनुरक्ताः सर्वलोका भवेयुस्तस्य मन्त्रिणः ।
मन्त्रं जपेत्तत्त्वलक्षं जुहुयात्तत्सहस्रकम् ॥१७३॥
त्रिस्वादुयुग्दुग्धवृक्षसमिद्भिः प्रोक्तसङ्ख्यया ।
शुद्धैस्तिलैः पयोयुक्तैस्तर्पणादि ततश्चरेत् ॥१७४॥

अन्य त्र्यक्षर मन्त्र—अब मैं यन्त्र आदि की सिद्धि प्रदान करने वाले अन्य त्र्यक्षर मन्त्र को कहता हूँ। तीन अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ह्रीं क्रों। एकाक्षर मन्त्र में कथित ऋषि आदि ही इसके भी ऋषि आदि हैं। ह्रीं के छः दीर्घ स्वरूप (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से पूर्ववत् षडङ्ग न्यास करना चाहिये। अब इसका ध्यानमन्त्र कहा जा रहा है। हाथों में अंकुश पाश अभय एवं वर धारण कर कमल पर अवस्थित उदीयमान सूर्य के समान कान्ति वाली देवी का हृदय में ध्यान करना चाहिये।

पूर्ववर्णित पीठ पर हृल्लेखा आदि का पूर्ववत् पूजन करना चाहिये। षट्कोण के किंजल्कों में षडङ्ग-पूजन करने के पश्चात् अष्टदल में ब्राह्मी आदि का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर इन्द्रादि दस दिक्पालों का पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर उनके दश आयुधों का पूजन करना चाहिये। जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक देवी भुवनेश्वरी का पूजन करता है, वह कुबेर के समान धनपति हो जाता है एवं समस्त लोक उस मन्त्रज्ञ साधक में अनुरक्त हो जाते हैं। तदनन्तर मन्त्रसिद्धि के लिये मन्त्र का पाँच लाख जप करके त्रिस्वादु-समन्वित दुग्धवृक्ष की समिधा से पाँच हजार हवन एवं शुद्ध तिल तथा दुग्ध से यथोक्त संख्या में तर्पण करना चाहिये।।१६९-१७४।।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटाश्चत्वार एव च ।
होमे वृक्षाः समाख्याताः प्रत्येकं षट्सहस्रकम् ॥१७५॥
होमोऽयं स्यादागमेन चतुर्विंशतिसङ्ख्यकः ।
सहसा सूर्यसदृशस्तेनाधिष्ठितमन्दिरम् ॥१७६॥
रजन्यां निष्प्रदीपं च प्रदीपशतसङ्कुलम् ।
विलोक्यते सर्वजनैरेतन्मन्त्रप्रसादतः ॥१७७॥
लवणैर्मिश्रसिद्धार्थैं रजन्या च घृतप्लुतैः ।
जुहुयाच्चैव राजानं राजपत्नीं वशं नयेत् ॥१७८॥
अन्नहोमेन मन्त्रज्ञः समृद्धान्नगृहो भवेत् ।
विकचोत्पलहोमेन लक्ष्मीरेनं न सन्त्यजेत् ॥१७९॥
चतुरङ्गुलपुष्पैश्च होमः स्यात्कविताप्रदः ।
तिलहोमेन पापानां नाशो मन्त्रिण एव हि ॥१८०॥

आयुष्कामो घृतेनैव जुहुयान्मन्त्रवित्तमः।
पूर्वोदितान् प्रयोगाँश्च कुर्य्यादत्रापि मन्त्रतः।
अस्मिन् सिद्धे मनौ मन्त्री भुक्तिं मुक्तिमवाप्नुयात्॥१८१॥

होम के लिये चार वृक्ष कहे गये हैं—पीपल, गूलर, पाकड़ और वट। इनमें से प्रत्येक की समिधाओं से अलग-अलग छः-छः हजार हवन करना चाहिये। आगम के अनुसार यह होम चौबीस हजार की संख्या में करना चाहिये। इस प्रकार हवन करने से इस मन्त्र की कृपा से सूर्य-सदृश तेज:समन्वित साधक का घर रात्रि में विना दीपक जलाये भी सैकड़ों दीपकों के प्रकाश से युक्त हो जाता है और बरबस ही सबकी दृष्टि का केन्द्र बन जाता है।

लवण-मिश्रित सरसों एवं घृत-सिक्त हल्दीचूर्ण से हवन करने पर राजा-रानी वशीभूत होते हैं। अन्न के हवन से मन्त्रज्ञ साधक का घर अन्न से समृद्ध हो जाता है। प्रस्फुटित उत्पल के हवन से लक्ष्मी उसके घर का त्याग कभी नहीं करतीं। चतुरङ्गुल पुष्पों के हवन से साधक को कवित्व शक्ति की प्राप्ति होती है। तिल के हवन से मान्त्रिक के पापों का नाश होता है। आयु की कामना वाले मन्त्रज्ञ को केवल घृत से ही हवन करना चाहिये। इस मन्त्र से पूर्ववर्णित प्रयोगों का भी साधन करना चाहिये। इस मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को भोग एवं मोक्ष—दोनों की प्राप्ति होती है॥१७५-१८१॥

वक्रतुण्डमन्त्रजपोपासनादि

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वक्रतुण्डाय हुं त्विति।
सर्वसिद्धिकरो मन्त्रः प्रोक्तश्चायं षडक्षरः॥१८२॥
ह्रस्वं तु कवचं स्त्रीभिर्जप्तव्यं सर्वसिद्धिदम्।
भार्गवो मुनिराख्यातोऽनुष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
देवता वक्रतुण्डोऽस्य सुरासुरनमस्कृतः॥१८३॥
विधाय मूलमन्त्रेण करशुद्धिं जितेन्द्रियः।
षड्भिर्मन्त्रगतैर्वर्णैः षडङ्गानि प्रकल्पयेत्॥१८४॥
भ्रूमध्ये कण्ठहृदये नाभ्यामाधारके तथा।
षडक्षराण्यथो न्यस्य सर्वेण व्यापकं तथा॥१८५॥
उद्यद्दिनेश्वररुचिं पाशाङ्कुशवराभयम्।
हस्तैर्दधानं स्मेरास्यमरुणं चिन्तयेद्धृदि॥१८६॥
पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे वक्रतुण्डं गणेश्वरम्।

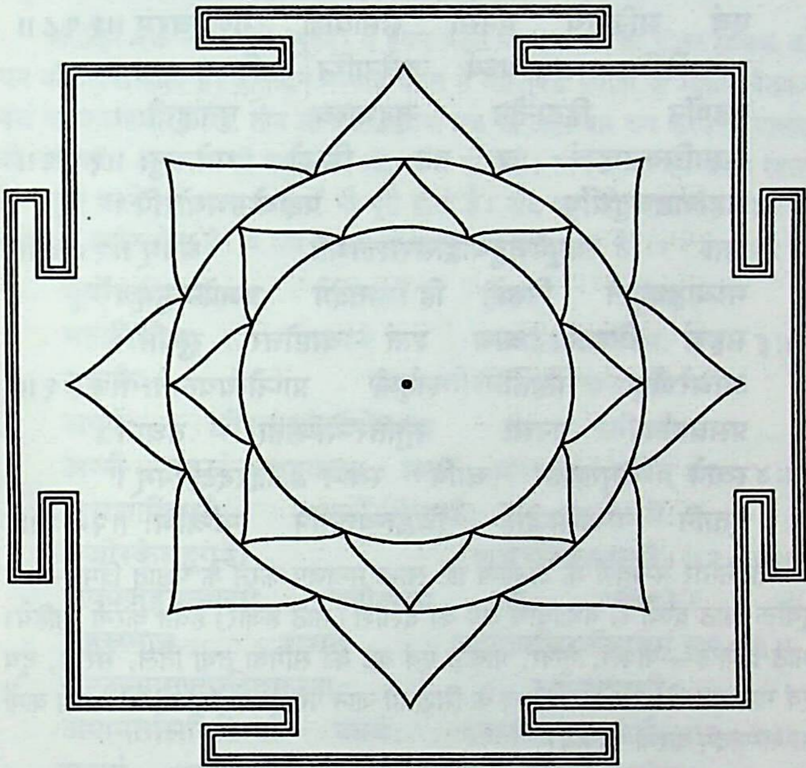
वक्रतुण्ड मन्त्र—अब मैं 'वक्रतुण्डाय हुं' मन्त्र को कहता हूँ। यह षडक्षर मन्त्र समस्त सिद्धियों को देने वाला हा गया है। सर्वविध रक्षाकर एवं सर्वसिद्धिदायक इस षडक्षर मन्त्र का जप स्त्रियों को सदा-सर्वदा करना चाहिये। इस मन्त्र के ऋषि भार्गव, छन्द अनुष्टुप् और देवता सुरासुर-वन्दित वक्रतुण्ड कहे गये हैं। जितेन्द्रिय साधक को मूल मन्त्र से करशुद्धि करने के उपरान्त मन्त्रान्तर्गत छः अक्षरों से भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि और आधार में न्यास करके सम्पूर्ण मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये। तदनन्तर अपने हृदय में उदीयमान भास्कर के सदृश मनोहर, हाथों में पाश अंकुश वर एवं अभय धारण किये हुये, मन्द मुस्कानयुक्त मुख वाले रक्तवर्ण वक्रतुण्ड गणेश का चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर पूर्व-प्रतिपादित पीठ पर वक्रतुण्ड गणेश का पूजन करना चाहिये।।१८२-१८६।।

अष्टपत्राम्बु च द्वन्द्वं चतुर्द्वारयुतेन च।
चतुरस्रत्रयेणाथ वेष्टितं च क्रमाल्लिखेत् ।।१८७।।
मध्ये देवं समभ्यर्च्य पूजितैरुपचारकैः।
आदावङ्गानि सम्पूज्य यथास्थानं विशालधीः।
पूर्वदिग्दलमूलेषु शक्तीरष्टौ क्रमाद्यजेत् ।।१८८।।
विद्याख्या विश्वधात्री च भोगदा विघ्ननाशिनी।
निधिप्रदा च पापघ्नी तथा पुण्या शशिप्रभा ।।१८९।।
दलेषु च यजेत्तत्र ह्यणिमाद्याः पुरोदिताः।
द्वितीयेऽष्टदले तद्वद्वक्रतुण्डादिकान् यजेत् ।।१९०।।
चतुरस्रे लोकपालाँस्तदस्त्राणि च पूजयेत्।
प्राग्वद्वीथीद्वये सम्यग्वक्रतुण्डार्चनं त्विति ।।१९१।।

दो अष्टदल कमल बनाकर उसे बाहर से चार द्वारों से समन्वित तीन भूपुर बनाकर इसके पूजनयन्त्र का निर्माण करना चाहिये।

यन्त्र के मध्य बिन्दु में षोडशोपचार से देव गणेश का पूजन करने के पश्चात् विद्वान् साधक को यथास्थान षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद अष्टदल के मूल में पूर्वादिक्रम से इन आठ शक्तियों का क्रमशः पूजन करना चाहिये—विद्या, विश्वधात्री, भोगदा, विघ्ननाशिनी, निधिप्रदा, पापघ्नी, पुण्या एवं शशिप्रभा। तदनन्तर दलों में पूर्वकथित अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्व, वशित्व, प्राकाम्य, प्राप्ति और सर्वकामसिद्धियों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद दूसरे अष्टदल में इसी प्रकार वक्रतुण्ड आदि अष्टविनायकों (वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, महोदर, हस्तिमुख, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज,

धूम्रवर्ण) का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्ववत् भूपुर की पहली वीथि में इन्द्रादि दस दिक्पालों एवं दूसरी वीथि में उनके वज्रादि दस आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार करने से वक्रतुण्ड का अर्चन सम्यक् रूप से सम्पन्न हो जाता है।



वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः।
अष्टद्रव्यैः पुरा प्रोक्तैर्मधुराक्तैर्यथाविधि ॥१९२॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री काम्यकर्म्माणि साधयेत्।
तर्पयेत्पूर्वमार्गेण वक्रतुण्डं गणेश्वरम् ॥१९३॥
चतुरस्रं हस्तमात्रं कुण्डं कुर्य्यात्तदग्रतः।
आदधीत मथित्वाग्निमनूचानगृहाद्धरेत् ॥१९४॥
प्राणायामत्रयं कृत्वा मन्त्री कर्म्म समाचरेत्।
ततः पूर्वोक्तवत्कृत्वा मन्त्रन्यासं षडङ्गकम् ॥१९५॥
गन्धपुष्पादिकैरग्निं सम्पूज्य स्थापयेत्ततः।
कृशानुमध्ये तत्राऽथ नागयज्ञोपवीतिनम् ॥१९६॥

लम्बोदरं भास्करं तं चैकदन्तं त्रिलोचनम्।
पद्मासनसमारूढं चतुर्बाहुं त्रिलोचनम् ॥१९७॥
किरीटहारकेयूराङ्गदालङ्कारभूषितम्।
एवं सञ्चिन्त्य मनसा समावाह्य गणेश्वरम् ॥१९८॥
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य जलेनाग्निं प्रसिच्य च।
षडर्णेन द्विठान्तेन जुहुयाच्च घृताहुतीः।
अष्टाधिकसहस्रं च ततः सिद्धो भवेन्मनुः ॥१९९॥
सहस्राष्टचतुर्थीषु पक्षयोरुभयोरपि।
शतं त्वपूपैर्जुहुयाद्वत्सराल्लभते धनम् ॥२००॥
मध्याह्नकाले नित्यं हि तदग्रे प्रजपेन्मनुम्।
सहस्रं त्रिशतं वाथ शतं वाष्टोत्तरं सुधीः।
अचिरेणैव महतीं लक्ष्मीं प्राप्नोत्ययत्नतः ॥२०१॥
प्रसन्नतात्र मनसः स्तुतिरन्येप्सिता तथा।
स्वापे वैमुख्यता चापि स्वप्ने द्विरददर्शनम्।
एतानि मन्त्रसिद्धेर्हि चिह्नान्युक्तानि मन्त्रिभिः ॥२०२॥

तदनन्तर मन्त्रवर्ण के अनुरूप छः लाख मन्त्रजप करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त पूर्वोक्त आठ द्रव्यों से यथाविधि जप का दशांश (साठ हजार) हवन करना चाहिये। आठ द्रव्य हैं—पीपल, गूलर, पाकड़ एवं वट की समिधा तथा तिल, सरसों, दूध एवं गाय का घी। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को काम्य कर्मों का सम्पादन करना चाहिये।

पूर्वाम्नायमार्ग से वक्रतुण्ड गणेश्वर का तर्पण करने के उपरान्त पूजनपीठ के आगे एक हाथ लम्बा-चौड़ा-गहरा चतुरस्र कुण्ड का निर्माण करने के बाद सांगोपांग वेदाध्ययन किये हुये ब्राह्मण के घर से अरणिमन्थन द्वारा प्रकट की गई अग्नि को लाकर तीन प्राणायाम करके मन्त्रज्ञ साधक को कर्मारम्भ करना चाहिये। तदनन्तर पूर्ववर्णित रीति से मन्त्रन्यास एवं षडङ्गन्यास करने के बाद गन्ध-पुष्पादि से अग्नि का पूजन करके उसका स्थापन करने के अनन्तर उस अग्नि के मध्य में सर्पों का यज्ञोपवीत धारण करने वाले, लम्बे पेट वाले, एक दाँत वाले, तीन नेत्रों एवं चार भुजाओं वाले, पद्मासन पर विराजमान, किरीट-हार-केयूर-अङ्गदादि अलंकारों से विभूषित एवं अतिशय दीप्यमान स्वरूप का मन ही मन चिन्तन करके गणेश का सम्यक् रूप से आवाहन करने के बाद गन्धादि से उनका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् जल से अग्नि का

सिञ्चन करके स्वाहान्त षडक्षर मन्त्र (वक्रतुण्डाय हुं स्वाहा) से एक हजार आठ बार घृत की आहुति प्रदान करते हुये हवन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। दोनों पक्ष की चतुर्थी तिथियों में भी एक हजार आठ बार घृताहुति देनी चाहिये।

प्रतिदिन एक सौ अपूपों (पूओं) से हवन करने पर एक वर्ष के भीतर साधक को धन की प्राप्ति होती है। प्रतिदिन मध्याह्न काल में वक्रतुण्ड गणेश के सामने बैठकर मन्त्र का एक हजार आठ, तीन सौ आठ अथवा एक सौ आठ बार जप करने से साधक को अतिशीघ्र अनायास ही बहुत धन की प्राप्ति होती है। साधक का मन प्रसन्न रहता है, स्तुति करने पर अन्य इच्छाएँ भी पूरी होती हैं। नींद कम हो जाती है, स्वप्न में हाथी का दर्शन होता है। ये सब निश्चय ही मन्त्रसिद्धि के लक्षण हैं।।१९२-२०२।।

पूर्वोक्तसिद्धौदनेन त्रिमासं त्रिशतं हुनेत्।
महानिधीनां भवनं भवेद्वैश्रवणोपमः ॥२०३॥
गुडाक्तैः पृथुकैर्नारिकेलैर्मरिचसंयुतैः।
अपूपैः क्षीरसंयुक्तैर्गणेशस्य च सन्निधौ।
अग्नौ सहस्रं जुहुयात्स मन्त्री धनवान् भवेत् ॥२०४॥
शुभशालिमयैः शूर्णैर्मरिचाद्यैः ससैन्धवैः।
सजीरकैर्बहुगुडैः शुभैरतिघृताप्लुतैः ॥२०५॥
अपूपैर्जुहुयान्मन्त्री गणेशस्य च सन्निधौ।
सहस्रमात्रं लभते महतीमचिराच्छ्रियम् ॥२०६॥
साध्यनामार्णपुटितमनुना जुहुयात्सुधीः।
अपामार्गसमिद्भिर्वा पक्वैः पनसजैः फलैः ॥२०७॥
सहस्रं कदलैर्वाथ नरं नारीं वशं नयेत्।

पूर्वोक्त सिद्ध ओदन (भात) से तीन महीने तक प्रतिदिन तीन सौ हवन करने वाला साधक महानिधियों का आगार होकर दूसरे कुबेर के समान हो जाता है।

गणेश की सन्निधि में गुड-मिश्रित चूड़ा, मरीच-संयुक्त नारियल एवं दुग्ध-मिश्रित अपूप से अग्नि में एक हजार हवन करने से मन्त्रज्ञ साधक धनवान हो जाता है। चावल, सूरण, मरिच में सेन्धा नमक एवं जीरा-मिश्रित प्रचुर गुड़ से बने पूओं को भरपूर घृत से सिक्त करके गणेश के समीप एक हजार हवन करने से शीघ्र ही प्रचुर धन की प्राप्ति होती है।

साध्य नामाक्षर से पुटित मन्त्र के द्वारा अपामार्ग की समिधा अथवा पके कटहल अथवा केला से एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने पर साधक नर-नारी को वशीभूत करने में समर्थ हो जाता है।।२०३-२०७।।

लाजकैर्जुहुयादग्नौ सहस्त्रं कन्यकाप्तये ।।२०८।।
सहस्त्रमाज्याहुतीनां हुनेत्क्षीराहुतीरपि ।
सहस्त्रं रोगशान्त्यर्थं मन्त्रशास्त्रविशारदः ।
सर्वाहुतीनां जुहुयाल्लक्षं मृत्युञ्जयो भवेत् ।।२०९।।
ब्रह्मवृक्षोत्थसमिधो मधुरत्रयलोलिताः ।
सहस्त्रं जुहुयान्मन्त्री मासाच्छत्रूञ्जयेद् ध्रुवम् ।।२१०।।
बिभीतकस्य समिधां सहस्त्रं साष्टकं निशि ।
लोहिताक्तं श्मशानाग्नौ जुहुयान्मारयेद्रिपुम् ।।२११।।
भूमौ शत्रुस्वरूपं च लिखित्वास्योदरेऽनलम् ।
प्रज्वाल्य सिद्धार्थवरैः सहस्त्रं जुहुयात्सुधीः ।
तं मारयेत्सप्तदिनैर्नात्र कार्य्या विचारणा ।।२१२।।

कन्या-प्राप्ति के लिये धान के लावा से हवन करना चाहिये। मन्त्रशास्त्र में पारंगत लोगों को रोग-शान्ति के लिये गोघृत अथवा दुग्ध से एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। उक्त समस्त हवनीय पदार्थों से एक लाख आहुति प्रदान करने वाला साधक मृत्युञ्जय हो जाता है अर्थात् मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। ब्रह्मवृक्ष अर्थात् पलाश की समिधाओं को मधुरत्रय (घी, मधु, गुड़) से सिक्त कर प्रतिदिन एक हजार हवन करने से साधक एक मास के भीतर निश्चय ही शत्रुओं को जीत लेता है। रक्त-सिक्त अथवा लाल रंग से रञ्जित बिभीतक की समिधा से श्मशानाग्नि में अर्धरात्रि में एक हजार आठ बार हवन करने से साधक शत्रुओं को मार ड़ालता है। भूतल पर शत्रु का चित्र बनाकर उसके पेट में अग्नि प्रज्वलित करके श्वेत सरसो से सात दिनों तक प्रतिदिन एक हज़ार आठ की संख्या में हवन करने पर साधक उस शत्रु को अवश्य ही मार ड़ालता है।।२०८-२१२।।

शोणमेघसमानाभं गणेशं निजशुण्डया ।
रिपुं गृहीत्वा वडवामुखे वह्नौ महोत्कटे ।।२१३।।
प्रक्षिपन्तं गणपतिं ध्यात्वामुं प्रजपेन्मनुम् ।
सहस्त्रं त्रिदिनेनासौ शत्रुमुच्चाटयेद् ध्रुवम् ।।२१४।।
समुद्रगां नदीं प्राप्य गृहीत्वाञ्जलिना जलम् ।
सहस्त्रकृत्वोऽभिमन्त्र्य परिषिञ्चेत्स्वमूर्धनि ।
अनेन विधिना मन्त्री पापौघं नाशयेद् ध्रुवम् ।।२१५।।
शनैश्चरदिनेऽश्वत्थमालम्ब्य त्रिसहस्त्रकम् ।
जपन्मनुं गणं ध्यायेद्दोषान् ग्रहभवान् हरेत् ।।२१६।।

वेतसोत्थसमिद्धोमात्सहस्त्रं वृष्टिमाप्नुयात् ।
धनार्थी जुहुयाद्धान्यैरन्नार्थ्यन्नैर्हुनेद् ध्रुवम् ॥२१७॥
कमलैरुत्पलैर्वापि होमो वस्त्रप्रदो मतः ।
क्षेत्राभिकांक्षी पललैर्गुडाभ्यक्तैर्हुनेत्सुधीः ॥११८॥

रक्त मेघ के समान आभा वाले गणेश अपने शुण्ड से शत्रु को पकड़कर अत्यन्त उत्कट शिवाग्नि में फेंक रहे हैं—इस प्रकार से गणपति का ध्यान करते हुये तीन दिनों तक प्रतिदिन इस मन्त्र का एक हजार जप करने से निश्चित रूप से शत्रु का उच्चाटन हो जाता है।

समुद्रगामिनी नदी में जाकर अंजली में उसके जल को ग्रहण करके इस मन्त्र के एक हजार जप से उसे अभिमन्त्रित कर अपनी मूर्धा पर अभिषेक करने से मन्त्रज्ञ साधक निश्चय ही समस्त पापों का नाश कर देता है। शनिवार के दिन पीपल वृक्ष का आश्रय ग्रहण करके इस मन्त्र का तीन हजार जप करते हुये गणेश का ध्यान करके साधक ग्रहों के कारण होने वाले दोषों को दूर कर देता है।

वेंत की समिधा से एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने पर वर्षा होती है। धन-प्राप्ति की कामना वाले को धान्य से और अन्न-प्राप्ति की कामना वाले को अन्न से हवन करना चाहिये। कमल या उत्पल से किया गया हवन वस्त्र-प्राप्ति कराने वाला कहा गया है। भूमि की कामना वाले को तिल-गुड़ के मिश्रण से हवन करना चाहिये।।२१३-२१८।।

तमर्चयित्वा गणपं हरिद्रां सैन्धवं वचाम् ।
निष्कार्धार्धप्रमाणेन सम्पिष्यैतानि नित्यशः ॥२१९॥
प्रसृत्युन्मितगोमूत्रे सहस्त्रेणाभिमन्त्रयेत् ।
स्नातामृतुस्नानदिने विशुद्धां रक्तवाससम् ।
पाययेत्तां च सा वन्ध्या प्रसूते वत्सरात्सुतम् ॥२२०॥
उपोष्य सोमग्रहणे भास्करग्रहणेऽथवा ।
कपिलाज्यं पलं चूर्णं वचायाश्च पलार्धकम् ॥२२१॥
एतत्सहस्त्रजपितं सहस्त्रं प्रपिबेत्सुधीः ।
अवाप्य मेधां महतीं कवितां लभते ध्रुवम् ॥२२२॥
गोचर्म्ममात्रं भूतेशं चोपलिप्यांशुकावृतम् ।
कृत्वात्र स्थापयेत्कुम्भं पूजितं चन्दनादिभिः ॥२२३॥
कुमारं वा कुमारीं वा दीपस्याग्रे निधाय च ।
जपेत्तन्मन्त्रप्रवरमष्टोत्तरसहस्त्रकम् ॥२२४॥

तेन स्पृष्टा कुमारी वा कुमारो वा ब्रवीति तत्।
मनोगतं हि सकलं भविष्यद् भूतमेव च।
वर्त्तमानं मनोरस्य प्रसादान्नात्र संशयः ॥२२५॥

गणेश का अर्चन करके एक निष्क हल्दी, आधा निष्क सेंधा नमक एवं चतुर्थांश वच को एकत्र करके सबको पीसकर एक प्रसृत गोमूत्र में मिलाकर मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करने के उपरान्त ऋतुस्नान के दिन स्नान करके लाल वस्त्र धारण कर वन्ध्या स्त्री यदि उस अवलेह का पान करती है तो वह एक वर्ष के भीतर पुत्र को जन्म देती है।

चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण में उपवास रहकर एक पल कपिला गाय के घृत में आधा पल वचाचूर्ण मिलाकर एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके उसका एक हजार बार पान करने से साधक अत्यन्त मेधावी हो जाता है और अवश्य ही कविता करने में समर्थ हो जाता है।

गोचर्म-मात्र प्रमाण वाले भूतेश (शिव) की प्रतिमा को उबटन लगाकर रेशमी वस्त्रों से आच्छादित कर चन्दनादि से पूजित कलश को स्थापित करके दीपक जलाकर उसके आगे कुमार अथवा कुमारी को बैठाकर इस मन्त्रराज का एक हजार आठ बार जप करने के उपरान्त उस कुमार या कुमारी का हाथ कलश पर रखवाकर उससे जो भी पूछा जाता है, उसका उत्तर साधक को प्राप्त होता है। इस मन्त्र की कृपा से भूत, वर्त्तमान एवं भविष्य की समस्त मनोगत बातें साधक को ज्ञात हो जाती हैं।

मन्त्रान्तरमथो वक्ष्ये वक्रतुण्डगणेशितुः।
मेघोल्काय तथा स्वाहा मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः।
भार्गवो मुनिरस्याणोरनुष्टुप्छन्द ईरितम् ॥२२६॥
वक्रतुण्डगणेशऽस्य देवता देववन्दितः।
मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि षड्भिः कुर्य्याद्यथा पुरा।
ध्यानपूजादिकं सर्वं मन्त्री पूर्ववदाचरेत् ॥२२७॥

वक्रतुण्ड गणेश का अन्य मन्त्र—अब मैं वक्रतुण्ड गणेश के दूसरे मन्त्र को कहता हूँ। यह षडक्षर मन्त्र है—मेघोल्काय स्वाहा। इसके ऋषि भार्गव, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता देववन्दित वक्रतुण्ड गणेश कहे गये हैं। पूर्ववत् मन्त्रवर्णों से इसका षडङ्ग न्यास कहा गया है। मन्त्रज्ञ साधक को इसका ध्यान-पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् ही करना चाहिये।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं द्वात्रिंशदर्णकम्।
रायस्पोषस्य दयिता निधिदो रत्नदो मतः ॥२२८॥

रक्षोघ्नो बलगहनोऽथाद्यश्च षडक्षरः।
ऋष्यादिकं पुरा प्रोक्तं ध्यानपूजादि पूर्ववत्।
जपेदर्कसहस्राणि जुहुयात्तद्दशांशतः ॥२२९॥
हविषा घृतसिक्तेन तदन्ते तोषयेद् गुरुम्।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री साधयेदिष्टमात्मनः ॥२३०॥
षडर्णप्रोक्तमन्त्रेण सर्वं काम्यं समाचरेत्।

अब मैं बत्तीस अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ रायस्पोषस्य दयिता निधिदो रत्नदो मतः। रक्षोघ्नो बलगहनो मेघोल्काय स्वाहा। इसके ऋषि-छन्द-देवता-ध्यान-पूजा आदि पूर्ववत् ही कहे गये हैं। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का बारह हजार जप एवं घृत-सिक्त हविष्य से जप का दशांश हवन करने के उपरान्त गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध मन्त्र के द्वारा साधक को अपने इष्ट का साधन करना चाहिये। षडक्षर मन्त्र में कथित समस्त काम्य कर्मों का भी इस मन्त्र द्वारा साधन करना चाहिये।२२८-२३०।।

अथास्य भेदं वक्ष्यामि मन्त्रमन्यं तथाविधम् ॥२३१॥
रायस्पोषस्य दयिता निधिदो रत्नदो नृमान्।
रक्षोघ्णो बलगहनो वक्रतुण्डाय हूमिति ॥२३२॥
सायकैस्त्रिभिरष्टाभिश्चतुर्भिः पञ्चभी रसैः।
मन्त्रार्णैः स्युः षडङ्गानि मुन्याद्याः पूर्ववन्मताः ॥२३३॥
प्राग्वत्प्रयोगो निधिदो विशेषेण मनुस्त्वयम्।

अब इस मन्त्र के इसी प्रकार के दूसरे भेद को कहता हूँ। मन्त्र है—रायस्पोषस्य दयिता निधिदो रत्नदो नृमान्। रक्षोघ्णो बलगहनो वक्रतुण्डाय हुम्। मन्त्र के पाँच, तीन, आठ, चार, पाँच एवं छः अक्षरों से इसका षड्ङ्गन्यास किया जाता है। इस मन्त्र के ऋषि आदि पूर्ववत् ही होते हैं एवं इसके प्रयोग भी पूर्ववत् ही किये जाते हैं। यह मन्त्र विशेष कर निधि प्रदान करने वाला कहा गया है।।२३१-२३३।।

वक्रतुण्डगायत्रीकथनम्

अथ वक्ष्ये वक्रतुण्डगायत्रीं गणपप्रियाम् ॥२३४॥
तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥२३५॥
आद्यन्तयोर्जपेदेनां सर्वमन्त्रप्रसिद्धये।
अष्टोत्तरशतं नित्यं पुरश्चरणकृन्नरः ॥२३६॥

अष्टाविंशतिसङ्ख्याकान् गणेशाननुदिनं जपेत्।
जपाद्यन्तेऽथाष्टसङ्ख्यानन्यजापी सुसिद्धये ॥२३७॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
पूर्वाम्नायगणपतिमन्त्रप्रकाशोऽष्टादशः॥१८॥



अब गणेश को अतिशय प्रिय वक्रतुण्डगायत्री को कहता हूँ। वह इस प्रकार है— तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्। पुरश्चरण करने वाले मनुष्य को समस्त मन्त्रों की सिद्धि के लिये उनके आदि और अन्त में प्रतिदिन इस गायत्री का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। सिद्धि-प्राप्ति के लिये प्रतिदिन गणेश मन्त्र का अट्ठाईस बार जप करना चाहिये और उस मन्त्रजप के पूर्व तथा पश्चात् इस गायत्री का आठ बार जप करना चाहिये।।२३४-२३७।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में
शिवप्रणीत 'पूर्वाम्नायगणपतिमन्त्रकथन' नामक
अष्टादश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।



एकोनविंशः प्रकाशः

(पश्चिमाम्नायगणपतिमन्त्रकथनम्)

पश्चिमाम्नायोक्तगणेशमन्त्राः

श्रीशिव उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पश्चिमाम्नायसिद्धिदान्।
नानाश्चर्य्यकरान् काशीसंस्थितान् गणनायकान्॥१॥
महागणपतेरंशाश्चतुःषष्टिविनायकाः।
एकैकान्ते गृहीत्वा तु योगिनीं चेटिकामपि॥२॥
स्वर्गभूमिं समासाद्य यावदन्तं गृहं मम।
अष्टावरणकैरष्टौ संस्थिताः सिद्धिदायकाः॥३॥
तत्राष्टौ काशिकाबाह्ये स्वर्गभूमौ समास्थिताः।
योजनैकं बहिष्काश्याः कीर्तितः परिधिस्तु सः॥४॥
गं विघ्नाय नमः प्रोक्तो मन्त्र एष षडक्षरः।
क्षिप्रप्रसादनसममष्टानां साधनं स्मृतम्॥५॥
वेदायुतं जपेन्मन्त्रं होमश्च घृतपायसैः।
प्रयोगाः पूर्ववच्चात्र क्षिप्रमेव च सिद्धयः॥६॥
गजानना योगिनी तु योगिनीरूपधारिणी।
नान्द्यर्णः सबिन्दुस्तन्नाममन्त्र इतीरितः॥७॥

पश्चिमाम्नायोक्त गणपति के मन्त्र—श्रीशिव ने कहा—अब मैं पश्चिमाम्नाय में सिद्धि प्रदान करने वाले, अनेक प्रकार के आश्चर्यों को करने वाले काशी में विराजमान गणेश्वरों को कहता हूँ। महागणपति के अंश से समुद्भूत चौंसठ विनायकों के साथ चौंसठ योगिनियाँ एवं उनकी दासियाँ भी स्वर्गभूमि को प्राप्त करके मेरे गृह-पर्यन्त आठ आवरणों में आठ-आठ की संख्या में विराजमान हैं, जो सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। उनमें से आठ काशी के बाहर स्वर्गभूमि में सम्यक् रूप से अवस्थित हैं, उस भूमि की परिधि काशी के बाहर एक योजन-पर्यन्त कही गई है।

इनका छः अक्षरों का मन्त्र 'गं विघ्नाय नमः' कहा गया है। इन आठों की साधना

क्षिप्रप्रसादन गणपति के समान कही गई है। इस मन्त्र का चालीस हजार जप करके घृत और खीर से हवन किया जाता है। इसके प्रयोग पूर्ववत् हैं और शीघ्र सिद्धिप्रद हैं। योगिनी-रूप धारण की हुई योगिनियाँ गजमुखी हैं और बिन्दु-सहित आठ अक्षरों वाला उनका नाममन्त्र कहा गया है।।१-७।।

प्रिया चैतस्य गदिता तत्सिद्धिं कथयाम्यथ।
ॐ शिवे शिवपत्नीति शं शिवे स्वकरेति च ।।८।।
पङ्कजं फलं देहीति मनोजवमिदं वदेत्।
चरणयोर्देहि देहि तुभ्यं नम इतीरितः।
षट्त्रिंशदक्षरो मन्त्रो ध्यानमस्या निरूप्यते ।।९।।
उद्यद्भानुसहस्राभां कमलासनपूजिताम्।
हस्ते मोहमयं पाशं दधानां प्रभजे शिवाम् ।।१०।।
जपेत्त्रिंशत्सहस्राणि शतपत्रीवनान्तरे।
कौसुम्भकुसुमैर्होमं तर्पणादि ततश्चरेत्।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री चेटिकां च प्रसाधयेत् ।।११।।
श्रावणे मासि चाष्टम्यां कृष्णपक्षे निशान्तरे।
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं तदा नादाञ्छृणोति च ।।१२।।
भीषयन्ति च भूतानि तदा चेद् दृढमानसः।
तदानेकसुरैर्युक्ता प्रत्यक्षाऽस्य शिवा भवेत् ।।१३।।
तुष्टा फलं ददात्येकं तेनासौ साधकोत्तमः।
दूरं याति क्षणेनैव मनसोऽप्यतिवेगवान् ।।१४।।
अदृश्यः सर्वलोकानामपि राजगृहान्तरे।
एवं क्षिप्रगणेशेन मोहिता बहवो जनाः ।।१५।।

इनकी जो प्रिया कही गई है, उसकी सिद्धि को अब मैं कहता हूँ। इसका छत्तीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ शिवे शिवपत्नि शं शिवे स्वकरपङ्कजं फलं देहि मनोजवं चरणर्योदेहि देहि तुभ्यं नमः। अब इसका ध्यान कहा जा रहा है।

उदीयमान हजारों सूर्यों के समान प्रकाशमान, कमल के आसन पर पूजित एवं हाथों में मोहमय पाश धारण करने वाली शिवा का मैं स्मरण करता हूँ।

शतपत्री के वन में बैठकर इस मन्त्र का तीस हजार जप करने के उपरान्त कौसुम्भपुष्प से हवन करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक को चेटिका का साधन करना चाहिये।

श्रावण मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को रात्रि में पूजा करके मन्त्र का जप करने पर जप के समय आवाज सुनायी देती है, जिससे कि समस्त प्राणी भयभीत हो जाते हैं। उस समय साधक यदि अपने मन को दृढ़ बनाकर जप करता रहता है तो अनेक देवताओं के साथ शिवा उसे प्रत्यक्ष दर्शन देती है और प्रसन्न होकर एक फल प्रदान करती है, जिससे साधकश्रेष्ठ क्षणमात्र में ही मन की गति से भी अधिक तीव्र गति से दूर जाने में समर्थ हो जाता है एवं राजमहल के भीतर भी सभी लोगों से अदृश्य रहने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार क्षिप्रगणेश के द्वारा बहुत लोग मोहित हो जाते हैं।।८-१५।।

विनायकाय हृदयं गं बीजाद्योऽष्टवर्णकः।
वर्णलक्षं पुरश्चर्य्या गणेशानां प्रकीर्त्तिता ॥१६॥
सर्वासां योगिनीनान्तु स्वबीजाद्या हृदन्तकाः।
नाममन्त्राः स्मृताः मन्त्रवर्णलक्षं पुरस्क्रिया ॥१७॥
गणेशस्य प्रभावेण सिद्धिः स्यात्पारलौकिकी।
योगिनीसेवनादत्र न विघ्नैः परिभूयते ॥१८॥
चेटिका प्रोक्तफलदा सर्वत्रैष विनिश्चयः।
सिंहास्या योगिनी चात्र जटिला विषधारिणी ॥१९॥

'गं विनायकाय नमः' यह अष्टाक्षर मन्त्र है। गणेशमन्त्र के पुरश्चरण में वर्णलक्ष मन्त्रजप कहा गया है; अतः आठ लाख जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है। सर्वप्रथम स्वकीय बीज, तदनन्तर तत्तत् योगिनियों का चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में 'नमः' लगाकर समस्त योगिनियों के नाममन्त्र बनते हैं, जिनका पुरश्चरण मन्त्र के वर्णलक्ष जप से सम्पन्न होता है। गणेश के प्रभाव से इन मन्त्रों से पारलौकिकी सिद्धि प्राप्त होती है। योगिनियों की आराधना से साधक विघ्नों से प्रभावित नहीं होता। यह निश्चित है कि चेटिका सर्वत्र फलप्रद होती है। उनमें से विष धारण करने वाली सिंहमुखी योगिनी जटिल (अगम्य) होती है।।१६-१९।।

अथ काम्या चेटिकाया मनुं विंशतिवर्णकम्।
ब्रवीमि वर्णद्वितयात् पातालतलवासिनीम् ॥२०॥
श्यामले श्रीं सिद्धिमिति देहि स्वाहेति चिन्तयेत्।
तालारण्यान्तरे स्वस्थां करतालीमनोरमाम् ॥२१॥
आलिभिः सहितां गीतकारिणीं श्यामलां भजे।
जपेदयुतसङ्ख्याकं शान्तात्मा तालकानने ॥२२॥

तद्दशांशेन जुहुयात्स तालीफलखण्डकैः।
कर्पूरागुरुयुक्तैश्च पूर्णं तत्त्रिः प्रदक्षिणम् ॥२३॥

काम्या चेटिका—अब काम्या चेटिका के बीस अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—'काम्ये पातालतलवासिनि श्यामले श्रीं सिद्धिं देहि स्वाहा।' ताड़वन के मध्य में प्रमुदित होकर हाथों से ताली बजाती हुई मनोहारी सखियों के सहित गान में रत श्यामला का मैं ध्यान करता हूँ—इस प्रकार ध्यान करके ताड़वन में शान्त मन से अवस्थित होकर मन्त्र का दश हजार की संख्या में जप करने के उपरान्त साधक को कपूर एवं अगुरु से समन्वित ताड़फल के टुकड़ों से जप का दशांश हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये।।२०-२३।।

कुर्य्यात्तालीवने तच्चाथैतन्मध्ये वनान्तरे।
ज्येष्ठामायां जपेद्रात्रौ सहस्रद्वितयं मनुम् ॥२४॥
अर्धरात्रे चरेद्धोमं पूर्णं तालफलेन च।
झञ्झामारुत आयाति प्रकाशोऽतीव जायते ॥२५॥
तन्मध्ये तु महादेवी श्यामा षोडशवार्षिकी।
नीलांशुकपरीधाना कस्तूरीचन्दनप्रिया ॥२६॥
तान्नमस्कृत्य विश्वेशीं तुष्टा भव वरानने।
इत्युक्त्वा मन्त्रिणे तुष्टा सा ददाति फलत्रयम् ॥२७॥
परमानसविज्ञानविद्यां जातिमनोरमाम्।
कन्दर्पवत्स्वरूपं च जगतीमोहनक्षमम् ॥२८॥

तदनन्तर ज्येष्ठ अमावास्या की रात्रि में तालवन के मध्य में ही मन्त्र का दो हजार जप करने के बाद अर्धरात्रि में सम्पूर्ण तालफल से हवन करने पर भयंकर आँधी आती है एवं अत्यन्त तीव्र प्रकाश होता है; साथ ही उसी समय अपने अंगों में कस्तूरी चन्दन का लेप लगायी हुई नीले रेशमी वस्त्र में लिपटी सोलह वर्षीया महादेवी श्यामा प्रत्यक्ष होती है। उस विश्वेशी को नमस्कार करके साधक द्वारा 'हे वरानने! आप प्रसन्न हों' ऐसा कहने पर प्रसन्न वह देवी मन्त्रज्ञ साधक को तीन फल प्रदान करती है। वह तीन फल इस प्रकार है—दूसरे के मन की बातों को जानने वाली जातिमनोरम विद्या, कामदेव के सदृश स्वरूप एवं संसार को मोहित करने का सामर्थ्य।।२४-२८।।

गं वीराय नमश्चेति प्रोक्तो मन्त्रः षडक्षरः।
योगिनी चास्य गृद्धा स्याद्वेषतः सा तपस्विनी ॥२९॥
तस्याश्चेटी तु बालोक्ता ह्येकोनत्रिंशदक्षरा।
ॐ पञ्चवार्षिकीत्युक्त्वा बाले वचनमाधुरीम् ॥३०॥

मम देहिद्वयान्ते तु हुरूणां हुरुयुग्मकम् ।
भुवनेशीद्वयं चेति ध्यानमस्या निरूप्यते ॥३१॥
गोरोचनाचर्च्चिताङ्गीं हेमगौरीं सुरार्चिताम् ।
चन्द्रावतंसां ललितवचनां नेत्रसुन्दरीम् ॥३२॥
गोमयेन समालिप्य शून्यगेहस्य भूमिकाम् ।
चन्दनेन समालिख्य तत्पश्चात्कुङ्कुमेन च ॥३३॥
तत्र दूर्वादलैः पूज्या बाला लक्षं जपेत्ततः ।
धत्तूरकुसुमैर्होमं सहस्रैकं समाचरेत् ॥३४॥
तद्बीजैः पूजनं कार्य्यं कौशेयवसनो यजेत् ।
काषायवस्त्रो नग्नो वा सिद्धमन्त्रः समाचरेत् ॥३५॥

गृद्धा योगिनी—षडक्षर मन्त्र 'गं वीराय नमः' की योगिनी तपस्विनी का वेष धारण की हुई गृद्धा है। इसकी चेटी बाला है, जिसका उन्तीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ पञ्चवार्षिकि बाले वचनमाधुरीं मम देहि देहि हुरूणां हुरु हुरु ह्रीं ह्रीं।

अब इसका ध्यान कहा जा रहा है। वह बाला अंगों में गोरोचन का लेप लगाई हुई, स्वर्ण-सदृश गौर वर्ण वाली, देवताओं द्वारा वन्दित, चूड़ा में चन्द्रमा को धारण की हुई, मधुर वचन बोलने वाली एवं सुन्दर नेत्रों वाली है।

तदनन्तर सूने घर की भूमि को गोबर से लीप कर चन्दन से उपलिप्त कर कुमकुम से मन्त्र लिखकर उस पर दूब से बाला का पूजन करके मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त धत्तूरपुष्पों से एक हजार हवन करना चाहिये। तदनन्तर कौशेय वस्त्र धारण करके साधक को बीजमन्त्र से उसका पूजन करना चाहिये। इसके बाद काषाय वस्त्र धारण कर अथवा नग्न होकर सिद्ध मन्त्र से प्रयोग करना चाहिये।।२९-३५।।

धत्तूरतैलेनाभ्यङ्गं पौर्णमास्यां विधूदये ।
पुष्पस्य तद् गृहे गत्वा नग्नो बालामनुं जपेत् ॥३६॥

पूर्णिमा को चन्द्रोदय होने पर सम्पूर्ण शरीर पर धत्तूर का तेल लगाकर उस रजोधर्मिणी के घर में जाकर नग्न होकर बालामन्त्र का जप करना चाहिये।।३६।।

ततो रात्रिप्रान्तभागे दूरतः पञ्चवार्षिकी ।
दृश्यते सा द्रुमारूढा धावंस्तत्सन्निधौ व्रजेत् ॥३७॥
सापि मोदप्रहृष्टा हि चुम्बत्याशु तदाननम् ।
तच्चुम्बनात्तस्य जिह्वा रससन्दोहिनी भवेत् ॥३८॥

तद्वार्तया याति मोहं राजा राज्येऽखिलो जनः।
व्याघ्रादिपशुजातीनां मोहनं तद्वचो भवेत् ॥३९॥
मुखं तस्य समालोक्य सर्वे मुह्यन्ति जन्तवः।

तत्पश्चात् रात्रि के अन्त में वृक्ष पर चढ़ी हुई पाँच वर्ष वाली वह देवी दूर से ही दिखाई देती है। उसे देखते ही साधक को दौड़ते हुये उसके पास जाना चाहिये। वह पञ्चवर्षीया देवी भी अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र ही उसके मुख को चूम लेती है। उसके चुम्बन के फलस्वरूप साधक की जिह्वा रसवर्षा करने वाली हो जाती है और उस साधक की वार्ता से राजा के साथ-साथ राज्य के सारे लोग मोहित हो जाते हैं। उसकी वाणी व्याघ्र आदि पशुओं को मोहित करने में समर्थ हो जाती है एवं उसके मुख को देखकर समस्त जन्तु मोहित हो जाते हैं।।३७-३९।।

गं सुराय नमश्चेति प्रोक्तो मन्त्रः षडक्षरः ॥४०॥
योगिनी काकतुण्डा स्यात्स्फुटाक्षी चेटिकेरिता।
विशालाक्षि गजान्तेति तिले देहियुगं वदेत् ॥४१॥
दारिद्र्यं दाहयेत्युक्त्वा ह्रीं स्फुटं हुं कलत्रकम्।
वह्नेर्मन्त्रः समाख्यातो नागनेत्रमिताक्षरः ॥४२॥
जम्बीरनारिकेलानां वने वाथ नदीतटे।
अथवा विजने रम्ये तादृग्वनविभूषिते ॥४३॥
अथवा कमलामोदभूषिते सुसरित्तटे।
लक्षमेकं जपित्वा तु होमं कुर्य्याद्दशांशतः ॥४४॥
नारिकेलैस्ततः सिद्धमन्त्रो मन्त्री समाचरेत्।

'गं सुराय नमः' यह षडक्षर मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र की योगिनी काकतुण्डा एवं चेटिका स्फुटाक्षी कही गई है। 'विशालाक्षि गजान्ता तिले देहि देहि दारिद्र्यं दाहय ह्रीं स्फुटं हुं कलत्रकम्' यह वह्नि का मन्त्र कहा गया है। जम्बीरी नीबू एवं नारियल के वन में अथवा नदी के तट पर अथवा उसी प्रकार के निर्जन, रम्य वन में अथवा कमल से युक्त सुन्दर तालाब के तट पर मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद नारियल से जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। तदनन्तर सिद्ध मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक को प्रयोग करना चाहिये।।४०-४४।।

माघे मासि तथाष्टम्यां कृष्णपक्षे विधौ निशि ॥४५॥
सहस्रं प्रजपेन्मन्त्रं वेतालाः खड्गपाणयः।
साधकं ते भीषयन्ति न भेतव्यं तदा क्वचित् ॥४६॥

वामहस्तासृजा तांश्च सिञ्चेत्ते यान्ति दूरतः ।
पुनर्जपे समारब्धे तदा कात्यायनी स्वयम् ।।४७।।
आयाति शवमुण्डानि चर्वयन्त्यतिभीषणा ।
वामजङ्घासृजा सिञ्चेत्ततः सापि प्रयाति च ।।४८।।
पुनर्जपे समारब्धे भैरवी याति भीषणा ।
गजमुण्डञ्चर्वयन्ती वमन्ती शोणितम्भुवि ।।४९।।
तया सह समायान्ति भीषणा भैरवास्तदा ।
सिञ्चेद्वै भैरवांस्तांश्च ततो भालोद्भवासृजा ।।५०।।
पुनः सहस्रजापान्ते नारिकेलत्रयं हुनेत् ।
तदा देवी समागत्य नारिकेलं प्रयच्छति ।
तस्मिन् स्थिते जगद्वश्यं जायते नगरेन्दिरा ।।५१।।

माघ मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को रात्रि में चन्द्रोदय होने पर मन्त्र का एक हजार जप करना चाहिये। जप के मध्य में हाथों में तलवार लिये वेताल साधक को भयभीत करते हैं; लेकिन साधक को उनसे भयभीत नहीं होना चाहिये; अपितु अपने बाँयें हाथ के रक्त द्वारा सिञ्चन करने पर वे दूर से ही भाग खड़े होते हैं। इसके बाद पुनः जप प्रारम्भ करने पर शवमुण्ड़ों को चबाती हुई अत्यन्त भयानक स्वरूप वाली कात्यायनी स्वयं आती हैं, तब अपनी बाँयीं जाँघ के रक्त से सिञ्चन करने पर वे भी वापस चली जाती हैं। पुनः जप का आरम्भ करने पर हस्तिमुण्ड़ को चबाती हुई एवं भूमि पर रक्त का वमन करती हुई भयानक भैरवी आती है और उसके साथ-साथ भीषण भैरव भी आते हैं। उस समय उन भैरवी-भैरव का अपने मस्तक से निःसृत रक्त से अभिषेक करना चाहिये।

तत्पश्चात् पुनः मन्त्र का एक हजार जप पूर्ण करने के बाद तीन नारियलों से हवन करना चाहिये। तब देवी स्वयं आकर साधक को नारियल प्रदान करती है। उस नारियल के रहने पर सारा संसार साधक के वशीभूत हो जाता है और वह लक्ष्मी का आगार हो जाता है।।४५-५१।।

गमुक्त्वा प्रवदेन्ङेऽन्तं वरदाक्षविनायकम् ।
हृदन्तो रुद्रवर्णोऽयं मन्त्रः प्रोक्तोऽस्य योगिनी ।।५२।।
उष्ट्रग्रीवाभिधा प्रोक्ता सैरन्ध्रीरूपधारिणी ।
वेदास्या हरितालाक्षी मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ।।५३।।
तारं ह्रीं हरितालाक्षि वदेद्रतिकलां ततः ।
दहयुग्मं वह्निजायां ध्यानमस्या निरूप्यते ।।५४।।

जपापुष्पंसहस्रौघद्योतमानां महेश्वरीम् ।
ध्यायेत्तां हरितालाक्षीं सिद्धिदां शं वितन्वतीम् ।।५५।।

वरदाक्षविनायक—'गं वरदाक्षविनायकाय नमः' इस बारह अक्षरों वाले वरदाक्ष विनायक मन्त्र की योगिनी सैरन्ध्री (अन्तःपुर में काम करने वाली दासी) का रूप धारण करने वाली उष्ट्रग्रीवा है। चार मुखों वाली इस योगिनी के नेत्र हरिताल के समान हैं। इसका सत्रह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ह्रीं हरितालाक्षि रतिकलां दह दह स्वाहा।

अब इसका ध्यान कहा जा रहा है। हजारों जपापुष्प के सदृश दीप्तिमान, सिद्धि प्रदान करने वाली एवं कल्याण की वर्षा करती हुई महेश्वरी हरितालाक्षी का ध्यान करना चाहिये।।५२-५५।।

मृगद्वितीयचरणप्रवेशे भवति ध्रुवम् ।
आदिमे दिवसे रात्रौ गत्वा वै निर्जने वने ।।५६।।
दिवसे च समानीय हरितालं मुखे स्वके ।
लेपयित्वा प्रथमतो जपेदयुतसङ्ख्यकम् ।।५७।।
घृतकर्पूरकाश्मीरैः कौसुम्भैर्होममाचरेत् ।
पूर्णं कुर्य्यात्कुलिङ्गेन हरितालरसस्पृशा ।।५८।।
ततो देवी समायाति ललिता हरितालिका ।
नानावाक्यैर्मोहयन्ती साधकस्तां न विश्वसेत् ।।५९।।
ततः प्रभातसमये मूलमन्त्रप्रभावतः ।
भगिनीं स्वां रतिकलां साधकाय प्रयच्छति ।।६०।।
वशीभूता रतिकला गृहीत्वा मन्त्रिणं ध्रुवम् ।
खेचरं कुर्वती सद्यो नयेद्देशे विचिन्तिते ।।६१।।
यक्षिणीभूतवेतालभैरवानतिभैरवान् ।
आनयति क्षणेनैव मन्त्रिणो वशमादरात् ।।६२।।
देवकिन्नरगन्धर्वविद्याधरपुरे नयेत् ।
आनयेच्च पुनर्भूमौ नाना वस्तु प्रदर्शयेत् ।।६३।।

मृगशिरा नक्षत्र के द्वितीय चरण में जिस दिन का आरम्भ हो, उस दिन रात्रि में निर्जन वन में जाकर दिन में हरताल लाकर अपने मुख में उसका लेप करके मन्त्र का दश हजार जप करने के उपरान्त घृत, कपूर, केसर और कौसुम्भपुष्प को मिश्रित कर उससे हवन सम्पन्न करके हरितालरस से संपृक्त गौरैया पक्षी की आहुति प्रदान करते हुये हवन की पूर्णाहुति करना चाहिये। ऐसा करने पर देवी ललिता हरितालिका सामने

आकर साधक को अनेक प्रकार के वचनों से मुग्ध करती है; लेकिन साधक को उसकी बातों पर विश्वास नहीं करना चाहिये।

तदनन्तर मूल मन्त्र के प्रभाववश वह देवी प्रातःकाल में अपनी बहिन रतिकला को साधक के पास भेजती है और साधक की वशीभूता वह रतिकला मन्त्रज्ञ को पकड़कर आकाशमार्ग से गमन करती हुई एक अनजाने देश में ले जाती है और आदर-पूर्वक क्षण भर में ही यक्षिणियों, भूतों, वेतालों, भैरवों एवं अतिभैरवों को साधक के वशीभूत कर देती है। तत्पश्चात् वह साधक को देव, गन्धर्व, किन्नर एवं विद्याधरी के नगर में ले जाती है और फिर साधक को भूमि पर लाकर नाना प्रकार के वस्तुओं को दिखलाती है।।५६-६३।।

गमुक्त्वा चेभवक्त्राय हृदन्तोऽयं गजाक्षरः।
योगिन्यस्य हयग्रीवा भवेन्मासोपवासिनी ।।६४।।
अस्यास्तु कुण्डली चेटी मन्त्रो विश्वमिताक्षरः।
ॐ कुण्डिनि नागवाहने फुर्फुर्वह्निगेहिनी ।।६५।।
महानागसमारूढामानिम्नस्फुटलोचनाम्।
दीप्यन्तीमन्धकारे च फूत्काराहतभूरुहाम् ।।६६।।
एकलिङ्गो महादेवो यत्र स्याद्बिल्वकानने।
तत्रेमं प्रजपेन्मन्त्रं लक्षहोमं समाचरेत्।
बिल्वमूलेन मन्त्रस्य तदा सिद्धिः प्रजायते ।।६७।।

'गं इभवक्त्राय नमः' आठ अक्षरों वाले इस गणपतिमन्त्र की योगिनी मास-पर्यन्त उपवास करने वाली हयग्रीवा कही गई है। इसकी दासी कुण्डली है, जिसका चौदह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ कुण्डिनि नागवाहने फुर्फुर स्वाहा। नीचे की ओर दृष्टि की हुई यह कुण्डली शेषनाग पर विराजमान होकर अन्धकार में भी प्रकाशमान है एवं अपने फुफकार से वृक्षों को आहत कर रही है। बेलों के जिस वन में एकलिङ्ग महादेव विराजमान हों, वहाँ पर इस मन्त्र का जप करने के उपरान्त बिल्व वृक्ष की जड़ से एक लाख हवन करने से मन्त्र की सिद्धि प्राप्त होती है।।६४-६७।।

रात्रौ शिवचतुर्दश्यामेकान्ते शिवमन्दिरे।
जपेत्सहस्रत्रितयं हुनेत्तस्य दशांशतः ।।६८।।
बिल्वमूलेन होमान्ते कुण्डो नाम महाफणी।
विस्तीर्णवदनो लम्बो दृश्यते युगविंशकः ।।६९।।
फणां प्रसार्य्य नागोऽसौ पुनस्तिष्ठति मन्त्रिणः।
पुरस्तात्तस्य निर्भीत्या स्थातव्यं तेन मन्त्रिणा ।।७०।।

फूत्काराणां सहस्राणि फणाभिः कुरुते ध्रुवम्।
तस्य वक्त्राच्छतं ज्वाला निस्सरन्ति पुनः पुनः ॥७१॥
तथा विषाणि बहुधा नीलपीतच्छवीनि च।
पललानि ततो धूमपत्रिणश्चापि शाखिनः ॥७२॥
एवंविधं महोत्पातं दृष्ट्वा नैव बिभेति चेत्।
तदा सा दृश्यते देवी तन्नागफणसंस्थिता ॥७३॥
तां स्तुयात्स्तुतिभिर्देवीं तोषिता सा ददाति च।
अमृतं तोलकमितं तेन स्यादजरामरः।
निधीन् पश्यति भूमिष्ठान् वाणी सत्या प्रजायते ॥७४॥

शिवचतुर्दशी की रात्रि में एकान्त स्थान पर स्थित शिवमन्दिर में मन्त्र का तीन हजार जप करने के उपरान्त बिल्वमूल से कृत जप का दशांश हवन करने पर अतीव लम्बे विशाल शरीर एवं चालीस मुखों वाला 'कुण्ड' नामक महानाग दिखायी पड़ता है, जो कि अपने फणों को फैलाकर साधक के सामने बैठ जाता है। साधक को उसके सामने निर्भय होकर बैठे रहना चाहिये। वह नाग अपने फणों से हजारों फुफकार करता है और उसके मुखों से बार-बार ज्वाला निकलती है; साथ ही उसके विष प्रायः नीले-पीले दिखाई देते हैं। उसके मुख से मांसों की वर्षा होती है एवं वृक्षों के पत्ते धूमाच्छादित हो जाते हैं। इस प्रकार के भयंकर उत्पातों को देखकर भी यदि साधक भयभीत नहीं होता तब उस नाग के फण पर विराजमान वह देवी दृष्टिगत होती है। विविध स्तुतियों द्वारा साधक को उस देवी की स्तुति करनी चाहिये, जिससे प्रसन्न होकर वह देवी साधक को एक तोला अमृत प्रदान करती है। उस अमृत के प्रभाव से साधक अजर-अमर हो जाता है, भूमि के नीचे विद्यमान खजाने को देखने लगता है एवं उसका वचन कभी भी असत्य नहीं होता।।६८-७४।।

गमेकदन्तं ङेऽन्तञ्च हृदयान्तो गजाक्षरः।
वाराही योगिनी जाता वेषाच्छूकरचारिणी।
अस्य देवस्य चेटी तु प्रोक्तात्र मधुवासिनी ॥७५॥
त्रयोदशाक्षरो मन्त्रः प्रणवो मधुवासिनी।
कामदेवीति चोच्चार्य्य क्लीं स्वाहेति मनुः स्मृतः ॥७६॥
स्तूयमाना च कामेन बिभ्रती स्वर्णपंकजम्।
ध्यायेन्नवरसां देवीं मृगाक्षीं ब्रह्मसौख्यदाम् ॥७७॥
मधुवृक्षतले स्थित्वा जपेल्लक्षमितम्मनुम्।
वासन्तीकुसुमैर्होमो मधुपुष्पैरथापि वा ॥७८॥

कर्पूरागुरुसम्मिश्रै: कुर्य्यादयुतसङ्ख्यया ।
मधुमासि सिताष्टम्यामेकान्ते निर्जने जपेत् ॥७९॥
मधुवृक्षतले नीरे गोदावर्य्यां विशेषत: ।
होम: प्राग्वत्सहस्रं स्याज्जपेन्नवसहस्रकम् ॥८०॥
मधुनेति तदा यक्षो ज्वालामालेति भीषण: ।
माहिषेण विषाणेन दक्षहस्तेन सम्पिबन् ॥८१॥
रक्तञ्च वामहस्तेन सुरां पिबति भीषण: ।
जिह्वयैव च यक्षो हि लतावृक्षादिगुल्मकान् ॥८२॥
उत्पाट्य चर्वन्घोरो हि भक्ष्यन् देहीति भाषते ।
न भयं प्राप्नुयात्तस्मान्मिथ्यात्रासादिभिस्तदा ॥८३॥
तस्मै रक्तं प्रदातव्यम्मन्त्रिणा स्वकरोद्भवम् ।
ततस्तस्मिन् गते यक्षे देवी वृक्षतले तदा ॥८४॥
प्रत्यक्षा जायते तस्मै दद्यात्पौष्पञ्च कार्मुकम् ।
वितस्तिमात्रं तेन स्यात्सर्वमोहनकारक: ॥८५॥
नवयौवनशालिन्य: कुङ्कुमारुणविग्रहा: ।
धनन्देहं प्रयच्छन्ति तस्मै कामविमोहिता: ॥८६॥

'गं एकदन्ताय नम:' इस आठ अक्षरों वाले मन्त्र की योगिनी शूकर-सदृश वेष वाली वाराही है, जिसकी चेटी मधुवासिनी कही गई है। इस मधुवासिनी का तेरह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ मधुवासिनि कामदेवि क्लीं स्वाहा। कामदेव द्वारा स्तुति की जाती हुई, स्वर्णकमल पर विराजमान, ब्रह्मसुख प्रदान करने वाली, मृगनयनी, नव रसस्वरूपा देवी का ध्यान करना चाहिये।

महुये के वृक्ष के नीचे बैठकर मन्त्र का एक लाख जप करके कपूर एवं अगुरु-मिश्रित वासन्ती पुष्पों अथवा महुये के पुष्पों से दस हजार आहुतियों द्वारा हवन करना चाहिये। चैत्र शुक्ल अष्टमी को एकान्त निर्जन स्थान पर महुये के वृक्ष के नीचे बैठकर अथवा विशेषकर गोदावरी नदी के जल में खड़े होकर मन्त्र का नव हजार जप करने के उपरान्त पूर्ववत् महुये के पुष्पों से एक हजार हवन करना चाहिये।

तब ज्वालामाला से घिरा हुआ, दाँयें हाथ से भैंसे के सींग से रक्त का एवं बाँयें हाथ से मदिरा का पान करता हुआ तथा लता-वृक्ष-गुल्म आदि को अपनी जिह्वा से ही उखाड़ कर चबाकर भक्षण करता हुआ भयंकर यक्ष 'दो' ऐसा बोलता है। उस समय साधक को उसके झूठे त्रास आदि से भयभीत नहीं होना चाहिये; अपितु उसे अपने हाथ

से नि:सृत रक्त प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर उस यक्ष के लुप्त हो जाने पर वृक्ष के नीचे देवी प्रत्यक्ष होती है और उस साधक को एक बीत्ता लम्बा फूलों का धनुष प्रदान करती है। वह धनुष सबको सम्मोहित करने वाला होता है। साथ ही साथ कुमकुम के समान लाल वर्ण वाली कामविह्वल नवयुवतियाँ उस साधक के लिये अपना शरीर एवं धन दोनों प्रदान करती हैं।।७५-८६।।

गञ्च लम्बोदरं ङेऽन्तं हृदयान्तोऽष्टवर्णकः।
योगिनी शरभास्यास्या ज्वालामालावपुर्धरा।
चेटी तु मन्थरा प्रोक्ता मन्त्रो जिनमिताक्षरः ॥८७॥
ॐ मन्थरे वदेत्पश्चाद्दिक्षु क्षितिनिवासिनि।
ममेष्टवरयुग्मञ्च तुं घं मं वह्निगेहिनीम् ॥८८॥
करे वहन्ती कोदण्डमैक्षवं लोललोचना।
जपाकुसुमशोणाङ्गी मम चित्तस्य मन्थरा ॥८९॥
इक्षुवाटीस्थले चैव गुडपाकस्थले तथा।
रसपञ्चसमीपे तु रचयित्वा शुभं स्थलम् ॥९०॥
लक्षमात्रम्पुरश्चर्य्या हीक्षुखण्डैश्च होमयेत्।

'गं लम्बोदराय नमः' इस अष्टाक्षर मन्त्र की योगिनी शरभ-सदृश मुख एवं ज्वालाओं से व्याप्त शरीर वाली शरभा तथा दासी मन्थरा कही गई है। मन्थरा का चौबीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ मन्थरे दिक्षु क्षितिनिवासिनि ममेष्ट वर वर तुं घं मं स्वाहा।

हाथों में ईक्षुधनुष को धारण की हुई चञ्चल नेत्रों वाली तथा जपापुष्प के सदृश रक्त वर्ण शरीर वाली मन्थरा मेरे चित्त को आलोडित करे—इस प्रकार से उसका ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् ईख के खेत में अथवा गुड़ बनाने के स्थान (कोलसार) पर अथवा पाँच रसों के समीप सुन्दर साधना-स्थल बनाकर पुरश्चरण-हेतु मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त ईख के टुकड़ों से हवन करना चाहिये।।८७-९०।।

मल्लारिषष्ठीरात्रौ तु जपेत्सोमे शतद्वयम् ॥९१॥
तद्दशांशैर्हुनेदिक्षुखण्डैरायाति मन्थरा।
ददाति मधुपात्रं हि दिव्यमाध्वीकमिश्रितम् ॥९२॥
तत्पूजयेत्त्रिसन्ध्यं हि तन्मुखान्मन्थरा वदेत्।
भाषया स्पष्टया दद्यात्पूजान्ते यन्मनोगतम् ॥९३॥
भूतञ्च वर्त्तमानञ्च भविष्यदपि तत्त्वतः।
स जानाति न सन्देहो मनोरस्य प्रभावतः ॥९४॥

यदा यदातिसङ्कष्टञ्जायते मन्त्रिणो ध्रुवम् ।
तदा तदा तु तां देवीं मधुपानैः प्रपूजयेत् ॥९५॥
सङ्कष्टं हरते तूर्णं विग्रहादौ प्रपूजयेत् ।
रसपञ्चसमीपे तु भूमिपूजां विशेषतः ॥९६॥
कुङ्कुमैश्चादिसिन्दूरै रक्तचन्दनवन्दनैः ॥९७॥
माध्यन्दिनीजपापुष्पकरवीरप्रसूनकैः ।
यावदालोहितं वस्तु तावद्भिः परिपूजयेत् ॥९८॥

तदनन्तर मल्लारिषष्ठी (श्रीकृष्णषष्ठी)-युत सोमवार की रात्रि में मन्त्र का दो सौ जप करके इक्षुखण्ड़ों से जप का दशांश हवन करने पर मन्थरा प्रत्यक्ष होकर साधक को दिव्य माध्वी मद्य से पूर्ण मधुपात्र प्रदान करती है।

तीनों सन्ध्याओं में उस मधुपात्र का पूजन करने पर उसके मुख से मन्थरा स्पष्ट भाषा में बोलती है एवं पूजन के अन्त में साधक को उसका अभीष्ट प्रदान करती है। इस मन्त्र के प्रभाव से साधक भूत, वर्तमान एवं भविष्य को तत्त्वत: जान लेता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

मन्त्रज्ञ साधक के समक्ष जब-जब भयंकर कष्ट की स्थिति उत्पन्न हो, तब-तब मधुपान द्वारा उस देवी की पूजा करने से वह देवी शीघ्र ही कष्ट का निवारण कर देती है। प्रतिमा आदि में भी देवी का पूजन करना चाहिये; विशेषकर रसपञ्च के समीप भूमि पर कुमकुम, सिन्दूर, रक्तचन्दन, मध्याह्न में होने वाले जपापुष्प, रक्त कनेरपुष्प एवं जितने भी रक्त वस्तु उपलब्ध हो सकें, उनसे पूजन करना चाहिये।।९१-९८।।

वक्ष्येऽथ कौलिकप्रोक्तान् स्थितानष्टौ विनायकान् ।
नमो भगवते पूर्वं ङेऽन्तन्तन्नाम चोच्चरेत् ॥९९॥
अष्टानामपि मन्त्रोऽयमैन्द्र्यां सिद्धिविनायकः ।
उलूकी योगिनी तत्र नापितीरूपधारिणी ॥१००॥
विधिस्तत्र समाख्यातो ह्यणिमाद्यष्टसिद्धयः ।
साधको यां सिद्धिमिच्छेत्तद्युक्ताय पदं वदेत् ॥१०१॥
मन्त्रमध्ये वर्णलक्षं जपेद्धोमं समाचरेत् ।
महागणपवत्सर्वं ततस्तां सिद्धिमाप्नुयात् ॥१०२॥

कौलिकों के अष्टविनायक—अब कौलिकों के लिये कहे गये आठ विनायकों को कहता हूँ। इन आठो विनायकों का मन्त्र 'ॐ नमो भगवते' के बाद चतुर्थ्यन्त विनायकनाम जोड़ने पर बनता है। काशी के पूर्व दिशा में सिद्धिविनायक का पूजन

करना चाहिये। इसकी योगिनी उलूकी है, जो कि नापिती (नाइन) का रूप धारण किये रहती है।

इसकी विधि यह है कि अणिमादि अष्टसिद्धियों में से साधक जिसे सिद्ध करना चाहता हो, उसका नाम मन्त्र के मध्य में जोड़कर मन्त्र का वर्णलक्ष जप करने के पश्चात् महागणपति के समान होम आदि करना चाहिये। ऐसा करने से साधक को सिद्धि प्राप्त हो जाती है।।९९-१०२।।

काश्यामाग्नेयदिग्भागे विज्ञेयोऽर्कविनायकः।
योगिनी च शिवा ह्येषा मूर्त्तिकारूपधारिणी ।।१०३।।
हंसावागस्य चेटी स्यान्मन्त्रः स्याद्द्वादशाक्षरः।
ॐहंसगेंबोधमिति वाक्छ्रीबीजाग्निवल्लभाः ।।१०४।।
शतचन्द्रसमज्योत्स्नां चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
वरदाभयहस्तां च संसेवे हंसगामिनीम् ।।१०५।।
सहस्राणां तु पञ्चाशत्पुरश्चरणमस्य तु।
अयुतार्धन्ततो होमं पद्माक्षैराज्यसंयुतैः ।।१०६।।
कुर्य्याद्धोमं यवैस्तद्वत्पद्मयुक्तसरित्तटे।
हिरण्यकशिपुप्राणनाशकालतिथौ ध्रुवम् ।।१०७।।
सन्ध्यामारभ्य जप्तव्यं प्रहरत्रितयावधि।
भूर्ज्जपत्रैश्च होतव्यं पद्माक्षैः खखखाष्टकम् ।।१०८।।
ततो हंससमारूढा शतचन्द्रसमप्रभा।
सा देवी मन्त्रिणे तस्मै पद्ममालां प्रयच्छति ।।१०९।।
तन्मालाजपतो मन्त्री जायते शास्त्रपारगः।
अज्ञानाच्चेत्सगर्वोऽपि जायते सत्त्वमस्य तु।

अर्कविनायक—काशी की आग्नेय दिशा में अर्कविनायक का स्थान जानना चाहिये। कामदेव का स्वरूप धारण करने वाली शिवा इसकी योगिनी है। इसकी दासी हंसवाक् है, जिसका द्वादशाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—ॐ हंसगें बोधं वाक् ऐं श्रीं स्वाहा। सैकड़ों चन्द्रमा के समान प्रकाशित, शीर्ष पर अर्धचन्द्र को धारण करने वाली तथा हाथों में वर एवं अभय धारण करने वाली हंसगामिनी की मैं आराधना करता हूँ—इस प्रकार इसका ध्यान करना चाहिये। पचास हजार मन्त्रजप से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है। जप के पश्चात् गोघृत-सिक्त कमलगट्टे से पाँच हजार हवन करना चाहिये। इसी प्रकार नृसिंहचतुर्दशी को कमलयुक्त तालाब के तट पर यवों से भी हवन करना चाहिये।

सन्ध्याकाल से आरम्भ कर तीन प्रहर रात्रि व्यतीत होने तक मन्त्र का जप करने के अनन्तर आज्यसिक्त भोजपत्र एवं कमलगट्टे से आठ हजार की संख्या में हवन करना चाहिये। हवन के अन्त में हंस पर सवार सैकड़ों चन्द्रमा के सदृश कान्ति से समन्वित देवी उस मन्त्रज्ञ साधक के पास आकर उसे कमलगट्टे की माला प्रदान करती है। उस माला से जप करके साधक शास्त्रों में पारङ्गत हो जाता है। अज्ञानता के कारण अभिमानी होने पर भी वह सत्त्वयुक्त हो जाता है।।१०३-१०९।।

दुर्गया स्थापितः काश्या याम्ये दुर्गविनायकः ॥११०॥
मायूरी योगिनी तत्र लोकानामौषधप्रदा।
ॐह्रीन्दुमुक्त्वा दुर्गायै हृदयान्तोऽष्टवर्णकः ॥१११॥
मुनिः प्रोक्तो नारदाख्यो गायत्री छन्द ईरितम्।
दुर्गा देवी यया दुर्गवधार्थं सेवितो गणः ॥११२॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य दीर्घषट्कसमन्वितम्।
क्रमादाद्यन्तयोर्मायां दुर्गायै चेति मध्यतः ॥११३॥
पल्लवाद्याः षडङ्गानि चेति मन्त्राः प्रकीर्तिताः ॥११४॥
सिंहासीनां मरकतद्युतिं चन्द्रार्धशेखराम्।
शङ्खचक्रधनुर्बाणान्दधतीं त्रीक्षणां भजे ॥११५॥

दुर्गविनायक—काशी की दक्षिण दिशा में दुर्गा द्वारा स्थापित दुर्गविनायक हैं। वहाँ पर लोकों को औषध प्रदान करने वाली मायूरी योगिनी विराजमान है, जिसका आठ अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः। इसके ऋषि नारद, छन्द गायत्री एवं देवता दुर्गा हैं, जिन्होंने महाविपत्तियों के नाश-हेतु गजानन की आराधना की थी। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रैं कवचाय हुम्, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रः अस्त्राय फट्।

षडङ्गन्यास के उपरान्त इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—सिंह पर सवार, मरकत (पन्ना) के सदृश कान्तिमान, शीर्ष पर अर्धचन्द्र धारण की हुई, हाथों में शंख चक्र धनुष एवं बाण धारण की हुई, तीन नेत्रों वाली देवी की मैं आराधना करता हूँ।।११०-११५।।

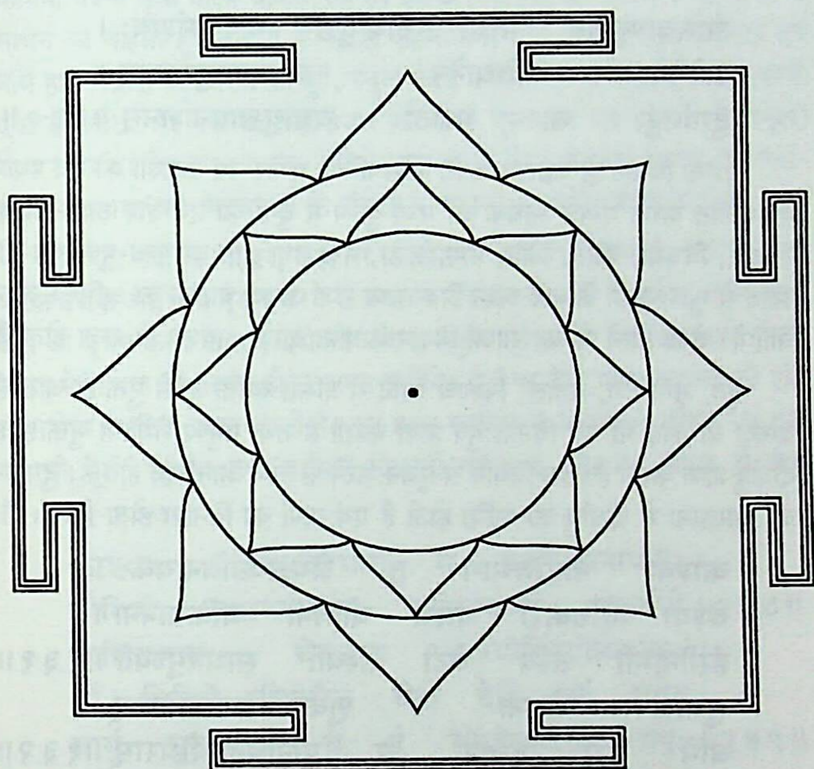
अष्टपत्राम्बुजद्वन्द्वे चतुरस्रत्रयावृते।
चतुर्द्वारसमायुक्ते कुङ्कुमादिभिरुद्धृते।
कुर्य्यात् स्वपीठपूजायां तत्र शक्तिसमर्चनम् ॥११६॥

प्रभा समा जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी तथा।
सुप्रभा विजया पूर्वदलात् सर्वार्थसिद्धिदा ॥११७॥
एवं वह्निसरक्लीबहीनैरद्भिः प्रपूजयेत्।
ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय प्रोक्त्वा महापदम् ॥११८॥
सिंहाय हुं फट् हृदयमूनविंशतिवर्णकः।
सिंहमन्त्रः समाख्यातस्तेन सिंहं प्रपूजयेत् ॥११९॥
मूर्तिमावाह्य तस्यां तु पूजयेच्चन्दनादिभिः।
प्रथमावृत्तिरङ्गैः स्याद् द्वितीया तु प्रभादिभिः ॥१२०॥
सबिन्दुनाद्यवर्णेन जयादीनान्तु नामभिः।
ङेऽन्तैर्नमोऽन्तैस्तृतीयावरणं परिकीर्तितम् ॥१२१॥
जया च विजया कीर्तिः प्रीतिश्चापि प्रभा मता।
श्रद्धा मेधा श्रुतिश्चापि चतुर्थावरणं क्रमात् ॥१२२॥
शङ्खं चक्रं गदां खड्गं पाशाङ्कुशशरान् धनुः।
बाह्यवीथीद्वये लोकपालानस्त्राणि च क्रमात् ॥१२३॥
जितेन्द्रियो हविष्याशी वसुलक्षं जपेन्मनुम्।
तत्सहस्रं तिलैः स्वादुलोलितैर्वा पयोऽन्धसा ॥१२४॥
जुहुयादेधिते वह्नौ तर्पणादि ततश्चरेत्।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगानाचरेत्सुधीः ॥१२५॥

कुमकुम आदि के द्वारा चार द्वारों से समन्वित तीन चतुरस्र-युक्त दो अष्टदल कमल बनाकर सर्वप्रथम पीठपूजन करने के पश्चात् वहीं पर पूर्वादि क्रम से प्रभा, समा, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा एवं विजया—इन आठ सर्वार्थसिद्धि प्रदान करने वाली पीठशक्तियों का पूजन वह्नि सर तथा क्लीब से रहित जल से करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः' इस उन्नीस अक्षरों वाले सिंहमन्त्र से सिंह का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् यन्त्र के मध्य बिन्दु में देवी का आवाहन करके चन्दनादि षोडशोपचार से पूजन करना चाहिये। इसके बाद प्रथम आवरण में षडङ्ग-पूजन करने के अनन्तर द्वितीय आवरण में प्रथम अष्टदल में पूर्वोक्त प्रभा आदि शक्तियों का पूजन उनके नाम के प्रथम वर्ण को बिन्दुयुक्त करके चतुर्थ्यन्त नाम के बाद नमः लगाकर इस प्रकार करना चाहिये—पं प्रभायै नमः, सं समायै नमः, जं जयायै नमः, सूं सूक्ष्मायै नमः, विं विशुद्धायै नमः, नं नन्दिन्यै नमः, सुं सुप्रभायै नमः, विं विजयायै नमः। तत्पश्चात्

तृतीय आवरण में दूसरे अष्टदल में जया, विजया, कीर्ति, प्रीति, प्रभा, श्रद्धा, मेधा एवं श्रुति का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—जं जयायै नमः, विं विजयायै नमः, कीं कीर्त्यै नमः, प्रीं प्रीत्यै नमः, प्रं प्रभायै नमः, श्रं श्रद्धायै नमः, में मेधायै नमः, श्रुं श्रुत्यै नमः। चतुर्थ आवरण में क्रमशः शंख, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, अंकुश, शर एवं धनुष का पूजन करना चाहिये। इसके बाद बाहर की दो वीथियों में इन्द्रादि दश दिक्पालों एवं उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये।



तदनन्तर जितेन्द्रिय साधक को मात्र हविष्य का भक्षण करके मन्त्र का आठ लाख जप करने के उपरान्त प्रज्वलित अग्नि में त्रिमधु-सिक्त तिल अथवा दूध-भात से आठ हजार हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को प्रयोगों का साधन करना चाहिये।।११६-१२५।।

यथोक्तेन विधानेन नवकुम्भान् मनोरमान्।
पञ्चरत्नसमायुक्तान्नवस्थानेषु विन्यसेत्।।१२६।।

मन्त्री दुर्गां यजेन्मध्येष्वन्यत्र च जयादिकाः ।
चन्दनाद्यैः समभ्यर्च्य धूपदीपैश्च मन्त्रवित् ॥१२७॥
अभिषिञ्चेत्प्रियं साध्यं राजानं वा शिशुं बुधः ।
विजयश्रीसमायुक्तो राजा भवति नान्यथा ॥१२८॥
भूतापस्मारवेतालपिशाचाद्यैर्वियुज्यते ।
वन्ध्या च ललना पुत्रं विनीतं प्राप्नुयाच्छुभम् ॥१२९॥
आमयान्मुच्यते मर्त्यो दीर्घायुश्च न संशयः ।
अनेनैव विधानेन जनानामनुरञ्जनम् ।
दुर्गामनुं च भजतां बह्वायुश्चाघनाशनम् ॥१३०॥

यथोक्त विधान से पञ्चरत्न आदि से समन्वित सुन्दर नव कलशों को नव स्थानों में स्थापित करके मन्त्रज्ञ साधक को मध्य कुम्भ में दुर्गा का एवं शेष आठ कलशों में जया, विजया, कीर्ति, प्रीति, प्रभा, श्रद्धा, मेधा तथा श्रुति का गन्ध-पुष्प-धूप-दीप आदि से पूजन करने के बाद अपने प्रिय साध्य राजा अथवा बालक का अभिषेक करना चाहिये। ऐसा करने से वह साध्य विजयश्री प्राप्त करके अवश्य ही राजा होता है।

भूत, मृगी रोग, वेताल, पिशाच आदि से ग्रसित व्यक्ति उनसे मुक्त हो जाता है; वन्ध्या या कोई भी स्त्री विनीत पुत्र प्राप्त करती है तथा मनुष्य रोगों से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त करता है। इस विधान से पूजन करने से लोग आनन्दित होते हैं। दुर्गामन्त्र की आराधना से दीर्घायु की प्राप्ति होती है एवं पापों का विनाश होता है।

काश्या नैर्ऋत्यभागे तु ज्ञेयश्चण्डविनायकः ।
वेश्या वृत्तिकरी चास्य योगिनी चकितानना ।
हंसीनाम्नी तस्य चेटी तस्याः साधनमुच्यते ॥१३१॥
सुधाकरसमज्योत्स्नां शुकशोभितसत्कराम् ।
वामे हंसं दधानां च पीनोन्नतपयोधराम् ॥१३२॥
एकान्ते च नदीतीरे जपेन्मन्वयुतत्रयम् ।
मुस्तकन्दैः सहोशीरैर्दशांशं होममाचरेत् ॥१३३॥
एवं सिद्धप्रयोगस्तु नदीतीरे च कानने ।
गहने बिल्ववृक्षाणामेकान्तेऽप्यथवा सुधीः ॥१३४॥
तुङ्गभद्रानदीतीरे यत्र लक्ष्मीश्वरः शिवः ।
तत्र स्नात्वा तटे तस्या ह्यङ्गाद्यां च दिने यजेत् ।
भानोवरि निशि हुनेत्प्राग्वद्देवीं तथा यजेत् ॥१३५॥

नत्वा स्तुत्वा प्रार्थयित्वा निर्भयो जनवर्जिते।
ददाति मन्त्रिणे शीघ्रं स्फटिकाख्यं मनोहरम् ॥१३६॥
तस्मिन् पश्यति भूतं च भविष्यद्वर्त्तमानकम्।
तथा स्वस्य परस्यापि सर्वज्ञो जायते नरः ॥१३७॥

चण्डविनायक—काशी की नैर्ऋत्य दिशा में चण्डविनायक स्थापित हैं, जिनकी योगिनी वेश्या वृत्ति वाली चकितानना है। इसकी चेटी का नाम हंसी है। उस हंसी के साधन को कहता हूँ। चन्द्रमा के सदृश कान्तिमान, दाँयें हाथ में शुक (तोता) एवं बाँयें हाथ में हंस को धारण की हुई, स्थूल उन्नत पयोधरों वाली देवी का ध्यान करके एकान्त नदीतट पर मन्त्र का तीस हजार जप करके मुस्तकन्द एवं उशीर (वीरणमूल) से जप का दशांश हवन करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध मन्त्र से साधक को नदी-तट पर अथवा घने बिल्ववृक्षों के जंगल में एकान्त में प्रयोग करना चाहिये।

तुङ्गभद्रा नदी के किनारे, जहाँ पर लक्ष्मीश्वर शिव विराजमान हैं, दिन में स्नान करके उसके अङ्गों का पूजन करने के उपरान्त रविवार की रात्रि में पूर्ववत् हवन करके देवी का पूजन करने के बाद देवी को प्रणाम, स्तुति एवं प्रार्थना निवेदित करके निर्जन स्थान में साधक को निर्भय होकर जाना चाहिये। वहाँ पर देवी मन्त्रज्ञ साधक को शीघ्र ही मनोहर स्फटिक प्रदान करती है। उस प्रदत्त स्फटिक में साधक को अपना एवं दूसरे का भी भूत, भविष्य तथा वर्तमान दिखायी पड़ता है और वह सर्वज्ञ हो जाता है।।१३१-१३७।।

काश्याः पश्चिमदिग्भागे स देहलिविनायकः।
योगिनी त्वष्टवक्त्रास्य वणिक्कर्म्म प्रकुर्वती ॥१३८॥
विचित्रानाम चेट्यस्य त्रयोविंशतिवर्णकः।
ह्रीं विचित्रे चित्रचैले चैलं देहि पदं वदेत्।
वायुं पूरययुग्मं च हुं स्वाहेत्युदितो मनुः ॥१३९॥
अयुतं प्रजपेत्तीरे सरितस्तद्दशांशतः।
कमलाक्षैर्भवेद्धोमस्तत्तत्काम्यं समाचरेत् ॥१४०॥
चैत्रे चाश्विनमासे च चतुर्दश्यां निशान्तरे।
सरस्तीरे जपेन्मन्त्रं समस्तां रात्रिमन्ततः ॥१४१॥
ततो देवी समायाति विचित्रं वसनाञ्चलम्।
ददाति तत्पूजयित्वा रात्रौ संस्थापयेद् गृहे।
तद्गृहं पूर्य्यते वस्त्रै राजमन्दिरगैरपि ॥१४२॥

देहलीविनायक—काशी के पश्चिम भाग में देहलीविनायक का स्थान है। इनकी योगिनी अष्टवक्त्रा है, जो वणिक् कर्म करती है। इसकी चेटी का नाम विचित्रा है, जिसका तेईस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं विचित्रे चित्रचैले चैलं देहि वायुं पूरय पूरय हुं स्वाहा। इस मन्त्र का नदी के तट पर दस हजार जप करने के बाद जप का दशांश कमलाक्ष से हवन करने के पश्चात् काम्य कर्मों का सम्पादन करना चाहिये।

चैत्र और अश्विन मास की चतुर्दशी को तालाब के तट पर बैठकर प्रातःकाल से आरम्भ कर रात्रि की समाप्ति तक मन्त्र का जप करने पर देवी साधक के समक्ष प्रत्यक्ष होकर उसे विचित्र वस्त्राञ्चल प्रदान करती है। साधक द्वारा रात्रि में उसका पूजन करके घर में स्थापित करने पर उसका घर राजमहल के वस्त्रों से भर जाता है।

काश्या वायव्यकोणेऽयमुद्दण्डाख्यो विनायकः।
योगिनी कोटराक्ष्यस्य चेटी स्याद्दधिदुग्धदा ॥१४३॥
केशमुच्चार्य्य चावर्त्तनखरेहिपदं ततः।
ह्रीं श्रीं स्वाहेति मन्त्रोऽथ तस्य ध्यानमिहोच्यते ॥१४४॥
स्वच्छतोयैश्च सम्पूर्णं वामे धत्ते कमण्डलुम्।
स्वर्णकुण्डलक्षिप्ताढ्यगण्डान्तं विधिपूर्वकम् ॥१४५॥
जपेल्लक्षमितं मन्त्रं नदीतीरे मनोरमे।
होमयेच्च त्रिमधुरैः प्रयोगं तत आचरेत् ॥१४६॥
कृष्णातीरे महातीर्थेऽथवा पञ्चनदे शुभे।
माघमासे द्वितीयायां कृष्णपक्षे निशान्तरे ॥१४७॥
कृत्वा तृणकुशूलं तु निक्षिपेत्तत्स्थलान्तरे।
कृत्वा सायन्तनं कर्म कुशूलं पूजयेत्ततः ॥१४८॥
तत्र देवीं स्मरन्मन्त्री कुशूलान्तर्विशेद् ध्रुवम्।
तत्र बद्धासनो योगी शीतबाधामुपेक्ष्य हि ॥१४९॥
जपेत्पञ्चसहस्त्रं तु देवतां विधिपूर्वकम्।
पञ्चवक्त्रां त्रिनेत्रां च पश्येदष्टभुजां शिवाम् ॥१५०॥
ततः सा देवता तस्मै ददाति च कमण्डलुम्।
जलपूर्णं ततस्तस्मै जलेनासेचयेत्सुतम् ॥१५१॥
स नरस्तत्क्षणादेव सप्तजन्मसमुद्भवाम्।
जातिं वदति तत्कालं तत्तत्कर्म करोति च ॥१५२॥

उद्दण्डविनायक—काशी के वायव्य कोण में उद्दण्डविनायक का स्थान है,

जिनकी योगिनी कोटराक्षी और चेटी दधिदुग्धदा है। इसका मन्त्र इस प्रकार है—केशावर्त्तनखरेहि ह्रीं श्रीं स्वाहा। अब इसका ध्यान कहता हूँ। यह बाँयें हाथ में स्वच्छ जल से परिपूर्ण कमण्डलु लिये रहती है एवं इसके कपोल लटकते स्वर्णकुण्डलों से शोभायमान रहते हैं। मनोरम नदी-तट पर बैठकर इसके मन्त्र का एक लाख जप करके घी, मधु एवं गुड़ से हवन करने के उपरान्त प्रयोग करना चाहिये।

कृष्णा नदीतट के महातीर्थ में अथवा पंचनद के तट पर माघ मास के कृष्णपक्ष की द्वितीया तिथि को मध्यरात्रि में घास का कुशूल बनाकर उसे जमीन में दबाने के बाद सन्ध्या-वन्दन करके उस कुशूल का पूजन करके देवी का स्मरण करने पर देवी उस कुशूल में प्रविष्ट हो जाती हैं। तदनन्तर साधक को वहाँ पर शीतबाधा की उपेक्षा करके आसन लगा कर विधिपूर्वक मन्त्र का पाँच हजार जप करना चाहिये। ऐसा करने पर पाँच मुख, तीन नेत्र एवं आठ भुजाओं वाली शिवा उसके समक्ष प्रत्यक्ष होकर उसे एक जल से भरा कमण्डलु प्रदान करती है। कमण्डलु के उस जल से साधक को अपने पुत्र का अभिषेक करना चाहिये। ऐसा करने पर वह मनुष्य (साधकपुत्र) अपने पिछले सात जन्मों की बातों को बतलाता है और उसी क्षण आवश्यक कार्यों को करने लगता है।।१४३-१५२।।

काश्यामुत्तरभागे तु पाशपाणिर्विनायकः।
योगिन्यस्य भवेत्कुब्जा व्यालग्राहा स्वरूपतः ।।१५३।।
यदा न महिषं शक्ता घातितुं विन्ध्यवासिनी।
वज्रस्तदा कृतोऽनेन महिषो येन घातितः।
तस्मान्महिषमर्द्दिन्या मन्त्रं वक्ष्ये समासतः ।।१५४।।
महिषमर्दिनीत्युक्त्वा स्वाहान्तोऽष्टाक्षरो मनुः।
मार्कण्डेयो मुनिश्छन्दो गायत्रं दैवतं मनोः।
सुरासुरनुता देवी प्रोक्ता महिषमर्द्दिनी ।।१५५।।
महिषमर्दिनि हुं फट् हृदयं परिकीर्त्तितम्।
महिषारीशानि हुं फट् शिरोगं समुदीरितम्।
मन्त्रैरेभिर्जातियुक्तैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ।।१५६।।

पाशपाणि विनायक—काशी के उत्तर भाग में पाशपाणि विनायक का स्थान है, जिनकी योगिनी सर्प एवं मकर के स्वरूप वाली कुब्जा कही गई है। विन्ध्यवासिनी जब महिषासुर का वध करने में समर्थ नहीं हो सकीं तब इसी के द्वारा वज्र का निर्माण किया गया था, जिससे महिषासुर का वध हुआ था; इसलिये संक्षेप में महिषमर्दिनी

के मन्त्र को कहता हूँ। महिषमर्दिनी का अष्टाक्षर मन्त्र है—महिषमर्दिनी स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि मार्कण्डेय, छन्द गायत्री एवं देवता सुरासुर-नमस्कृता देवी महिषमर्दिनी कही गई हैं। इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—महिषमर्दिनी हुं फट् हृदयाय नमः, महिषारीशानी हुं फट् शिरसे स्वाहा, महिषमर्दिनी हुं फट् शिखायै वषट्, महिषारीशानी हुं फट् कवचाय हुम्, महिषमर्दिनी हुं फट् अस्त्राय फट्।

गारुडोपलदीप्तिं च मणिमौक्तिककुण्डलाम्।
तिष्ठन्तीं माहिषे शीर्षे नौमि भालविलोचनाम्॥१५७॥
चक्रं शङ्खं कृपाणं च बाणं शूलं च तर्जनीम्।
कार्मुकं खेटकं हस्तैर्बिभ्रतीं शशिशेखराम्॥१५८॥
जटामुकुटशोभाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम्।
पीताम्बरधरां देवीं पीनोन्नतकुचद्वयाम्॥१५९॥

पन्ना रत्न-सदृश कान्ति से समन्वित, मणि-मुक्ता-जटित कुण्डल धारण की हुई, भैंसे के शीर्ष पर विराजमान, ललाट में नेत्र वाली, हाथों में चक्र शंख कृपाण बाण शूल तर्जनी धनुष एवं मूसल धारण की हुई, जटा एवं मुकुट से शोभायमान, समस्त आभूषणों से अलंकृत, स्थूल उन्नत दो स्तनों वाली एवं पीत वस्त्रधारिणी देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।।१५७-१५९।।

ततः पूर्वोदिते पीठे यजेन्महिषमर्द्दिनीम्।
प्रथमावृत्तिरङ्गैः स्याद् दुर्गाद्याभिः परेरिता॥१६०॥
स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन दुर्गा च वरवर्णिनी।
आर्य्या च कनकाख्या तु कृत्तिका चाभयप्रदा॥१६१॥
कन्यास्वरूपा आंईऊंदिंघों द्विस्वरपूर्विकाः।
क्लीबान्तरहितं चात्र ग्राह्यं दीर्घस्वराष्टकम्॥१६२॥
परादिकं प्रथमतः सबिन्दुं वर्णमुच्चरेत्।
ततो देव्यायुधं प्रोच्य तृतीयावरणे यजेत्॥१६३॥
चतुर्थी लोकपालैः स्यात्पञ्चमी च तदायुधैः।
प्रजपेद्वसुलक्षं च तत्सहस्रं तिलैर्हुनेत्॥१६४॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः।

इस प्रकार ध्यान करने के बाद पूर्वकथित पीठ पर देवी महिषमर्दिनी का षोडशोपचार से पूजन करने के उपरान्त प्रथम आवरण में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् द्वितीय आवरण में अष्टदल में अपने आगे से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणक्रम से

दुर्गा, वरवर्णिनी, आर्या, कनका, कृत्तिका, अभयप्रदा, कन्यास्वरूपा एवं आंईऊंदिंघों कानपुसक स्वर-विरहित आं अं, ईं ई, ऊं उं, ऐं एं, औं ओं—इन दो-दो स्वरों से संयुक्त कर (आं अं दुर्गायै नमः, ईं इं वरवर्णिन्यै नमः, ऊं उं आर्यायै नमः इत्यादि मन्त्रों से) पूजन करना चाहिये। तृतीय आवरण में देवी के चक्रादि आयुधों का पूजन प्रथमतः उनके नाम के प्रथम वर्ण का बिन्दु-सहित उच्चारण कर चतुर्थ्यन्त नाम के बाद नमः लगाकर दूसरे अष्टदल में इस प्रकार करना चाहिये—चं चक्राय नमः, शं शंखाय नमः, कृं कृपाणाय नमः, बां बाणाय नमः, शूं शूलाय नमः, तं तर्जन्यै नमः, कां कार्मुकाय नमः, खें खेटकाय नमः। तदनन्तर चतुर्थ आवरण में लोकपालों का एवं पञ्चम आवरण में उन लोकपालों के आयुधों का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर उक्त मन्त्र का आठ लाख जप पूर्ण करने के पश्चात् तिलों से आठ हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने के उपरान्त मन्त्रज्ञ साधक को प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।१६०-१६४।।

तिलहोमाद्वशीकारो नृणां स्त्रीणां भवेद् ध्रुवम् ।।१६५।।
आमयान्मुच्यते मर्त्यः सद्यः सर्षपहोमतः ।
पद्महोमात्तथा राज्ञः संग्रामे विजयो भवेत् ।।१६६।।
दूर्वाहोमेन मर्त्यानां रोगशान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।
ब्रह्मवृक्षोत्थकुसुमैर्लभते पुष्टिमुत्तमाम् ।।१६७।।
धान्यहोमेन धान्यानि काकपक्षहुतेन च ।
विद्वेषो जायते लोके चात्यन्तसुहृदोरपि ।
शत्रुर्गच्छति पञ्चत्वं सत्यं मरिचहोमतः ।।१६८।।
एवं यो भजते देवीं दुर्गां महिषमर्दिनीम् ।
स नाशयेत् क्षुद्रभूतांश्चौरादीन् दर्शनादपि ।
उपासितोपासितातिनिकटे द्रुतसिद्धिदा ।।१६९।।

तिल से हवन करने पर स्त्री-पुरुषों का निश्चित वशीकरण होता है। सरसों से हवन करने पर मनुष्य रोगों से मुक्त होता है। कमल से हवन करने पर राजा की युद्ध में विजय होती है। दूब के हवन से निश्चित रूप से मनुष्यों में प्रसरित रोगों की शान्ति होती है अर्थात् मनुष्य रोगरहित होते हैं। ब्रह्मवृक्ष (पलाश) के पुष्पों द्वारा हवन करने पर उत्तम पुष्टि की प्राप्ति होती है एवं धान्य के हवन से धान्य प्राप्त होते हैं। कौवे के पंखों द्वारा हवन करने पर इस संसार में वर्तमान अत्यन्त घनिष्ठ मित्रों में भी विद्वेष (शत्रुता) हो जाता है एवं मरिच के हवन से शत्रु पञ्चत्व (मृत्यु) को प्राप्त हो जाता है।

जो साधक इस प्रकार से देवी महिषमर्दिनी दुर्गा की आराधना करता है, वह अपनी दृष्टिमात्र से ही क्षुद्र भूतों एवं चोरों का नाश कर देता है। उपासित के निकट उपासना करने से यह देवी शीघ्र सिद्धि प्रदान करती है।।१६५-१६९।।

काश्यामीशानदिग्भागे ज्ञेयः खर्ववविनायकः।
दासीरूपं समास्थाय स्थिता विकटलोचना।
योगिनी जयदुर्गा च सिद्धिदा तत्र संस्थिता ।।१७०।।
तारो दुर्गे द्वयं प्रोच्य रक्षिणीत्यग्निगेहिनी।
दशाक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतामिष्टसिद्धिदः ।।१७१।।
नारदर्षिर्विराट् छन्दो जयदुर्गा च देवता।
ताराद्यैः पञ्च मन्त्रस्य पदैः सर्वेण सम्मता।
जातियुक्ता चाङ्गक्लृप्तिः काम्यकर्म्म ह्यथोच्यते ।।१७२।।
दुर्गेति हृदयं प्रोक्तं दुर्गा च शिर ईरितम्।
दुर्गायै स्याच्छिखा वर्म्म भूतरक्षाक्षि कीर्तितम् ।।१७३।।
तारादिदुर्गद्वितयं रक्षिण्यक्षि प्रकीर्त्तितम्।
तारादियुगलं दुर्गे रक्षिण्यस्त्रमुदीरितम्।
मेघश्यामां ग्लौकिरीटां त्रिनेत्रां सिंहवाहिनीम् ।।१७४।।
चक्रं दरं खड्गशूलौ बाहुभिर्बिभ्रतीं भजे।
दौर्गे पीठे यजेद्देवीमुक्तमार्गेण मन्त्रवित्।
प्रजपेत्पञ्चलक्षं च तद्दशांशं हुनेद् घृतैः ।।१७५।।
तर्पणादि ततः कुर्य्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः।
ततः सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगानाचरेत्ततः ।।१७६।।

खर्वविनायक—काशी के ईशान कोण में खर्वविनायक प्रतिष्ठित हैं। उनकी योगिनी विकटलोचना जयदुर्गा दासीरूप में वहाँ पर विराजमान रहती है। जयदुर्गा का मन्त्र है—ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा। यह दशाक्षर मन्त्र जप करने मात्र से ही इष्टसिद्धि प्रदान करने वाला कहा गया है। इसके ऋषि नारद, छन्द विराट् एवं देवता जयदुर्गा कही गई हैं। इसका पञ्चाङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ हृदयाय नमः, दुर्गे शिरसे स्वाहा, दुर्गे शिखायै वषट्, रक्षिणि कवचाय हुं, स्वाहा अस्त्राय फट्।

अब काम्य कर्मों में किये जाने वाले न्यास को कहता हूँ। वह इस प्रकार कहा गया है—ॐ दुर्गे हृदयाय नमः, ॐ दुर्गे शिरसे स्वाहा, ॐ दुर्गायै शिखायै वषट्, ॐ भूतरक्षाक्षि कवचाय हुं, ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिण्यक्षि नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि अस्त्राय फट्।

इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—मेघ के समान श्याम वर्ण वाली, मुकुट में चन्द्रमा को धारण करने वाली, तीन नेत्रों वाली, सिंहरूपी सवारी वाली तथा हाथों में चक्र गदा खड्ग एवं शूल धारण करने वाली देवी का मैं ध्यान करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक को पूर्वोक्त विधि से दुर्गापीठ पर देवी का पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का पाँच लाख जप और उसके बाद घृत से जप का दशांश हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। अनन्तर सिद्ध मन्त्र से साधक को प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

इमं मनुं जपेद्भूयः प्रविशेच्छत्रुसङ्गरम्।
अशेषेण रिपुं हन्यान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥१७७॥
विवादे व्यवहारादौ यशोविजयदो भवेत्।
अनया विद्यया जप्तं पताकाध्वजदुन्दुभिः ॥१७८॥
शृङ्गं शङ्खादिकं सर्वं यानं सेना च सैन्यपः।
सम्मुह्येत्स च संग्रामे लभते विजयं खलु ॥१७९॥

इस मन्त्र का जप करने के बाद शत्रु के साथ युद्ध में प्रवेश करने पर मनुष्य समस्त शत्रुओं का निश्चित रूप से संहार कर देता है। विवाद, व्यवहार आदि में यह मन्त्र यश एवं विजय प्रदान करने वाला होता है।

इस विद्या का जप करके मनुष्य पताका, ध्वज, दुन्दुभि, शृङ्ग, शंख आदि के सहित सम्पूर्ण यान, सेना एवं सेनापति को भी सम्मोहित करने में समर्थ हो जाता है तथा युद्ध में निश्चित विजय प्राप्त करता है।।१७७-१७९।।

अथास्याः प्रोच्यते भेदो यदा घोरस्थले पतेत्।
ऋणं वा जायते तारान्नम उक्त्वा च पूर्ववत् ॥१८०॥
द्वादशार्णो भवेन्मन्त्रः संग्रामविजयप्रदः।
मुन्याद्यं पूर्ववत्प्रोक्तं ध्यानपूजादिकं तथा ॥१८१॥
व्यस्तेन च समस्तेन मन्त्रेणाङ्गानि षट् क्रमात्।
काशीप्रान्तस्थिता एते कीर्तिता गणनायकाः ॥१८२॥

अब इस मन्त्र के दूसरे भेद को कहता हूँ। मनुष्य यदि कभी भयंकर विपत्ति में पड़ जाय अथवा कर्ज में डूब जाय, उस स्थिति में उक्त मन्त्र के पूर्व 'ॐ नमः' को जोड़कर 'ॐ नमः दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' इस द्वादशाक्षर मन्त्र का जप करना चाहिये। यह द्वादशाक्षर मन्त्र संग्राम में विजय प्रदान करने वाला होता है।

इसके ऋषि, ध्यान, पूजन आदि पूर्ववत् ही कहे गये हैं। मन्त्र के व्यस्त एवं

समस्त रूप से क्रमशः षडङ्गन्यास करना चाहिये। ये सभी गणपति काशी में स्थित कहे गये हैं।।१८०-१८२।।

देहलीसञ्ज्ञगणपनिकटेऽन्ये तु षोडश।
विनायकास्तु काश्यां वै वेदकर्म्मप्रवर्त्तकाः ।।१८३।।
तान्त्रिकाणां नात्र सिद्धिर्वामिनां तु विशेषतः।
वेदस्त्वनादिस्तस्यात्र द्रुतं सिद्धिः प्रजायते ।।१८४।।
अभक्तविघ्नकर्ता च भक्तानां विजयप्रदः।
पापिनां पापहर्ता च वाममार्गप्रसाधकः ।।१८५।।
तपोवनपरित्राता सीतारक्षाकरस्तथा।
आयुष्कर्त्ता रोगहर्त्ता निधिदाता द्विजाधिपः ।।१८६।।
तुन्दिलो विश्वरक्षाकृद् गणनाथो गणाधिपः।
दुग्धदश्चेति नामानि सर्वसिद्धिकराणि च ।।१८७।।
हृदन्तानि प्रजप्तानि मन्त्रार्णायुतसङ्ख्यया।
नामानुसारिणी सिद्धिरवश्यं स्यान्न संशयः ।।१८८।।

काशी में देहलीविनायक के निकट अन्य सोलह विनायक विराजमान हैं, जो वैदिक कर्मों के प्रवर्तक हैं। तान्त्रिकों को यहाँ सिद्धि नहीं मिलती, विशेषकर वाममार्गियों को तो कथमपि सिद्धि नहीं मिलती। वेदों के अनादि होने के कारण वैदिकों को यहाँ शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। गणेश के अभक्तविघ्नकर्ता, भक्तविजयप्रद, पापिपापहर्ता, वाममार्गप्रसाधक, तपोवनपरित्राता, सीतारक्षाकर, आयुष्कर्ता, रोगहर्ता, निधिदाता, द्विजाधिप, तुन्दिल, विश्वरक्षाकृत्, गणनाथ, गणाधिप, दुग्धद—ये सभी नाम समस्त प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले हैं। नमः से अन्त होने वाले नाममन्त्रों का प्रति मन्त्रवर्ण पर दस हजार की संख्या के हिसाब से जप करने पर जिस विनायक का जप किया जाता है, उसके नाम के अनुरूप सिद्धि प्राप्त होती है; इसमें कोई संशय नहीं है।।१८३-१८८।।

अष्टसीमाविनायकमन्त्राः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि येऽविमुक्तान्तसंस्थिताः।
सीमाविनायका अष्टौ मन्त्रस्तेषां निरूप्यते ।।१८९।।
धराबीजं समुच्चार्य तद्बीजञ्च समुच्चरेत्।
ङेऽन्तं तन्नामगं प्रोच्य हृदयान्तो मनुः स्मृतः ।।१९०।।
अविमुक्ते पूर्वदिशि लम्बोदरविनायकः।
शुष्कोदरी योगिनी तु धात्रीरूपं समाश्रिता ।।१९१।।

तत्रैव शूलिनी दुर्गा तस्याः साधनमुच्यते।
ज्वलद्वयं शूलिनीति वदेद् दुष्टग्रहे ततः ॥१९२॥
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रोऽयं तिथिवर्णः प्रकीर्त्तितः।
मुनिर्दीर्घतमाश्छन्दः ककुबुक्तं च देवता ॥१९३॥
शूलिन्याह्वा महादुर्गा सर्वारिष्टविनाशिनी।
दुर्गे स्याद्धृदयं शीर्षं वरदे विन्ध्यवासिनी ॥१९४॥
शिखा वर्म्मासुरान्ते च दमन्यन्ते ततो वदेत्।
युद्धं प्रियं वदेत्पश्चात्त्रासय रूपमीरितम् ॥१९५॥
अस्त्रं च देवसिद्धान्ते वदेन्मन्त्री सुपूजिते।
नन्दिन्यन्तरे रक्षयुग्मं समस्तयोगेश्वरीति च।
शूलिनीति पदाद्याश्च वर्म्मास्त्रान्ताः प्रकीर्त्तिताः ॥१९६॥
पञ्चाङ्गमन्त्रमुद्दिष्टमेवं न्यस्तं च मन्त्रिणः।
रक्षाकृद् ग्रहदोषघ्नभङ्गकर्तुर्भवेद् ध्रुवम्।
एवं न्यस्य शरीरादौ ध्यायेद् दुर्गां सुरैर्नुताम् ॥१९७॥

आठ सीमाविनायकों के मन्त्र—अब मैं आठ सीमाविनायकों के मन्त्रों को कहता हूँ, जो अविमुक्त क्षेत्र (काशी) के अन्त में विराजमान हैं। धराबीज (ग्लौं) का उच्चारण करने के बाद उसके बीज (सानुस्वार नाम का पहला अक्षर) का उच्चारण करके चतुर्थ्यन्त नाम बोलकर 'नमः' लगाने से इनके मन्त्रों का उद्धार होता है।

अविमुक्त काशी की पूर्व दिशा में लम्बोदर विनायक विराजमान हैं, जिनकी योगिनी शुष्कोदरी है, जो धात्री का रूप धारण कर विराजमान है। वहीं पर शूलिनी दुर्गा का वास है; इनके साधन को मैं कहता हूँ। 'ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्टग्रहे हुं फट् स्वाहा'—यह पन्द्रह अक्षरों का इनका मन्त्र कहा गया है। इसके ऋषि दीर्घतमा, छन्द ककुप् एवं देवता समस्त अरिष्टों का नाश करने वाली महादुर्गा शूलिनी कही गई हैं।

शूलिनि दुर्गे हुं फट् हृदयाय नमः, शूलिनि वरदे हुं फट् शिरसे स्वाहा, शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् शिखायै वषट्, शूलिनि असुरदमनि युद्धप्रियं त्रासय हुं फट् कवचाय हुं, शूलिनि देवसिद्धसुपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि हुं फट् अस्त्राय फट्—इस प्रकार इसका पञ्चाङ्ग न्यास कहा गया है। यह पञ्चाङ्गन्यास निश्चित रूप से अपने कर्त्ता की रक्षा करने वाला एवं उसके ग्रहजनित दोषों का नाश करने वाला होता है। इस प्रकार से शरीर आदि में न्यास करने के पश्चात् देवताओं द्वारा स्तुत दुर्गा का ध्यान करना चाहिये।।१८९-१९७।।

गदां दरमरिं खड्गबाणाञ्छूलं च खेटकम्।
करालिकां पाशधनुर्दिग्भिर्हस्तैश्च बिभ्रतीम् ॥१९८॥
मेघाभामिन्दुमुकुटां सिंहारूढां चतसृभिः।
कन्यकाभिः परिवृतां त्र्यक्षां भूषणभूषिताम् ॥१९९॥
एवं ध्यात्वा पुनर्न्यासान् कृत्वा कुर्वीत साधकः।
दुर्गापीठे पुरा प्रोक्ते ध्यात्वा देवीं प्रपूजयेत् ॥२००॥
दुर्गाद्याभिर्द्वितीया स्यादायुधाद्यैः समन्ततः।
दुर्गा च वरदा विन्ध्यवासिन्यसुरमर्द्दिनी ॥२०१॥
प्रोक्ता युद्धप्रिया देवसिद्धाद्या पूजितापि च।
नन्दिनी सुमहायोगेश्वरीति गदिताश्च ताः ॥२०२॥
चक्रं शङ्खं खड्गगदे शराँश्चापं त्रिशूलकम्।
पाशं देव्यग्रतश्चैतान् पूजयेच्च प्रदक्षिणम् ॥२०३॥
दिशादिनाथैर्वज्राद्यैः पञ्चावरणपूजितम्।
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ॥२०४॥
आज्येन साज्यहविषा तर्प्पणादि ततश्चरेत्।
आराध्य विप्रान् विधिवद्भक्त्याऽभ्यर्च्य गुरुं ततः ॥२०५॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान्निजवाञ्छितान्।
विदधीत विधानेन गुरोराज्ञापुरःसरम् ॥२०६॥

अपने दस हाथों में गदा, शंख, चक्र, खड्ग, बाण, शूल, खेटक, करालिका, पाश एवं धनुष धारण की हुई, श्याम वर्ण वाली, मुकुट में चन्द्रमा को धारण की हुई, सिंह पर सवार, चार कन्याओं से घिरी हुई, तीन आँखों वाली तथा समस्त आभूषणों से भूषित—इस प्रकार का ध्यान करने के उपरान्त पुनः पूर्ववत् न्यास करने के बाद साधक को पूर्वोक्त दुर्गापीठ पर देवी का ध्यान करके पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर प्रथम आवरण में अङ्गपूजन करने के उपरान्त द्वितीय आवरण में अष्टदल में दुर्गा, वरदा, विन्ध्यवासिनी, असुरदमनी, युद्धप्रिया, देवसिद्धा, नन्दिनी, महायोगेश्वरी का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् तृतीय आवरण में द्वितीय अष्टदल में देवी के अग्रभाग से आरम्भ कर प्रदक्षिणक्रम से चक्र, शङ्ख, खड्ग, गदा, बाण, धनुष, त्रिशूल, पाश का पूजन करने के बाद चतुर्थ आवरण में इन्द्रादि दश दिक्पालों का एवं पञ्चम आवरण में लोकपालों के वज्रादि दश आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पाँच आवरणों में इनका पूजन सम्पन्न होता है।

सविधि पूजन करने के पश्चात् वर्णलक्ष मन्त्र का जप एवं जप का दशांश हवन आज्य और आज्यसहित हविष्य से करके तर्पण आदि करना चाहिये। इसके बाद विप्रों की विधिवत् आराधना करने के पश्चात् अपने गुरु का भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक को विधिपूर्वक अपने गुरु से आज्ञा प्राप्त करके आकांक्षित प्रयोगों का साधन करना चाहिये।।१९८-२०६।।

शूलाद्यायुधसंयुक्तामुग्रास्यां शूलिनीं तथा।
विचिन्त्य प्रजपेन्मन्त्रं यस्तं स्पृष्ट्वा विधानतः ॥२०७॥
तमाविश्य क्षणं सर्वं वदेत्पश्चाद्विनश्यति।
मन्त्रावृत्त्या तदानीं च भूतसङ्घः पलायते ॥२०८॥
स्मृत्वा च रोगिणां मध्ये शूलिनीं स्वायुधैर्युताम्।
जपतो विद्रवन्त्याशु ग्रहाश्चोपग्रहादयः ॥२०९॥
क्षेमङ्करीं पूजयित्वा मनुमेनं जपेत्सुधीः।
परायुधानि गृह्णाति सेना निश्चेष्टिता भवेत् ॥२१०॥

शूलादि आयुधों से संयुक्त उग्रमुखी शूलिनी का ध्यान करके जिसका स्पर्श करके साधक विधिपूर्वक मन्त्र का जप करता है, उस व्यक्ति में आविष्ट होकर देवी एक क्षण में ही सबकुछ कहकर विलुप्त हो जाती है। उस समय मन्त्रजप करने से भूतगण भाग जाते हैं।

अपने आयुधों से युक्त शूलिनी का स्मरण करके रोगियों के मध्य में बैठकर मन्त्रजप करने से अशुभ ग्रह, उपग्रह आदि तत्काल भाग जाते हैं। क्षेमङ्करी का पूजन करके इस मन्त्र का जप करने वाला साधक शत्रु के अस्त्रों को हस्तगत कर लेता है एवं शत्रुसेना निश्चेष्ट हो जाती है।।२०७-२१०।।

तिलयुक्तैः सर्षपैश्च वैरिनामसुसंयुतैः।
लक्षं प्रजुहुयाच्छत्रुर्यमस्यातिथ्यमाप्नुयात् ॥२११॥
त्रिस्वादुयुक्तिलैरष्टसहस्रं प्रत्यहं हुनेत्।
शक्तिरस्याप्रतिहता वत्सरात् प्राग्भवेदलम् ॥२१२॥
घृतेनाष्टशतं मन्त्री हुत्वा वाञ्छितमाप्नुयात्।
वत्सरात्प्राग्दूर्वया च मधुरत्रययुक्तया।
सम्यगष्टोत्तरशतं हुत्वेप्सितमुपव्रजेत् ॥२१३॥
अष्टोत्तरशतं मन्त्री गुलिकां गोमयस्य च।
जुहुयात्सप्तदिवसैरिष्टैः सङ्गस्तदादरात् ॥२१४॥

मन्त्र के साथ शत्रु का नाम जोड़कर तिल और सरसों से एक लाख हवन करने पर शत्रु यमराज का अतिथि हो जाता है। त्रिमधु-सिक्त तिलों से प्रतिदिन आठ हजार हवन करने पर एक वर्ष के अन्दर साधक को अप्रतिहत शक्ति प्राप्त हो जाती है। घृत से आठ सौ हवन करके साधक आकांक्षित वस्तु को प्राप्त कर लेता है। प्रतिदिन त्रिमधु-सिक्त दूब से एक सौ आठ बार हवन करके साधक एक वर्ष के अन्दर अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। सात दिनों तक एक सौ आठ गोबर की गुलिका (गोली) से हवन करने पर साधक का इष्ट व्यक्ति आदरपूर्वक उसके पास आ जाता है।

अस्पृष्टभूम्यन्तरिक्षे गृहीत्वा गोमयं शुभम्।
त्रिसहस्रमितं जप्तं यियासोर्द्वारि सङ्खनेत् ॥२१५॥
तस्य संस्तम्भनं तत्र भवने नात्र संशयः।
सेनामुखे निखातं च सेनास्तम्भं करोत्यलम् ॥२१६॥
ग्रामं वा नगरं गच्छेत् संस्मरेदम्बिंकां सुधीः।
पानीयान्नकरां चैव प्रसन्नां प्रजपेन्मनुम् ॥२१७॥
तर्पयित्वा प्रविष्टस्तं प्राप्नुयान्मिष्टभोजनम्।
सहस्रभृत्यवर्गेण सहितो नात्र संशयः ॥२१८॥
अर्कवृक्षसमिद्भिश्च त्रिमध्वक्ताभिरुक्तवत्।
जुहुयाद्रविसाहस्रं यान्समुद्दिश्य साधकः।
भवन्त्येव हि ते वश्यास्तथाश्वत्थसमिद्वरैः ॥२१९॥
प्रसन्नचेताश्च तिलैः पूर्वकर्म्मणि वा हुनेत्।
दुर्गाकल्पोदितान् सर्वान् प्रयोगान् साधयेत्सुधीः ॥२२०॥

गाय के गोबर को भूमि पर गिरने के पूर्व ही ग्रहण करके तीन हजार मन्त्रजप से उसे अभिमन्त्रित करके प्रस्थान करने वाले के द्वार पर सम्यक् रूप से गाड़ देने पर उस व्यक्ति का उसी भवन में स्तम्भन हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार सेना के सामने गाड़ देने से सेना का भी स्तम्भन हो जाता है।

विद्वान् साधक किसी ग्राम या नगर के समीप जाकर हाथ में अन्न-जल ली हुई प्रफुल्लित अम्बिका का स्मरण करके मन्त्र का जप करने के उपरान्त तर्पण करके उस ग्राम अथवा नगर में यदि प्रवेश करता है तो उसे हजारों नौकर-चाकरों के साथ-साथ मनचाहे भोजन की भी प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार त्रिमधु-सिक्त अकवन अथवा अश्वत्थ (पीपल) की समिधाओं द्वारा जिनको उद्देश्य करके बारह हजार हवन किया जाता है, वे सभी निश्चित ही साधक के वशीभूत हो जाते हैं।

अथवा पूर्वकथित कर्मों के लिये प्रसन्नचित्त होकर तिलों से हवन करके साधक दुर्गाकल्प में पठित समस्त प्रयोगों को साधित कर सकता है।।२१५-२२०।।

अथ वक्ष्ये कूटदन्तं गणेशं कूटसिद्धिदम्।
योगिन्यस्य ज्वलज्जिह्वा नर्त्तकीरूपधारिणी।
गृद्धदुर्गास्य निकटे साधकाभीष्टदायिनी ।।२२१।।
तारो नमो भगवति ज्वालामालिनि संवदेत्।
गृद्धं गणपतिं वृत्ते स्वाहान्तो द्विनखाक्षरः ।।२२२।।
त्रिचतुष्पञ्चवस्वक्षिमितैर्वर्णैर्मनोः क्रमात्।
पञ्चाङ्गानि सुधीरस्य जातियुक्तानि कल्पयेत्।
अन्यच्छूलिनिदुर्गावत् सर्वमस्याः प्रकीर्त्तितम् ।।२२३।।

कूटदन्त गणेश—अब कूटसिद्धि प्रदान करने वाले कूटदन्त गणेश को कहता हूँ। इनकी योगिनी नर्तकी रूपधारिणी ज्वलज्जिह्वा है। इसके समीप गृद्धदुर्गा विराजमान रहती है, जो साधक को अभीष्ट प्रदान करती है। इसका बाईस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि गृद्धं गणपतिं वृत्ते स्वाहा।

इस मन्त्र के तीन, चार, पाँच, आठ एवं दो वर्णों को जातियुक्त करके इसका पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिये। इसके अन्य समस्त विधान शूलिनी दुर्गा के समान कहे गये हैं।।२२१-२२३।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देवं शालकटङ्कटम्।
स्वदंष्ट्रा योगिनी चास्य नानासङ्गीतकोविदा ।।२२४।।
विधात्री चेटिका चास्य तस्याः साधनमुच्यते।
ॐ विधात्रि नीरक्षीरविधायिनि पदं वदेत्।
स्वाहान्तस्थितिवर्णोऽयं जपो लक्षमितो मतः ।।२२५।।
धात्रीतरुसमीपस्थां विधात्रीं कमलासनाम्।
विशाललोचनां वन्दे नीरक्षीरविधायिनीम् ।।२२६।।
नदीतीरे तु यत्रास्ते धात्रीवृक्षो मनोरमे।
सफ्फलस्तस्य भूमौ तु कार्त्तिक्यां पूर्णिमातिथौ ।।२२७।।
सोमवारे तदा मन्त्री निशायां त्रिशतं जपेत्।
होमो धात्रीफलैः कार्य्यस्ततस्तु तरुतो ध्रुवम्।
जायते हि महाशब्दः प्रसन्नास्मीति शोभनः ।।२२८।।

तन्मन्त्रपठनान्मन्त्री नीरक्षीरं भजेदिह ।
इत्युक्तकीलमुद्धृत्य सम्पठेन्मन्त्रमुत्तमम् ।
नीरान्वितं ततः क्षीरं जायते क्षीरमादरात् ॥२२९॥

शालकटंकट विनायक—अब मैं शालकटंकट देव का वर्णन करता हूँ। अनेक संगीतों की ज्ञाता इसकी योगिनी का नाम स्वदंष्ट्रा हैं। इसकी चेटी विधात्री है, उसका साधन अब कहा जा रहा है। इसका चौदह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ विधात्रि नीरक्षीरविधायिनि स्वाहा। पुरश्चरण-हेतु एक लाख इसका जप कहा गया है। इसका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—आँवले के वृक्ष के समीप कमल के आसन पर विराजमान नीर-क्षीर का विधान करने वाली विशालनेत्रा विधात्री को मैं प्रणाम करता हूँ।

जिस नदी के तट पर फलों से लदा आँवले का मनोरम वृक्ष हो, उस भूमि पर कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि सोमवार को रात्रि में मन्त्रज्ञ साधक द्वारा मन्त्र का तीन सौ जप करके आँवले के फलों से हवन करने पर उस वृक्ष से 'मैं प्रसन्न हूँ' इस प्रकार का महान् शब्द निकलता है। उस समय मन्त्रजप करते हुये मन्त्री को नीर-क्षीर का स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार उक्त कील का उद्धार करके मन्त्रजप करने पर जल-मिश्रित दूध प्रतिष्ठा-पूर्वक दूध हो जाता है।।२२४-२२९।।

कूष्माण्डविनायकसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कूष्माण्डाख्यविनायकम् ।
बालग्रहपतिश्चास्य योगिनी चारुणानना ।
वेणुवादनमेवेयं कृत्वा काश्यां सदा रता ॥२३०॥
चेटी तु वैनतेयाक्षी तस्याः साधनमुच्यते ।
तारं च वैनतेयाक्षि सर्पसेवित इत्यपि ।
नागदेवी ङेऽन्तमुक्त्वा स्वाहान्तोऽष्टादशाक्षरः ॥२३१॥
नानाकमलसर्पादिवेष्टितां विन्ध्यवासिनीम् ।
ध्यायामि वैनतेयाक्षीं विषदोषहरां शिवाम् ।
चतुःषष्टिसहस्राणि पुरश्चरणमस्य तु ॥२३२॥
श्रावणे मासि नागानां पञ्चमी या प्रकीर्त्तिता ।
तस्यां जपेन्महामन्त्री रात्रौ वल्मीकभूमिषु ॥२३३॥
अयुतं वैनतेयाक्षीं होमः स्यान्मातुलुङ्गकैः ।
ततः सा गारुडीं विद्यां प्रसन्ना सम्प्रयच्छति ।
सर्पाकर्षणशक्तिं च समस्तविषनाशिनीम् ॥२३४॥

कूष्माण्डविनायक-साधन—अब मैं बालग्रहों के अधिपति कूष्माण्डविनायक को कहता हूँ। इनकी योगिनी चारुणानना है, जो काशी में सदा वेणुवादन में रत रहती है। उसकी चेटी वैनतेयाक्षी है। अब इस वैनतेयाक्षी के साधन को कहता हूँ। इसका अट्ठारह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ वैनतेयाक्षि सर्पसेवितायै नागदेव्यै स्वाहा। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—अनेक कमलों एवं सर्पों से घिरी हुई, विन्ध्य पर निवास करने वाली, विषदोष का हरण करने वाली देवी वैनतेयाक्षी का मैं ध्यान करता हूँ। इसका पुरश्चरण चौंसठ हजार मन्त्रजप से कहा गया है।

श्रेष्ठ साधक द्वारा श्रावण मास की नागपंचमी तिथि को रात्रि में दीमक वाले स्थान पर वैनतेयाक्षी मन्त्र का दश हजार जप करके मातुलुंग (विजौरा नीबू) से हवन करने पर वह देवी वैनतेयाक्षी प्रसन्न होकर साधक को गारुड़ी विद्या प्रदान करती है; साथ ही समस्त विषों का नाश करने वाली सर्पाकर्षण शक्ति भी प्रदान करती है।

मुण्डं विनायकं वक्ष्ये ऋक्षाक्षीयोगिनीयुतम्।
काशते काशिकायान्तु वीणावादनतत्परा।
किङ्करी नाम चैतस्य चेटी तत्साधनं ब्रुवे ॥२३५॥
किङ्करी जलदेवीति जलं पूरय पूरय।
धं धं सप्तदशार्णोऽयं जपेद्वर्णसहस्रकम् ॥२३६॥
अवृष्टिकाले रात्रौ हि नरो नद्यां जले जपेत्।
कण्ठमात्रेऽयुतं चैकं ध्यायन्देवीं समाहितः ॥२३७॥
किङ्करीं वारुणं पाशं बिभ्रतीं जलरूपिणीम्।
विषक्षतस्वरूपाभां घोरगर्जनभीषणाम्।
प्रभाते वृष्टिरायाति सा हि पञ्चदिनावधि ॥२३८॥

मुण्डविनायक—अब ऋक्षाक्षी-नामक योगिनी से समन्वित मुण्डविनायक को कहता हूँ। वीणावादन में तत्पर वह ऋक्षाक्षी काशी में प्रकाशित रहती है। इसकी चेटी का नाम किंकरी है; अब उसके साधन को कहता हूँ। सत्रह अक्षरों का इसका मन्त्र है—किंकरी जलदेवी जलं पूरय पूरय धं धं। पुरश्चरण-हेतु इसका वर्णसहस्र अर्थात् सत्रह हजार जप कहा गया है।

अनावृष्टि काल में साधक द्वारा रात्रि में नदी में कण्ठ-पर्यन्त जल में खड़े होकर वरुणपाश धारण की हुई जलस्वरूपिणी विषक्षत के स्वरूप की आभा वाली तथा अत्यन्त भयंकर गर्जना करती हुई देवी किंकरी का ध्यान करते हुये सावधान होकर मन्त्र का दस हजार जप करने पर प्रातःकाल वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है, जो पाँच दिनों तक होती रहती है।।२३५-२३८।।

अथ वक्ष्ये गणेशानं विख्यातं विकटद्विजम्।
योगिनी केकराक्ष्यस्य मृदङ्गं वादयेद्वरम्।
वाग्वादिनी चास्य शक्तिर्मन्त्राद्यस्य निरूप्यते ॥२३९॥
वदयुग्मं वाग्वादिनि स्वाहेति च दशाक्षरः।
ऋषिः कण्वो विराट् छन्दो देवता तु सरस्वती ॥२४०॥
मातृकोक्तविधानेन मन्त्री कुर्य्यात्षडङ्गकम्।
के श्रोत्रयोर्नसोर्दृष्ट्योः कपोलास्ये तथेन्द्रिये ॥२४१॥
गुदे च विन्यसेद्वर्णांस्ततो वागीश्वरीं यजेत्।
सितपद्मगतां श्वेतां लेखनीपुस्तकान्विताम्।
नम्रां च कुचभारेण वाग्देवीं चन्द्रशेखराम् ॥२४२॥
ॐ ह्रीं वर्णजाय चोक्त्वा सरस्वत्यासनाय त्र।
नमः पञ्चदशार्णोऽयमासनस्य मनुर्मतः।
अङ्गानि पूजयेदादौ स्वरद्वन्द्वं ततोऽर्चयेत् ॥२४३॥
वर्गाष्टकं ततोऽभ्यर्च्य ततोऽष्टौ शक्तयस्त्विमाः।
योगसन्ध्या च विमला ज्ञानवृद्धिः स्मृतिस्तथा ॥२४४॥
मेधा प्रज्ञा ततः पूज्या मातृकाश्च दिगीश्वराः।
तदायुधानि पूज्यानि भूपुरादौ यथाक्रमम् ॥२४५॥

विकटद्विज गणेश—अब मैं विकटद्विज के रूप में विख्यात गणेश को कहता हूँ। इनकी योगिनी केकराक्षी है, जो मृदङ्ग बजाने में सर्वश्रेष्ठ है। इसकी शक्ति वाग्वादिनी है। इस वाग्वादिनी के मन्त्र आदि का निरूपण किया जा रहा है। इसका दशाक्षर मन्त्र है—वद वद वाग्वादिनि स्वाहा। इसके ऋषि कण्व, छन्द विराट् और देवता सरस्वती कही गई हैं।

मातृकोक्त विधान से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ॐ आं हृदयाय नमः, ॐ आं शिरसे स्वाहा, ॐ आं शिखायै वषट्, ॐ आं कवचाय हुम्, ॐ आं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ आं अस्त्राय फट्। इसके बाद शिर, दोनों कर्ण, दोनों नासापुट, दोनों नेत्र, मुख, इन्द्रिय (लिङ्ग) एवं गुदा—इन दस स्थानों में क्रमशः मन्त्र के दस वर्णों का विन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् श्वेत कमल पर विराजमान, श्वेत वर्ण वाली, लेखनी एवं पुस्तक से समन्वित, स्तनों के भार से झुकी हुई, शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण की हुई वाणी की देवी वागीश्वरी का पूजन करना चाहिये।

'ॐ ह्रीं वर्णजाय सरस्वत्यासनाय नमः'—यह पन्द्रह अक्षरों का आसनमन्त्र कहा

गया है। इससे आसन प्रदान करके षोडशोपचार से पूजन करने के बाद प्रथमतः षट्कोण में दो-दो स्वरों से इस प्रकार षडङ्ग-पूजन करना चाहिये—आं अं हृदयाय नमः, ईं इं शिरसे स्वाहा, ऊँ उं शिखायै वषट्, ऐं एं कवचाय हुम्, औं अं नेत्राय वौषट्, अः अः अस्त्राय फट्।

इसके बाद अष्टदल कमल में अष्टवर्ग से समन्वित योगा, सन्ध्या, विमला, ज्ञान, वृद्धि, स्मृति, मेधा एवं प्रज्ञा—इन शक्तियों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—ॐ कं खं गं घं ङं योगायै नमः, ॐ चं छं जं झं ञं सन्ध्यायै नमः, ॐ टं ठं डं ढं णं विमलायै नमः, ॐ तं थं दं धं नं ज्ञानायै नमः, ॐ पं फं बं भं मं वृद्ध्यै नमः, ॐ यं रं लं वं स्मृत्यै नमः, ॐ शं षं सं हं मेधायै नमः, ॐ ळं क्षं प्रज्ञायै नमः।

तत्पश्चात् यथाक्रम मातृकाओं का पूजन करने के उपरान्त भूपुर आदि में इन्द्रादि दश दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।।२३९-२४५।।

दशलक्षं जपेदन्ते त्रिमध्वक्तैश्च कैरवैः।
जुहुयात्तद्दशांशैस्तु शुद्धैश्चाथ तिलैर्हुनेत् ।।२४६।।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थितः ।।२४७।।
जपहोमरतो रामां चिन्तयेद्देवताधिया।
अचिरादेव स भवेत्कवीनामग्रणीर्ध्रुवम् ।।२४८।।
न्यासान्वितमिमं मन्त्रं दिनादौ प्रत्यहं जपेत्।
लभते नात्र सन्देहो वाक्सिद्धिमतुलां नरः ।।२४९।।
ब्रह्मवृक्षरमावृक्षसुमनोभिः समिद्वरैः।
मधुरत्रयसंयुक्तैर्जुहुयात् साधकः स्वयम्।
अचिराद्वाग्विलासेन कवीनामग्रणीर्भवेत् ।।२५०।।

सविधि पूजन सम्पन्न करने के उपरान्त मन्त्र का दस लाख जप करके त्रिमधु-सिक्त कैरवों (श्वेत कमलों) एवं शुद्ध तिलों से जप का दशांश हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण एवं मार्जन करने के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।

इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक यदि ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके जप-हवन में संलग्न रहकर हृदय में देवताबुद्धि से लक्ष्मी का चिन्तन करता है तो वह थोड़े ही दिनों में कवियों में अग्रणी हो जाता है।

जो मनुष्य प्रतिदिन सर्वप्रथम न्यास करके इस मन्त्र का जप करता है, वह निस्सन्दिग्ध रूप से अतुलनीय वाक्सिद्धि प्राप्त करता है। जो साधक स्वयं मधुरत्रय-

संयुक्त ब्रह्मवृक्ष (पलाश) एवं रमावृक्ष (बेल) के पुष्पों तथा श्रेष्ठ समिधाओं से हवन करता है, वह अपने वाग्विलास से थोड़े दिनों में ही कवियों में अग्रगण्य हो जाता है।।२४६-२५०।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि राजपुत्रं गणेश्वरम्।
योगिन्यस्य बृहत्तुण्डा तालवादनतत्परा ॥२५१॥
मातृकासिद्धिदश्चायं तस्मात्तन्मन्त्र उच्यते।
यस्यामन्तर्गता मन्त्रास्त्रयस्त्रिंशच्च कोटयः ॥२५२॥
गायत्री मातृका वापि साधिता स नरो भवेत्।
समस्तागममन्त्राणां दाता नास्त्यत्र संशयः ॥२५३॥
अकारादिक्षकारान्ता वर्णा वायुश्च देवता।
वदन्ति मातृकां देवीं यया सर्वमिदं ततम् ॥२५४॥
ब्रह्मा मुनिश्च गायत्री छन्दो देवी च मातृका।
हलो बीजान्यचः प्रोक्ताः शक्तयः कीलकं भवेत् ॥२५५॥
अव्यक्तं सत्त्वनिर्वाच्यं व्यञ्जनैः स्वरसङ्गमः।
प्रागुक्तमातृकान्यासाः सर्वे मुख्या भवन्ति च ॥२५६॥
सुधाकुम्भाक्षवटिकावरपुस्तकधारिणीम्।
पञ्चाशदर्णव्याप्ताङ्गीं चन्द्रार्धाङ्कितशेखराम् ॥२५७॥
त्र्यक्षां कुन्देन्दुरुचिरां पद्मस्थां कुचनामिताम्।
मुक्तावृतस्फुरद् भूषां भजे मातृसरस्वतीम् ॥२५८॥

राजपुत्र गणेश्वर—अब मैं राजपुत्र गणेश्वर को सम्यक् रूप से कहता हूँ। ताली बजाने में तल्लीन बृहत्तुण्डा इसकी योगिनी है। यह मातृकासिद्धि प्रदान करने वाली है; इसलिये इसके मन्त्र को कहता हूँ। जिसके अन्तर्गत तैंतीस करोड़ मन्त्र आते हैं, उनमें से गायत्री अथवा मातृका का जिस मनुष्य ने साधन कर लिया, वह समस्त आगममन्त्रों का दाता हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अ से क्ष तक के वर्णों के देवता वायु हैं। मातृका को देवी कहा जाता है; क्योंकि इसी से यह सम्पूर्ण विस्तार है। इन वर्णों के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवी मातृका, हल् बीज, अच् शक्ति एवं व्यंजन तथा स्वर के संयोग से सत्त्व को कहने वाला अव्यक्त तत्त्व कीलक है। पूर्वोक्त समस्त मातृकान्यास इसके मुख्य न्यास होते हैं।

इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—अमृतकलश अक्षमाला वर एवं पुस्तक धारण करने वाली, पचास वर्णों में व्याप्त अंगों वाली, शीर्ष पर अर्धचन्द्र को अंकित

की हुई, तीन नेत्रों वाली, कुन्दपुष्प के समान मनोहारी, कमल पर विराजमान, स्तनों के भार से झुकी हुई, मुक्ता-जटित देदीप्यमान आभूषणों से भूषित मातृसरस्वती का मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।।२५०-२५८।।

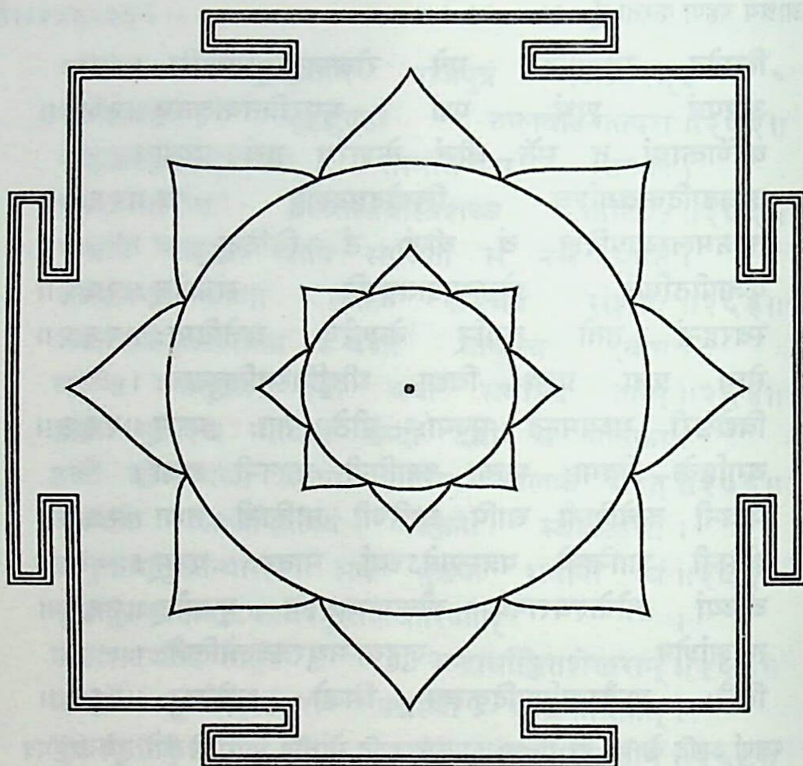
लिखेत् स्वर्णादिजे पत्रे रोचनाकुङ्कुमादिभिः।
अष्टपत्रं शुभं पद्मं भूपुरत्रितयावृतम्॥२५९॥
कर्णिकायां तु स्फें बीजं केशरेषु द्वयं द्वयम्।
कचढादिकवर्गांश्च लिखेदष्टदलेषु च॥२६०॥
तत्कमलस्याग्रदिक्षु वं बीजं ठं विदिक्षु च।
पूजापीठमिदं प्रोक्तमादावङ्गानि संयजेत्॥२६१॥
स्वरद्वन्द्वं ततो वर्गान् केशरेषु यजेदिमाः॥२६२॥
मेधा प्रज्ञा प्रभा विद्या धीर्धृतिस्मृतिबुद्धयः।
विद्येश्वरी मध्यमान्ते पूज्याः पीठे ततः परम्॥२६३॥
वर्गाष्टके त्विमाः पूज्या व्यापिनी पालनी तथा।
पावनी क्लेशिनी चापि धारिणी मालिनी तथा॥२६४॥
हंसिनी शान्तिनी पत्रस्याग्रेऽर्च्या मातरः परम्।
वीथ्यां लोकेश्वरानग्रे वीथ्यामस्त्राणि पूजयेत्॥२६५॥
तद्दशांशेन जुहुयान्मधुरत्रयलोलितैः।
तिलैः शुद्धैस्तर्पणादिकृत्वा सिद्धो भवेन्मनुः॥२६६॥

स्वर्ण आदि के पत्र पर रोचन-कुमकुम आदि से तीन भूपुरों से घिरे हुये अष्टपत्र कमल का लेखन करना चाहिये। कमल की कर्णिका में स्फें बीज लिखकर केशरों में कं चं टं तं पं यं शं क्षं लिखना चाहिये। तदनन्तर उस कमल के अग्रभाग से प्रारम्भ करके चारो दिशाओं में वं बीज और चारो कोणों में ठं बीज लिखने से यह पूजनपीठ बन जाता है।

यन्त्रलेखन के पश्चात् सर्वप्रथम अङ्गों का पूजन करने के बाद पहले दो स्वर और उसके बाद वर्ग लगाकर केशरों में इन देवियों का यजन करना चाहिये—मेधा, प्रज्ञा, प्रभा, विद्या, धी, धृति, स्मृति एवं बुद्धि। इसके बाद मध्य में विद्येश्वरी का पूजन करना चाहिये। अष्टदलों क्रे आगे व्यापिनी, पालनी, पावनी, क्लेशिनी, धारिणी, मालिनी, हंसिनी, शान्तिनी का पूजन करने के उपरान्त भूपुर की पहली वीथि में दिक्पालों का एवं दूसरी वीथि में उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर पचास मातृकाओं का पचास हजार की संख्या में जप करने के बाद

मधुरत्रय-लोलित तिलों से कृत जप का दशांश (पाँच हजार) हवन करना चाहिये। इसके पश्चात् तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।२५९-२६६।।



तत्त्वैर्भूपैश्च दिग्भिः कनकरजतताम्रांसकैर्भिन्नसूत्रैः
सम्यक्कृत्वा त्रिवेणीस्तवकमथ जपेद् गव्यमाज्यं हुनेच्च।
वस्वभ्राणां च पातं सुजनितहविषा चाभिषिञ्चेद् घृतैस्तां
देवीमभ्यर्च्य धार्य्यं ग्रहगदशमनं सङ्गरे स्याज्जयाय ॥२६७॥

पाँच भाग सोना, सोलह भाग चाँदी और आठ भाग ताँबा के अलग-अलग तारों को सम्यक् रूप से मिलाकर सबका गुच्छ बनाकर मन्त्रजप करने के उपरान्त गोघृत से हवन करने के पश्चात् उस गुच्छ पर भली प्रकार से बनाये गये हविष्य का अस्सी बार पात करके घृत से अभिषेक करना चाहिये। इसके बाद देवी का पूजन करके धारण करने पर यह गुच्छरूप यन्त्र दुष्ट ग्रहों एवं रोगों का शमन करने वाला तथा युद्ध में विजय प्रदान करने वाला होता है।।२६७।।

तोयं पिबेद्दिनादौ च द्विवारं जप्तमेतया।
वत्सराज्जायते सम्यक्स मूर्खोऽपि कवित्वभाक् ॥२६८॥
ब्राह्मीरसेन वचया पयसा पाचयेद्घृतम्।
अयुतं जप्तमनया भक्षितं कविताप्रदम् ॥२६९॥
वर्णौषधीक्वाथसुवर्णकुम्भैर्जपन् सहस्रं च नरं प्रसिञ्चेत्।
कीर्तिश्च लक्ष्मीः कविता तथायुर्भवेच्च वन्ध्या लभते सुताग्र्यम् ॥२७०॥

प्रतिदिन प्रात:काल दो बार मातृकाओं के जप से अभिमन्त्रित जल का पान करने से एक वर्ष के भीतर मूर्ख व्यक्ति भी अच्छा कवि हो जाता है। ब्राह्मी रस, वचा और दूध में घी का पाक करके उसे मातृकामन्त्र के दस हजार जप से अभिमन्त्रित कर भक्षण करने से साधक को कविता करने की शक्ति प्राप्ति हो जाती है। सुवर्ण-निर्मित कुम्भ में वर्णौषधि क्वाथ को रखकर उसे इस मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके जिस मनुष्य का अभिषेक किया जाता है, वह व्यक्ति कीर्ति, लक्ष्मी, कवित्व शक्ति एवं आयु को प्राप्त करता है तथा वन्ध्या स्त्री का यदि उस क्वाथ से अभिषेक किया जाता है तो वह अग्रगण्य पुत्र को प्राप्त करती है।।२६८-२७०।।

अथ प्रवक्ष्ये प्रवरं गणेशं सुराप्रिया साखिलकर्म्मविज्ञा।
स्याद्योगिनी चास्य शुभङ्करी च चेटी नदीयाम्यतटे क्षयोऽस्याः ॥२७१॥
आकृत्यर्णो मनुस्तारः शुभङ्करा परेति च।
देवते ममेष्टं देहि दुर्भुग्नी शिखिवल्लभा ॥२७२॥
कलाकलापान् परिपालयन्ती विभावयन्ती विषयाननेकान्।
नारीनरेन्द्रानपि मोहयन्ती सा मानसे मेऽस्तु शुभङ्करी श्रीः ॥२७३॥
जप्त्वा लक्षं च रक्तैर्हयरिपुकुसुमैर्होमयेत् सिद्धमन्त्रः
कृष्णायां भाद्रकृष्णे हयरिपुगहने चापि शेफालिसिन्ध्वोः।
याम्ये तीरे नद्या निशि जपमयुतं तद्दशांशेन होमं
कुर्य्यात्प्रातस्तु नीराज्जयति सुखकरान्साधकेन्द्रो गतोऽसौ ॥२७४॥
नानाभोगकरः कामं यं यं प्रार्थयते तु तम्।
स्वयं ददाति सा देवी सुस्त्रीवित्ताम्बरादिकम् ॥२७५॥

प्रवरगणेश—अब प्रवरगणेश को कहता हूँ। इनकी योगिनी का नाम सुराप्रिया है। यह समस्त कर्मों को जानने वाली होती है। इसकी चेटी शुभङ्करी है, जिसका निवास नदी के दक्षिणतट पर है। इसका तेईस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ शुभङ्करा परादेवते ममेष्टं देहि दुर्भुग्नी शिखिवल्लभा। कलाकलापों का सर्वतः रक्षण करती हुई,

अनेक विषयों को अभिव्यक्त करती हुई, स्त्री-पुरुषों को मोहित करती हुई शुभ करने वाली वह लक्ष्मी मेरे मन में निवास करे—इस प्रकार ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करके रक्त कनेर के पुष्पों से हवन करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। भाद्र मास के कृष्णपक्ष में काले कनेर अथवा शेफालि (निर्गुण्डी) के वन में अथवा सिन्धु नदी के दक्षिणतट पर रात्रि में सिद्ध मन्त्र का दश हजार जप करने के बाद उसका दशांश (एक हजार) हवन करके प्रातःकाल नीराजन करने वाला श्रेष्ठ साधक सुखों का आगार हो जाता है। अनेक प्रकार के जिन-जिन सुखकर कामनाओं की उससे याचना करता है, उसे स्त्री-धन-वस्त्र आदि को वह देवी स्वयं प्रदान करती है।।२७१-२७५।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वाराणस्यां तु ये स्थिताः।
आवृता वक्रतुण्डाद्याश्चेटीशक्तिसमन्विताः ॥२७६॥
ङेऽन्तन्तन्नाम हृच्चेति तेषां मन्त्रः प्रकीर्त्तितः।
वक्रतुण्डविधिः पूर्वमुक्तोऽष्टानां स एव हि ॥२७७॥
कपालहस्तयुक्तानां प्रदिष्टा ऋक्षयोगिनी।
शतनादे योगिनीति देहि देहि वदेत्ततः ॥२७८॥
ह्रीं हूं स्वाहेति मन्त्रोऽयं ध्यानमस्या निरूप्यते।
वीणातन्त्रीस्फुरद्धस्तां तन्नादचलकुण्डलाम् ॥२७९॥
कुसुम्भवसनां नम्रां स्तनभारेण योगिनीम्।
नदीतीरे चाम्रवणे जपेन्मन्त्रं दशायुतम्।
आम्रपत्रैः समूलैश्च हुनेत्सिद्धो भवेन्मनुः ॥२८०॥

अब मैं वाराणसी में विद्यमान उन देवियों को कहता हूँ, जो वक्रतुण्डा आदि से आवृत हैं एवं चेटी शक्तियों से समन्वित हैं। उनके चतुर्थ्यन्त नाम के साथ नमः लगाने से उनके मन्त्र बनते हैं। पूर्वोक्त आठो की जो विधि कही गई है, वही वक्रतुण्डविधि होती है। हाथ में कपाल धारण की हुई देवियों की योगिनी ऋक्षयोगिनी कही गई है। इनका मन्त्र है—शतनादे योगिनि देहि देहि ह्रीं हूं स्वाहा। अब इसका ध्यान निरूपित किया जा रहा है। अपने हाथों वीणा के तारों को छेड़कर उससे निकलती ध्वनि के अनुरूप अपने शिर को चलायमान करती हुई कौसुम्भ वस्त्र धारण करने वाली स्तनभार से झुकी हुई योगिनी का ध्यान करके नदी के तट पर या आमों के वन में मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त मूल-सहित आम के पत्तों से हवन करने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।२७६-२८०।।

अमायां श्रावणे मासि रात्रौ दूरे नदीतटे।
तत्र रात्रौ मनुं देव्या जपेदष्टसहस्रकम् ॥२८१॥
प्राग्वद् हुनेदष्टशतं ततः शब्दाञ्छृणोति च।
वीणावेणुमृदङ्गानां किन्नरीणाञ्च भूयसः ॥२८२॥
इत्यादयः शतं नादा जायन्ते नादिभीषणाः।
ततः सा योगिनीरूपा प्रत्यक्षा मन्त्रिणो भवेत् ॥२८३॥
ददाति योगमुद्रां सा दर्शयेत् कुण्डलीपथम्।
ततः स्वानुभवो मन्त्री योगी ज्ञानी प्रजायते।
वाक्सिद्धिश्च भवेदस्य ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२८४॥

श्रावण मास की अमावस्या को रात्रि में दूर नदी के तट पर देवी के मन्त्र का आठ हजार जप करना चाहिये। तदनन्तर पूर्ववत् आठ सौ हवन करने के उपरान्त वीणा, वेणु, मृदङ्ग के साथ-साथ बहुत-सी किन्नरियों के शब्द सुनायी देते हैं। इस तरह सैकड़ों ध्वनियों के मिश्रण से भयंकर नाद होने के बाद वह देवी योगिनीरूप में मन्त्रज्ञ साधक के सामने प्रत्यक्ष होकर उसे योगमुद्रा प्रदान करती हैं; साथ ही कुण्डलीपथ का दर्शन कराती है। इसके बाद अपने अनुभव से मन्त्रज्ञ साधक योगी एवं ज्ञानी हो जाता है। उसे वाक्सिद्धि की भी प्राप्ति हो जाती है; इस प्रकार वह अपने-आपको ब्रह्मस्वरूप समझने लगता है।।२८१-२८४।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चैकदन्तुरविघ्नपम्।
योगिनी तस्य रक्ताक्षी गानवादरता सदा ॥२८५॥
नेत्ररम्या चेटिकाऽस्य वेदाग्न्यर्णो मनुश्च ओम्।
नेत्ररम्ये अञ्जनं च देहियुग्मं निधिं वदेत् ॥२८६॥
दर्शयद्वितयं चोक्त्वा पटलं पदमुच्चरेत्।
दूरीकुरुयुगं पञ्च स्वाहेति कथितो मनुः ॥२८७॥
पुरश्चरणमेतस्या अयुतत्रितयं चरेत्।
घृताक्तगुग्गुलैर्होमो देवतां साधयेत्ततः ॥२८८॥
कानने करवीराणां रात्रौ वैशाखमासि तु।
चतुर्दश्याञ्जपेद्देवीं नेत्ररम्यां शतत्रयम् ॥२८९॥
भौमस्तु वासरः प्रोक्तस्त्वथवा शुक्रवासरः।
घृताक्तगुग्गुलैर्होमं ततः कुर्य्याच्छतत्रयम् ॥२९०॥
ददाति मन्त्रिणे तस्मै स्वाञ्जनं नेत्रबोधकम्।

निधिं भूमिगतं वस्तु दूरदेशगतं तथा।
आलोकते स मन्त्री च सद्यो भवति भूपतिः ॥२९१॥

एकदन्त विघ्नेश—अब मैं एकदन्त विघ्नेश्वर को कहता हूँ। इनकी योगिनी रक्ताक्षी है, जो सदा गान एवं वादन में रत रहती है। इनकी चेटी नेत्ररम्या है। बत्तीस अक्षरों का इसका मन्त्र है—ॐ नेत्ररम्ये अञ्जनं देहि देहि निधिं दर्शय दर्शय पटलं दूरी कुरु कुरु फट् स्वाहा। तीस हजार जप से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है। जप के बाद घृताक्त गुग्गुल से हवन करने के उपरान्त मन्त्र का साधन करना चाहिये।

वैशाख मास की चतुर्दशी को भौम अथवा शुक्रवार रहने पर कनैल के वन में जाकर रात्रि में देवी नेत्ररम्या के मन्त्र का तीन सौ की संख्या में जप करने के बाद घृताक्त गुग्गुल से तीन सौ हवन करने पर वह देवी नेत्रबोधक अपना अंजन साधक को प्रदान करती है, जिसके प्रभाव से भूमिगत खजाने अथवा दूर देश में विद्यमान वस्तु को वह मन्त्रज्ञ साधक देख लेता है और शीघ्र ही राजा हो जाता है।।२८५-२९१।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कपिसिंहद्विपाननम्।
एवं त्रिवदनं तस्य योगिनी तु शुकी मता।
रसज्ञा चेटकी चास्य पङ्कजाक्षी प्रकीर्त्तिता ॥२९२॥
ॐ पङ्कजाक्ष्यमृतफलं देहीति युगं तथा।
श्रीं स्वाहा मेघवर्णोऽयं जपः षष्टिसहस्त्रकः।
होमः पलाशपुष्पैः स्यादभावे च समिद्वरैः ॥२९३॥
सञ्जीवयन्तीव मदं लोलनेत्राभिसुन्दरी।
पङ्कजाक्षी कार्य्यकरी नानालङ्कारशोभिता ॥२९४॥
वसतन्तौं च गङ्गायास्तटे ब्रह्मरुहां वने।
कृष्णाष्टम्याञ्चैत्रमासे भौमे शुक्रेऽथवा निशि ॥२९५॥
त्रिसहस्त्रं जपित्वा तु पालाशैर्होममाचरेत्।
ततो देवी समायाति ददाति फलमुत्तमम् ॥२९६॥
जरामरणराहित्यं तत्कालं भक्षिते सति।
फले तस्मिन् समायाति सद्गुरुः प्रार्थितः पुनः ॥२९७॥

कपिसिंहद्विपानन—अब मैं कपिसिंहद्विपानन को कहता हूँ। नामानुरूप इनके तीन मुख हैं एवं इनकी योगिनी शुकी कही गई है; साथ ही रसों को जानने वाली पंकजाक्षी इनकी चेटी कही गई है। सोलह अक्षरों का इसका मन्त्र इस प्रकार है—ॐ पंकजाक्ष्यमृतफलं देहि देहि श्रीं स्वाहा। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का साठ हजार जप एवं पलाशपुष्पों अथवा श्रेष्ठ समिधाओं से हवन कहा गया है।

कार्य का सम्पादन करने वाली अनेक अलंकारों से सुशोभित एवं मद से मत्त चञ्चल नेत्रों वाली सर्वसुन्दरी पङ्कजाक्षी का ध्यान करके वसन्त ऋतु में गंगा के तट पर पलाश के वन में चैत्र मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को मंगलवार अथवा शुक्रवार रहने पर रात्रि में मन्त्र का तीन हजार जप करके पलाश के फूलों से हवन करने पर देवी साधक के पास आकर उसे उत्तम फल प्रदान करती है। उस फल का तत्काल भक्षण करने एवं सद्गुरु की अभ्यर्थना करने से साधक अजर-अमर हो जाता है।।२९२-२९७।।

पञ्चास्यगजाननमन्त्रविधिः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पञ्चास्यञ्च गजाननम्।
श्वेन्यस्य योगिनी प्रोक्ता रागालापनतत्परा।
पयोदिनी चेटिकास्य ह्येकत्रिंशाक्षरो मनुः ॥२९८॥
तारं पयोदिनीत्युक्त्वा जलधाराधरे तथा।
अग्निं शमय वाडवं वह्निं च शमय द्वयम् ॥२९९॥
श्रीं स्वाहा नम इत्येतज्जपेदन्ते सहस्रकम्।
सरस्तीरे पयःकार्ये हुनेत् सघृतपायसम् ॥३००॥
वर्षन्ती जलबिन्दूंश्च मेघमाला मनोरमा।
श्यामाम्बरपरीधाना मे चित्तेऽस्तु पयोदिनी ॥३०१॥
श्रावणे बहुलाष्टम्यां रोहिणी ऋक्षसम्भवे।
भौमे बृहस्पतौ वापि शुक्रे वा तत्र वासरे ॥३०२॥
रात्रौ स्नानविधिं कृत्वा सरस्तीरे मनोरमे।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं पायसैर्होममाचरेत् ॥३०३॥
सहस्रैकं ततो देवी साक्षात्सा तु पयोदिनी।
ददाति करकां चैकां मन्त्रिणे तोषमागता ॥३०४॥
अग्निदाहोऽस्य नैवास्ति भवेच्च करकान्वितः।
अवृष्टावपि कर्तव्यं ध्यात्वा देवीं भवेज्जलम् ॥३०५॥

पञ्चमुखी गजानन-मन्त्रविधि—अब मैं पञ्चमुख गजानन को कहता हूँ। इनकी योगिनी श्वेनी कही गई है, जो राग के आलाप में तत्पर रहती है। इनकी चेटी पयोदिनी है, जिसका इकतीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ पयोदिनि जलधाराधरे अग्निं शमय वाडवं वह्निं च शमय शमय श्रीं स्वाहा। जल-वर्षण के लिये नदी के तट पर बैठकर इस मन्त्र का एक हजार जप एवं घृत-संहित पायस से हवन करना चाहिये।

नीले आकाशरूपी वस्त्र धारण की हुई तथा जलबिन्दुओं की वर्षा करती हुई मनोरम मेघमाला मेरे चित्त में निवास करे—इस प्रकार ध्यान करके श्रावण की बहुलाष्टमी को जब रोहिणी नक्षत्र तथा मंगल, गुरु अथवा शुक्रवार हो तब रात्रि में विधि-पूर्वक स्नान करके सरोवर के मनोरम तट पर मन्त्र का दस हजार जप करके पायस से एक हजार हवन करने पर वह पयोदिनी देवी साधक के समक्ष प्रत्यक्ष होकर प्रसन्नता-पूर्वक उसे एक करक (कमण्डलु) प्रदान करती है। उस करक से समन्वित साधक के यहाँ अग्निदाह नहीं होता। अनावृष्टि काल में उस साधक के द्वारा देवी का ध्यान करने पर वर्षा होती है।।२९८-३०५।।

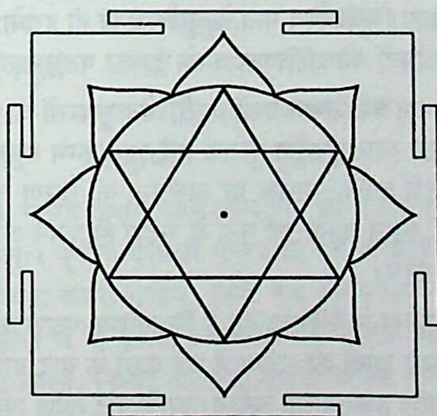
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हेरम्बं गणनायकम्।
चत्वरादिककाम्यास्य योगिन्यस्ति कपोतिका।
हंसवागीश्वरीशक्तिर्मन्त्राद्यस्य निरूप्यते ॥३०६॥
ॐह्रींॐह्रींॐ तथोक्त्वा सरस्वत्यै नमस्त्विति।
ऋषिः शक्तिश्च देव्यादिर्गायत्री छन्द ईरितम् ॥३०७॥
हंसवागीश्वरी देवी देवता परिकीर्त्तिता।
विद्वांस्तृतीयबीजेन षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥३०८॥
सुषुम्णाग्रे भ्रुवोर्मध्ये रन्ध्राणां नवमे तथा।
मन्त्राक्षराणि विन्यस्य चिन्तयेदिष्टदेवताम् ॥३०९॥
हंसपृष्ठस्थपद्मस्थां कान्तकर्पूरसन्निभाम्।
चन्द्राननां मन्दहासां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ॥३१०॥
पुस्तकं च करैर्वीणां जपमालां सुधाघटम्।
इति ध्यात्वा यजेत्पीठे मातृका याः पुरोदिताः ॥३११॥

हेरम्ब गणनायक—अब मैं हेरम्ब गणनायक को कहता हूँ। चत्वर (आँगन) की कामना करने वाली कपोतिका इनकी योगिनी है। इनकी शक्ति हंसवागीश्वरी है, जिसका मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः। इस मन्त्र के ऋषि एवं शक्ति देवी आदि हैं, छन्द गायत्री है तथा देवता देवी हंसवागीश्वरी हैं। विद्वान् को तृतीय बीज ॐ से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।

भ्रूमध्य में सुषुम्नाग्र में नवें द्वार पर मन्त्राक्षरों का न्यास करके इष्टदेवता का चिन्तन करना चाहिये। हंस के पृष्ठ पर स्थित कमल पर आसीन, मनोरम कर्पूर के समान आभा वाली, चन्द्रमुखी, मन्द हास्ययुक्त, शीर्ष पर अर्धचन्द्र को धारण की हुई, हाथों में पुस्तक वीणा जपमाला एवं अमृतकलश धारण की हुई देवी का ध्यान करके पूर्ववर्णित पीठ पर मातृकाओं का पूजन करना चाहिये।।३०६-३११।।

वर्णाद्येनासनं दद्यान्मूर्तिं मूलेन कल्पयेत्।
तस्यामावाह्य तां देवीमर्चयेद् गन्धपुष्पकैः ॥३१२॥
सम्पूज्य पार्श्वयोर्वाचौ संस्कृते प्राकृते उभे।
ततोऽङ्गानि च तच्छक्तीर्मातृर्लोकेश्वरानपि।
तदस्त्राणि ततो बाह्ये देवीमित्थं प्रपूजयेत् ॥३१३॥
प्रज्ञा मेधा श्रुतिः शक्तिः पञ्चमी स्मृतिरीरिता।
वागीशी सुमतिः स्वस्तिरष्टौ तच्छक्तयो मताः ॥३१४॥
वर्णैकाधिकलक्षन्तु जपेन्मन्त्रं समाहितः।
तत्सहस्रं प्रजुहुयात् सिताक्तैर्नागचम्पकैः।
तर्पणादि ततः कुर्य्यात्साधको नियतव्रतः ॥३१५॥
इमं मनुं यो भजते पातकैर्मुच्यतेऽचिरात्।
लक्ष्मीयशःकान्तियुतः कवित्वस्यालयं भवेत् ॥३१६॥
कुर्य्यात् पूर्वानुगदितान् प्रयोगानत्र मन्त्रवित्।

प्रथम वर्ण से आसन प्रदान करके मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करनी चाहिये। उस मूर्ति में देवी का आवाहन करके गन्ध-पुष्पादि से पूजन करने के बाद उसके दोनों पार्श्वों में संस्कृत और प्राकृत—दोनों भाषाओं का पूजन करने के उपरान्त क्रमशः षडङ्ग-पूजन, शक्ति-पूजन, मातृका-पूजन करने के पश्चात् दिक्पालों का पूजन करके उसके बाहर उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार देवी का पूजन सम्पन्न होता है। प्रज्ञा, मेधा, श्रुति, शक्ति, स्मृति, वागीशी, सुमति एवं स्वस्ति—ये आठ उसकी शक्तियाँ कही गई हैं।



एकाग्र चित्त से मन्त्र का वर्णलक्ष से एक अधिक अर्थात् ग्यारह लाख जप करने के बाद कर्पूर-सिक्त नागचम्पा से ग्यारह हजार हवन करना चाहिये। तदनन्तर व्रतनिष्ठ साधक को तर्पण आदि करना चाहिये। इस मन्त्र की जो आराधना करता है, वह शीघ्र ही समस्त पातकों से मुक्त होकर लक्ष्मी, यश तथा कान्ति से युक्त होता हुआ कवित्व का आगार हो जाता है। मन्त्रवित् साधक को पूर्व में कथित समस्त प्रयोगों का भी इस मन्त्र से साधन करना चाहिये।।३१२-३१६।।

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये यत्तस्याः षोडशार्णकम् ।।३१७।।
ऐंकारं पूर्वमुच्चार्य्य नमो भगवतीति च ।
वेदयुग्मं च वाग्देवी स्वाहान्तो मन्त्र ईरितः ।।३१८।।
पूर्वमन्त्रोदिताश्चात्र मुन्याद्याः सम्प्रकीर्तिताः ।
पदैर्मन्त्रस्य षड्भिः स्यात्षडङ्गं चैव जातिमत् ।।३१९।।
कुन्देन्दुभासिवसनां श्वेतमाल्यानुलेपनाम् ।
वनमालां तथा व्याख्यां मुद्रां पुस्तकमेव च ।।३२०।।
सुधाकुम्भं हस्तपद्मैर्दधतीं श्वेतपद्मगाम् ।
त्र्यक्षां चन्द्रार्धभालां च पीनोन्नतपयोधराम् ।।३२१।।
प्राग्वत्पूजाप्रयोगादिविशेषोऽत्र निगद्यते ।
अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः ।।३२२।।
यथाविधि जपान्ते च तद्दशांशं हुनेत्तिलैः ।
आज्याप्लुतैस्तर्पणादि सर्वं पूर्ववदाचरेत् ।।३२३।।

अब इसके सोलह अक्षरों वाले दूसरे मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ऐं नमो भगवति वेद वेद वाग्देवी स्वाहा। पूर्वकथित मन्त्र के ऋषि आदि ही इसके भी ऋषि आदि कहे गये हैं। मन्त्र के छः पदों को जातियुक्त करके इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।

कुन्दपुष्प के समान प्रकाशमान वस्त्रों वाली, श्वेत पुष्परसों का अनुलेप लगाई हुई, करकमलों में वनमाला व्याख्यानमुद्रा पुस्तक एवं अमृतकुम्भ धारण की हुई, श्वेत पद्म पर आसीन, तीन नेत्रों वाली, मस्तक पर अर्धचन्द्र को धारण की हुई, स्थूल उन्नत स्तनों वाली देवी का ध्यान करके पूर्व मन्त्र के सदृश ही पूजन आदि करके प्रयोग भी पूर्ववत् ही करना चाहिये।

इस मन्त्र की प्रक्रिया में वैशिष्ट्य यह है कि हविष्य-भक्षण करने वाले जितेन्द्रिय साधक को इसका आठ लाख की संख्या में जप करने के बाद यथाविधि आज्य-सिक्त तिलों से जप का दशांश हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि सब कुछ पूर्ववत् ही करना चाहिये।।३१७-३२३।।

अह्नो मुखे प्रत्यहं य एतज्जप्त्वा जलं पिबेत्।
संवत्सराद्भवेद्विद्वान्नात्र कार्य्या विचारणा॥३२४॥
स्नानकाले मन्त्रजप्तैस्तोयैः सिञ्चेत्स्वमूर्धनि।
सर्वैस्तोयैस्तर्पयेत्तां मेधा वंशे भवेद् ध्रुवम्।
जपित्वा मन्त्रमेतं च पुष्पगन्धादिकं सुधीः॥३२५॥
शिरसा धारयेत्तेन सभापूज्यः स जायते।
वादे च विजयो नित्यं भवेत्तस्य न संशयः॥३२६॥

प्रतिदिन प्रातःकाल इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल का पान करने से साधक एक वर्ष के भीतर विद्वान् हो जाता है; इसमें कुछ भी विचारणीय नहीं है।

स्नान के समय इस मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित जल द्वारा अपनी मूर्धा का सिञ्चन करने के उपरान्त समस्त जल से तर्पण करने वाले साधक के वंश में निश्चित ही मेधा का वास होता है।

इस मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित गन्ध-पुष्प आदि को शिर पर धारण करने वाला साधक सभापूज्य होता है और विवाद में उसकी निश्चित विजय होती है; इसमें कोई संशय नहीं है।।३२४-३२६।।

अन्यन्मन्त्रान्तरं चास्या वक्ष्यते रुद्रवर्णकम्।
ऐं वाचस्पते अमृते प्लुवः प्लुरिति कीर्तितः।
दशाक्षरवदस्यान्यत् पञ्चाङ्गं तु मनोः परैः॥३२७॥
पद्मसंस्थां पद्मयुगाक्षमालापुस्तकानि च।
करैर्दधानां चन्द्रार्धमुकुटां त्रीक्षणां सिताम्।
नानामुनिनुतां नम्रां स्तनभारेण तां भजे॥३२८॥
यजेच्च मातृकापीठे दशार्णोक्तेन वर्त्मना।
प्रयोगादि प्रकुर्वीत पूर्ववद्वै दशार्णवत्॥३२९॥

अब इसके ग्यारह अक्षरों वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ऐं वाचस्पते अमृते प्लुवः प्लुः। पूर्वोक्त दशाक्षर मन्त्र (वद वद वाग्वादिनी स्वाहा) के समान ही इसका पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिये। इसके बाद इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—पद्म पर आसीन, हाथों में दो कमल अक्षमाला एवं पुस्तक धारण की हुई, अर्धचन्द्र-समन्वित मुकुट वाली, निर्मल तीन नेत्रों वाली, अनेक मुनियों द्वारा स्तुत, स्तनभार से झुकी हुई उस देवी की मैं आराधना करता हूँ।

दशाक्षर मन्त्र में कथित रीति से मातृकापीठ पर इसका अर्चन करने के पश्चात् प्रयोगादि भी पूर्ववत् दशाक्षर मन्त्र के समान ही करना चाहिये।।३२७-३२९।।

विघ्नराजमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विघ्नराजं विनायकम्।
योगिनी पाशहस्तास्य वंशारोहणकारिणी।
सरस्वती शक्तिरस्य त्र्यर्णा चेटीत्रयान्विता ॥३३०॥
चारुस्वामीति मन्त्रोऽस्य विप्राणां परिकीर्त्तितः।
वाक्तुस्वामीति सञ्जप्यः क्षत्रियैः परतापकैः ॥३३१॥
ग्वारुं स्वामीति वैश्यानामैंरुं स्वाम्यङ्घ्रिजन्मनाम्।
ऋष्यादिकं दशार्णोक्तं देवी त्र्यर्णा सरस्वती ॥३३२॥
द्विरुच्चरितमूलेन षडङ्गं जातिसंयुतम्।
करन्यासं विधायाथ ध्यायेद्देवीं सरस्वतीम् ॥३३३॥
मुक्ताहारसमायुक्तां चन्द्रार्धकृतशेखराम्।
व्याख्यामुद्रा रत्नकुम्भं त्वक्षमालां च पुस्तकम् ॥३३४॥
पीनोत्तुङ्गकुचानम्रां श्वेताब्जस्थां सरस्वतीम् ॥३३५॥
पुरा प्रोक्ते मातृकायाः पीठे देवीं समर्चयेत्।
यथापूर्वं प्रत्यहं यः स भवेद्वाक्पतिर्ध्रुवम् ॥३३६॥

विघ्नराज विनायक मन्त्र—अब विघ्नराज विनायक को कहता हूँ। हाथ में पाश धारण की हुई एवं बाँस पर आरोहण करने वाली इनकी योगिनी तथा तीन चेटियों से समन्वित त्र्यर्णा सरस्वती इसकी शक्ति है। इसका 'चारुस्वामी' मन्त्र विप्रों के लिये, 'वाक्तुस्वामी' मन्त्र शत्रुओं को क्लेश देने वाले क्षत्रियों के लिये, 'ग्वारुं स्वामी' मन्त्र वैश्यों के लिये एवं 'ऐंरुं स्वामी' मन्त्र शूद्रों के लिये कहा गया है। दशाक्षर मन्त्र के समान ही इसके ऋषि आदि होते हैं एवं देवी त्र्यर्णा सरस्वती है।

जाति (नमः) से संयुक्त मूल मन्त्र का दो बार उच्चारण करके इसका षडङ्ग एवं करन्यास करने के पश्चात् देवी सरस्वती का ध्यान करना चाहिये। देवी सरस्वती मोतियों का हार धारण की हुई हैं, उनके शीर्ष पर अर्धचन्द्र सुशोभित है, वे अपने हाथों में व्याख्यानमुद्रा, रत्नकलश, अक्षमाला एवं पुस्तक धारण की हुई हैं, स्थूल एवं उन्नत स्तनों के कारण झुकी हुई हैं तथा श्वेत कमल पर विराजमान हैं।

जो साधक प्रतिदिन दशाक्षर मन्त्र में कथित मातृकापीठ पर पूर्ववत् देवी सरस्वती का सम्यक् रूप से अर्चन करता है, वह निश्चित ही वाणी का अधिपति हो जाता है।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी जितेन्द्रियः।
आज्याक्तहविषा वह्नौ दशांशं जुहुयात्ततः ॥३३७॥
तर्पणादि ततः कुर्य्यात्प्रागुक्तविधिना ततः।
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ॥३३८॥
चतुरङ्गुलसम्भूतैः सुमनोभिर्हुनेत्तु यः।
वाचः सोऽप्रतिमां सिद्धिमचिराल्लभते ध्रुवम् ॥३३९॥
कुचन्दनोदकेनाक्तैर्जातीपुष्पैः सिताम्बुजैः।
नन्द्यावर्तोद्भवैः कुन्दसंयुक्तैः कुसुमैर्हुनेत् ॥३४०॥
अचिरादतुलां वाचां सिद्धिं प्राप्नोत्यसंशयम्।
एवं मन्त्रं जपेन्मन्त्री सभायां जयमाप्नुयात् ॥३४१॥
वचां श्वेतां तथा ब्राह्मीं जपितां मनुनामुना।
अह्नो मुखे च यः खादेत्स मेधां वाञ्छितां लभेत् ॥३४२॥

मात्र हविष्य का भक्षण करने वाले जितेन्द्रिय साधक को पुरश्चरण-हेतु इसके मन्त्र का तीन लाख की संख्या में जप करके आज्य-सिक्त हविष्य से कृत जप का दशांश (तीस हजार) हवन करने के उपरान्त पूर्वोक्त विधि से तर्पण आदि करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक प्रयोगों को करने के योग्य हो जाता है।

जो साधक चार अंगुल वाले पुष्पों से हवन करता है, वह अतिशीघ्र ही अप्रतिम वाणी की सिद्धि प्राप्त कर लेता है। लाल चन्दन के जल से सिक्त जातीपुष्प, श्वेत कमल तथा नन्द्यावर्त में उत्पन्न कुन्दपुष्पों को मिलाकर जो हवन करता है, वह शीघ्र ही अतुलनीय वाणी की सिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसमें कोई संशय नहीं है। इस मन्त्र का जप करके सभा में जाने वाला साधक सभा को विजित कर लेता है।

जो साधक प्रतिदिन प्रात:काल इस मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित वचा, मिश्री एवं ब्राह्मी का भक्षण करता है, वह वाञ्छित मेधा प्राप्त करता है।।३३७-३४२।।

पाण्डवी पृथुमध्या च पार्थिवा चेति चेटिकाः।
ॐ पाण्डवीति बगले ततश्च बगलामुखि ॥३४३॥
शत्रोः पादं स्तम्भयद्विः क्लीं ह्रीं भुवं चरे वदेत्।
स्फ्रीं स्वाहेति त्रिंशार्णो मन्त्रो ध्यानं निरूप्यते ॥३४४॥
पीताम्बरां पीतवर्णां पीतगन्धानुलेपनाम्।
प्रेतासनां पीतवर्णां विचित्रां पाण्डवीं भजे ॥३४५॥

अयुतत्रितयं जप्त्वा कुसुम्भकुसुमैर्हुनेत्।
एवं कृत्वा पुरश्चर्य्यां पश्चात्साधनमाचरेत् ॥३४६॥
वत्सरादौ प्रतिपदि शुक्रवारे जपेन्निशि।
अयुतं तद्दशांशेन कुसुम्भकुसुमैर्हुनेत् ॥३४७॥
प्रसन्ना जायते देवी वस्त्रमेकं ददाति च।
वैरिणोद्वेगतो बद्धं गतिस्तम्भः प्रजायते ॥३४८॥

विघ्नराज विनायक की तीन चेटियाँ हैं—पाण्डवी, पृथुमध्या और पार्थिवा। इनमें से पाण्डवी का तीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ पाण्डवि बगले बगलामुखि शत्रोः पादं स्तम्भय स्तम्भय क्लीं ह्रीं भुवं चरे स्क्रीं स्वाहा। पाण्डवी का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—पीत वस्त्र धारण करने वाली, पीत वर्ण वाली, पीत गन्ध का अनुलेप लगायी हुई, प्रेत के पीत आसन पर विराजमान विचित्र पाण्डवी की मैं आराधना करता हूँ। तदनन्तर मन्त्र का तीस हजार जप करके कुसुम्भपुष्पों से कृत जप का दशांश (तीन हजार) हवन करना चाहिये। इस प्रकार पुरश्चरण सम्पन्न करने के पश्चात् प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

वर्ष के आरम्भ में अर्थात् चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा शुक्रवार की रात्रि में मन्त्र का दश हजार जप करके कुसुम्भपुष्पों से जप का दशांश हवन करने से देवी प्रसन्न होकर साधक को एक वस्त्र प्रदान करती है। उस वस्त्र के धारण से शत्रुओं में उद्वेग उत्पन्न हो जाता है, वे बन्धन में बद्ध हो जाते हैं और उनकी गति अवरुद्ध हो जाती है।।३४३-३४८।।

कार्त्तिके कृष्णषष्ठ्यान्तु वटवृक्षतले स्थितः।
जप्त्वायुतं चूतपत्रैः ससुगन्ध्यगुरूद्भवैः।
तैलयुक्तैर्भवेद्धोमः पृथुमध्या प्रसीदति ॥३४९॥
ददाति पीठं तत्रस्थो दृष्ट्या रामाश्च मोहयेत्।
वहन्ति पञ्चभूतानि तत्पीठं तेन खे गतिः ॥३५०॥
उन्मत्तजनगां देवीं स्थूलाङ्गीं कलहप्रियाम्।
कार्त्तिकेयगुहाखेलां पृथुमध्यां भजाम्यहम् ॥३५१॥

कार्तिक मास के कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि को वटवृक्ष के नीचे बैठकर मन्त्र का दस हजार जप करके अगुरु के तैल से समन्वित आम के पत्तों से हवन करने पर देवी पृथुमध्या प्रसन्न होती है। वह साधक को एक पीठ प्रदान करती है, जिस पर बैठकर साधक अपनी दृष्टि से रमणियों को मोहित कर लेता है। उस पीठ के नीचे पञ्चभूत

विराजमान रहते हैं, इसलिये साधक आकाशचारी होता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—उन्मत्त जनों में गमन करने वाली, स्थूल अंगों वाली, कलहप्रिया, कार्त्तिकेय गुह से लीलाविलास करने वाली देवी पृथुमध्या की मैं आराधना करता हूँ।।३४९-३५१।।

ॐ पार्थिवे च पृथिवीतलचारिणि वायुमा।
ततो लिनि च तारुण्यं कुरुयुग्मं च धं च धम् ।।३५२।।
स्वाहैकोनत्रिंशदर्णः पार्थिवाया मनुः स्मृतः।
नदीतीरे वृष्टिकाले चतुर्दश्यां निशान्तरे ।।३५३।।
कूलं खनित्वा कुहरं कर्त्तव्यं युगसप्तकम् ।
जपस्यार्धायुतो होमः कदलीखण्डकैस्तथा ।।३५४।।
पृथिवीतलसञ्चारशालिनीं वायुमालिनीम् ।
भजामि पार्थिवीं देवीं तारुण्याङ्कप्रदां शिवाम् ।।३५५।।
तुष्टा ददाति सा शक्तिं पृथिव्यन्तरचारिणीम् ।
जरामरणराहित्यं सम्भवेच्चैव सर्वगः ।।३५६।।

पार्थिवा का उन्तीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ पार्थिवे च पृथिवीतलचारिणि वायुमालिनि तारुण्यं कुरु कुरु धं धं स्वाहा। वर्षाकाल में नदी के किनारे चतुर्दशी की मध्यरात्रि में चौदह गहरा गड्ढा खोदकर मन्त्र का बीस हजार जप करने के उपरान्त जप का आधा दस हजार केले के टुकड़ों से हवन करके 'पृथिवीतल पर सञ्चरण करने वाली, वायुमालिनी, तारुण अंक प्रदान करने वाली कल्याणकारिणी पार्थिवी देवी की मैं आराधना करता हूँ' इस प्रकार आराधना करने पर प्रसन्न वह देवी साधक को पृथिवी के भीतर सञ्चरण करने की शक्ति प्रदान करती है। उसके प्रभाव से वह साधक जरा-मरण से रहित होकर सर्वत्र मन करने में समर्थ हो जाता है।।३५२-३५६।।

विनायकस्तु प्रवरो दण्डहस्तास्य योगिनी।
रज्जुरोहास्वरूपा सा चेटी कङ्कालिका मता ।।३५७।।
ऐं कङ्कालीमहाकालीकलिकलाभ्यामुच्चरेत् ।
स्वाहान्तःस्थितिवर्णोऽयं लक्षमस्य जपो मतः ।।३५८।।
हुनेदस्य सहस्रैकं क्कङ्काली वरदा भवेत् ।
ईप्सितं तत्साधकस्य तदेकं सा प्रयच्छति ।।३५९।।

प्रवरविनायक—प्रवरविनायक की योगिनी रस्सी पर चढ़ी हुई दण्डहस्ता एवं चेटी कङ्कालिका कही गई है। पन्द्रह अक्षरों का इसका मन्त्र है—ऐं कंकालीमहा-

कालीकलिकलाभ्यां स्वाहा। पुरश्चरण-हेतु इसका एक लाख जप कहा गया है। जप के बाद एक हजार हवन करने पर कंकाली वर प्रदान करने के लिये उद्यत होती हैं और साधक का जो अभीष्ट होता है, उसमें से कोई एक वस्तु प्रदान करती है।

मोदकप्रियगणेशमन्त्रः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गणेशं मोदकप्रियम्।
प्रचण्डा योगिनी चास्य चेटिका पङ्कवासिनी ।।३६०।।
ॐ पङ्कवासिनी पङ्कजावती वनदेवते।
केदारं देहि सिद्धिं च कुरु द्विः कामबीजकम्।
रमा बीजं वह्निजाया चैकत्रिंशाक्षरो मनुः ।।३६१।।
वैशाखे पद्मसरसि स्वल्पोदे जलवर्जिते।
सप्तरात्रं जपेन्मन्त्रं दिवसे लक्षसङ्ख्यया।
होमस्तत्पत्रपुष्पैश्च देव्या ध्यानं निरूप्यते ।।३६२।।
पङ्कजाक्षि निशि वै शिवदूति स्मेरवक्त्रनयनाम्बुजलीले।
मानसे मम वस स्मर देवि प्रत्यहं कमलकाननसंस्थे ।।३६३।।
तदा देवी समागत्य त्रिजगद्वशकारकम्।
ददाति केशरं चैकं कल्पपुष्पातिगन्धवत् ।।३६४।।
घर्षयित्वास्य तिलके कृते स्यादखिलं जगत्।
वश्यं राजस्त्रियो भूपाः पण्डिता देवता अपि ।।३६५।।

मोदकप्रिय गणेश—अब मैं मोदकप्रिय गणेश को कहता हूँ। इनकी योगिनी प्रचण्डा एवं चेटी पङ्कवासिनी है, जिसका इकतीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है— ॐ पंकवासिनी पंकजावती वनदेवते केदारं देहि सिद्धिं कुरु कुरु क्लीं श्रीं स्वाहा।

वैशाख मास में जलरहित कमलसरोवर के स्वल्प जल में सात रात्रियों तक प्रतिदिन एक लाख की संख्या के हिसाब से मन्त्र का जप करने के बाद कमल के पत्ते और फूलों से हवन करना चाहिये। अब इसका ध्यान कहा जा रहा है। रात्रि में प्रफुल्लित मुख एवं नेत्रों से लीलाविलास करने वाली, शिवदूती-स्वरूपा, कमलवन में निवास करने वाली एवं काम की देवी हे पङ्कजाक्षि! मेरे मन में निवास करो।— इस प्रकार से ध्यान करने पर देवी साधक के समक्ष प्रत्यक्ष होकर तीनों लोकों को वश में करने वाला कल्पपुष्प के सदृश उत्कट गन्ध वाला एक केशर प्रदान करती है, जिसे घिसकर तिलक करने से सम्पूर्ण संसार के साथ-साथ राजरानियाँ, राजागण, पण्डित एवं देवता भी वशीभूत हो जाते हैं।।३६०-३६५।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पूर्वदिक्स्थान् विनायकान्।
महाश्मशानमावृत्य स्थितानभयदायकान् ॥३६६॥
प्रथमं मनवश्चैषां स्वबीजहृदयादिकम्।
चतुर्थ्यन्तं भवेन्नाम योगिनी वसुविक्रमा ॥३६७॥
चेष्टां वातुलवत्त् कुर्य्यात् पारिजातसरस्वती।
अस्य शक्तिस्तु तन्मन्त्रः प्रोक्त एकादशाक्षरः ॥३६८॥
ॐ ह्रीं हंसवर्णाश्च सैकारा बिन्दुसंयुताः।
पुनर्ह्रीं मां सरस्वत्यै हृदयान्तो मनुर्मतः ॥३६९॥

अब मैं काशी की पूर्व दिशा में अवस्थित विनायकों को कहता हूँ। ये विनायक महाश्मशान को घेरकर स्थित रहते हुये अभय प्रदान करने वाले हैं। अपने बीज-हृदय आदि से समन्वित चतुर्थ्यन्त नाम इनका प्रथम मन्त्र होता है। इनकी योगिनी वसुविक्रमा है, जो पागलों के समान चेष्टायें करती रहती है। इसकी शक्ति पारिजात सरस्वती है, जिसका ग्यारह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ह्रीं हंसः ऐं ह्रीं सरस्वत्यै नमः।

ऋषिध्यानन्यासजपं हंसवागीश्वरीमतम्।
प्रयोगाश्चापि सिद्ध्यन्ति पूर्वोक्ताः सर्व एव हि ॥३७०॥
वरानना चेटिकास्य तस्याः साधनमुच्यते।
वरानने पदं चोक्त्त्वा वामलोचन इत्यपि ॥३७१॥
परस्य मारिणी चोक्त्वा मालिनीद्वितयं ततः।
धुं धुं धीं वह्निजायान्तो मनुः षड्विंशदर्णकः ॥३७२॥
सौन्दर्य्यामृतसन्दोहसारभूतामिमां पराम्।
विवर्धितां स्थिरां देवीं सम्भजे तां वराननाम् ॥३७३॥
रथ्याद्वारे कुजे कृष्णसप्तम्यां तु शुचिर्यजेत्।
सहस्त्रत्रितयं होमः शङ्खैश्चापि कपर्दकैः ॥३७४॥
ततः स्त्रीरूपिणी दद्यात्कपर्दैकं वरानना।
कपर्दं स्थापयेद्यत्र कणादीनां कुशूलके ॥३७५॥
त्रिदिनावधि तद्धान्यं विक्रीतं नैव हीयते।
ततो धान्यान्तरं स्थाप्यं वृद्धिस्तत्रापि जायते ॥३७६॥

इस मन्त्र के ऋषि, ध्यान, न्यास एवं जप हंसवागीश्वरी मन्त्र के समान कहे गये हैं; साथ ही हंसवागीश्वरी के समान ही इसके प्रयोग भी सिद्ध होते हैं। इसकी चेटी वरानना है, अब उसका साधन कहा जा रहा है। वरानना का छब्बीस अक्षरों का मन्त्र

है—वरानने वामलोचनपरस्य मारिणी मालिनी मालिनी धुं धुं धीं स्वाहा। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—सौन्दर्यरूपी अमृतसागर की सारस्वरूपा, अतिशय वर्धमाना एवं स्थिरा देवी वरानना की मैं सम्यक् रूप से आराधना करता हूँ।

रथ्या (सड़क) के उत्पत्तिस्थान पर मंगलवार को कृष्णपक्ष की सप्तमी तिथि को पवित्रता-पूर्वक देवी का यजन करके शंख एवं कपर्दक (कौड़ी) से तीन हजार आहुतियों द्वारा हवन करने पर स्त्री-स्वरूपिणी वरानना साधक के समक्ष प्रकट होकर उसे एक कौड़ी प्रदान करती है। उस कौड़ी को धान्य आदि के कुशूल (कोठार) में तीन दिनों तक रखने से उसमें रखा हुआ धान्य विक्रय करने पर भी कम नहीं होता। तत्पश्चात् दूसरे धान्यों में उसे रखने से उनकी भी वृद्धि होती है।।३७०-३७६।।

सिंहतुण्डो गणाध्यक्षो वेणुप्रा चास्य योगिनी।
पृथिव्यावेष्टनकरी सप्तकोटेश्वरी मता ॥३७७॥
शक्तिश्चेटी विधुश्रेष्ठा ततः साधनमुच्यते।
कः स उक्त्वा चण्डिकां च सः कः सप्ताक्षरो मनुः ॥३७८॥
ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः प्रोक्तं च देवता।
सप्तकोटेश्वरी देवी वागैश्वर्य्यकरी मता ॥३७९॥
षड्दीर्घयुक्चकारेण षडङ्गं सम्प्रकीर्तितम्।
अस्याः पूजादिकं सर्वं त्रिपुरावत्प्रकीर्तितम् ॥३८०॥
विधुश्रेष्ठामनुं वक्ष्ये विधुश्रेष्ठे विपद्गते।
मानं पूरय कर्णान्ते ताटङ्कं देहि युग्मकम्।
थं लक्ष्मीर्वह्निजायान्तः सप्तविंशाक्षरो मनुः ॥३८१॥
चित्रायां सोमवारे च यदा सोमग्रहो भवेत्।
यावद्विधुविमोक्षः स्यात्तावन्मन्त्रं जपेज्जले ॥३८२॥
तदा देवी तु ताटङ्कं दद्यात् सव्यश्रुतिस्थितम्।
पूर्णचन्द्रप्रभाभं तदमां पूर्णां करोति च ॥३८३॥
साधको लोकमान्यश्च ध्यानमस्या निरूप्यते।
चन्द्रमण्डलसंस्थां तां विधुश्रेष्ठां वियद्गताम्।
काश्मीरचारुताटङ्कां ध्यायामि शिववल्लभाम् ॥३८४॥

सिंहतुण्ड गणेश—सिंहतुण्ड गणेश की योगिनी वेणुप्रा है, जो पृथिवी को आवेष्टित करने वाले सात दुर्गों की स्वामिनी कही गई है। इसकी शक्ति और चेटी विधुश्रेष्ठा है। इसका साधन बतलाता हूँ। 'कः सः चण्डिका सः कः'—यह सात

अक्षरों वाला इसका मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता वागैश्वर्य प्रदान करने वाली सप्तकोटेश्वरी कही गई हैं। छः दीर्घ चकार (चां चीं चूं चैं चौं चः) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इसकी पूजा आदि सभी कृत्य त्रिपुरा के समान कहे गये हैं।

विधुश्रेष्ठा का सत्ताईस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ विधुश्रेष्ठे विपद्गते मानं पूरय कर्णताटङ्कं देहि देहि थं श्रीं स्वाहा। सोमवार को चित्रा नक्षत्र में जब चन्द्रग्रहण लगे तब ग्रहण से मोक्ष-पर्यन्त जल में खड़े होकर मन्त्र का जप करने पर देवी अपने बाँयें कान में विद्यमान ताटङ्क (कान का बाला) उतारकर साधक को प्रदान कर देती है। पूर्ण चन्द्र की प्रभा के सदृश कान्तिमान वह ताटङ्क अमावास्या को भी पूर्णिमा बना देता है। उसे पाकर साधक लोकमान्य हो जाता है।

अब इसके ध्यान को कहा जा रहा है। आकाश में अवस्थित चन्द्रमण्डल में विराजमान, काश्मीर के समान मनोहर ताटङ्क धारण करने वाली शिवप्रिया विधुश्रेष्ठा का मैं ध्यान करता हूँ।।३७७-३८४।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कुपिताक्षङ्गजाननम्।
पापहन्त्री योगिनी तु पुत्रदारूपधारिणी ।।३८५।।
कुपिताक्षस्य शक्तिस्तु बाला स्याद्वामलोचना।
अस्य चेटी समाख्याता तस्याः साधनमुच्यते ।।३८६।।
ऐंक्लींसौरिति बालायास्त्र्यक्षरो मन्त्र उच्यते।
ऋषिस्तु दक्षिणामूर्तिः पङ्क्तिश्छन्दोऽस्य देवता ।।३८७।।
बाला बीजं वाङ्मयं स्यात्तार्त्तीयं शक्तिरुच्यते।
कीलकं कामराजः स्याद् द्विरावृत्त्या षडङ्गकम् ।।३८८।।
यथा त्रिपुरभैरव्यास्त्र्यर्णन्यासाः पुरोदिताः।
एतद्बीजेन ते सर्वे कर्तव्यास्तत्फलाप्तये ।।३८९।।
अभयं पुस्तकं मालां वरं च दधतीं करैः।
अरुणामरुणाब्जस्थां रक्तवस्त्रां द्विजेशकाम् ।।३९०।।
यन्त्रोद्धारश्च पूजायां पूजयेत् सकलं तथा।
ज्ञेयं त्रिपुरभैरव्यास्त्र्यक्षरायाश्च तत्समम् ।।३९१।।
जपो लक्षत्रयं होमे द्रव्याद्यं तद्वदेव हि।
कुमारीपूजनं नित्यं काम्यसिद्ध्यर्थमुच्यते ।।३९२।।

कुपिताक्ष गणेश—अब मैं कुपिताक्ष गजानन को कहता हूँ। नसकी योगिनी

पुत्रदा रूप धारण करने वाली पापहन्त्री है। कुपिताक्ष की शक्ति सुन्दर नेत्रों वाली बाला है, जो इसकी चेटी कही गई है। अब उसके साधन को कहता हूँ। बाला का तीन अक्षरों का मन्त्र है—ऐं क्लीं सौ:। इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द पंक्ति एवं देवता बाला हैं। 'ऐं' बीज है, 'क्लीं' शक्ति है एवं 'सौ:' कीलक है। इस मन्त्र की दो आवृत्ति से इसका षडङ्गन्यास सम्पन्न होता है।

जिस प्रकार त्रिपुरभैरवी का वर्णन्यास पूर्व में कहा गया है, उसी प्रकार फल की प्राप्ति के लिये इसके बीज से वे सभी न्यास करने चाहिये। इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—हाथों में अभय पुस्तक माला एवं वर धारण की हुई, रक्त वर्ण वाली, रक्त कमल पर आसीन, रक्त वस्त्र धारण की हुई तथा चन्द्रमा को शिर पर धारण की हुई देवी का मैं ध्यान करता हूँ।

त्रिपुरभैरवी के त्र्यक्षर मन्त्र के समान ही यन्त्र बनाकर तदनुसार ही इसका पूजन करना चाहिये (त्रिपुरभैरवी का पूजन-विधान सत्रहवें प्रकाश के ४६८ से ४९९ श्लोक में द्रष्टव्य है)। इस मन्त्र का जप तीन लाख करना चाहिये। तत्पश्चात् किये जाने वाले हवन की सामग्रियाँ भी त्रिपुरभैरवी के समान ही हैं। कार्यसिद्धि के लिये नित्य कुमारी-पूजन करना चाहिये।।३८५-३९२।।

मालतीजातिकामल्लीकुसुमैर्मधुमिश्रितैः।
घृतचूर्णैश्च जुहुयाद्वागीशत्वं प्रजायते।
मूकस्यापि हि मूढस्य शिलारूपस्य नान्यथा।।३९३।।
जपापुष्पैराज्ययुतै रक्तक्षीरैर्यथाविधि।
हवनान्मोहयेन्मन्त्री लोकत्रयनिवासिनः।।३९४।।
कस्तूरीकुङ्कुमेन्दूनां हवनात् कामवद्भवेत्।
चम्पकैः पाटलैर्होमान्महतीं श्रियमाप्नुयात्।।३९५।।
गुग्गुल्वगुरुकर्पूरचन्दनानां च होमतः।
राजनागेन्द्रदेवानां पुरन्ध्रीर्वशमानयेत्।।३९६।।
लाक्षाहोमाल्लभेद्राज्यं पक्वान्नमधुहोमतः।
उपसर्गनिवृत्तिः स्यात्कह्लारहवनाद्धनम्।।३९७।।
दुग्धेनायुर्धनं दध्ना मेधारोग्यं घृतेन तु।
समिद्भिर्जायते क्षीरं मधुना मृत्युनाशनम्।।३९८।।
दधिमाक्षिकहोमेन सौभाग्यं धनमाप्नुयात्।

मधु-मिश्रित मालती, जाती एवं मल्लिकापुष्पों के साथ घृत मिलाकर हवन करने

से मूक (गूंगे) एवं वज्रमूढ़ व्यक्ति को भी वागीशत्व की प्राप्ति होती है। गोघृत-सिक्त अड़हुलपुष्पों के साथ लाल दूध मिलाकर विधिपूर्वक हवन करने वाला साधक तीनों लोक के निवासियों को मोहित कर लेता है। कस्तूरी, कुमकुम, कपूर के हवन से साधक कामदेव के समान हो जाता है। चम्पा और गुलाब के हवन से साधक महालक्ष्मी को प्राप्त करता है। गुग्गुलु, अगुरु, कपूर एवं चन्दन के हवन से राजाओं, नागेन्द्रों एवं देवताओं की स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। लाख के हवन से राज्य की प्राप्ति होती है। पक्वान्न एवं मधु के हवन से महामारी की निवृत्ति होती है। कह्लार के हवन से धन-प्राप्ति होती है। दूध के हवन से आयु, दधि के हवन से मेधा, घृत के हवन से आरोग्य एवं समिधा के हवन से दुग्ध की प्राप्ति होती है तथा मधु के हवन से मृत्यु का विनाश होता है। दधि और मधु के हवन से सौभाग्यवृद्धि तथा धन की प्राप्ति होती है।।३९३-३९८।।

कह्लारहवनाद्भाग्यं मधुरत्रयरक्तयुक् ।।३९९।।
छागमांसं हुनेत्सर्वं परराष्ट्रं वशं नयेत् ।
वैरिस्तम्भः सिताहोमाल्लाक्षाक्षीरपयोदधि ।
हुतं तदल्पमृत्योश्च रोगाणां चापि नाशनम् ।।४००।।
कमलैररुणैर्होमः सम्यक्सम्पत्तिदायकः ।
रक्तोत्पलैर्जगद्वश्यं लक्ष्मीर्भाग्यं सितोत्पलैः ।।४०१।।
दाडिमं मातुलुङ्गं च नारङ्गं सकलं क्रमात् ।
कूष्माण्डं जुहुयाद्विप्रादिका वश्या न संशयः ।।४०२।।
खर्ज्जूरीफललक्षस्य होमात्सर्वे नृपा वशाः ।
द्राक्षालाक्षासिद्धयष्टीकदलीफलहोमतः ।।४०३।।
लक्षाद्विंशतिराजानो वश्यास्तस्य महीपतेः ।
नालिकेरेण लक्षं चेद्धुतोऽग्निर्नृपवद्भवेत् ।।४०४।।
पक्वाम्रलक्षहोमेन सम्पूर्णा धरणी वशा ।
पनसस्य फलैर्लक्षहोमाद्वश्याः शतं नृपाः ।।४०५।।
गुग्गुलूनां तु होमेन सर्वदुःखानि नाशयेत् ।
वश्याः सर्वे तिलाज्याभ्यां चन्दनेन तु शत्रवः ।।४०६।।
रक्तचन्दनहोमेन वश्याः स्युः पुरुषाः स्त्रियः ।
खर्ज्जूरस्य तु होमेन वाग्वश्यं जायते नृणाम् ।।४०७।।
कस्तूरीहोमतो भूपा मन्त्रिणः परिचारकाः ।

कल्हार के हवन से भाग्यवृद्धि होती है। मधुरत्रय एवं रक्त-मिश्रित छागमांस के हवन से साधक शत्रुराष्ट्रों को वशीभूत कर लेता है। कर्पूर के हवन से शत्रुस्तम्भन होता है। लाख, जल, दूध एवं दधि के हवन से अल्पमृत्यु और रोगों का नाश होता है। लाल कमलों से किया गया हवन सम्पत्तिदायक होता है। लाल कुमुद के हवन से संसार वशीभूत होता है। श्वेत उत्पल के हवन से लक्ष्मी और भाग्य प्राप्त होता है। अनार, मातुलुङ्ग, नारङ्गी एवं कूष्माण्ड के अलग-अलग हवन से क्रमशः विप्र, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वशीभूत होते हैं। खजूर के एक लाख फलों के होम से सभी राजा वशीभूत होते हैं। दाख, लाख, सिद्धयष्टि एवं केला से एक लाख हवन करने पर बीस राजा सम्राट् के वशीभूत होते हैं। नारियल से एक लाख हवन करने पर अग्नि ही राजा के समान हो जाती है। पके आम से एक लाख हवन करने पर सम्पूर्ण पृथ्वी वशीभूत होती है। कटहल के फल से एक लाख हवन करने पर सौ राजा वशीभूत होते हैं।

गुग्गुलु के हवन से समस्त दुःखों का नाश होता है। तिल एवं गोघृत के हवन से सभी वशीभूत होते हैं। चन्दन के हवन से शत्रु वशीभूत होते हैं। रक्तचन्दन के होम से समस्त पुरुष एवं स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। खजूर के हवन से राजाओं की वाणी वशीभूत होती है अर्थात् राजा वचनबद्ध हो जाता है। कस्तूरी के हवन से राजा, मन्त्री और परिचारक वशीभूत होते हैं।।३९९-४०७।।

नीलतण्डुलहोमेन शान्तिर्भवति मन्दिरे ।।४०८।।
शर्कराघृतहोमेन सर्वकार्य्याणि साधयेत् ।
घृतपायसहोमेन धान्यसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।।४०९।।
तत्तदन्नस्य होमेन तत्तत्सिद्धिः प्रजायते ।
सोपस्करैश्च वटकैरुपसर्गान्विनाशयेत् ।।४१०।।
बन्धूककुसुमैर्होमात्सर्वसत्त्वं वशं नयेत् ।
जपापुष्पैर्जगद्वश्यं बाणपुष्पैश्च मोहनम् ।।४११।।
बहुलस्य हुनेत्पुष्पैः सौभाग्यं जायते महत् ।
दशाङ्गधूपहोमाच्च सौभाग्यमतुलं भवेत् ।।४१२।।
जम्बूफलैः स्त्रियो वश्याः कूष्माण्डैर्दैत्यकन्यकाः ।
श्रीफलैरतुला लक्ष्मीरिक्षुदण्डैः सुखं भवेत् ।।४१३।।
रसादिक्षो राजकन्या नालिकेरफलेन वा ।
केवलं घृतहोमेन वरदाः सर्वशक्तयः ।।४१४।।

नीले चावल के हवन से घर में शान्ति होती है। शक्कर और घृत के हवन से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। घृत एवं पायस के हवन से निश्चित ही धान्य-सिद्धि होती है। जिस-जिस अन्न से हवन किया जाता है, उस-उस अन्न की सिद्धि (प्राप्ति) होती है। उपस्कर-सहित वटकों (बड़ों) के हवन से महामारी की शान्ति होती है। बन्धूकपुष्पों के हवन से समस्त प्राणी वशीभूत होते हैं। अड़हुलपुष्प के हवन से संसार का वशीकरण होता है एवं बाणपुष्पों के हवन से सम्मोहन होता है।

श्वेत मरिचपुष्पों के हवन से महान् सौभाग्य की प्राप्ति होती है। दशांग धूप के हवन से सौभाग्य अतुलनीय होता है। जम्बूफल (जामुन) के हवन से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। कुष्माण्ड (कोहड़ा) के हवन से दैत्यकन्यायें वशीभूत होती हैं। श्रीफल के हवन से अतुल धन-प्राप्ति एवं ईखखण्डों के हवन से सुख-प्राप्ति होती है। ईख के रस अथवा नारियल के फल से हवन करने पर राजकुमारी वशीभूत होती है। केवल घृत के हवन से सभी शक्तियाँ वरदायिनी होती हैं।।४०८-४१४।।

वामी तु संगमात्पूर्वं प्रजपेद्वामचक्षुषः ।
शतमात्रं पौर्णमास्यां विशाखादित्यसङ्गमे ।।४१५।।
सद्यः प्रसन्ना देवी स्याद्वीर्य्यस्तम्भं ददाति सा ।
अपि कान्ताशतासङ्गे नासौ स्खलति मानवः ।।४१६।।
रतिदेवीं रतिप्रीतिं कामकीर्त्तिं मनोरमाम् ।
मम कामप्रदां सद्यः सम्भजे वामलोचनाम् ।।४१७।।
ईं लीं भीं रं समुच्चार्य वमुक्त्वा वामलोचने ।
वीर्य्यं स्तम्भय द्विश्चोक्त्वा नादे मा कुरु चोच्यते ।।४१८।।
पञ्चविंशतिवर्णोऽयं स्वाहान्तो मन्त्र ईरितः ।
मदनान्धो लक्षजपात्सिद्ध्येद्वा वामलोचना ।।४१९।।

पूर्णिमा तिथि को सूर्य एवं विशाखा नक्षत्र का संयोग होने पर वाममार्गी साधक को सुन्दरी से समागम के पूर्व मन्त्र का एक सौ बार जप करना चाहिये। इससे देवी प्रसन्न होकर उसे वीर्यस्तम्भन की शक्ति प्रदान करती है और एक सौ रमणियों के साथ समागम करने पर भी वह साधक स्खलित नहीं होता। उस समय साधक को इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—रति की देवी, रति से प्रेम करने वाली, काम को ही कीर्तिस्वरूप मानने वाली मनोरमा सुन्दरी मुझे तत्काल काम प्रदान करे; मैं उसे प्रणाम करता हूँ। तदनन्तर 'ईं लीं भीं रं वं वामलोचने वीर्यं स्तम्भय स्तम्भय नादे मा कुरु स्वाहा' यह पच्चीस अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। मदनान्ध होकर सुन्दरी को देखते हुये इस मन्त्र का एक लाख जप करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।४१५-४१९।।

प्रागुक्तो यस्तु विघ्नेशो नाम्ना क्षिप्रप्रसादनः।
काली च योगिनी तस्य शक्तिर्वागीशभैरवी।
चित्राक्षी चेटिका चास्य पुरे वसति योगिनी ॥४२०॥
स्थैं ह्रीं चैव समुच्चार्य्य नित्यक्लिन्नेपदं वदेत्।
मदद्रवे च सहरा औकारेण समन्विताः ॥४२१॥
एकादशाक्षरो मन्त्रो न्यासध्यानादिकं तथा।
चैतन्यभैरवीतुल्यं विशेषोऽयं च पूजने ॥४२२॥
अग्रकोणे च चैतन्यनित्यक्लिन्नां मदद्रवाम्।
षडङ्गावरणं पश्चादन्यत्सर्वं यथोक्तवत् ॥४२३॥
तुल्यश्चैतन्यभैरव्याः प्रयोगादिः प्रकीर्तितः।

पूर्व में जो क्षिप्रप्रसादन नामक विघ्नेश कहे गये हैं, उनकी योगिनी काली, शक्ति वागीशभैरवी तथा चेटी चित्राक्षी है, जो योगिनी के नगर में निवास करती है। इसका मन्त्र है—स्थैं ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्ह्रौम्। इस एकादशाक्षर मन्त्र के न्यास-ध्यान आदि चैतन्यभैरवी के समान होते हैं। इसके पूजन में विशेषता यह है कि षडङ्ग-पूजन के समय अग्रकोण में 'चैतन्यनित्यक्लिन्नां मदद्रवाम्' का उच्चारण करके पूजन करना चाहिये। इसके बाद समस्त पूजन चैतन्यभैरवी के समान करना चाहिये। चैतन्यभैरवी के समान ही इसके प्रयोग आदि भी कहे गये हैं।।४२०-४२३।।

चित्राक्ष्याः साधनं वच्मि तदेकान्ते नदीतटे ॥४२४॥
षट्कोणं मण्डलं कृत्वा तोयपूर्णान् घटान्यसेत्।
कोणषट्के तत्र सुराञ्छक्रादींस्तु प्रपूजयेत्।
इन्द्रं विधिं यमं कालं विष्णुमीशं क्रमेण च ॥४२५॥
अक्षय्यमावृतो योऽयमारम्भस्य प्रकीर्तितः।
तदूर्ध्वमासनं कृत्वा मध्याह्ने प्रजपेन्मनुम्।
नित्यं शतत्रयं होमस्त्रिरेलायाः फलैर्भवेत् ॥४२६॥
कुर्यादेवं प्रत्यहन्तु तृतीया त्वाष्ट्रसंयुता।
सोमेन रविणा वापि यदा युक्ता भवेत्तदा ॥४२७॥
प्रातःकालाज्जपः कार्यो घटाद्देवी वदेत्स्फुटम्।
येषु कुम्भेषु यद्द्रव्यं स्थापनीयं तथा तु तत्।
भविष्यति तदक्षय्यं ध्यानमस्या निरूप्यते ॥४२८॥
रुद्रादिप्रेतमौलिस्थां कलशाङ्कुरमालिनीम्।
चित्राक्षीं चित्रवेषां तां सम्भजे परमेश्वरीम् ॥४२९॥

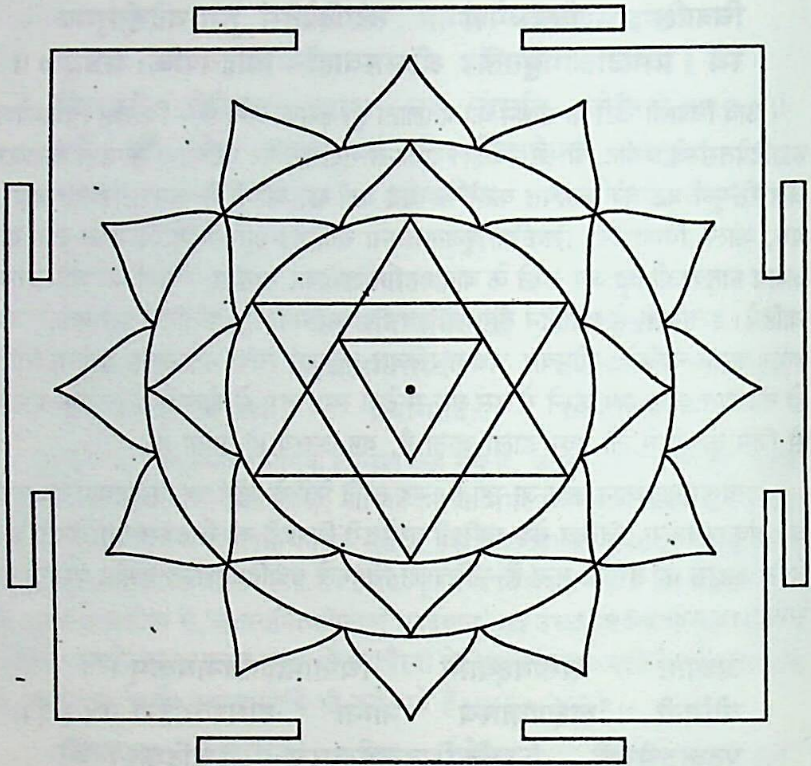
चित्राक्षि चित्ररूपेण रुद्रादिप्रेतसं वदेत्।
स्थे प्रसीदेति युगलं श्रीं स्वाहा त्रिद्विवर्णकः ।।४३०।।

अब चित्राक्षी चेटी के साधन को बतलाता हूँ। इसका मन्त्र है—चित्राक्षि चित्ररूपेण रुद्रादिप्रेतसंस्थे प्रसीद श्रीं श्रीं स्वाहा। एकान्त नदीतट पर षट्कोण मण्डल बनाकर जल से पूर्ण घट को स्थापित करने के बाद वहाँ छः कोणों में क्रमशः इन्द्र, ब्रह्मा, यम, काल, विष्णु और शिव का पूजन करना चाहिये। आरम्भ में अ से क्ष तक की अक्षय मातृकाओं का जप करने के बाद आसन लगाकर मध्याह्न में मन्त्र का जप करना चाहिये। इलायची से प्रतिदिन तीन सौ हवन करना चाहिये। प्रतिदिन इस प्रकार जप हवन करना चाहिये। सोमवार अथवा रविवार को जब चित्रा नक्षत्रयुक्त तृतीया तिथि हो तब प्रातःकाल जप करने से उस घट से देवी स्पष्ट रूप से बोलती है। उसके प्रभाव से जिन कुम्भों में जो द्रव्य डाला जाता है, वह अक्षय हो जाता है।

अब इसका ध्यान कहा जा रहा है। रुद्र आदि प्रेतों के शीर्ष पर विराजमान, कलश की अंकुरस्वरूपा, विचित्र वेष-धारिणी परमेश्वरी चित्राक्षी की मैं आराधना करता हूँ। तेईस अक्षरों का इसका मन्त्र है—चित्राक्षि चित्ररूपे रुद्रादिप्रेतसंस्थे प्रसीद प्रसीद श्रीं स्वाहा।।४२४-४३०।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चिन्तामणिविनायकम्।
योगिनी लक्षणज्ञास्य नाम्ना रुधिरवाहिनी ।।४३१।।
षट्कूटभैरवी शक्तिश्चित्रकण्ठ्यस्य चेटिका।
हसकलरकारांश्च डकारैकारसंयुतान् ।।४३२।।
बिन्दुयुक्तान् कूटरूपो मनुरस्याः प्रकीर्तितः।
सम्पत्प्रदा भैरवीवत्सर्वं न्यासादिकं मतम् ।।४३३।।
समस्तं चिन्तितं दद्याद्रिपुभारविनाशिनी।
सेनाविनायकः काश्यां स्थापितस्त्वनया पुरा ।।४३४।।

चिन्तामणि विनायक—अब मैं चिन्तामणि विनायक को कहता हूँ। रक्तधारा प्रवाहित करने वाली लक्षणज्ञा इसकी योगिनी तथा षट्कूटभैरवी शक्ति है। इसकी चेटी चित्रकण्ठी कही गई है। इसका बिन्दुयुक्त कूटरूप मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ड्र्ल्क्स्हैं, ड्र्ल्क्स्ह्रीं ड्र्ल्क्स्ह्रौं। इसमें डाकिनीबीज ड्, राकिनीबीज र्, लाकिनीबीज ल्, काकिनीबीज क्, साकिनीबीज स् एवं हाकिनीबीज ह् समाहित है। इसका न्यास आदि सबकुछ सम्पत्प्रदा भैरवी के समान कहा गया है। यह समस्त आकांक्षित वस्तुओं को देने वाली एवं शत्रुस्वरूप भार का विनाश करने वाली है। प्राचीन काल में काशी में सेनाविनायक को इसी के द्वारा स्थापित किया गया था।।४३१-४३४।।



चित्रकन्यासाधनम्

अथातः साधनं वक्ष्ये चित्रकन्यां समासतः।
चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां वसन्ते निशि सञ्जपेत् ॥४३५॥
सहस्रत्रितयो होमो मधूककुसुमैर्भवेत्।
त्रिंशत्सहस्रं सा देवी तदा दद्याच्च मन्त्रिणे ॥४३६॥
कोकिलास्वरमत्यन्तमोहनं जगतामपि।
अपि पक्षिमृगादीनामुरगाणां च मोहनम् ॥४३७॥
चूताङ्कुरावतंसा सा वीणानोदनिनादिनी।
शुक्लाम्बरा शिवाङ्कस्था रक्तकञ्चुकधारिणी ॥४३८॥
चित्रकण्ठि चित्रनादस्वरं देहियुगं तथा।
भरिंस्वाहेति मन्त्रोऽयं मन्वर्णः परिकीर्तितः ॥४३९॥

चित्रकन्या-साधन—अब संक्षेप में चित्रकन्या-साधन को कहता हूँ। वसन्त

ऋतु में चैत्र शुक्ल चतुर्दशी की रात्रि में इसके मन्त्र का तीन हजार जप करने के बाद महुआ के फूलों से एक हजार तीस आहुतियों द्वारा हवन करने पर वह देवी साधक को कोयल के समान मीठा स्वर प्रदान करती है, जो सारे संसार को भी मोहित करने में समर्थ होता है। उससे पक्षी, मृग, सर्प आदि का भी मोहन होता है। वह देवी आम्रपल्लवों का हार धारण की हुई है, वीणा की ध्वनि के समान ध्वनि करने वाली है, शुक्ल वस्त्र एवं रक्त कञ्चुक धारण की हुई है तथा शिव की गोद में विराजमान है। इसका चौदह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—चित्रकण्ठि चित्रनादस्वरं देहि देहि।।४३५-४३९।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दन्तिहस्तं विनायकम् ।।४४०।।
वसाधया योगिनी च चित्ररेखास्वरूपिणी ।
पञ्चबाणेश्वरी शक्तिश्चिह्नगम्या च चेटिका ।।४४१।।
द्रां ह्रीं क्लीं क्लूं स इत्येष बाणेश्वर्या मनुर्मतः ।
ऋषिः कामस्तु गायत्री छन्दो बाणेश्वरी सुरी ।।४४२।।
एकाक्षरेण सर्वैश्च मनोर्वर्णैः षडङ्गकम् ।।४४३।।
रक्तवस्त्रामिक्षुधनुष्पुष्पकोदण्डधारिणीम् ।
सालङ्कारां च सूर्याभां बाणेशीं सुन्दरीं भजे ।।४४४।।
त्रिपुरेशीं च सम्पूज्य मोहयेत्सकलं जगत् ।
पञ्चलक्षं जपेद्धोमो बन्धूककुसुमैर्मतः ।।४४५।।

दन्तिहस्त विनायक—अब मैं दन्तिहस्त विनायक को कहता हूँ। इसकी योगिनी चित्ररेखा-स्वरूपिणी वसाधया, शक्ति पञ्चबाणेश्वरी एवं चेटी चिह्नगम्या कही गई है। 'द्रां ह्रीं क्लीं क्लूं सः' यह बाणेश्वरी का मन्त्र कहा गया है। इसके ऋषि काम, छन्द गायत्री एवं देवता बाणेश्वरी हैं। मन्त्र के एक-एक अक्षर और पूरे मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—रक्त वस्त्र धारण की हुई, हाथों में इक्षुधनुष एवं पुष्पबाण धारण की हुई, अलकारों से अलंकृत, सूर्य-सदृश प्रकाशमान सुन्दरी बाणेशी को मैं नमन करता हूँ। त्रिपुरेशी का पूजन करके साधक समस्त संसार को सम्मोहित कर सकता है। पुरश्चरण-हेतु इस मन्त्र का पाँच लाख जप एवं बन्धूकपुष्पों से हवन कहा गया है।।४४०-४४५।।

कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां तु चित्रायां सोमवासरे ।
ध्यात्वाऽयुतं जपेद्रात्रौ तदा सा वरदा भवेत् ।
प्रयोगाद्यं सर्वमस्यास्त्रिपुरावत् प्रकीर्त्तितम् ।।४४६।।

तत्र रात्रौ गृहे सम्यग्दिव्यान्नं यावदीप्सितम्।
तावद्ददाति हे मन्त्रिन् दिव्यभोगानपि ध्रुवम् ॥४४७॥
मन्त्रस्तु दिव्यकमले चिह्वाङ्गे मे प्रसीद च।
श्रीं स्वाहा तिथिवर्णोऽयं ध्यायेत्कण्ठेऽब्जकम्रजाम् ॥४४८॥
हस्ते चामृतकुम्भं च सालङ्कारां मनोहराम्।

कृष्णपक्ष की चतुर्थी को सोमवार एवं चित्रा नक्षत्र होने पर रात्रि में देवी का ध्यान करके मन्त्र का दश हजार जप करने पर वह देवी साधक को वर प्रदान करती है। इसके समस्त प्रयोग आदि त्रिपुरा के समान कहे गये हैं। हे मन्त्रिन्! उस रात्रि में देवी साधक के घर में उसकी इच्छानुसार दिव्य अन्न एवं दिव्य भोग प्रदान करती है। पन्द्रह अक्षरों का इसका मन्त्र इस प्रकार है—दिव्यकमले चिह्वाङ्गे मे प्रसीद श्रीं स्वाहा। जप के समय कण्ठ में कमलों से बनी माला एवं हाथों में अमृतकलश धारण की हुई समस्त अलंकारों से अलंकृत मनोहारिणी देवी का ध्यान करना चाहिये।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि पिचिण्डिलविनायकम् ॥४४९॥
सिद्धिप्रदं राक्षसानां गर्भहस्तास्य योगिनी।
मनोहरा कर्मकरी चेटी चास्य त्रिलोचना ॥४५०॥
नारीरम्याऽभिधा मन्त्रस्त्रयोविंशतिवर्णकः।
आदौ तारं ततो नारीं रम्यां कमलवासिनीम् ॥४५१॥
त्वं नारीं मोहयद्वन्द्वं क्लीं स्वाहा ध्यानमुच्यते।
लग्नां कल्याणमूर्त्तिं च मोहरूपां स्थितां वने।
पद्मानां प्रार्थितां शम्भुविष्णुर्ब्रह्मादिकैः सुरैः ॥४५२॥
मार्गकृष्णचतुर्दश्यां भौमरात्रौ सरस्तटे।
त्रिसहस्त्रं जपेत् पश्चान्नारङ्गैर्होममाचरेत् ॥४५३॥
चिह्निता स्त्री भवेद्वश्या प्राणैरपि धनैरपि।
यदा चेच्छा भवेत्स्त्रीणां नारीं रम्यां तदा जपेत् ॥४५४॥

पिचिण्डिल विनायक—अब मैं राक्षसों के लिये सिद्धिप्रद पिचिण्डिल विनायक को कहता हूँ। इनकी योगिनी गर्भहस्ता एवं शोभन कर्मकारिणी त्रिलोचना चेटी कही गई है। तेईस अक्षरों वाला नारीरम्या-नामक इसका मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नारिरम्ये कमलवासिनि त्वं नारीं मोहय मोहय क्लीं स्वाहा। इसका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—मोहिनीरूप में वन में विराजमान होकर शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा कमल के लिये याचना की जाती हुई कल्याणरूपी शरीर वाली देवी की मैं आराधना करता हूँ।

मार्गशीर्ष (अगहन) कृष्णचतुर्दशी भौमवार की रात्रि में सरोवर के तट पर बैठकर मन्त्र का तीन हजार जप करने के पश्चात् नारङ्गी से हवन करना चाहिये। ऐसा करके साधक जिस स्त्री की प्राप्ति का इच्छुक होता है, वह स्त्री अपने प्राण एवं धन-सहित साधक के वशीभूत हो जाती है। जब कभी स्त्री-प्राप्ति की इच्छा हो, तव नारीरम्या मन्त्र का जप करना चाहिये।।४४९-४५४।।

उद्दण्डमुण्डहेरम्बमथ वक्ष्ये समासतः।
योगिनी शरहस्तास्य रूपतः सा वशङ्करा।
निधिप्रान्ता चेटिकास्य मन्त्रोऽस्यास्तिथिवर्णकः ॥४५५॥
वदेत्तारं निधिप्रान्ते निधिं देहिद्वयं रमा।
स्फ्रीं स्वाहेति च मन्त्रोऽयं ध्यायेद्देवीं त्रिमालिनीम् ॥४५६॥
रसायननिधिप्रीतां भवलक्ष्मीनिधिप्रदाम्।
आषाढशुक्लसप्तम्यां चतुर्थ्यां वा समाहितः ॥४५७॥
जपेत्सप्तशतं मन्त्रं पलाशतरुसन्निधौ।
पलाशमूलैरत्यन्तैः कोमलैर्होममाचरेत् ॥४५८॥
ततो देवी निधिप्रान्ता मन्त्रिणे तोषमागता।
ददाति निधिमेकं हि त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभम् ॥४५९॥
एतासामष्टचेटीनां द्वात्रिंशच्च सहस्रकम्।
निर्जने च वटाधस्ताद्वा गणेशसमीपतः।
जपः कार्यस्तदा सिद्धिरर्चयित्वा गणेश्वरम् ॥४६०॥

उद्दण्डमुण्ड हेरम्ब—अब मैं संक्षेप में उद्दण्डमुण्ड हेरम्ब को कहता हूँ। अपने स्वरूप से वशीभूत करने वाली शरहस्ता इसकी योगिनी तथा चेटिका निधिप्रान्ता है, जिसका पन्द्रह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ निधिप्रान्ते निधिं देहि देहि श्रीं स्फ्रीं स्वाहा। रसायनों से प्रेम करने वाली तथा संसार को अकूत धन प्रदान करने वाली देवी त्रिमालिनी का ध्यान करना चाहिये।

आषाढ़ शुक्ल सप्तमी अथवा चतुर्थी को एकाग्र मन से पलाश वृक्ष के नीचे बैठकर इसके मन्त्र का सात सौ जप करने के उपरान्त अत्यन्त कोमल पलाशमूल से हवन करना चाहिये। ऐसा करने पर प्रसन्न देवी निधिप्रान्ता मन्त्रज्ञ साधक के समीप आकर उसे एक त्रैलोक्यदुर्लभ निधि प्रदान करती है।

निर्जन वन में वटवृक्ष के नीचे अथवा गणेश-प्रतिमा के समीप बैठकर गणेश्वर का पूजन करके इन आठ चेटियों के मन्त्रों का एक हजार बत्तीस बार जप करने पर इनकी सिद्धि प्राप्त होती है।।४५५-४६०।।

स्थूलदन्ताद्यष्टविनायकमन्त्राः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नगरावरणे स्थितान्।
स्थूलदन्तादिकानष्टौ गणेशान् योगिनीयुतान्।
शक्तिभिश्चेटिकाभिश्च युक्तान् गम्बीजपूर्वकान् ॥४६१॥
तद्बीजं च पठेन्नाम ङेऽन्तं भगवते पदम्।
हृदयान्तस्तथाष्टानां मन्त्रोऽयं परिकीर्त्तितः ॥४६२॥
पञ्चकामेश्वरी चास्य शक्तिस्तन्मन्त्र उच्यते।
ह्रीं क्लीं ऐं ब्रूमिति प्रोच्य श्रीं मन्त्रः पञ्चवर्णकः ॥४६३॥
ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो गायत्रं देवता मता।
कामेशी च षडङ्गानि पृथग्वर्णैस्ततोऽखिलैः ॥४६४॥
रक्तां रक्तदुकूलाङ्गलेपनां रक्तभूषणाम्।
पाशाङ्कुशशरानक्षमालिकामभयं धनुः ॥४६५॥
पुस्तकं च वरं हस्तैर्बिभ्राणां वशकारिणीम्।
पञ्चकामैः परिवृतामस्याः पूजादिकं भवेत् ॥४६६॥
बाणेश्वरीसमानं तु वामे कामौ तथार्चयेत्।
उदग्दक्षिणयोर्देव्याः स्थलेषु त्रिषु योगिनीः।

स्थूलदन्त आदि आठ विनायकों के मन्त्र—अब मैं आठ योगिनियों एवं आठ चेटियों से समन्वित स्थूलदन्त आदि आठ गणेशों के 'गं' बीज-पूर्वक मन्त्रों को कहता हूँ। उनके बीज के साथ चतुर्थ्यन्त नाम के बाद 'भगवते नमः' लगाने से मन्त्र बनते हैं। इनकी शक्ति पञ्चकामेश्वरी है, जिसका पञ्चाक्षर मन्त्र इस प्रकार है—ह्रीं क्लीं ऐं ब्रूं श्रीं। इस मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्द गायत्री एवं देवता कामेशी कही गई हैं। मन्त्र के प्रत्येक वर्ण से एवं समस्त मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—ह्रीं हृदयाय नमः, क्लीं शिरसे स्वाहा, ऐं शिखायै वषट्, ब्रूं कवचाय हुं, श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रीं क्लीं ऐं ब्रूं श्रीं अस्त्राय फट्। रक्त वर्ण वाली, रक्त वस्त्र धारण करने वाली, अंगों में रक्त लेप लगाई हुई, रक्त आभूषणों वाली, हाथों में पाश अंकुश बाण अक्षमाला अभय धनुष पुस्तक एवं वर धारण करने वाली, वशीभूत करने वाली, पञ्चकामदेवों से घिरी हुई देवी का ध्यान करके पूजन आदि करना चाहिये। बाणेश्वरी के समान ही देवी के वाम भाग में देवी एवं काम दोनों का पूजन करना चाहिये। देवी के उत्तर-दक्षिण एवं पश्चिम तीनों स्थानों में योगिनियों का पूजन करना चाहिये।

अञ्जनानां सिद्धिकरी नष्टवेषास्य चेटिका ॥४६७॥

तारं च नष्टवेषे च भ्रामिणीं ह्लींद्वयं वदेत्।
स्त्रींस्त्रीं स्वाहा विश्ववर्णो मन्त्रो ध्यानं निरूप्यते ।।४६८।।
मांसं च रुधिरं सद्यश्चर्वयन्तीं सुभीषणाम्।
प्रेतासनां महादेवीं नष्टवेषां भजाम्यहम् ।।४६९।।
जपेत्सहस्रत्रितयं कृष्णाष्टम्यां महानिशि।
होमश्च गजदन्तेन दशांशस्तुष्यति त्वियम् ।।४७०।।
ददाति मन्त्रिणे चार्द्रमस्थि तेन तु साधकः।
भूतप्रेतपिशाचादीन् खेलन् संवशयेदपि ।।४७१।।

अंजन-सिद्धि प्रदान करने वाली नष्टवेषा इनकी चेटी कही गई है। इस चेटी का चौदह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ नष्टवेषे भ्रामिणि ह्लीं ह्लीं स्त्रीं स्त्रीं स्वाहा। अब इसका ध्यान कहा जा रहा है। एक साथ मांस एवं रुधिर का चर्वण करती हुई, अत्यन्त भयंकर प्रेतासन पर विराजमान, नष्ट वेष वाली महादेवी का मैं भजन करता हूँ।

कृष्णाष्टमी की महानिशा (आधी रात) में मन्त्र का तीन हजार जप करने के बाद गजदन्तों से कृत जप का दशांश (तीन सौ) हवन करने से यह देवी प्रसन्न होती है और साधक को आर्द्र हड्डी प्रदान करती है, जिसके द्वारा खेल-खेल में ही साधक भूत-प्रेत-पिशाच आदि को वशीभूत कर लेता है।।४६७-४७१।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कलिप्रियगजाननम्।
योगिन्यस्य बृहत्कक्षी गुटी सिद्धिप्रदा मता।
त्रिवर्णेशी शक्तिरस्य क्लीं ऐं सौश्च मनुर्मतः ।।४७२।।
द्विरावृत्त्या षडङ्गानि पञ्चबाणान् प्रविन्यसेत्।
पञ्चकामांश्च विन्यस्य मूलेन व्यापकं चरेत् ।।४७३।।
उद्यत्सूर्यसहस्राभां माणिक्यवरभूषणाम्।
स्फुरद्रत्नदुकूलाढ्यां नानालङ्कारभूषिताम् ।।४७४।।
इक्षुकोदण्डबाणांश्च ह्यक्षमालां च पुस्तकम्।
दधतीं पूजयेत्पश्चात्षडङ्गानि प्रपूजयेत् ।।४७५।।
पञ्चबाणास्ततः पूज्या रत्यादित्रितयं ततः।
कामाष्टकं ततो भैरवाष्टकञ्चापि मातरः ।।४७६।।
पीठाष्टकं च लोकेशान् मध्ये देवान् समर्चयेत्।
पुरश्चरणकृत्यादि काम्यकर्म तथाखिलम् ।।४७७।।

कलिप्रिय गजानन—अब मैं कलिप्रिय गजानन को कहता हूँ। गुटिका-सिद्धि प्रदान करने वाली बृहत्कक्षी इनकी योगिनी कही गई है। इनकी शक्ति त्रिवर्णेशी है। तीन अक्षरों का 'क्लीं ऐं सौः' मन्त्र कहा गया है। इन तीनों वर्णों की दो आवृत्ति से इसका षडङ्ग न्यास करने के उपरान्त क्षोभण-द्रावण आदि पाँच बाणों का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर पाँच कामदेवों का न्यास करने के पश्चात् मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर उदीयमान हजारो सूर्यों की आभा से समन्वित, श्रेष्ठ माणिक्य का आभूषण धारण की हुई, देदीप्यमान रत्न-जटित उत्तरीय से सुशोभित, अनेक अलंकारों से विभूषित तथा हाथों में इक्षुधनुष बाण अक्षमाला एवं पुस्तक धारण की हुई देवी का पूजन करने के बाद षडङ्ग-पूजन करना चाहिये।,

इसके बाद पञ्च बाणों का पूजन करके रति, प्रीति एवं मनोभवा का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर क्रमशः अष्टकामों, अष्टमातृकाओं सहित अष्टभैरवों एवं अष्टपीठों का पूजन करने के उपरान्त लोकपालों का पूजन करके मध्य में त्रिदेवों का अर्चन करना चाहिये। तत्पश्चात् पुरश्चरणकृत्य का सम्पादन करके समस्त काम्यकर्मों का साधन करना चाहिये।।४७२-४७७।।

एतस्यास्त्रिपुरेशी च चेटिकास्यनिनादिनी।
निनादिनि च गुटिकां देहि स्त्रीं वह्निगेहिनीम्।।४७८।।
द्वादशार्णो मनुर्ध्यानमूर्ध्वकेशीं त्रिलोचनाम्।
खेचरीं तां चञ्चलाक्षीं महानादां भजाम्यहम्।।४७९।।
अमायां च नरः सायं नद्यां स्नायाद्विशेषतः।
कृष्णायां निशि कुर्वीत तत्तीरे चायुतं जपम्।।४८०।।
कस्तूरीकमलैर्होमो दशांशस्तत्र देवता।
महाशब्दं प्रकुरुते भीतिदं ध्यानतत्परः।
न बिभेति यदा मन्त्री तदा देवी प्रसीदति।।४८१।।
ददाति गुटिकामेकां सिद्धिदां च मनोहराम्।
तामादाय भवेन्मन्त्री त्रिलोकीगमनक्षमः।।४८२।।

मुख से शब्द करने वाली त्रिपुरेशी इसकी चेटी है, जिसका बारह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—निनादिनि गुटिकां देहि स्त्रीं स्वाहा। इसका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—ऊपर की ओर उठे केशों वाली, तीन नेत्रों वाली, भीषण नाद करने वाली एवं आकाश में गमन करने वाली चञ्चलाक्षी का मैं ध्यान करता हूँ।

जो मनुष्य अमावास्या को सायंकाल विशेषतः नदी में स्नान करके अन्धकाराच्छादित रात्रि में उसी नदी के तट पर बैठकर उक्त मन्त्र का दश हजार जप करने के उपरान्त कस्तूरी एवं कमल से कृत जप का दशांश हवन करता है, उस समय वहाँ पर देवता का भय उत्पन्न करने वाला शब्द सुनाई देता है; ऐसा ध्यानतत्पर साधक यदि भयभीत नहीं होता तो देवी उस पर प्रसन्न हो जाती है और उसे सिद्धि प्रदान करने वाली एक मनोहारी गुटिका प्रदान करती है। उस गुटिका को लेकर मन्त्रज्ञ साधक तीनों लोकों में गमन करने में समर्थ हो जाता है।।४७८-४८२।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चतुर्दन्तं गजाननम्।
सर्पास्या योगिनी चास्य धातुवादक्रियाकरी ।।४८३।।
एककामेश्वरी शक्तिः कामबीजं मनुर्मतः।
ऋषिः सम्मोहनश्छन्दो गायत्री देवता मता ।।४८४।।
एककामेश्वरी बीजं कः शक्तिर्बिन्दुरुच्यते।
लः कीलकं षडङ्गानि षड्दीर्घान्वितमूलतः ।।४८५।।
पूर्वोक्तपञ्चबाणांश्च न्यसेद्ध्यानं समाचरेत् ।।४८६।।
जपाकुसुमसङ्काशां धनुर्बाणकरां स्मरेत्।
नानालङ्कारसुभगां मोहयन्तीं जगत्त्रयम् ।।४८७।।

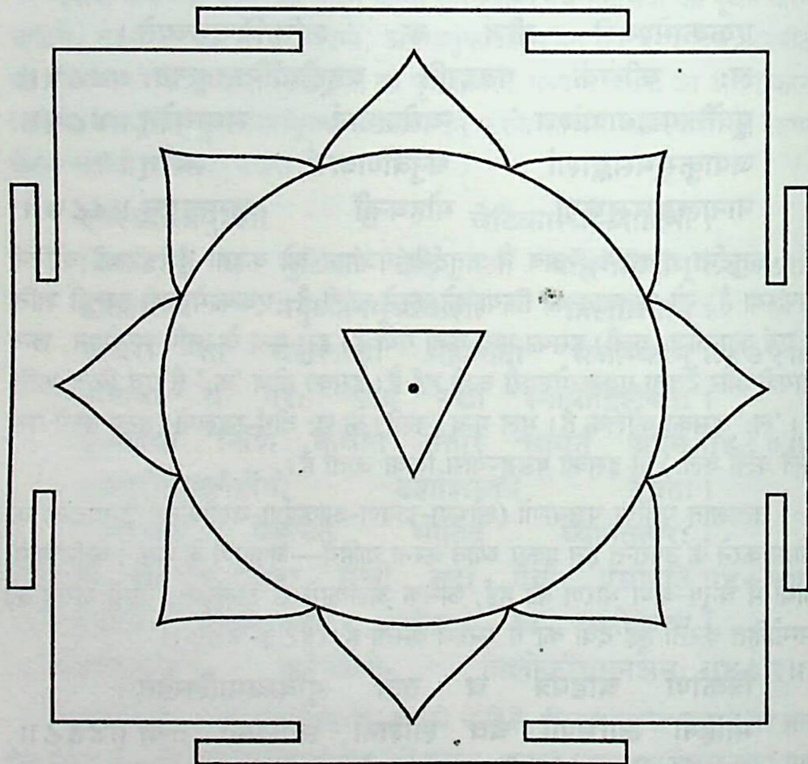
चतुर्दन्त गजानन—अब मैं चतुर्दन्त गजानन को कहता हूँ। इसकी योगिनी सर्पास्या है, जो धातुवाद की क्रिया को करने वाली है। एककामेश्वरी इसकी शक्ति है एवं कामबीज (क्लीं) इसका मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि सम्मोहन, छन्द गायत्री और देवता एककामेश्वरी कही गई हैं। इसका बीज 'कः' है एवं बिन्दु शक्ति है। 'लः' इसका कीलक है। मूल मन्त्र (क्लीं) के छः दीर्घ स्वरूपों (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः) से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।

तत्पश्चात् पूर्वोक्त पञ्चबाणों (क्षोभण-द्रावण-आकर्षण-वशीकरण-उन्मादन) का न्यास करने के उपरान्त इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—जपापुष्प के समान कान्तिमान, हाथों में धनुष-बाण धारण की हुई, अनेक अलंकारों से अलंकृत, तीनों जगत् को सम्मोहित करती हुई देवी का मैं स्मरण करता हूँ।।४८३-४८७।।

त्रिकोणं चाष्टपत्रं च ततो भूबिम्बमालिखेत्।
मोहिनीं क्षोभिणीं चैव शशिनीं स्तम्भिनीं तथा ।।४८८।।
आकर्षिणीं द्राविणीं च तथैवाह्लादिनीं मताम्।
क्लिन्नां च क्लेदिनीं चापि ततः सिंहासनं यजेत्।
ततो देवीं समावाह्यार्चयेन्मुद्राश्च दर्शयेत् ।।४८९।।

अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वङ्गपूजनम् ।
त्रिपुरायास्ततश्चाङ्गान्यर्चयेच्च दलाष्टके ।
अनङ्गपदमुच्चार्य्य रूपिणी मदना तथा ॥४९०॥
मन्मथा कुसुमा चेति तदग्रे मदनातुरा ।
शिरा मेषबला तद्वद् द्वीपिकाष्टौ समीरिताः ॥४९१॥
दिगीश्वरास्ततः पूज्या जपेदर्कसहस्रकम् ।
हुनेद्बन्धूककुसुमैस्तर्पणादि ततश्चरेत् ।
काम्यप्रयोगा विज्ञेयास्त्रिपुरेश्या यथा तथा ॥४९२॥

तत्पश्चात् त्रिकोण, अष्टपत्र और भूपुर से यन्त्र का निर्माण करना चाहिये। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



उपर्यङ्कित यन्त्र में मोहिनी, क्षोभिणी, शशिनी, स्तम्भिनी, आकर्षिणी, द्राविणी, आह्लादिनी, क्लिन्ना एवं क्लेदिनी—इन नव पीठशक्तियों का पूजन करने के उपरान्त

सिंहासन का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उस सिंहासन पर देवी का सम्यक् रूप से आवाहन करके उनका अर्चन करने के पश्चात् तत्तत् मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिये। इसके बाद अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं मध्य दिशाओं में अङ्गपूजन करने के बाद अष्टदल में त्रिपुरा के अनङ्गरूपिणी, अनङ्गमदना, अनङ्गमन्मथा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गशिरा, अनङ्गमेषवला एवं अनङ्गदीपिका—इन आठ अंगों का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद भूपुर में दिगीश्वरों एवं उनके आयुधों का पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का बारह हजार की संख्या में जप पूर्ण करके बन्धूकपुष्पों से हवन करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये। त्रिपुरेशी के समान ही इसके भी काम्य प्रयोगों को जानना चाहिये।।४८८-४९२।।

एकविंशतिगणेशमन्त्राः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चैकविंशतिसङ्ख्यकान्।
गणेशान्राजमातङ्ग्या सम्बद्धान् योगिनीयुतान्।।४९३।।
बीजषट्कं गणेशस्य ङेऽन्तं तन्नाम चोच्चरेत्।
नमोऽन्ता मनवस्तेषां क्रमान्नामानि वच्म्यहम्।।४९४।।
अग्रे पृष्ठे द्विदन्तादिद्वितुण्डाक्षो विनायकः।
ज्येष्ठो विनायकश्चैव तथा गजविनायकः।।४९५।।
विनायकः कालसंज्ञो नागेशाख्यो विनायकः।
अथान्तर्गृहमावृत्य स्थिताञ्छृणु विनायकान्।।४९६।।
तथा सृष्टिगणेशश्च यक्षविघ्नेश एव च।
गजकर्णश्चित्रघण्टः स्यान्मङ्गलविनायकः।।४९७।।
विनायकश्च मित्रादिरथ वानन्दकानने।
व्यवस्थिता गणेशा ये ते वक्ष्यन्ते मयाधुना।।४९८।।
मोदः प्रमोदः सुमुखो दुर्मुखो गणनायकः।
विनायको ज्ञानपूर्वो द्वारविघ्नेश एव च।।४९९।।
अविमुक्तेशनिकटे त्वविमुक्तविनायकः।
योगिन्यश्च क्रमादेषां कीर्त्यन्ते प्रेतवाहनाः।।५००।।
दन्दशूककरा रौद्री मृगशीर्षा वृषानना।
व्यालास्या धूर्त्तविश्वासा व्योमैकचरणार्धदृक्।।५०१।।
तापिनी तुष्टिपूर्वा च शोषिणी कोटरी तथा।
विद्युत्प्रभा स्थूलनासा मार्जारी कण्ठपूरणा।।५०२।।

कामाक्ष्यट्टाट्टहासा च बलाका गतिपुण्यदा।
मूकास्या चेति योगिन्यो ङेऽन्तं नाम नमोऽन्तकम् ॥५०३॥
स्वबीजाद्यं भवेन्मन्त्रो यथानामार्थकारकः।

इक्कीस गणेशमन्त्र—अब मैं मातङ्गी एवं योगिनी से समन्वित इक्कीस गणेशमन्त्रों को कहता हूँ। सर्वप्रथम गणेश के छः बीज, तत्पश्चात् चतुर्थ्यन्त गणेशनाम, उसके बाद 'नमः' लगाकर इनके मन्त्र बनते हैं। अब मैं क्रमशः उनके नामों को कहता हूँ। देवी के आगे-पीछे दो दाँत, दो शुण्ड और दो आँखों वाले विनायक, ज्येष्ठविनायक, गजविनायक, कालविनायक एवं नागेशविनायक स्थित रहते हैं।

अब अन्तर्गृह को घेरकर रहने वाले विनायकों को सुनो। वे हैं—सृष्टिगणेश, यक्षविघ्नेश, गजकर्ण, चित्रघण्ट, मङ्गलविनायक एवं मित्रादिविनायक। अब मैं आनन्दवन में रहने वाले गणेशों के नाम बतलाता हूँ। वे हैं—मोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, गणनायक, ज्ञानविनायक एवं द्वारविघ्नेश। अविमुक्तेश के निकट अविमुक्तविनायक रहते हैं।

इनकी योगिनियाँ क्रमशः ये हैं—प्रेतवाहना, दन्दशूककरा, रौद्री, मृगशीर्षा, वृषानना, व्यालास्या, धूर्तविश्वासा, व्योमैकचरणार्धदृक्, तापिनी, तुष्टिपूर्वा, शोषिणी, कोटरी, विद्युत्प्रभा, स्थूलनासा, मार्जारी, कण्ठपूरणा, कामाक्षी, अट्टाट्टहासा, बलाका, गतिपुण्यदा एवं मूकास्या। इनके चतुर्थ्यन्त नाम के आदि में उनका बीज एवं अन्त में 'नमः' लगाकर इनका मन्त्र बनता है। ये सभी मन्त्र अपने नामानुरूप गुण वाले होते हैं।।४९३-५०३।।

राजमातङ्गीसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शक्तिमेषां सुसिद्धिदाम् ॥५०४॥
विख्यातां राजमातङ्गीं सद्यः प्रत्ययकारिकाम्।
ऐं ह्रीं श्रीं मनवः प्रोक्ता भगवतीपदं वदेत् ॥५०५॥
श्रीमातङ्गे वदेदेतच्छ्वरि सर्वजनेति च।
मनोहरि सर्वमुखराजि सर्वमुखेति च ॥५०६॥
रञ्जनीं सर्वराजेति वशङ्करि वदेत्ततः।
सर्वस्त्रीपुरुषेत्युक्त्वा वशङ्करि पदं वदेत् ॥५०७॥
सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वपदं ततः।
सत्त्ववशङ्करि सर्वलोकमुक्त्वामुकं वदेत् ॥५०८॥
मे वशमानय स्वाहेत्यष्टाशीत्यक्षरो मनुः।
एकविंशद्विश्वधृतिधृतिविश्वकरैर्मनोः ॥५०९॥

ओं नमो मुखमन्त्रार्णैः ऐंह्रींश्रींबीजपूर्वकैः ।
षडङ्गन्यास उदितः पदन्यासं ब्रवीम्यहम् ॥५१०॥
शिरोललाटभ्रूमध्यतालुकण्ठमनोगले ।
हृदयेऽनाहते बाह्वोर्जठरे नाभिमण्डले ॥५११॥
स्वाधिष्ठाने व्यञ्जने च पादयोर्दक्षिणान्ययोः ।
मूलाधारे गुदे न्यस्य पदान्यष्टादश क्रमात् ॥५१२॥
त्र्येकद्विचतुर्वसुषट्नगाष्टदशदिग्गजैः ।
वेदाग्नीन्दुद्वित्रिनेत्रैर्वर्णैर्मन्त्रपदानि तु ॥५१३॥
ऐंह्रींश्रींराजमातङ्ग्यै नम उक्त्वा न्यसेत्ततः ।
मूलाधारे पूर्वबीजत्रयं प्रीत्यै पदं वदेत् ॥५१४॥
मातङ्ग्यै नम इत्युक्त्वा हृदये विन्यसेत्पुनः ।
बीजत्रयं ततो मनोभवायै च नमो वदेत् ॥५१५॥
भ्रूमध्ये विन्यसेत्पश्चाद्देवीन्यासं समाचरेत् ।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु क्रमतो न्यसेत् ॥५१६॥
हृल्लेखां गगनां रक्तां ततश्चापि कपालिकाम् ।
महोच्छुष्मां स्वनामादिवर्णबीजपुरस्सराम् ॥५१७॥
मातङ्ग्यन्तां प्रविन्यस्य बाणशक्तिं तथा न्यसेत् ।
मूर्धपादास्यगुह्ये हृदये द्राविणीं क्रमात् ॥५१८॥
शोषिणीं बन्धिनीं मोहिनीं चैवाकर्षिणीन्तथा ।
मातङ्ग्यन्तां स्वबीजाद्यां ततः कामाष्टकं न्यसेत् ।
बीजत्रयाद्यां मातङ्गीं पदान्ते मन्मथं मुखे ॥५१९॥
मकरध्वजं वामांसे मदनं वामपार्श्वके ।
वामकट्यां पुष्पचापं नाभौ च कुसुमायुधम् ।
कन्दर्पं दक्षकट्यां च दक्षपार्श्वे मनोभवम् ॥५२०॥
रतिप्रियं च दक्षांसे तच्छक्तिन्यास उच्यते ।
मातङ्ग्यन्ता अनङ्गाद्याः स्थानेष्वेष्वेव विन्यसेत् ॥५२१॥
कुसुमा मेखला प्रोक्ता मदना मदनातुरा ।
मदनोद्वेगिताग्रे सम्भवा भुवनपालिनी ॥५२२॥
शशिरेखा ततः कुर्यान्न्यासं लक्ष्म्यादिकं यथा ।

डेमातङ्गीनमोन्तांश्च लक्ष्मीं चापि सरस्वतीम्।
रतिं प्रीतिं कीर्तिशान्त्यौ पुष्टिं तुष्टिं क्रमेण च ॥५२३॥
मूलाधारे तथा मूले मणिपूरे तथा हृदि।
कण्ठे मुखे भ्रुवोर्मध्ये शिरस्येवं च विन्यसेत् ॥५२४॥

अब सुन्दर सिद्धियों को प्रदान करने वाली इनकी शक्ति को कहता हूँ। इनकी शक्ति राजमातङ्गी है, जो तत्काल विश्वास करने के लिये विख्यात है। इसका अट्ठासी अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति श्रीमातङ्गेश्वरि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखराजि सर्वमुखरञ्जनि सर्वराजवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वलोकममुकं मे वशमानय स्वाहा। मन्त्र के क्रमशः इक्कीस, चौदह, अट्ठारह, अट्ठारह, चौदह एवं दो वर्णों के पूर्व 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नमः' लगाकर इसका षडङ्गन्यास कहा गया है।

अब पदन्यास को कहता हूँ। शिर, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, चित्त, गला, हृदय, अनाहत, दोनों भुजा, जठर, नाभिमण्डल, स्वाधिष्ठान, व्यञ्जन, दोनों पैर, दोनों पार्श्व, मूलाधार एवं गुदा—इन अट्ठारह स्थानों में मन्त्र के अट्ठारह पदों का क्रमशः न्यास करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्र के तीन, एक, दो, चार, आठ, छः, सात, आठ, दस, आठ, चार, तीन, एक, दो, तीन, दो वर्णों के पदों से सभी पदों के पहले ऐं ह्रीं श्री राजमातङ्ग्यै नमः कहकर न्यास करना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं राजमातङ्ग्यै प्रीत्यै नमः' कहकर मूलाधार में न्यास करना चाहिये। पुनः 'मातङ्ग्यै नमः' कह कर हृदय में न्यास करना चाहिये। इसके बाद ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मनोभवायै नमः' कहकर भ्रूमध्य में न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् देवीन्यास करना चाहिये। एतदर्थ शिर, मुख, हृदय, गुह्य एवं पैरों में क्रमशः हल्लेखा, गगना, रक्ता, कपालिका एवं महोच्छुष्मा का तत्तत् नाम के पहले उनका बीज एवं नाम के बाद मातङ्गी लगाकर न्यास करना चाहिये। जैसे—ॐ हं हल्लेखायै मातङ्ग्यै नमः शिरसि, ॐ गं गगनायै मातङ्ग्यै नमः मुखे इत्यादि।

इसके बाद मूर्धा, पाद, मुख, गुह्य एवं हृदय में क्रमशः द्राविणी, शोषिणी, बन्धिनी, मोहिनी एवं आकर्षिणी—इन पाँच बाणों का उनके नाम के पूर्व उनका बीज एवं नाम के बाद मातङ्गी लगाकर बाणशक्ति का न्यास करना चाहिये; जैसे—द्रां द्राविण्यै मातङ्ग्यै नमः मूर्धनि, शों शोषिण्यै मातङ्ग्यै नमः पादयोः इत्यादि।

तत्पश्चात् आठ काम—मन्मथ, मकरध्वज, मदन, पुष्पधन्वा, कुसुमायुध, कन्दर्प, मनोभव एवं रतिप्रिय का क्रमशः मुख, वाम स्कन्ध, वाम पार्श्व, वाम कटि, नाभि,

दक्ष कटि, दक्ष पार्श्व एवं दक्ष स्कन्ध में इस प्रकार न्यास करना चाहिये—मं मन्मथाय ऐं ह्रीं श्रीं मातङ्ग्यै नमः मुखे, मं मकरध्वजाय ऐं ह्रीं श्रीं मातङ्ग्यै नमः वामांसे, मं मदनाय ऐं ह्रीं श्रीं मातङ्ग्यै नमः वामपार्श्वे, पुं पुष्पधन्विने ऐं ह्रीं श्रीं मातङ्ग्यै नमः वामकट्याम्, कुं कुसुमायुधाय ऐं ह्रीं श्रीं मातङ्ग्यै नमः नाभौ, कं कन्दर्पाय ऐं ह्रीं श्रीं मातङ्ग्यै नमः दक्षकट्याम्, मं मनोभवाय ऐं ह्रीं श्रीं मातङ्ग्यै नमः दक्षपार्श्वे, रं रतिप्रियाय ऐं ह्रीं श्रीं मातङ्ग्यै नमः दक्षांसे। तदनन्तर इन्हीं स्थानों में इनकी अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गमदनोद्वेगा, अनङ्गसम्भवा, अनङ्गभुवनपालिनी, अनङ्गशशिरेखा—इन आठ शक्तियों का भी उसी प्रकार न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् लक्ष्मीन्यास करना चाहिये। एतदर्थ लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, शान्ति, पुष्टि एवं तुष्टि का क्रमशः मूलाधार, मूल, मणिपूर, हृदय, कण्ठ, मुख, भ्रूमध्य एवं शिर में मातङ्ग्यै नमः कहते हुये न्यास करना चाहिये। जैसे—ॐ लक्ष्मीमातङ्ग्यै नमः मूलाधारे, ॐ सरस्वतीमातङ्ग्यै नमः मूले इत्यादि।

ब्राह्म्याद्याः पूर्वमुद्दिष्टा मातङ्गीपदपश्चिमाः।
मूलाधारे त्वधिष्ठाने नाभौ हृदि गले मुखे ॥५२५॥
भ्रूमध्ये मस्तके चैवमसिताङ्गादिभैरवान्।
मातङ्ग्यन्तान्न्यसेत्पश्चान्मातङ्ग्यन्ता इमा अपि ॥५२६॥
आधारे विन्यसेद्वामां ज्येष्ठां लिङ्गस्य मूलके।
नाभौ रौद्रीं तथा शान्तिं हृदये सिद्धिदां गले ॥५२७॥
वागीश्वरीं च भ्रूमध्ये क्रियाशक्तिं च बिन्दुके।
लक्ष्मीं कलापदे सृष्टिं रोधिकायां तथा न्यसेत् ॥५२८॥
अर्धेन्दौ मोहिनीं न्यस्य नादे तु प्रथमां न्यसेत्।
भाविनीं चापि नादान्ते ततो मान्यां तडिल्लताम्।
विष्णुं वक्त्रे विष्णुशक्तिं ध्रुवमण्डलके न्यसेत् ॥५२९॥
ऐंह्रींश्रींपूर्विकाश्चैता ङेमातङ्गीनमोऽन्तकाः।
चतस्रः शक्तयो न्यस्या मातङ्गीं शिरसि न्यसेत् ॥५३०॥
ललाटे महामातङ्गीं महालक्ष्मीं तथा हृदि।
सिद्धलक्ष्मीं तथा मूले मूलाधारे प्रविन्यसेत् ॥५३१॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य्य सर्वाङ्गे व्यापकं चरेत्।
एवं न्यस्तशरीरोऽसौ चिन्तयेन्मन्त्रदेवताम् ॥५३२॥

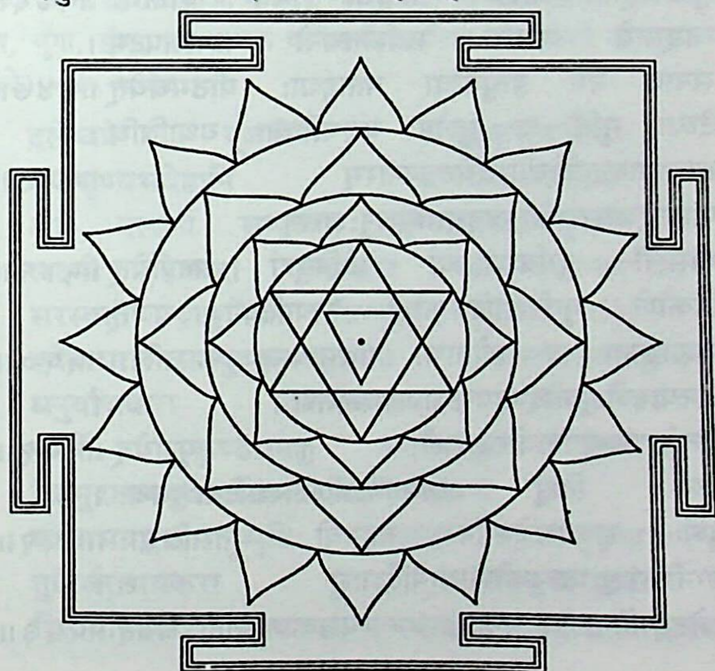
अमृतोदधिमध्यस्थे रत्नद्वीपे मनोहरे ।
स्वर्णप्राकारसंवीते मण्डपे रत्ननिर्मिते ॥५३३॥
कदम्बबिल्वकह्लारकल्पवृक्षोपशोभिते ।
वेदीमध्ये सुखास्तीर्णे रत्नसिंहासने शुभे ॥५३४॥
अष्टपत्रं महापद्मं केशराढ्यं सकर्णिकम् ।
तन्मध्ये तु त्रिकोणं स्यादष्टपद्मं ततो बहिः ॥५३५॥
पुनः षोडशपत्रं स्यात्तद्बाह्ये स्याच्चतुर्दलम् ।
वेदास्त्रं सचतुर्द्वारं मण्डलं प्रोक्तमुत्तमम् ॥५३६॥
तस्य मध्ये सुखासीनां श्यामवर्णां शुचिस्मिताम् ।
कदम्बमालाभरणां पूजितां च सुरासुरैः ॥५३७॥
प्रलम्बालकसंयुक्तां चन्द्ररेखावतंसिकाम् ।
ललाटे तिलकोपेतामीषत्प्रहसिताननाम् ॥५३८॥
किञ्चित्स्वेदाम्बुमधुरललाटफलकोज्ज्वलाम् ।
वलीतरङ्गमध्याभां रोमराजीविराजिताम् ॥५३९॥
सर्वाभरणसंयुक्तां मुक्ताहारविभूषिताम् ।
नानामणिगणोन्नद्धकटिसूत्रैरलंकृताम् ॥५४०॥
वलयै रत्नखचितैः केयूरैर्मणिभूषितैः ।
भूषितां द्विभुजां बालां मदाघूर्णितलोचनाम् ॥५४१॥
आपीनमण्डलाभोगसमुन्नतपयोधराम् ।
प्रलम्बकर्णाभरणां स्वर्णोत्तंसविराजिताम् ॥५४२॥
तमालनीलां तरुणीं मधुमत्तां मतङ्गिनीम् ।
चतुष्षष्टिकलारूपां पार्श्वस्थशुकसारिकाम् ॥५४३॥
कोटिबालार्कसङ्काशां जपाकुसुमसन्निभाम् ।
एवं वा पीतवर्णां वा ध्यायेन्मातङ्गिनीं पराम् ॥५४४॥

इसके बाद पूर्व में कथित ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का उनके नाम के पश्चात् चतुर्थ्यन्त मातङ्गी पद लगाकर क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, नाभि, हृदय, गला, मुख, भ्रूमध्य एवं मस्तक में न्यास करने के उपरान्त इसी प्रकार असिताङ्गादि अष्टभैरवों का भी उनके नाम के पश्चात् चतुर्थ्यन्त मातङ्गी पद लगाकर उक्त स्थानों में ही न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् शक्तिन्यास इस प्रकार करना चाहिये—वामा का मूलाधार में, ज्येष्ठा का लिङ्गमूल में, रौद्री का नाभि में, शान्ति का हृदय में, सिद्धिदा का गले में, वागीश्वरी

का भ्रूमध्य में, क्रियाशक्ति का बिन्दु (मूर्धा) में, लक्ष्मी का कलापदं में, सृष्टि का रोधिका में, मोहिनी का अर्द्धेन्दु में, प्रथमा का नाद में, भाविनी का नादान्त में, तडिल्लता का मान्या में, विष्णु का वज्र में एवं विष्णुशक्ति का ध्रुवमण्डल में न्यास करना चाहिये। न्यास करते समय इन सबके आगे 'ऐं ह्रीं श्रीं' एवं बाद में 'मातङ्ग्यै नमः' कहना चाहये।

इसके बाद चार शक्तियों का न्यास करना चाहिये। मातङ्गी का शिर में, महामातङ्गी का ललाट में, महालक्ष्मी का हृदय में एवं सिद्धलक्ष्मी का मूलाधार में न्यास करना चाहिये। तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये सर्वाङ्ग में व्यापक न्यास करना चाहिये। इस प्रकार न्यस्त शरीर वाले साधक को मन्त्रदेवता का इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये—अमृतसमुद्र के मध्य मनोहर रत्नों के द्वीप पर सुवर्ण-निर्मित चहारदीवारी से घिरे रत्न-निर्मित मण्ड़प में कदम्ब, बिल्व, कह्लार एवं कल्पवृक्ष से शोभायमान वेदी के ऊपर स्थापित सुन्दर रत्नों से निर्मित सिंहासन के आरामदायक बिछावन पर केशर एवं कर्णिका से समन्वित विशाल अष्टदल कमल के मध्य में एक त्रिकोण बना हुआ है। उस त्रिकोण के बाहर अष्टदल और उसके बाहर षोडशदल और उसके बाहर चार दलों वाला कमल बना हुआ है। इस प्रकार के उस महापद्म पर तीन भूपुर, भूपुर के चारो कोणों में चार द्वारों से समन्वित चतुर्दल वाला उत्तम मण्डल स्थापित है। स्पष्टता-हेतु यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



उस मण्डल के मध्य में सुखपूर्वक बैठी हुई श्याम वर्ण वाली, पवित्र मुस्कान वाली, कदम्बपुष्पों की माला से अलंकृत, देवताओं एवं दैत्यों द्वारा पूजित, लम्बे बालों से युक्त शीर्ष पर चन्द्ररेखा को धारण की हुई, ललाट पर तिलक लगाई हुई, किञ्चिद् विकसित मुख वाली, स्वेदकणों से उज्ज्वल ललाटफलक वाली, रोमों से अलंकृत तरङ्गायमाण वलियों की कान्ति वाली, समस्त आभूषणों एवं मोतियों के हार से विभूषित, अनेक प्रकार की लटकती मणियों वाले कटिसूत्र से अलंकृत, रत्नखचित वलयों एवं मणियों से आभूषित केयूरों से विभूषित, मद से चलायमान नेत्रों वाली, गोल-गोल बड़े-बड़े उठे हुये स्तनों वाली, अतिशय लम्बे कर्णाभूषणों एवं स्वर्णमुकुट धारण करने वाली, तमाल-सदृश नील वर्ण वाली, तरुणी, मद से मत्त हथिनी के समान, चौसठ कलाओं की साक्षात् प्रतिमूर्ति-सदृश, पार्श्व में वर्त्तमान शुक-सारिकाओं वाली, करोड़ों बालसूर्य-सदृश दीप्तिमान, जपाकुसुम-सदृश अथवा पीत वर्ण वाली परा मातङ्गिनी का ध्यान करना चाहिये।।५२५-५४४।।

धर्मादिक्लृप्तपूर्वोक्ते पीठेऽर्च्याः शक्तयो नव।
ऐंह्रींश्रींबीजपूर्वाश्च ङेमातङ्गिनमोऽन्तकाः ।।५४५।।
विभूतिरुन्नतिः कान्तिः कीर्तिः सृष्टिश्च सम्मतिः।
पुष्टिरुत्कृष्टिर्ऋद्धिश्च मातङ्ग्या नव शक्तयः ।।५४६।।
वाङ्माये कमलां सर्वशक्त्यन्ते कमलापदम्।
सनाय नम इत्युक्त्वा मातङ्ग्याः पीठमर्चयेत् ।।५४७।।
देव्या मूर्तिं च मूलेन कल्पयित्वा यथाविधि।
तस्यामावाहयेद्देवीमर्चयेत्तदनन्तरम् ।।५४८।।
पाशाङ्कुशवराभीतिखड्गचर्म्मधनुःशरान्।
मौसलीं दुर्गबाणाख्यां योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् ।।५४९।।
त्रिकोणे पूर्वरक्षोदिक्कोणे रत्यादिका यजेत्।
पाशाङ्कुशा च श्वेताभा प्रथमायान्तु साञ्जलिः ।।५५०।।
अन्त्यारुणेक्षुकोदण्डपञ्चबाणलसत्करा।
त्रिकोणकाष्टदलयोरन्तराले तु पूजयेत् ।।५५१।।
मध्ये दिक्षु क्रमात्पञ्चहल्लेखादिकशक्त्यः।
गुणं सृण्यभयेष्टानि वहन्त्यो भूतसन्निभाः ।।५५२।।
अग्नीशरक्षःपवनकोणेष्वग्नेर्दिशासु च।
यजेदङ्गानि मन्त्रज्ञः पञ्चबाणांस्ततोऽर्चयेत् ।।५५३।।

दिक्ष्वग्रे क्रमतो मुक्तास्वर्णविद्रुमहीरकान्।
अमलारुणभायुक्तान् धनुर्बाणायुधांस्तथा ॥५५४॥

तदनन्तर धर्मादि से रचित पूर्वोक्त पीठ पर नव पीठशक्तियों का उनके नाम के पूर्व 'ऐं ह्रीं क्लीं' बीज एवं नाम के अनन्तर चतुर्थ्यन्त मातङ्गी (मातङ्ग्यै) पद का उच्चारण करते हुये अर्चन करना चाहिये। मातङ्गी की नव शक्तियाँ हैं—विभूति, उन्नति, कान्ति, कीर्ति, सृष्टि, सम्मति, पुष्टि, उत्कृष्टि एवं ऋद्धि। इनके अर्चन के पश्चात् 'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' इस मन्त्र से मातङ्गी के पीठ का अर्चन करने के बाद मूल मन्त्र से देवी की मूर्ति कल्पित करके उसमें यथाविधि देवी का आवाहन करके पूजन करना चाहिये। उसके बाद पाश, अंकुश, वर, अभय, खड्ग, ढाल, धनुष, बाण, मूसल, दुर्गबाण एवं योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये।

पाश एवं अंकुश धारण की हुई श्वेत आभा वाली रति, प्रीति एवं मनोभवा का त्रिकोण में पूर्वादि क्रम से हाथ जोड़कर पूजन करना चाहिये। त्रिकोण एवं अष्टदल के अन्तराल में इक्षुधनुष आदि पाँच बाण धारण की हुई देवियों का पूजन करना चाहिये। मध्य में एवं चारो दिशाओं में गुण सृणि अभय एवं वर धारण की हुई हृल्लेखा आदि पाँच शक्तियों का पूजन करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक को अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य कोणों और दिशाओं में षडङ्ग-पूजन करने के बाद दिशाओं के आगे मोती, सोना, मूँगा, हीरा, स्वच्छ रक्त कान्ति से समन्वित पाँच बाणों का पूजन करना चाहिये।।५४५-५५४।।

दलेष्वग्रे पूजनीया अनङ्गकुसुमादिकाः।
गुणसृण्यभयेष्टानि धारयन्त्योरुणप्रभाः ॥५५५॥
अग्रे दलानां सम्पूज्या लक्ष्म्याद्याश्चारुभूषणाः।
लक्ष्मी हेमप्रदा पद्माकरा कौसुम्भकाम्बरा ॥५५६॥
सरस्वती शङ्खनिभा चिन्मुद्रा पुस्तके रतिः।
श्वेताभा पुष्पबाणेक्षुहस्ता चामललोचना ॥५५७॥
धनुर्बाणकरा प्रीतिर्मेचकाभा सिताम्बरा।
कीर्तिः कुण्डसमा पद्मचिन्मुद्राकरशालिनी ॥५५८॥
चिन्मुद्राभययुक्छान्तिर्ध्यानस्तिमितलोचना।
बालाभयङ्करा पुष्टिः पीताङ्गा चारुभूषणा ॥५५९॥
तुष्टिर्वराभयकरा प्रसन्नमुखपङ्कजा।
द्वितीयाष्टदले पूज्या मन्मथाद्या मदोद्धताः ॥५६०॥

पुरआकृष्टचापेज्याः पृष्ठदेशनिषङ्गकाः ।
पत्रसंस्था मातरस्तु तदग्रे चाष्टभैरवाः ॥५६१॥
कपालशूलडमरुवेतालासक्तपाणयः ।
दीर्घस्वराद्या ब्राह्म्याद्या ह्रस्वाद्या भैरवा अपि ॥५६२॥
ततः षोडशपत्रस्था वामाद्याः श्यामविग्रहाः ।
आदर्शरत्नदीपं च व्यजनं च ततः परम् ॥५६३॥
नागवल्लीदलं चैव चामरं ज्ञानकोशकम् ।
वासोमाल्यातपत्राणाभरणाशुकशालिकैः ॥५६४॥
चामरं रत्नकलशं तालवृन्तं प्रदीपकम् ।
बिभ्राणा वामहस्तैश्च देवेशाः खड्गपाणयः ॥५६५॥
रक्तवर्णाः सुविमला भावयेदर्चयेदिमाः ।
वादयन्तीः सदा वीणाञ्चतुःपत्रे ततोऽर्चयेत् ॥५६६॥
मातङ्ग्याद्यास्तत्र पूज्याः पाशाङ्कुशवराभयैः ।
अलंकृतभुजा रक्ता द्वितीया चेन्दुसन्निभा ॥५६७॥
असिखेटकशूलाह्वमुण्डहस्ता तथापरा ।
पाशाङ्कुशसरोजानि योनिमुद्राञ्च बिभ्रती ॥५६८॥
अरुणा चान्तिमा हेमरत्नपत्रे वराभये ।
दधाना श्यामवर्णा च ध्यातव्या मन्त्रिसत्तमैः ॥५६९॥
अग्निनैर्ऋत्यवायव्यरुद्रकोणेषु संयजेत् ।
गणेशदुर्गावटुकक्षेत्रपालान् बहिर्यजेत्॥५७०॥
चतुरस्रे लोकपालांस्तदस्त्राणि च तद्बहिः ।
प्रजपेदयुतं मन्त्री मन्त्रं पश्चाद्दशांशतः ॥५७१॥
त्रिस्वादुयुक्तैर्जुहुयाद्बन्धूककुसुमैर्वशी ।
तर्पणं मार्जनं कृत्वा ब्राह्मणाराधनं तथा ॥५७२॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री साधयेन्निजवाञ्छितम् ।

अष्टदल के अग्र भाग में पाश, सृणि, अभय एवं वर धारण की हुई अरुणप्रभा वाली अनङ्गकुसुमा आदि का पूजन करना चाहिये। दलों के आगे सुन्दर आभूषणों से भूषित लक्ष्मी आदि का पूजन करना चाहिये। इनमें से हाथों में कमल ली हुई एवं कौसुम्भ वस्त्र धारण की हुई लक्ष्मी सुवर्ण प्रदान करने वाली है। शंख-सदृश सरस्वती हाथों में चिन्मुद्रा एवं पुस्तक ली हुई है। श्वेत आभा वाली निर्मलनयना रति हाथों में

पुष्पबाण एवं इक्षु ली हुई है। श्वेत वस्त्रधारिणी एवं मेचक (श्याम) वर्ण वाली प्रीति हाथों में धनुष-बाण ली हुई है। हाथों में कमल एवं चिन्मुद्रा धारण करने वाली कीर्ति कुण्ड के समान है। शान्त नेत्रों वाली शान्ति का हाथों में चिन्मुद्रा एवं अभय धारण किये हुये स्वरूप में ध्यान करना चाहिये। बाला अभय प्रदान करने वाली है। पीत अंगों वाली पुष्टि मनोहर आभूषणों से भूषित है। हाथों में वर एवं अभय धारण की हुई तुष्टि प्रसन्न मुख वाली है। इन सबका पूजन दलों के अग्र भाग में करना चाहिये।

दूसरे अष्टदल में सामने धनुष ताने हुये एवं पीठ पर बाणों का तूणीर रखे हुये मन्मथ आदि का पूजन करके दलों में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं की एवं उनके आगे हाथ में कपाल, शूल, डमरु एवं वेताल लिये हुये अष्टभैरवों की पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर षोडश दलों में वामा आदि देवियों का पूजन करना चाहिये। आदर्श रत्नदीप एवं पंखा धारण की हुई श्याम शरीर वाली ये सभी देवियाँ अपने-अपने हाथों में पानपात्र चँवर पुस्तक धारण की हुई हैं एवं वस्त्र-माला-आभरणादि से अलंकृत हैं। इनके बाँयें हाथ में चामर रत्नकलश तालवृन्त दीपक है तथा देवगण अपने हाथों में खड्ग लिये हुये हैं। ये सभी रक्त वर्ण वाली एवं प्रकाशमान हैं और सदा वीणावादन करती रहती हैं।

तदनन्तर पाश अंकुश वर एवं अभय से अलंकृत भुजाओं वाली रक्त वर्ण वाली पहली, असि खेट शूल एवं मुण्ड हाथों में ली हुई दूसरी चन्द्रमा के समान, रक्त वर्ण वाली तीसरी पाश अंकुश एवं योनिमुद्रा धारण की हुई तथा श्याम वर्ण वाली चौथी स्वर्ण रत्नपात्र वर एवं अभय धारण की हुई मातङ्गी आदि का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं ईशान कोण में क्रमशः गणेश, दुर्गा, वटुक और क्षेत्रपाल का पूजन करने के उपरान्त चतुरस्र की प्रथम वीथि में इन्द्रादि दश दिक्पालों का और दूसरी वीथि में उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद जितेन्द्रिय मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र का दश हजार जप सम्पन्न करके त्रिमधु-सिक्त बन्धूकपुष्पों से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण, मार्जन करने के बाद ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध मन्त्र द्वारा मन्त्री को अपने अभीष्ट का साधन करना चाहिये।।५५५-५७२।।

भाग्यार्थी जुहुयाज्जातीमल्लिकानागकेशरैः ।।५७३।।
श्रीफलैश्चापि तत्पत्रैर्होमाद्राज्यश्रियं व्रजेत् ।
राजपुत्रः पङ्कजैः स्वां श्रियमाप्नोत्यनुत्तमाम् ।।५७४।।
लक्ष्मीपुष्पौत्पलैश्चैव वशयेत्सकलं जगत् ।
जपाबन्धूकबकुलैर्वज्रवृक्षसमुद्भवैः ।।५७५।।

सुमनोभिश्च जुहुयाद्वश्यायैव हि मन्त्रवित्।
मधुना जुहुयात्तस्य सर्वसिद्धिर्भवत्यलम् ॥५७६॥
त्रिस्वादुसंयुतैः सम्यग्वेतसोत्थसमिद्वरैः।
जुहुयाद् वृष्टिकामस्तु गुडूचीभिर्ज्वरं हरेत् ॥५७७॥
कदम्बकुसुमैर्हुत्वा वशयेत्प्रमदाजनान्।
आयुष्कामः प्रजुहुयाद् दूर्वाभिर्नात्र संशयः।
अन्नं प्रजुहुयान्मन्त्री चान्नवाञ्जायतेऽचिरात् ॥५७८॥
शालितण्डुलहोमेन धनाकुलगृहो भवेत्।
होमद्रव्यन्तु यत्प्रोक्तं त्रिस्वाद्वक्तं तु तद्भवेत् ॥५७९॥
नन्द्यावर्त्तप्रसूनैः स्याद्धोमो वाक्सिद्धिदः परः।
निम्बप्रसूनहोमाच्च कमलां वाञ्छितां लभेत् ॥५८०॥
हुनेत्किंशुकहोमैर्यः स भवेत्तेजसां निधिः।
चन्दनागुरुकर्पूररोचनाकुङ्कुमैरपि ॥५८१॥
होमात्तु विश्वं सकलं वशयेन्नात्र संशयः।
अष्टाभिर्जपितैरेतैस्तिलकं जनमोहनम् ॥५८२॥
सिन्धुवारस्य मूलानि होमयेद्बन्धमुक्तये।
उग्रगन्धस्य तैलेन संसिक्तैर्लवणैर्हुनेत्।
अचिराच्छत्रुसङ्घं स नाशयेन्नात्र संशयः ॥५८३॥
सञ्चूर्णितनिशामिश्रैर्लवणैः स्तम्भयेद्रिपुम्।
परिपक्वैरतिरसैः फलैः पुष्पैः सुगन्धिभिः।
होमाद्वाञ्छितमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥५८४॥

भाग्यवृद्धि के लिये जाती-पुष्प, मल्लिका, नागकेशर एवं श्रीफल से हवन करना चाहिये। बेलपत्रों से हवन करने पर राज्यश्री की प्राप्ति होती है। पंकजों से हवन करके राजपुत्र अपनी अनुत्तम लक्ष्मी को प्राप्त करता है। लक्ष्मीपुष्प और उत्पल के हवन करने पर सारा संसार वशीभूत होता है। वशीकरण के लिये जपा, बन्धूक, बकुल एवं वज्रवृक्ष के पुष्पों से हवन किया जाता है। मधु से हवन करने पर सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

त्रिमधुराक्त वेंत की समिधा से हवन करने पर वर्षा होती है। गुरुच का हवन ज्वर को दूर करता है। कदम्बपुष्पों के हवन से स्त्रियाँ वशीभूत होती हैं। आयुवृद्धि के लिये दूब से हवन करना चाहिये। अन्न के हवन से साधक को शीघ्र ही प्रचुर अन्न की प्राप्ति

होती है। शालितण्डुल के हवन से होता का घर धन से भर जाता है। यहाँ जितने भी हवनीय द्रव्यों का कथन किया गया है, उन सबको त्रिमधुराक्त करके हवन करना चाहिये।

नन्द्यावर्तपुष्पों का हवन वाक्सिद्धि प्रदान करने वाला होता है। नींबपुष्पों के हवन से अभीप्सित लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। जो पलाशपुष्पों से हवन करता है, वह तेजोनिधि होता है। चन्दन, अगुरु, कपूर, गोरोचन एवं कुमकुम के हवन से निश्चित ही सारा संसार वशीभूत होता है। चन्दन-अगुरु-कपूर-गोरोचन एवं कुमकुम के लेप को मन्त्र के आठ जप से अभिमन्त्रित कर तिलक करने से लोगों का मोहन होता है।

बन्धनमुक्ति के लिये सिन्दुवार की जड़ से हवन करना चाहिये। उग्र गन्ध वाले तेल से सिक्त लवण के हवन से शीघ्र ही शत्रुओं का विनाश हो जाता है।

हल्दी के महीन चूर्ण में नमक मिलाकर हवन करने से शत्रुस्तम्भन होता है। पूर्णतः पके रसदार फलों एवं सुगन्धित पुष्पों के हवन से निःसन्दिग्ध रूप से साधक को अभीष्ट की प्राप्ति होती है।।५७३-५८४।।

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये मातङ्ग्या अतिसिद्धिदम्।
ऐं क्लीं सौः ऐं समुच्चार्य्य ह्रीं श्रीं तारं समुच्चरेत्।।५८५।।
नमो भगवतीत्यादिश्चतुर्विंशतिवर्णकः।
उच्चरेत्सर्पमन्त्रस्य रञ्जनीं क्लीं ततो वदेत्।।५८६।।
तथा श्रीबीजमुच्चार्य सर्वराजादिकान् वदेत्।
पूर्वमन्त्रस्य वर्णास्तु चत्वारिंशत्क्रमात्ततः।।५८७।।
वशङ्करिपदं प्रोच्य प्राङ्मन्त्रस्यामुकादिकान्।
एकादशार्णान् प्रवदेच्छ्रींह्रींऐंसौस्ततो वदेत्।
क्लीमेवेति द्व्यूनशतं मन्त्रे वर्णाः प्रकीर्तिताः।।५८८।।
अयं मन्त्रस्त्रिभुवनवशीकारकरः परः।
आचार्यानुग्रहात्प्राप्यो महापुण्यतमैर्जनैः।
दुष्प्राप्योऽकृतपुण्यैश्च मुनीन्द्राद्यैश्च सेवितः।।५८९।।
वाञ्छावितरणे कल्पपादपः परिकीर्त्तितः।
ऋष्याद्याः पूर्वमुदिता मन्त्रस्यास्य भवन्ति हि।।५९०।।

मातङ्गी का अन्य मन्त्र—अब मातङ्गी के अत्यन्त सिद्धिदायक अट्ठानबे अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ऐं क्लीं सौः ऐं ह्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति श्रीमातङ्गेश्वरि सर्वजनमनोहरि सर्वमुखराजि सर्वमुखरञ्जिनि क्लीं श्रीं सर्वराजवशङ्करि

सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वलोकममुकं मे वशमानय स्वाहा श्रीं ह्रीं ऐं सौः क्लीं।

तीनों भुवनों को वशीभूत करने वाला यह श्रेष्ठ मन्त्र है। गुरु की कृपा होने पर अतिशय पुण्यात्मा लोगों द्वारा यह मन्त्र प्राप्त करने योग्य है। श्रेष्ठ मुनियों द्वारा सेवित होने पर भी पापात्माओं के लिये यह दुष्प्राप्य ही है। अभीष्ट प्रदान करने में यह कल्पवृक्ष कहा गया है। पूर्वोक्त मन्त्र के ऋषि आदि ही इसके भी ऋषि आदि होते हैं।।५८५-५९०।।

ततस्तु मातृका न्यस्य देवताभावसिद्धये।
पञ्चबाणानङ्गुलीषु तलयोर्मकरध्वजम् ।।५९१।।
न्यसेन्मन्त्रं दशार्णं सौर्वाग्भवं ङेऽन्तमुच्चरेत्।
मकरध्वज इत्येतत्क्लीं नमोऽन्तः प्रकीर्तितः ।।५९२।।
शिखाशिरोललाटेषु भ्रूमध्ये नेत्रयुग्मके।
श्रोत्रयोर्घ्राणयोर्वक्त्रे गण्डयोः ककुदि क्रमात् ।।५९३।।
अंसयोरुरसि न्यस्य स्तनयोर्हृदयाम्बुजे।
नाभिमण्डलके गुह्ये मूलाधारे पदोरपि ।।५९४।।
त्रयोविंशतिसङ्ख्यानि त्रित्र्येकद्व्यब्धिभिस्तथा।
षडष्टैकैकचन्द्राष्टनवाष्टादशपत्रिभिः ।।५९५।।
वस्वष्टवह्निचन्द्राक्षित्रिद्वित्रीन् क्रमान्न्यसेत्।
एकोनविंशतियुतान्मन्त्रार्णानादितः क्रमात् ।।५९६।।
पदैः षड्भिः षडङ्गानि ऐंह्रींश्रींपूर्वकैश्चरेत्।
कामशक्तीन्दिराबीजान्युक्तानि च शिखा मनोः ।।५९७।।
षड्दीर्घकामयुक्तेन षडङ्गानि प्रकल्पयेत्।
द्राविण्याद्याः पुनः पञ्च कुक्षौ पार्श्वद्वये हृदि ।।५९८।।
मणिपूरे न्यसेदत्र ब्राह्म्याद्याश्चात्र विन्यसेत्।
दक्षपादाङ्गुलीमूले गुल्फसन्धौ च जानुनि ।।५९९।।
दक्षोरुमूले वामोरुमूले जानुनि गुल्फके।
वामपादाङ्गुलीमूले ततो लक्ष्म्यादिका न्यसेत् ।।६००।।
वामदोर्मूलके मध्ये सन्धौ च मणिबन्धके।
वामहस्ताङ्गुलीमूले दक्षहस्ताङ्गुलीतटे ।।६०१।।

मणिबन्धे मध्यसन्धौ कक्षयोर्मूलके क्रमात्।
मस्तके च भ्रुवोर्मध्ये नेत्रयो: श्रोत्रयोर्गुदे ॥६०२॥
नासायुग्मे मुखे गण्डद्वन्द्वे जिह्वाग्रदेशके।
मूलाधारे त्वधिष्ठाने तालौ वामादिका न्यसेत् ॥६०३॥
लक्ष्म्यादिकस्थले न्यस्या असिताङ्गादिभैरवा:।
मातङ्ग्यादिचतुष्कं च हृदि नाभौ शिरो गुदे ॥६०४॥
गणेशदुर्गाबटुकक्षेत्रपालांस्ततो न्यसेत्।
कभ्रूकण्ठेषु मूले च मन्त्रेण व्यापकं चरेत् ॥६०५॥
सरस्वतीं महालक्ष्मीं निधियुग्मं प्रविन्यसेत्।
आनने च भ्रुवोर्मध्ये दक्षपादे तथोत्तरे ॥६०६॥
एवं न्यस्य मनुं मन्त्री ध्यायेद्देवीमनन्यधी:।
अमृतस्य समुद्रे तु रत्नद्वीपे महावने ॥६०७॥
पञ्चानां कल्पवृक्षाणां मण्डपे मणिसंयुक्ते।
मणिसिंहासनस्योर्ध्वमुपविष्टां विचिन्तयेत् ॥६०८॥
मधुपानेन मुदितां पूर्णमाननिरीक्षणाम्।
शुभ्रांशुवदनां नीपपुष्पगुम्फितवेणिकाम् ॥६०९॥
वीणालसत्करां रक्तवस्त्रां बिम्बाधरां शुभाम्।
कस्तूरीतिलकां चन्द्रमुकुटामुन्नतस्तनीम् ॥६१०॥
शङ्खपत्रश्रुतिं मध्यां नम्रां सम्मेचकच्छविम्।
वलयाङ्गदहारादिमञ्जीररशनान्विताम् ॥६११॥
हास्यैर्भक्तांस्तोषयन्तीं पार्श्वसंस्थालकांशुकाम्।

ऋष्यादि न्यास करने के उपरान्त देवताभाव की सिद्धि के लिये मातृकान्यास करके पाँचो अंगुलियों में पाँच बाणों का और हस्ततलों में दशाक्षर मन्त्र 'सौ: ऐं मकरध्वजाय क्लीं नम:' का न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर शरीर के तेईस अङ्गों में मन्त्र के तेईस खण्डों का न्यास करना चाहिये। वे तेईस अङ्ग इस प्रकार हैं—शिखा, शिर, ललाट, भ्रूमध्य, दक्षनेत्र, वामनेत्र, दक्षकर्ण, वामकर्ण, दक्षनासा, वामनासा, मुख, दोनों गण्डस्थल, ककुद, दक्षांस, वामांस, दक्षोरु, वामोरु, दक्षकुच, वामकुच, हृदय, नाभिमण्डल, गुह्य, मूलाधार एवं दोनों पैर। मन्त्रखण्ड में अक्षरों का क्रम इस प्रकार कहा गया है—तीन, तीन, एक, दो, चार, छ:, आठ, एक, एक, आठ, नव, अट्ठारह, आठ, आठ, तीन, एक, दो,

तीन, दो, तीन। इसके बाद इस प्रकार षडङ्ग न्यास करना चाहिये—ऐं ह्रीं श्रीं ॐ नमो भगवति श्रीमातङ्गीश्वरि सर्वजन हृदयाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं मनोहरि सर्वमुखराजि सर्वमुखरंजिनि क्लीं श्री शिरसे स्वाहा, ऐं ह्रीं श्रीं सर्वराजवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि शिखायै वषट्, ऐं ह्रीं श्रीं सर्वदुष्टमृगवशङ्करि सर्वसत्त्ववशङ्करि कवचाय हुम्, ऐं ह्रीं श्रीं सर्वलोकममुकं मे वशमानय स्वाहा श्रीं ह्रीं ऐं सौं क्लीं अस्त्राय फट्। पुनः छः दीर्घ कामबीजों (क्लां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः) से षडङ्ग न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् द्राविणी आदि का न्यास इस प्रकार करना चाहिये—द्राविणी का कुक्षि में, शोषिणी का दक्षपार्श्व में, बंधिनी का वामपार्श्व में, मोहिनी का हृदय में एवं आकर्षिणी का मणिपूर में।

इसके बाद ब्राह्मी का दक्षपादांगुलिमूल में, माहेश्वरी का गुल्फसन्धि में, कौमारी का दक्ष जानु में, माहेन्द्री का दक्षोरुमूल में, वैष्णवी का वामोरुमूल में, वाराही का वामजानु में, चामुण्डा का गुल्फ में एवं महालक्ष्मी का वामपादांगुलिमूल में न्यास करना चाहिये।

इसके बाद लक्ष्मी का वामभुजमूल में, सरस्वती का वामकूर्पर में, रति का वाम मणिबन्ध में, प्रीति का वामकराङ्गुलिमूल में, कीर्ति का दक्षकराङ्गुलिमूल में, शान्ति का दक्ष मणिबन्ध में, पुष्टि का दक्षकूर्पर में एवं तुष्टि का दक्षकरमूल में न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर वामा का शिर में, ज्येष्ठा का भ्रूमध्य में, रौद्री का दक्षनेत्र में, शान्ति का वामनेत्र में, सिद्धिदा का दक्षकर्ण में, वागीश्वरी का वामकर्ण में, क्रियाशक्ति का गुदा में, लक्ष्मी का दक्षनासा में, सृष्टि का वाम नासा में, मोहिनी का मुख में, प्रथमा का दक्षगण्ड में, भाविनी का वामगण्ड में, मान्या का जिह्वाग्र में, तड़िल्लता का मूलाधार में, विष्णु का स्वाधिष्ठान में एवं विष्णुशक्ति का तालु में न्यास करना चाहिये।

इसके बाद लक्ष्मी आदि के स्थान पर अष्टभैरवों का इस प्रकार न्यास करना चाहिये—असिताङ्गभैरव का वामकरमूल में, रुरुभैरव का वामकूर्पर में, चण्डभैरव का दक्षमणिबन्ध में, क्रोधभैरव का वामकराङ्गुलिमूल में, उन्मत्तभैरव का दक्षकरांगुलिमूल में, कपालभैरव का वाममणिबन्ध में, भीषणभैरव का दक्षकूर्पर में एवं संहारभैरव का दक्षकरमूल में न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मातङ्गी का हृदय में, महामातङ्गी का नाभि में, महालक्ष्मी का शिर में और सिद्धलक्ष्मी का गुदा में न्यास करना चाहिये।

इसके बाद गणेश, दुर्गा, बटुक एवं क्षेत्रपाल का न्यास शिर, भ्रूमध्य, कण्ठ एवं मूलाधार में करने के पश्चात् सर्वाङ्ग में मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये।

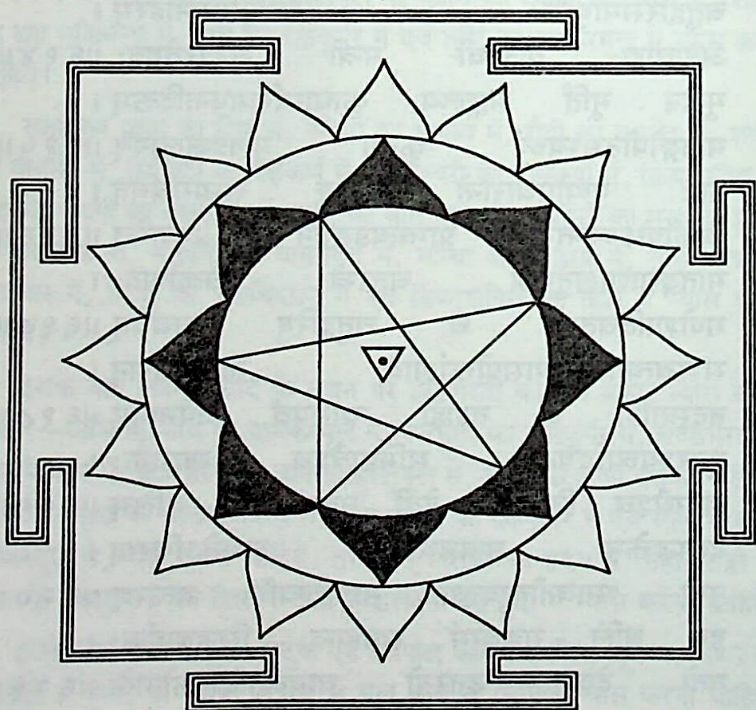
तदनन्तर सरस्वती, महालक्ष्मी, शङ्खनिधि और पद्मनिधि का क्रमशः मुख, भ्रूमध्य, दक्षपाद और वामपाद में न्यास करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र का न्यास करके मन्त्रज्ञ साधक को अनन्य भाव से अमृतसिन्धु में रत्ननिर्मित द्वीप पर महान् वन में पाँच कल्पवृक्षों से बने मण्डप में मणियों से समन्वित सिंहासन के ऊपर विराजमान देवी ध्यान करना चाहिये।

वह देवी मधुपान से मुदित नेत्रों वाली, चन्द्रमा के समान मुख वाली, वेणी में नीपपुष्पों का गुच्छ लगाई हुई, वीणा से सुशोभित हाथों वाली, रक्त वस्त्र धारण की हुई, बिम्ब-सदृश अधरों वाली, कस्तूरी का शोभन तिलक लगाई हुई, मुकुट में चन्द्रमा को धारण की हुई, उन्नत स्तनों वाली, कानों पर शंखपत्र धारण की हुई, मध्यभाग से झुकी हुई, वलय अंगद हार करधनी आदि से अलंकृत, बगल में चुनरी रखी हुई अपने हास्य से भक्तों को प्रसन्न कर रही हैं।।५९१-६११।।

पूर्वोक्ते च शुभे पीठे यन्त्रमेतत्प्रकल्पयेत् ।।६१२।।
त्रिकोणं पञ्चकोणं वाप्यष्टपत्रं कलाछदम् ।
अष्टपत्रं वेदतलं चतुरस्त्रं मनोहरम् ।।६१३।।
चतुर्द्वारसमायुक्तं सर्वदृष्टिमनोहरम् ।
अत्रावाह्य यजेद्देवीं मन्त्री शृङ्गारवेषतः ।।६१४।।
मूलेन मूर्तिं सङ्कल्प्य कृत्वार्घ्यस्थापनादिकम् ।
मातङ्गीपीठमभ्यर्च्य कृत्वा मूलप्रकल्पनम् ।।६१५।।
ततः पुष्पोपचारान्ते लयाङ्गं सम्यगर्चयेत् ।
त्रिकोणेऽभ्यन्तरे प्राग्वत्षडङ्गानि प्रपूजयेत् ।।३१६।।
मातङ्ग्याद्याश्चतुष्पत्रे चतुरस्त्रे त्रिकोणतः ।
गणेशादिचतुष्कं च चतुर्द्वारेषु चार्चयेत् ।।६१७।।
सरस्वत्यादिकन्यासप्रोक्तांश्चाग्रे दिगीश्वरान् ।
तदस्त्राणि च तद्बाह्ये न्यासपूर्वं जपेन्मनुम् ।।६१८।।
पुनरभ्यर्च्याङ्गषट्कं सुमिष्टान्नैश्च खाद्यकैः ।
सदुग्धैश्च निवेद्याथ देवीं नत्वा ततो बलिम् ।।६१९।।
दद्याद्भक्तेन मन्त्रज्ञस्तेनेष्टं लभतेऽचिरात् ।
नमो भगवतीत्युक्त्वा मातङ्गेश्वरि तत्परम् ।।६२०।।
इमं बलिं गृह्णयुग्मं स्वाहान्तः सिद्धवर्णकः ।
ततो देव्या उत्तरतो वायव्यादिसकोणके ।।६२१।।

पङ्क्तिक्रमेण ऐंह्रींक्लीं गुरुभ्यो नम उच्चरेत्।
परमेष्ठिगुरुभ्यश्च परमाचार्यगुरुभ्यः ॥६२२॥
आदिसिद्धगुरुभ्यः सद्गुरुभ्यो नम उच्चरेत्।
सर्वत्र पञ्चस्थानेषु गुरून् सम्पूजयेदिति ॥६२३॥
पूर्वमेव जपेल्लक्षं पुरश्चरणसिद्धये।
पलाशपुष्पैस्त्रिस्वादुयुक्तैरन्तेऽयुतं हुनेत् ॥६२४॥
तर्पणं मार्जनं कुर्याद्भोजयेद् भूसुरानपि।
कुमारीर्भोजयेच्चापि वशयेत्क्षोभयेज्जगत् ॥६२५॥
मातङ्ग्यनुग्रहीभूय सर्वकर्माणि साधयेत्।
कुण्डे वा स्थण्डिले वापि विधेयं काम्यकर्मकम् ॥६२६॥

तदनन्तर पूर्वोक्त शुभ पीठ पर इस यन्त्र का प्रकल्पन करना चाहिये। त्रिकोण के बाहर पञ्चकोण, उसके बाहर अष्टपत्र, उसके बाहर षोडशपत्र, उसके बाहर चार द्वारों से समन्वित चार रेखात्मक भूपुर का निर्माण करना चाहिये, जो सबकी दृष्टि एवं मन को आकर्षित कर सके। इसका स्वरूप इस प्रकार का होता है—



इस यन्त्र में देवी का आवाहन करके शृङ्गार की सामग्रियों से उनका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् साधक को मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करने के बाद अर्घ्यादि का स्थापन करके मातङ्गी पीठ का अर्चन करके मूल की कल्पना करनी चाहिये।

इसके बाद गन्ध-पुष्पादि उपचारों से पूजन करने के उपरान्त लयाङ्ग-पूजन करना चाहिये। त्रिकोण के मंध्य में पूर्ववत् षडङ्ग-पूजन करने के बाद त्रिकोण-स्थित बिन्दु के चारो ओर मातङ्गी आदि चार का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूपुर के द्वारों पर गणेश आदि चार का पूजन करने के बाद अष्टपत्रों में सरस्वती आदि का अर्चन करने के पश्चात् भूपुर में दिक्पालों एवं उसके बाहर उनके आयुधों का पूजन करके पुनः न्यास करने के बाद मन्त्र का जप करना चाहिये। तत्पश्चात् पुनः षडङ्ग-पूजन करके देवी को प्रणाम-पूर्वक मधुर अन्न, खाद्य, दूध आदि निवेदित करने के बाद बलि प्रदान करना चाहिये। भात की बलि देकर मन्त्रज्ञ साधक थोड़े ही दिनों में इच्छित वस्तु प्राप्त कर लेता है। बाईस अक्षरों का बलिमन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ नमो भगवति मातङ्गेश्वरि इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा।

तदनन्तर देवी के उत्तर से आरम्भ कर वायव्यादि कोण तक पंक्तिक्रम से 'ऐं ह्रीं क्लीं गुरुभ्यो नमः, ऐं ह्रीं क्लीं परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः, ऐं ह्रीं क्लीं परमाचार्यगुरुभ्यो नमः, ऐं ह्रीं क्लीं आदिसिद्धगुरुभ्यो नमः, ऐं ह्रीं क्लीं सद्गुरुभ्यो नमः' कहते हुये सर्वत्र पाँच स्थानों में पाँच गुरुओं का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद पूर्ववत् पुरश्चरण की सिद्धि के लिये मन्त्र का एक लाख जप करके घी, मधु, शक्कर से सिक्त पलाशपुष्पों से दस हजार हवन करना चाहिये। फिर तर्पण-मार्जन करके ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् कुमारियों को भी भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार पूजन करके साधक समस्त जगत् को वशीभूत करने एवं क्षुब्ध करने में समर्थ हो जाता है। अनन्तर मातङ्गी की कृपा प्राप्त करके साधक को समस्त कार्यों का साधन करना चाहिये। काम्य कर्मों के लिये कुण्ड अथवा स्थण्डिल में हवन करना चाहिये।।६१२-६२६।।

रक्तवस्त्रपरीताङ्गो रक्तमाल्यानुलेपनः ।
घृताक्तगुग्गुलोर्होमाद्राज्ञश्च वशयेत्सुधीः ।।६२७।।
मल्लिकाजातिपुन्नागैर्जुहुयाद् भाग्यवान् भवेत् ।
राज्यार्थी बिल्वपत्रैश्च हुनेत्पद्मैर्विशेषतः ।।६२८।।
श्रीकामः श्वेतपद्मैश्च रक्तैर्वा जुहुयात्पुनः ।
उत्पलैर्धनकामस्तु लक्ष्मीपुष्पैश्च होमयेत् ।।६२९।।

बन्धूकैश्चैव वागर्थी किंशुकैर्बकुलैर्हुनेत् ।
आकर्षणे तु लवणैस्तिलैर्मधुरसंयुतैः ॥६३०॥
वञ्जुलैर्वृष्टिमाप्नोति गुडूचीभिर्हरेज्ज्वरम् ।
अन्नार्थी जुहुयादन्नैर्धान्यार्थी शालितण्डुलैः ॥६३१॥
गन्धद्रव्येण होमस्तु सर्वसौभाग्यदायकः ।
कुङ्कुमै रोचनाभिर्वा होमो वश्यार्थिनो मतः ।
नन्द्यावर्त्तप्रसूनैश्च वागर्थी जुहुयादथ ॥६३२॥
पलाशपुष्पैस्तेजोऽर्थी कपिलाज्येन वा हुनेत् ।
शत्रोरुन्मादकृद्धोम उन्मत्तकुसुमैरपि ॥६३३॥
विषमेघाह्वनिम्बाक्षश्लेष्मान्तकबिभीतकैः ।
उलूककाकगृद्धोत्थपक्षैस्तैलपरिप्लुतैः ॥६३४॥
त्र्यस्त्रकुण्डे च शर्वर्यां रिपुनाशाय होमयेत् ।
पायसैर्गुडसम्मिश्रैः खण्डैरिक्षुदलैस्तथा ॥६३५॥
उन्मादनाशनो होमः पायसैर्वा घृतप्लुतैः ।
मरिचं तिलतैलाक्तं काशश्वासज्वरापहम् ॥६३६॥
निर्गुण्डीमूलहोमेन निगडस्य विमोचनम् ॥६३७॥

साधक रक्त वस्त्र धारण करके रक्त अनुलेप और रक्त वर्ण की माला से युक्त होकर घृताक्त गुग्गुलु से हवन करके राजा को वशीभूत कर लेता है। मल्लिका, जाती एवं पुन्नाग के हवन से साधक भाग्यवान होता है। राज्य-प्राप्ति के इच्छुक साधक को विशेषतया बेलपत्र से हवन करना चाहिये। लक्ष्मी की कामना वाले को श्वेत अथवा रक्त पद्मों से हवन करना चाहिये। धन की कामना से लक्ष्मीपुष्पों एवं बन्धूकपुष्पों से हवन करना चाहिये। पलाश एवं बकुलपुष्पों के हवन से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। आकर्षण के लिये त्रिमधु-युक्त नमक एवं तिल से हवन करना चाहिये।

वञ्जुल के हवन से वर्षा होती है। गुरुच के हवन से ज्वर दूर होता है। अन्न के इच्छुक को अन्न से एवं धान्य के इच्छुक को शालि तण्डुल से हवन करना चाहिये। गन्धद्रव्यों से किया गया हवन समस्त सौभाग्य प्रदान करने वाला होता है। वशीकरण के लिये कुमकुम अथवा गोरोचन से हवन करना चाहिये। वाक्सिद्धि के लिये नन्द्यावर्त के पुष्पों से हवन करना चाहिये। तेज:प्राप्ति के लिये पलाशपुष्पों से अथवा कपिला गाय के घृत से हवन करना चाहिये। शत्रु को उन्मत्त करने के लिये उन्मत्तपुष्पों से हवन करना चाहिये।

विष, वारिवाह, नीम, पिचुमन्द, अनार, बहेड़ा तथा उल्लू-कौआ एवं गिद्ध के पंख को तेल से सिक्त करके रात्रि में त्रिकोण कुण्ड में हवन करने से शत्रु का विनाश होता है। गुड़मिश्रित पायस और ईख के टुकड़ों के हवन से अथवा घृत-सिक्त पायस के हवन से उन्माद का नाश होता है। तिलतैल-सिक्त मरिच के हवन से खांसी, दमा एवं ज्वर का नाश होता है। निर्गुण्डी की जड़ के हवन से बन्धन से मुक्ति मिलती है।।६२७-६३७।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि जीवस्याकर्षणं परम्।
साध्यप्रतिकृतीः कुर्याच्चतस्रो मन्त्रवित्तमः ।।६३८।।
एकां साध्यर्क्षवृक्षोत्थां मधूच्छिष्टेन चापराम्।
परां कुलालमृद्भूतां शालिपिष्टेन चापराम् ।।६३९।।
लिखेत्तासां तु हृदयेऽमुकं मे वशमानय।
साध्यनामामुकस्थाने साध्ये प्राणांश्च तत्र च ।।६४०।।
संस्थाप्य तास्ततः स्पृष्ट्वा मूलमष्टोत्तरं शतम्।
जपेन्मूलेऽमुकस्थाने साध्यनाम तु योजयेत् ।।६४१।।
अमुकं पदरूपं यद्यन्त्रमन्त्रेषु दृश्यते।
साध्याभिधानं तद्रूपं तत्र स्थाने निवेशयेत् ।।६४२।।
कुण्डमध्ये द्व्यङ्गुलाधः पुत्तलीं दारुजां खनेत्।
उत्तानामथ पिष्टोत्थां स्वासनाधस्तथा खनेत् ।।६४३।।
पादन्यासस्य संस्थाने मृण्मयीं भुवि पूरयेत्।
लवणेन सहैतास्तु तिस्रः पूर्यास्ततः परम् ।।६४४।।
ततो मधूच्छिष्टमयीमूर्ध्वपादामधोमुखीम् ।।६४५।।
अर्कतूलकदोरेण बद्धपादां प्रलम्बयेत्।
कुण्डोपरि च धूमेन तथा सा व्याकुला भवेत् ।।६४६।।
ततस्तु लवणं ग्राह्यं कुडवैकं घृतं मधु।
गुडं च पेषयेल्लक्ष्णं पुत्तलीन्तेन कारयेत् ।।६४७।।
स्पष्टाङ्गीं साध्यरूपेण तुल्यां श्लक्ष्णां मनोहराम् ।।६४८।।
रक्तमाल्याम्बरालेपः कृतन्यासविधिः स्वयम्।
प्रतिमायां तु संहारभागेन न्यासमाचरेत् ।।६४९।।
नामप्रतिष्ठितप्राणा साध्यानां सप्तधा भजेत्।
दक्षोरुमूलात्पादान्तः प्रथमो भाग ईरितः ।।६५०।।

बस्तितः कण्ठपर्यन्तो दक्षभागो द्वितीयकः।
भुजो दक्षस्तृतीयः स्याच्चतुर्थो मस्तकम्मतम् ॥६५१॥
भुजो वामः पञ्चमः स्यात्षष्ठो वामोदरादिकम्।
स्यात्सप्तमस्तथोर्वादिपादान्तः सव्यदेहतः ॥६५२॥

जीवाकर्षण—अब मैं श्रेष्ठ जीवाकर्षण को कहता हूँ। मन्त्रज्ञ साधक को साध्य की चार प्रतिमाओं का निर्माण करना चाहिये। उनमें से एक प्रतिमा साध्य नामाक्षर के नक्षत्रवृक्ष की लकड़ी से, दूसरी मोम से, तीसरी कुम्हार की मिट्टी से एवं चौथी शालिपिष्ट (पीसे चावल) से बनानी चाहिये। तत्पश्चात् उन सभी प्रतिमाओं के हृदय में 'अमुकं मे वशमानय' लिखना चाहिये। यहाँ 'अमुक' के स्थान पर साध्य का नाम लिखना चाहिये।

तत्पश्चात् उन प्रतिमाओं को स्थापित करने के बाद उनका स्पर्श करके मूल मन्त्र में 'अमुक' के स्थान पर साध्यनाम को रखकर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। यन्त्र अथवा मन्त्र में जहाँ कहीं भी 'अमुक' पद हो, वहाँ पर साध्य का नाम लिखकर उसी स्थान् पर उन्हें गाड़ देना चाहिये।

कुण्ड के मध्य दो अंगुल नीचे लकड़ी की प्रतिमा को, अपने आसन के नीचे लेटी हुई पिष्टज प्रतिमा को एवं पैर रखने के स्थान पर मिट्टी की प्रतिमा को गाड़ना चाहिये। गाड़ने के समय तीनों के साथ नमक भी रखना चाहिये। तदनन्तर मोम की प्रतिमा के पैरों को अकवन की रुई से निर्मित धागे से बाँध कर कुण्ड के ऊपर नीचे की ओर मुख करके लटका देना चाहिये। उस स्थिति में कुण्ड का धूम लगने पर वह प्रतिमा व्याकुल हो जाती है।

तदनन्तर नमक में एक प्रस्थ घृत, मधु, गुड़ और लाख पीसकर उससे स्पष्ट अंगों वाली साध्य के स्वरूप वाली मनोहर प्रतिमा बनाने के बाद स्वयं लाल वस्त्र एवं लाल माला धारण करके लाल चन्दनादि का लेप लगाकर न्यास करने के बाद प्रतिमा में संहारन्यास करके साध्यनाम-सहित प्राणप्रतिष्ठा करने के बाद उसे सात टुकड़ों में विभक्त कर देना चाहिये। दक्ष ऊरूमूल से पादान्त तक प्रथम भाग, मलद्वार के दाँयीं ओर से कण्ठ तक के द्वितीय भाग, दक्ष भुजा तृतीय भाग, मस्तक चतुर्थ भाग, वाम भुजा पञ्चम भाग, वाम उदर आदि षष्ठ भाग तथा वाम ऊरूमूल से लेकर पादान्त तक सप्तम भाग होता है।।६३८-६५२।।

स्त्रीणां विभाग उद्दिष्टः कृच्छ्रसाध्योऽथ वक्ष्यते।
गुल्फद्वयं तथा जानुद्वयं जङ्घाद्वयं तथा ॥६५३॥

मध्यद्वयं च भुजयोर्द्वयं मौलिं तथा भजेत्।
शरीरमेकादशधा ह्यसाध्यस्याथ वक्ष्यते ॥६५४॥
प्राकृतानां तु सप्तानां चैकैकस्य तु सप्तधा।
एकैकं जुहुयाद्भागं स्मरञ्छत्रुं निशामुखे ॥६५५॥
दक्षपादाच्च पुरुषान्वामपादात्तथा स्त्रियः।
एवं सप्ताहतो नार्यः संक्षुब्धा मदनातुराः ॥६५६॥
स्विद्यदङ्ग्यो वेपमानाः साधकं तुष्टमानसम्।
त्राहि त्राहि क्षमस्वेति पश्य मां मा परित्यज्य ॥६५७॥
एवं सर्वा व्याहरन्त्यः करुणायुक्तमानसाः।
पतन्ति साधकस्याग्रे मदनानलपीडिताः।
तिष्ठन्ति दासवच्चास्य मन्त्रिणो योषितः सदा ॥६५८॥
लवणं तिलतैलाक्तं होमयेच्छत्रुनाशनम्।
हरिद्राचूर्णसंयुक्तं लवणं स्तम्भने मतम् ॥६५९॥
मातङ्गी प्रीतये नित्यं भौमवारे प्रपूजयेत्।
कन्यामेकां तथा तिस्त्रः पञ्च सप्ताथ वा पुनः ॥६६०॥
स्वादुभिर्भक्ष्यभोज्यैश्च स्वादपानैर्मनोहरैः।
अर्चनीयाश्च मन्त्रज्ञैः कन्यकाश्चैव सर्वदा ॥६६१॥
सर्वा नार्यो भावनीयाः श्यामा एवात्र मन्त्रिणा।
भौमवारे तथा पिष्टमयान् दीपांश्च कल्पयेत् ॥६६२॥
प्रज्वालयेद् घृतेनैतान् मातङ्गीप्रीतये बुधः।

स्त्री-प्रतिमा का भी इसी प्रकार विभाग करना चाहिये। अब कृच्छ्रसाध्य विभाग को कहा जा रहा है। प्रतिमा के दोनों गुल्फ, दोनों घुटने, दोनों जङ्घा, दोनों मध्य, दोनों भुजा और शिर को अलग-अलग काटकर ग्यारह टुकड़ों में विभक्त करना चाहिये।

अब असाध्य विभाग को कहते हैं। साधारण सात भागों में से एक-एक के सात-सात भाग करके रात्रि में शत्रु का स्मरण करते हुये प्रत्येक भाग से एक-एक आहुति डालनी चाहिये। आहुति का आरम्भ पुरुषप्रतिमा के दक्ष पाद से और स्त्रीप्रतिमा के वाम पाद से करना चाहिये। इस प्रकार सात रातों तक करने से सम्यक् रूप से क्षुब्ध कामातुर स्त्रियाँ पसीने से तर-बतर होकर काँपती हुई प्रसन्न साधक के पास आकर कहती हैं कि 'मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। मुझे क्षमा करो। देखो, मेरा त्याग मत करो।' इस प्रकार कहती हुई वे सभी स्त्रियाँ दीनभाव से साधक के सामने गिर पड़ती हैं।

कामानल से पीड़ित वे सभी स्त्रियाँ उस मन्त्रज्ञ साधक की दासी के समान रहती हैं।

तिलतैलाक्त नमक के हवन से शत्रुओं का नाश होता है। हल्दीचूर्ण-युक्त नमक के हवन से स्तम्भन होता है। मातङ्गी की प्रीति के लिये प्रत्येक मंगलवार को पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् एक, तीन, पाँच अथवा सात कुमारियों को स्वादिष्ट भक्ष्य-भोज्य एवं मनोहारी पेय पदार्थ प्रदान कर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक को सर्वदा अर्चन करना चाहिये। यहाँ साधक को सभी नारियों में श्यामा को ही देखना चाहिये। विद्वान् साधक को मातंगी की प्रसन्नता के लिये मंगलवार को चावल के आटे से पाँच दीपक बनाकर उन्हें घृत से पूरित करके जलाना चाहिये।।६५३-६६२।।

मातङ्गीप्रीतये मन्त्री योगिन्यष्टकमायजेत् ।।६६३।।
दिव्यां च महतीं सिद्धां गणेशीं प्रेतखादिनीम् ।
डाकिनीं कालिकां कालरात्रिञ्चेशानगोचराम् ।।६६४।।
निशाचरीं चोर्ध्वकेशीं शुष्काङ्गीं भोजिनीं तथा ।
वीरभद्रां विरूपाक्षीं धूम्रां प्राच्याञ्जटाधराम् ।।६६५।।
कलहां घोररक्ताक्षीं विश्वरूपां भयङ्करीम् ।
प्रियां च राक्षसीं वीरकुमारीं वह्निकोणगाम् ।।६६६।।
मुण्डरारी रुद्रकार्यां भीषणां च भयातुराम् ।
त्रिपुरान्तां क्रोधिनीं च दुर्मदां ध्वंसिनीं यमे ।।६६७।।
दीर्घां लम्बोष्ठिकां हंसीं तापिनीं मन्त्रयोगिनीम् ।
आदित्यां चापि खट्वाङ्गीं कालाग्निमिति नैर्ऋते ।।६६८।।
ग्राहिणीं चक्रिणीं पश्चात्कङ्कालीं भुवनेश्वरीम् ।
हंकालीं यमदूतीं च कौमारीं च कपालिनीम् ।।६६९।।
केशिनीं मदिराद्यां च चारिणीं लोमजङ्घिकाम् ।
नामकीं कामुकीं वायौ लोमकाधोमुखीं तथा ।।६७०।।
व्याघ्रजटीं सर्पजटीं कुण्डामरिविनाशिनीम् ।
घोरोग्ररूपविकटां चोदग्दिशि कपालिनीम् ।।६७१।।

योगिन्यष्टाष्टक-पूजन—मातङ्गी की प्रसन्नता के लिये मन्त्रज्ञ साधक को आठो दिशाओं में आठ-आठ योगिनियों की पूजा करनी चाहिये। दिव्या, महती, सिद्धा, गणेशी, प्रेतखादिनी, डाकिनी, कालिका एवं कालरात्रि का ईशान कोण में अर्चन करना चाहिये। इसी प्रकार पूर्व दिशा में निशाचरी, ऊर्ध्वकेशी, शुष्काङ्गी, भोजिनी, वीरभद्रा, विरूपाक्षी, धूम्रा एवं जटाधरी योगिनी का पूजन करना चाहिये। अग्निकोण

में कलहा, घोररक्ताक्षी, विश्वरूपा, भयङ्करी, प्रिया, राक्षसी, वीरा एवं कुमारी योगिनी का अर्चन करना चाहिये। दक्षिण दिशा में मुण्डरारी, रुद्रकार्या, भीषणा, भयातुरा, त्रिपुरान्ता, क्रोधिनी, दुर्मदा एवं ध्वंसिनी योगिनी का यजन करना चाहिये। नैर्ऋत्य कोण में दीर्घा, लम्बोष्ठिका, हंसी, तापिनी, मन्त्रयोगिनी, आदित्या, खट्वाङ्गी एवं कालाग्नि की पूजा करनी चाहिये। पश्चिम दिशा में ग्राहिणी, चक्रिणी, कंकाली, भुवनेश्वरी, हंकाली, यमदूती, कौमारी एवं कपालिनी की अर्चना करनी चाहिये। वायव्य कोण में केशिनी, मदिराद्या, चारिणी, लोमजंघिका, नामकी, कामुकी, लोमका एवं अधोमुखी का यजन करना चाहिये तथा उत्तर दिशा में व्याघ्रजटी, सर्पजटी, कुण्डा, अरिविनाशिनी, घोरा, उग्ररूपा, विकटा एवं कपालिनी का पूजन करना चाहिये।।६६३-६७१।।

लक्षाधि प्रजपेन्मन्त्रं क्षोभयेत्सर्वयोषितः।
पृथ्वीश्वरांस्तदर्धेन वशयेन्नात्र संशयः ।।६७२।।
तदर्धेन च सत्त्वानि वशगानि भवन्ति हि।
दूरस्था योषितः सर्वा आयान्त्ययुतजापतः ।।६७३।।
स्वदेशीयास्तदर्धेन समायान्त्येव निश्चितम्।
सहस्रत्रितयात् सर्ववाञ्छिताप्तिर्भवेद् ध्रुवम्।।६७४।।

इस प्रकार योगिनी अष्टाष्टक का पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का एक लाख जप करके साधक समस्त स्त्रियों को क्षुब्ध कर देता है, उसके आधा अर्थात् पचास हजार जप से राजा को वशीभूत कर लेता है तथा उसके आधा अर्थात् पच्चीस हजार जप से समस्त प्राणी वशीभूत हो जाते हैं। मन्त्र के दस हजार जप से दूर देश में स्थित समस्त स्त्रियाँ साधक के पास आ जाती हैं तथा पाँच हजार जप से अपने देश की स्त्रियाँ निश्चित ही साधक का सामीप्य ग्रहण कर लेती हैं। मन्त्र के तीन हजार जप से निश्चित रूप से साधक को समस्त अभीष्टों की प्राप्ति होती है।।६७२-६७४।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रभेदं महाफलम्।
अष्टाशीत्यक्षरे मन्त्रे सर्वसत्त्ववशङ्करि ।।६७५।।
एतस्याग्रे वदेत्सौश्च राजलक्ष्मीप्रदे तथा।
सप्ताक्षराणीति पुनः सर्वलोकादिकं वदेत् ।।६७६।।
पञ्चोनशतसङ्ख्याकवर्णोऽयं मन्त्र ईरितः।
ऋष्यादिकं पूर्वमुक्तं षड्बीजैश्च षडङ्गकम् ।।६७७।।
ध्यानपूजादिकं सर्वमष्टाशीतिमनोर्मतम् ।।६७८।।
प्रयोगाश्च त एवात्र पुरश्चर्यादिकं तथा।

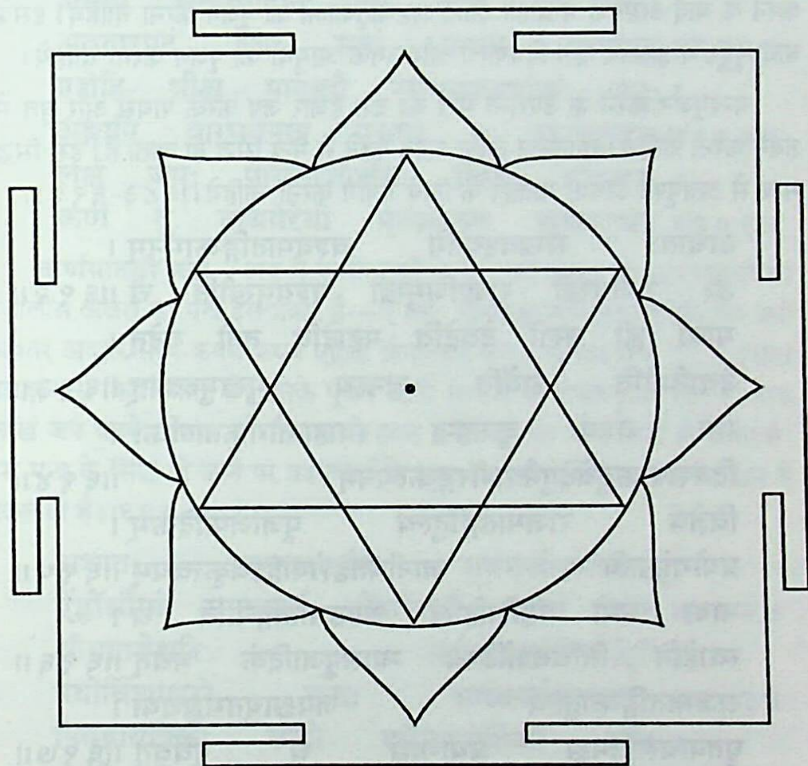
अब मैं मन्त्रभेद के महान् फलों को कहता हूँ। अट्ठासी अक्षरों वाले मन्त्र में 'सर्वसत्त्ववशङ्करि' के आगे 'सौं राजलक्ष्मीप्रदे' इन सात अक्षरों को संयुक्त करने के बाद सर्वलोकादि पद का उच्चारण करने से यह मन्त्र पञ्चानबे अक्षरों वाला हो जाता है। इसके ऋषि आदि पूर्ववत् ही होते हैं। छः बीजों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके ध्यान-पूजन आदि सभी अट्ठासी अक्षरों वाले मन्त्र के समान ही कहे गये हैं। पुरश्चरण-प्रयोग आदि भी पूर्ववत् ही होते हैं।।६७५-६७८।।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि चतुःपञ्चाशदक्षरम् ।।६७९।।
ॐ ह्रीं नमश्च पद्मे श्रीं राजिते राजपूजिते ।
जये विजये गौर्येवं गान्धारीति पदं वदेत् ।।६८०।।
त्रिभुवनवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषेति च ।
वशङ्करि सुखदुघे घेंघें वा वाग्निगेहिनी ।।६८१।।
अजो मुनिस्तथा छन्दो निवृद्गायत्रमीरितम् ।
देवता राजमातङ्गी षडङ्गानि तु मायया ।।६८२।।
सर्वमेवात्र पूर्वोक्तं ध्यानपूजादिकं तथा ।

अब चौवन अक्षरों वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ ह्रीं नमः पद्मे श्रीं राजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सुखदुघे घे घें वा वा स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि अज, छन्द निवृद् गायत्री एवं देवता राजमातङ्गी कही गई हैं। मायाबीज 'ह्रीं' से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके ध्यान-पूजन आदि सभी पूर्ववत् ही होते हैं।।६७९-६८२।।

अथास्य प्रोच्यते भेद एकषष्टिकवर्णकः ।।६८३।।
त्रिभुवनवशङ्करि एतदन्ते वदेत्पुनः ।
भवेत्प्रणवहीनोऽयं मन्त्रः सर्वत्र पूर्ववत् ।।६८४।।
किञ्चिद्वर्णविभेदेनायं प्रोक्तः पार्वतीमनुः ।
सतारोऽयं समाख्यातो विजयस्य पदं वदेत् ।।६८५।।
गौरि गान्धारीति पुनः प्राग्वदेव समापयेत् ।
एकषष्ट्यक्षरो मन्त्रो निवृच्छन्दो ह्यजो मुनिः ।।६८६।।
गौरी देवी षडङ्गानि शक्राशेभेभदिग्भवैः ।
मन्त्राक्षरैः षडङ्गानि ध्यानमस्या निरूप्यते ।।६८७।।
पाशाङ्कुशकरां रत्नयुक्ताभरणवेणिकाम् ।
बन्धूकाभां त्रिनयनां स्वर्णलेखां भजाम्यहम् ।।६८८।।

प्राग्वत्षडङ्गं पीठे तु भुवनेश्या यजेदिमान्।
आदावङ्गानि षट्कोणे ब्राह्म्याद्यास्त्वष्टपत्रके ॥६८९॥
आशाधिपांस्तदस्त्राणि भूपुरादौ समर्चयेत्।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं जुहुयात्पायसैर्घृतैः ॥६९०॥
तर्पणादि ततः कुर्यादेवं सिद्धो भवेन्मनुः।
प्रयोगांश्चान्नपूर्णाया मातङ्ग्या वा समाचरेत् ॥६९१॥



अब इसके इकसठ अक्षरों वाले दूसरे भेद को कहता हूँ। चौवन अक्षरों वाले मन्त्र के अन्त में पुनः 'त्रिभुवनवशङ्करि' पद का उच्चारण करना चाहिये। यह मन्त्र प्रणव (ॐ) से रहित होता है। इसके शेष समस्त विधान पूर्ववत् ही होते हैं। कतिपय वर्णविभेद करने से यही पार्वती का मन्त्र हो जाता है। यह मन्त्र प्रणव-सहित कहा गया है। इसमें 'विजये' के स्थान पर 'विजयस्य' कहने के बाद पुनः 'गौरि गान्धारि' आदि से पूर्ववत् ही मन्त्र का समापन किया जाता है। इकसठ वर्ण वाले इस मन्त्र के ऋषि

अज, छन्द निवृद् एवं देवता गौरी कही गई हैं। मन्त्र के चौदह, दस, आठ, आठ, दस एवं ग्यारह अक्षरों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—हाथों में पाश एवं अंकुश धारण की हुई, वेणी में रत्न-समन्वित आभूषण पहनी हुई, बन्धूकपुष्प के समान तीन नेत्रों वाली स्वर्णलेखा को मैं प्रणाम करता हूँ।

पूर्ववत् भुवनेशी-पीठ पर यजन करना चाहिये। पहले षट्कोण में षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टपत्रों में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

यन्त्रपूजन करने के उपरान्त मन्त्र का दश हज़ार जप करके पायस और घृत से हवन करना चाहिये। तदनन्तर तर्पण आदि करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस सिद्ध मन्त्र से अन्नपूर्णा अथवा मातङ्गी के लिये प्रयोग करना चाहिये।।६८३-६९१।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वश्यमातङ्गिकामनुम्।
ॐ राजमुखी राजाभिमुखी वश्यमुखीति च ॥६९२॥
मायां ह्रीं क्लीं देवदेवि महादेवि ततो वदेत्।
देवाधिदेवि सर्वेति जनस्य मुखमुच्चरेत् ॥६९३॥
मम वश्यं कुरुद्वन्द्वं स्वाहान्तोगकृतार्णकः।
दिक्सप्तक्रतुवेदेषुमैत्रार्णैरङ्गकल्पनम् ॥६९४॥
विज्ञेयं राजमातङ्गीतुल्यं पूजाजपादिकम्।
प्रयोगांश्चापि जानीयाद्विशेषाद्वश्यकृत्त्वयम् ॥६९५॥
माया नमो हिलिहिलि चण्डमातङ्गिनीति च।
स्वाहेति तिथिवर्णोऽस्य न्यासपूजादिकं भवेत् ॥६९६॥
राजमातङ्गिकातुल्यं जपश्चायुतसङ्ख्यया।
घृतपायसहोमश्च प्रयोगाद्यं च पूर्ववत् ॥६९७॥

वश्यमातङ्गी मन्त्र—अब मैं वश्यमातङ्गी के मन्त्र को कहता हूँ। सैंतालीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ राजमुखि राजाभिमुखि वश्यमुखि ह्रीं श्रीं क्लीं देवदेवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वश्यं कुरु कुरु स्वाहा। मन्त्र के दस, सात, आठ, चार, पाँच, बारह वर्णों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।

इस मन्त्र के जप-पूजा-प्रयोग आदि सभी कुछ राजमातङ्गी के समान ही जानना चाहिये। इस मन्त्र का विशेषतया वशीकरण के लिये प्रयोग किया जाता है।

पन्द्रह अक्षरों का अन्य मन्त्र है—ह्रीं नमो हिलिहिलि चण्डमातङ्गिनि स्वाहा। इस मन्त्र के न्यास-पूजन आदि राजमातङ्गी के समान ही होते हैं। पुरश्चरण-हेतु इसका दस हजार जप करके घृत एवं पायस से हवन किया जाता है। इसके प्रयोग आदि पूर्ववत् ही होते हैं।।६९२-६९७।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कर्णमातङ्गिकामनुम्।
वाग्भवं हृदयं चाथ श्रीमातङ्गीपदं वदेत्।।६९८।।
अमोघे सत्यवादिनि मम कर्णे पदं ततः।
अवतारपदं द्वेधा सत्यं कथय युग्मकम्।।६९९।।
एह्येहि श्रीश्च मातङ्ग्यै नमस्त्र्यब्ध्यर्णको मनुः।
अङ्गानि वाग्भवेनात्र पूजाद्यं च कृताकृतम्।।७००।।
लक्षं जपः पायसाज्यैर्होमः सिद्धो भवेन्मनुः।
कर्णे तु कथयेद्देवी पृच्छकस्य शुभाशुभम्।।७०१।।

कर्णमातङ्गी मन्त्र—अब मैं कर्णमातङ्गी के मन्त्र को कहता हूँ। कर्णमातङ्गी का तैंतालीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ऐं नमः श्रीमातङ्ग्यमोघे सत्यवादिनि मम कर्णे अवतर अवतर सत्यं कथय कथय एह्येहि श्रीमातङ्ग्यै नमः। वाग्भव बीज 'ऐं' से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके पूजन आदि साधक की इच्छानुसार होते हैं। एक लाख जप करके पायस और आज्य से हवन करने पर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर प्रश्नकर्त्ता के शुभ-अशुभ को देवी साधक के कान में बतलाती है।।६९८-७०१।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमम्।
ऐंह्रींश्रींमां समुच्चार्य ह्रींक्रोंक्लीं चरमां वदेत्।।७०२।।
श्रीमातङ्गेश्वरि सर्ववशङ्कर्यग्निगेहिनि।
त्रयोविंशाक्षरो मन्त्रः सर्वकार्यप्रसाधकः।।७०३।।
निवृद्गायत्रिका छन्दो दक्षिणामूर्तिको मुनिः।
कर्णमातङ्गिका चास्य देवता परिकीर्तिता।।७०४।।
ऐंह्रींश्रींआं समुच्चार्य ह्रींक्रोंबीजैस्तथा भवेत्।
द्विरुक्तैश्च षडङ्गस्य विधिः पूजाजपादिकम्।।७०५।।
लक्षत्रयं जपेन्मन्त्रं मधुरत्रयलोलितैः।
बन्धूकपुष्पैर्होमः स्यात्सितया पायसेन च।।७०६।।
हुनेत्कदल्याश्च फलैर्मन्त्रसिद्धिः प्रजायते।
समस्तमन्त्रदानादौ सिद्धः स्यात्साधकोत्तमः।।७०७।।

मातङ्गी का सर्वोत्तम मन्त्र—अब मैं मातङ्गी के सर्वोत्तम मन्त्र को कहता हूँ। 'ऐं ह्रीं श्रीं ह्रीं क्रों क्लीं चरमां श्रीमातङ्गेश्वरि सर्ववशङ्करि स्वाहा'—यह तेईस अक्षरों का मन्त्र समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाला है। इसके ऋषि दक्षिणामूर्ति, छन्द निवृद् गायत्री एवं देवता कर्णमातङ्गी कहे गये हैं। 'ऐं ह्रीं श्रीं आं ह्रीं क्रों' बीजों के दो बार उच्चारण करते हुये इसका षडङ्गन्यास करके पूजा-जप आदि किया जाता है। पुरश्चरण-हेतु तीन लाख जप करने के बाद त्रिमधु-सिक्त बन्धूकपुष्पों, पायस, कपूर एवं कदलीफलों के हवन से मन्त्र की सिद्धि होती है। इसके पश्चात् श्रेष्ठ साधक समस्त मन्त्र का दान करने में समर्थ हो जाता है।।७०२-७०७।।

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि मातङ्गीमन्त्रमुत्तमम्।
कामिनी रञ्जिनी स्वाहाष्टाक्षरोऽयमुदीरितः ।।७०८।।
ऋषिस्सम्मोहनश्छन्दो निवृत्प्रोक्तास्य देवता।
सर्वसम्मोहनी चाङ्गं द्विरावृत्तिपदैर्भवेत् ।।७०९।।
श्यामाङ्गीं वल्लकीं दोर्भ्यां वादयन्तीं सुभूषणाम्।
चन्द्रावतंसां विविधैर्गायनैर्विश्वमोहिनीम् ।।७१०।।
पूजामातङ्गिनीपीठे रत्याद्यास्तु त्रिकोणके।
पञ्चावरणतः पूज्याः केशरेष्वङ्गपूजनम् ।।७११।।
अनङ्गकुसुमाद्यास्तु पत्रेष्वग्रेषु मातरः।
लोकपालैश्च वज्राद्यैस्सप्तावृत्तिरियं मता ।।७१२।।
प्रजपेदयुतद्वन्द्वं दशांशं जुहुयात्ततः।
मधूकजैस्त्रिमध्वक्तैः सर्वं सम्मोहयेज्जगत् ।।७१३।।

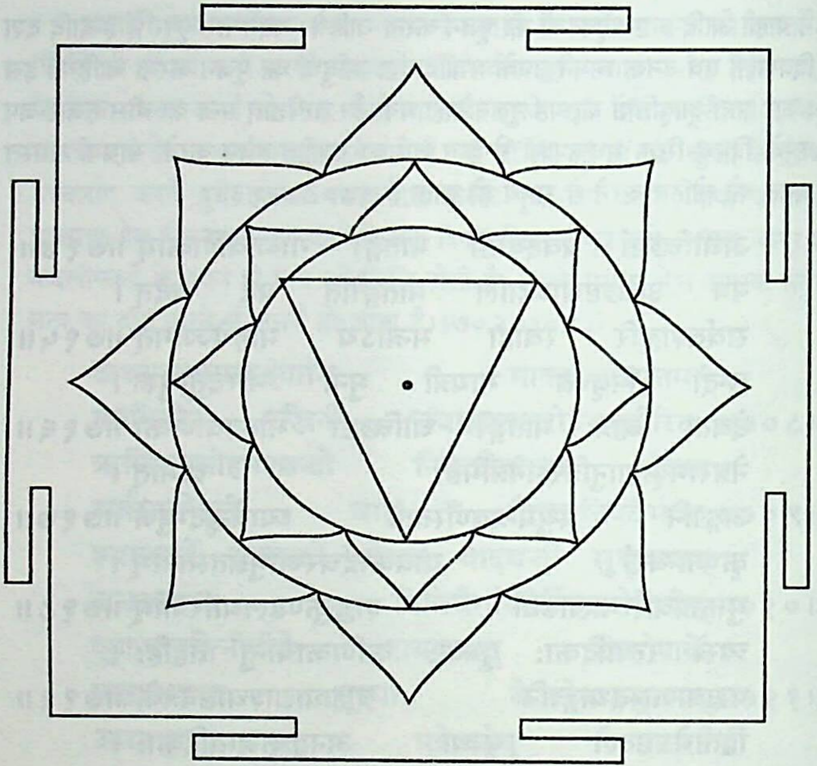
मातङ्गी का अन्य मन्त्र—अब मातङ्गी के दूसरे उत्तम मन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का मन्त्र है—कामिनि रञ्जिनि स्वाहा। इसके ऋषि सम्मोहन, छन्द निवृत् एवं देवता सर्वसम्मोहिनी कही गई हैं। मन्त्र के तीन पदों की दो आवृत्ति से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—कामिनि हृदयाय नमः, रंजिनि शिरसे स्वाहा, स्वाहा शिखायै वषट्, कामिनि कवचाय हुं, रंजिनि नेत्रत्रयाय वौषट्, स्वाहा अस्त्राय फट्। तत्पश्चात् श्याम अंग वाली, हाथों से वल्लकी को बजाती हुई, सुन्दर आभूषणों से भूषित, शीर्ष पर चन्द्रमा को धारण की हुई, अनेकविध गायन द्वारा जगत् को मोहित करने वाली देवी का ध्यान करके मातङ्गी-पीठ पर पूजन करना चाहिये। त्रिकोण के कोणों में रति आदि का पूजन करना चाहिये। पञ्चावरण-पूजनक्रम में केशर में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। अष्टपत्रों में अनङ्गकुसुमा आदि का पूजन करके पत्रों के अग्रभाग

में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों एवं उनके सामने उनके वज्रादि दश आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार सात आवृत्तियों का यह पूजन कहा गया है। तत्पश्चात् मन्त्र का बीस हजार जप करके त्रिमधु-सिक्त मधूकपुष्पों से कृत जप का दशांश हवन करके साधक समस्त जगत् को मोहित करने में समर्थ हो जाता है।।७०८-७१३।।

अथोच्छिष्टां प्रवक्ष्यामि मातङ्गीं गोब्जवर्णिकाम् ।।७१४।।
नम उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गीति पदं वदेत् ।
सर्ववशङ्करि स्वाहा मन्त्रोऽयं मोहयेज्जगत् ।।७१५।।
छन्दो निवृच्च गायत्री मुनी नारदतुम्बुरू ।
देवता चात्र मातङ्गी चोच्छिष्टा गोब्जवर्णिका ।।७१६।।
नेत्ररामकृशानुत्रिरसनेत्रमितैः क्रमात् ।
अङ्गानि स्युर्मन्त्रवर्णैस्ततो ध्यायेद्धृदम्बुजे ।।७१७।।
कृष्णाम्बरां यावकार्द्रचरणामुन्नतस्तनीम् ।
मुक्ताप्रवालमालाढ्यां शङ्खकुण्डलधारिणीम् ।।७१८।।
त्र्यस्रे रत्यादिकाः पूज्याः कर्णिकायान्तु तद्बहिः ।
पञ्चबाणास्तथाङ्गानि ब्राह्म्याद्याश्चाष्टपत्रके ।।७१९।।
द्वितीयेऽष्टदले पूज्या अनङ्गकुसुमादिकाः ।
चतुरस्रे लोकपालास्तदस्त्राणि ततो बहिः ।।७२०।।

उच्छिष्टमातङ्गी—अब मैं गोपित्त के वर्ण वाली उच्छिष्टमातङ्गी के बीस अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ऐं नमः उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि स्वाहा। यह मन्त्र सम्पूर्ण जगत् को मोहित करने वाला है। इस मन्त्र के ऋषि नारद एवं तुम्बुरु, छन्द निवृत् गायत्री एवं देवता गोपित्त-सदृश वर्ण वाली उच्छिष्टमातङ्गी कही गई हैं। इस विंशाक्षरी मन्त्र के तीन, तीन, तीन, तीन, छः एवं दो वर्णों से क्रमशः षडङ्गन्यास किया जाता है। तत्पश्चात् कृष्ण वस्त्र धारण की हुई, महावर से गीले पैरों वाली, उन्नत स्तनों वाली, मोतियों एवं मूंगे की माला से सुशोभित, शंख एवं कुण्डल धारण करने वाली देवी का अपने हृदयकमल में ध्यान करना चाहिये।

तदनन्तर त्रिकोण के कोणों में रति आदि का, उसके बाहर कर्णिका में पञ्च बाणों का तथा षडङ्गों का पूजन करना चाहिये। प्रथम अष्टपत्र में ब्राह्मी आदि का तथा द्वितीय अष्टपत्र में अनङ्गकुसुमा आदि का पूजन करना चाहिये। चतुरस्र में लोकपालों का एवं उसके बाहर उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।।७१४-७२०।।



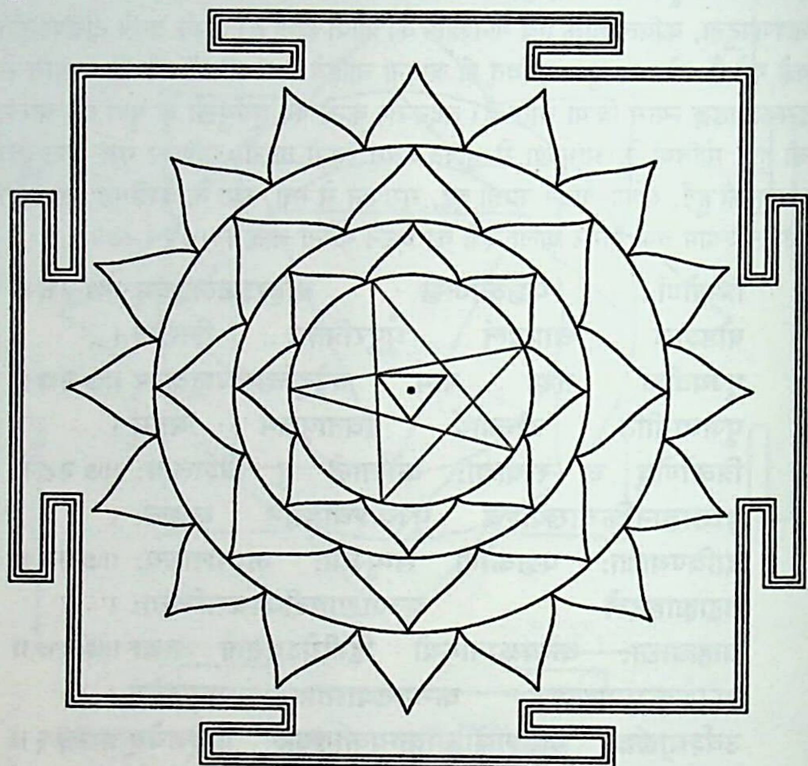
अथास्य भेदा वक्ष्यन्ते क्लींह्रींश्रींपूर्वकं जपेत्।
क्लींपूर्वं वा जपेन्मन्त्रावेतयोर्मदनो मुनिः ॥७२१॥
पूजाजपादिकं प्राग्वद् भेदांश्चास्यापराञ्छृणु ॥७२२॥
आं क्लीं ह्रीमादिकं मन्त्रं क्लींह्रीमैंमन्तकं जपेत्।
वाग्मित्वं च कवित्वं च गानशक्तिं करोति च ॥७२३॥
मुनिः स्याद्दक्षिणामूर्तिरन्यत्सर्वं पुरोक्तवत्।
आंह्रींक्रोंभिर्द्विरावृत्या षडङ्गानि समाचरेत् ॥७२४॥
अंसे तु वेशीकुसुमां मुक्ताभूषोन्नतस्तनीम्।
चूलिकां नीलचूडां च वादयन्तीं च वल्लकीम् ॥७२५॥
माध्वीमत्तां मधुवशां श्यामलाङ्गीं सुकोमलाम्।

अव इस मन्त्र के भेदों को कहता हूँ। इस मन्त्र के पहले 'क्लीं ह्रीं श्रीं' लगाकर अथवा केवल 'क्लीं' लगाकर जप करना चाहिये। इन दोनों मन्त्रों के ऋषि मदन कहे

गये हैं। इनका पूजन-जप आदि पूर्ववत् ही होता है। अब इसके अन्य भेदों को सुनो। इस मन्त्र के पूर्व 'आं क्लीं ह्रीं' और अन्त में 'क्लीं ह्रीं ऐं' लगाकर जप करने से भाषणपटुता, कवित्वशक्ति एवं गानशक्ति की प्राप्ति होती है। इसके ऋषि दक्षिणामूर्ति कहे गये हैं। शेष सबकुछ पूर्ववत् ही जानना चाहिये। आं ह्रीं क्रों की दो आवृत्ति से इसका षडङ्ग न्यास किया जाता है। तदनन्तर कन्धे पर सूर्यमुखी के पुष्प को धारण की हुई, मोतियों के आभूषण से भूषित उन्नत स्तनों वाली, चूलिका एवं नीलचूड़ा धारण की हुई, वीणा-वादन करती हुई, सुरापान से मत्त, सुरा के वशीभूत, अत्यन्त कोमल श्याम वर्ण शरीर वाली देवी का ध्यान करना चाहिये।।७२१-७२५।।

त्रिकोणं पञ्चकोणञ्च बहिरष्टदलद्वयम् ।।७२६।।
षोडशारं चाष्टदलं भूपुरत्रितयं लिखेत् ।
पूज्यबीजं तथा नाम वदेदुच्छिष्टपादुकाम् ।।७२७।।
पूजयामीति चोच्चार्य देवतापूजनं मतम् ।
त्रिकोणेषु च रत्याद्याः कोणान्ते तु त्रिशक्तयः ।।७२८।।
इच्छाज्ञानक्रियाख्याश्च पूज्याश्चाङ्गानि बाह्यतः ।
द्राविण्याद्याः पञ्चकोणे सम्पूज्याः कामशक्तयः ।।७२९।।
तद्बाह्याष्टदले पूज्याश्चाष्टदीर्घस्वरान्विताः ।
ब्राह्म्याद्याः कन्यकानाम्न्यो द्वितीयेऽष्टदले तथा ।।७३०।।
अनङ्गकुसुमाद्याश्च कन्याख्यास्ताः प्रपूजयेत् ।
उर्वश्याद्याः षोडशारे कन्यकाख्याः प्रपूजयेत् ।।७३१।।
उर्वशी मेनका रम्भा घृताची मञ्जुकेशिका ।
काश्यपी च सुकेशी मञ्जुघोषा नागकन्यका ।।७३२।।
यक्षकन्या च गन्धर्वकन्या वै सिद्धकन्यका ।
परकायप्रवेशिन्याः कन्यकां दूरदर्शनाम् ।।७३३।।
गुटिकां सिद्धकन्यां च पादुकासिद्धकन्यकाम् ।
ततश्चतुर्षु द्वारेषु पूजयेद् द्वारदेवताः ।।७३४।।
ततं च विततं चैव धनं च सुषिरं तथा ।
बटुकं च गणेशं च क्षेत्रपालं च योगिनीम् ।।७३५।।
उच्छिष्टशब्दपुरतः पादुकां पूजयाम्यथ ।
स्वनामाद्यक्षरं बीजं कृत्वाग्नेयादिके यजेत् ।।७३६।।
पुनः सर्वोपचारैश्च मध्ये भगवतीं यजेत् ।

त्रिकोण, पंचकोण, दो अष्टदल, षोडश दल एवं तीन भूपुर के निर्माण से इसका पूजन यन्त्र इस प्रकार का बनता है—



पूजन के समय पूज्य बीज एवं नाम का उच्चारण करने के बाद 'उच्छिष्टपादुकां पूजयामि' कहकर देवता का पूजन करना चाहिये। त्रिकोण के कोणों में रति, प्रीति एवं मनोभवा का तथा कोणों के अन्त में इच्छा, ज्ञाना एवं क्रियाशक्तियों का पूजन करना चाहिये।

उसके बाहर षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। द्राविणी आदि कामशक्तियों का पूजन पञ्चकोण में करना चाहिये। उसके बाहर अष्टदल में दीर्घ स्वरान्वित ब्राह्मी आदि कन्या नाम वाली अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। फिर द्वितीय अष्टदल में अनङ्गकुसुमा आदि कन्यानाम्नी देवियों का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर षोडशदल कमल में क्रमश: उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, मञ्जुकेशिका, काश्यपी, सुकेशी, मञ्जुघोषा, नागकन्या, यक्षकन्या, गन्धर्वकन्या, सिद्धकन्या, परकायप्रवेशिनी, दूरदर्शनगुटिका, सिद्धकन्या एवं पादुकासिद्धकन्या का पूजन करना

चाहिये। तत्पश्चात् चार द्वारों पर द्वारदेवताओं का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर आग्नेयादि आठ दिशाओं में क्रमशः तत, वितत, धन, सुषिर, बटुक, गणेश, क्षेत्रपाल एवं योगिनी के पूजन में उनके नामबीज लगाकर चतुर्थ्यन्त नाम के बाद 'उच्छिष्टपादुकां पूजयामि' कहना चाहिये। उसके बाद पुनः समस्त उपचारों से मध्य में भगवती का पूजन करना चाहिये।।७२६-७३६।।

स्वराः सर्वे श्रुतियुता वामभागे ततः परम्।।७३७।।
रतिश्च रागिणीयुक्ता पूज्या पार्श्वे च दक्षिणे।
अभ्यर्चेत्परमेश्वर्याः पाश्वर्योः शुकसारिके।।७३८।।
पुरतो गुरुपङ्क्तिं च स्वगुरुं पूजयेत्ततः।
बीजत्रयन्तु बालायाः साधकस्य शुभं भवेत्।।७३९।।
यत्किञ्चिद्वाथ वामायाः कामो वाग्वा रमापि वा।
मनोरुच्छिष्टमातङ्ग्या दत्त्वादौ पूजयेन्मनुम्।।७४०।।
तेनानेके मन्त्रभेदाः पूजाद्यं च यथेच्छया।
गौरवाल्लाघवाद्वापि कर्तव्यन्तु यथोचितम्।।७४१।।
शुचिः स्रग्वी सुवस्त्रश्च जपेल्लक्षमतन्द्रितः।
उच्छिष्टभक्तेन बलिं निशि नित्यं निवेदयेत्।।७४२।।
नित्यं जपं च काम्यं च उच्छिष्टेनैव चाचरेत्।
पलाशकुसुमैः स्वादुयुक्तैर्होमं तथात्र तु।।७४३।।
एतावता न सिद्धिश्चेद्वर्णलक्षं जपेन्मनुम्।
कुमारीपूजनं प्रोक्तं कुर्यात्तदपि साधकः।।७४४।।
योगिन्यष्टाष्टकस्यापि पूजा कार्यात्र मन्त्रिणा।
उच्छिष्टभक्तशेषेण रात्रौ तस्यै बलिं हरेत्।।७४५।।
पूर्वोदितेन मनुना मन्त्रोऽयं तेन सिध्यति।
जपेच्चतुर्दशावृत्तिं पूजनानन्तरं मनुम्।
भूपतीनां पूजनीया नारीणां च विशेषतः।।७४६।।

तत्पश्चात् देवी के वाम भाग में श्रुति-सहित समस्त स्वरों का एवं दक्षभाग में रागिणी-सहित रति का पूजन करना चाहिये। परमेश्वरी के दोनों पार्श्वों में शुक और सारिका का तथा सामने गुरुपंक्ति और अपने गुरु का पूजन करना चाहिये। मन्त्र में बाला के तीनों बीजों का संयोजन करने से साधक का कल्याण होता है। उच्छिष्टमातङ्गी के पूजनमन्त्र में देवी के काम (क्लीं), वाक् (ऐं) अथवा रमा (ह्रीं) मन्त्र में से जिस किसी

का भी संयोजन किया जा सकता है। फलस्वरूप अनेक प्रकार के पूजनमन्त्र हो जाते हैं। अत: पूजन के आदि में उसकी गुरुता-लघुता के अनुसार जैसा उचित हो, वैसा मन्त्र बनाना चाहिये।

पवित्र होकर सुन्दर वस्त्र एवं माला धारण करके आलस्य-रहित होकर मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। जपकाल में प्रतिदिन रात्रि में उच्छिष्ट (जूठे) भात की बलि प्रदान करनी चाहिये। नित्य एवं काम्य—दोनों प्रकार का जप जूठे मुख रहकर ही करना चाहिये। जप के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त पलाशपुष्पों से हवन करना चाहिये। इतना करने पर भी यदि मन्त्रसिद्धि नहीं प्राप्त हो तो साधक को मन्त्र का वर्णलक्ष जप एवं पूर्वोक्त कुमारीपूजन भी करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक को यहीं पर योगिनी अष्टाष्टक का पूजन करके बचे हुए जूठे भात से रात्रि में पूर्वोक्त मन्त्र से उनके लिये बलि प्रदान करना चाहिये। ऐसा करने से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। पूजन के पश्चात् चौदह आवृत्ति मन्त्र का जप करना चाहिये। इस देवी का पूजन राजाओं को; विशेषकर स्त्रियों को करना चाहिये।।७३७-७४६।।

अष्टोत्तरसहस्रेण ताम्बूलं मनुनामुना।
जपितं भक्षयेद्या स्त्री याचितानङ्गभोगिका ।।७४७।।
मन्त्रिणश्च वशे तिष्ठेद्यावदायुर्न संशयः।
सहदेवी तथा दूर्वा मुसली मधुयष्टिका ।।७४८।।
भद्रा च विष्णुदयिता लक्ष्मीवल्लीन्द्रवल्यपि।
अञ्जलिन्यपि सम्प्रोक्ता पृथगेताः स्पृशञ्जपेत् ।।७४९।।
अष्टोत्तरशतं मन्त्री ततस्तन्मूर्ध्नि धारयेत्।
नरो नारी नृपो वाथ धत्ते हर्षसमूहकम् ।।७५०।।
इन्द्राग्निविष्णुयुग्माङ्कमन्वष्टवसुदिग्गताः।
पृथग्जप्ताः शतशतमेताः संयोज्य पेषयेत् ।।७५१।।
शुष्कास्तु गुटिका मन्त्रजप्ताश्चाथ सहस्रशः।
ललाटे च धृताः सम्यक्सर्वस्त्रीजनरञ्जिकाः ।।७५२।।
भवन्ति सर्वलोकस्य दक्षा रञ्जनकर्मणि ।।७५३।।
कुर्याच्च गुटिकां रेणुसम्मितां मन्त्रवित्तमः।
तूलवर्त्त्या च कृष्णाज्ययुक्तया कज्जलं धृतम् ।।७५४।।
सहस्रमनुना जप्तं मन्त्रितं नेत्रयोः शुभम्।
प्रत्यहं च जगद्वश्यं नारीसंक्षोभकारकम् ।।७५५।।

प्रेतग्रहगणादींश्च नाशयेदचिरादपि।

जो स्त्री इस मन्त्र के एक हजार आठ जप से अभिमन्त्रित पान का भक्षण करती है, वह इच्छित पुरुष के साथ कामभोग करती है; साथ ही आजीवन मन्त्रज्ञ साधक के वशीभूत रहती है।

मन्त्रज्ञ साधक यदि सहदेई, दूर्वा, मुसली, मधुयष्टिका (जेठी मधु), भद्रा, तुलसी, श्रीवल्ली, इन्द्रवल्ली, हाथाजोड़ी—इन सबका अलग-अलग स्पर्श करते हुये मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके उन्हें अपने शिर पर धारण करता है तो स्त्री-पुरुष अथवा राजा—सबको आनन्दित करने वाला हो जाता है।

चौदह सौ सहदेई, तीन सौ दूर्वा, एक सौ मुसली, छः सौ जेठी मधु, दो सौ भद्रा, चौदह सौ तुलसी, आठ सौ श्रीवल्ली, आठ सौ इन्द्रवल्ली एवं एक हजार हाथाजोड़ी—इन सबको एकत्र करने के बाद एक हजार मन्त्रजप से सबको अभिमन्त्रित करके एक साथ पीसकर उस पिष्ट से गुटिका बनाने के बाद उन्हें सुखाकर एक हजार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करके ललाट पर सम्यक् रूप से धारण करने से वे गुटिकायें समस्त स्त्रियों को हर्ष प्रदान करने वाली होती हैं। ये गुटिकायें समस्त संसार को आनन्दित करने में समर्थ होती हैं।

उस गुटिका को चूर्ण करके कपास की रुई में मिलाकर, बत्ती बनाकर, काली गाय के घी से दीप में जलाकर उससे काजल बनाकर एक हजार मन्त्रजप से उस काजल को अभिमन्त्रित करके प्रतिदिन नेत्रों में लगाने से वह जगत् को वशीभूत करने वाला एवं स्त्रियों को संक्षुब्ध करने वाला होता है; साथ ही प्रेतों एवं दुष्ट ग्रहों का भी सद्यः विनाश कर देता है।।७४७-७५५।।

पूर्वोक्तैर्दशभिर्द्रव्यैः पञ्चगव्यैश्च कापिलैः ।।७५६।।
युक्तं च भसितं जप्तं सहस्रं मनुनामुना।
धृतं ललाटे भुवनं वशयेच्चैव नान्यथा ।।७५७।।
क्षौमे पटे प्रविन्यस्य वर्त्तिका रचिता शुभा।
विष्णवाह्वा कुमुदश्यामपद्मरेणुसुगर्भिता ।।७५८।।
कृष्णगोसर्पिषा दीप्ता तदुत्पन्ना च या मषी।
मातङ्गीमनुना जप्ता नेत्राक्ता रञ्जनी नृणाम् ।।७५९।।
तद्वन्नमस्कारिणी संगदिता नात्र संशयः।
सविष्णुदयितालक्ष्मीभृङ्गराजोद्भवं रजः ।।७६०।।
एतद्भावितवर्त्तिः सा कपिलाज्यप्रदीपिता।
तज्जातापि मषी पूर्वं फलदा नात्र संशयः ।।७६१।।

कर्पूरं चन्दनं पद्मयुगं बकुलरोचने।
त्रैलोक्यं वशयत्येषा मषी तत्सम्भवा भृशम् ॥७६२॥
विजयं चेन्द्रियाणां च फलं क्रमुकसम्भवम्।
मूलैर्निर्वास्य नीरैश्च तन्तुभिर्वेष्टयेत्फलम् ॥७६३॥
भुवः सूनोर्दिने भूमौ स्थापयेत्तत्फलं ततः।
आभौमवारसञ्जप्तं कर्पूरं तत्फलं ततः ॥७६४॥
पिष्ट्वा चैवाम्बुना जप्त्वा गुटिकाः कारयेद् बुधः।
ससूरकमिता एताः खादिता वश्यदाः परम् ॥७६५॥
हेमपञ्चाङ्गकं चात्ममलपञ्चकसंयुतम्।
सहस्रवारसञ्जप्तं भक्षयेत्पानकेषु च।
यस्मै दत्तं नरेशाय स वश्यो नात्र संशयः ॥७६६॥
पूर्वमन्त्रोदितान् सर्वान् प्रयोगान् मन्त्रवांश्चरेत्।

पूर्वोक्त दश द्रव्यों को कपिला गाय के पञ्चगव्य (गोबर, मूत्र, दूध, दही; घी) में मिलाकर सबका भस्म बनाने के बाद उस भस्म को एक हजार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करने के बाद उसे ललाट में धारण करने वाला साधक सम्पूर्ण पृथिवी को निःसन्दिग्धरूपेण वशीभूत कर लेता है।

रेशमी वस्त्र में उस भस्म को लगाकर सुन्दर बत्ती बनाकर उस बत्ती को तुलसी, कुमुद एवं नीलकमल के पराग से सम्यक् रूप से रञ्जित करके काली गाय के घी द्वारा जलाने पर उससे निःसृत काजल को मातङ्गी मन्त्र से अभिमन्त्रित कर आँखों में लगाने से वह काजल मनुष्यों को हर्षित करने वाला होता है। वह काजल धारक को लोगों द्वारा प्रणम्य बनाता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये।

तुलसी, लक्ष्मी, भृङ्गराज के चूर्ण से भावित रूई की बत्ती को कपिला गाय के घी से प्रदीप्त करने के बाद उससे उत्पन्न काजल भी पूर्ववत् फल प्रदान करने वाला होता है।

कपूर, चन्दन, श्वेत-श्याम कमल, बकुल एवं गोरोचन के चूर्ण को रूई में मिलाकर बनाई गई बत्ती को जलाने से उत्पन्न शक्तिशाली काजल वशीकरण करने वाला एवं इन्द्रियों पर विजय प्रदान करने वाला होता है।

सुपारी के फल को तोड़कर उसे जल से धोने के बाद धागे से वेष्टित करके मंगलवार को भूमि पर स्थापित करके अगले मंगलवार तक मन्त्रजप से उसे अभिमन्त्रित करने के बाद कपूर और उस क्रमुकफल को जल की सहायता से पीसकर उसे पुनः

मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करके मसूर के बराबर गुटिका बनाकर उनका भक्षण करने से वे गुटिकायें वशीकरण करने वाली होती हैं।

हेमपञ्चाङ्ग को अपने पाँच मलों से युक्त करके मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके साधक द्वारा भोजन तथा पेय पदार्थ में मिलाकर ज़िस राजा को प्रदान किया जाता है, वह राजा निःसन्दिग्ध रूप से उस साधक के वशीभूत हो जाता है। मन्त्रज्ञ साधक को पूर्व मन्त्रोक्त प्रयोगों का भी इस मन्त्र से साधन करना चाहिये।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्वात्रिंशद्वर्णकं मनुम् ।।७६७।।
तारो माया वाग्रमा च नमो भगवतीति च।
उच्छिष्टचाण्डालि पदं श्रीमातङ्गि तथेश्वरि ।।७६८।।
सर्वजनवशङ्करि स्वाहान्तोऽयं मनुः स्मृतः।
मातङ्गो मुनिरस्योक्तोऽनुष्टुप्छन्दश्च देवता ।।७६९।।
मातङ्ग्याः स्यादङ्गषट्कं मन्त्रार्णैर्वेदषड्रसैः।
षडष्टबाहुभिश्चेति ध्यायेच्छ्यामां सुलोचनाम् ।।७७०।।
शुकोदितं च शृण्वन्तीं रत्नपीठोपरि स्थिताम्।
रक्ताम्बरां सुरापानमत्तां पद्मस्थसत्पदाम्।
वल्लकीं वादयन्तीं तां मातङ्गीं हृदि भावयेत् ।।७७१।।
जपोऽयुतसहस्रन्तु होमः पुष्पैर्मधूकजैः।
मध्वक्तैश्च यजेत्पीठे वक्ष्यमाणविधानतः ।।७७२।।

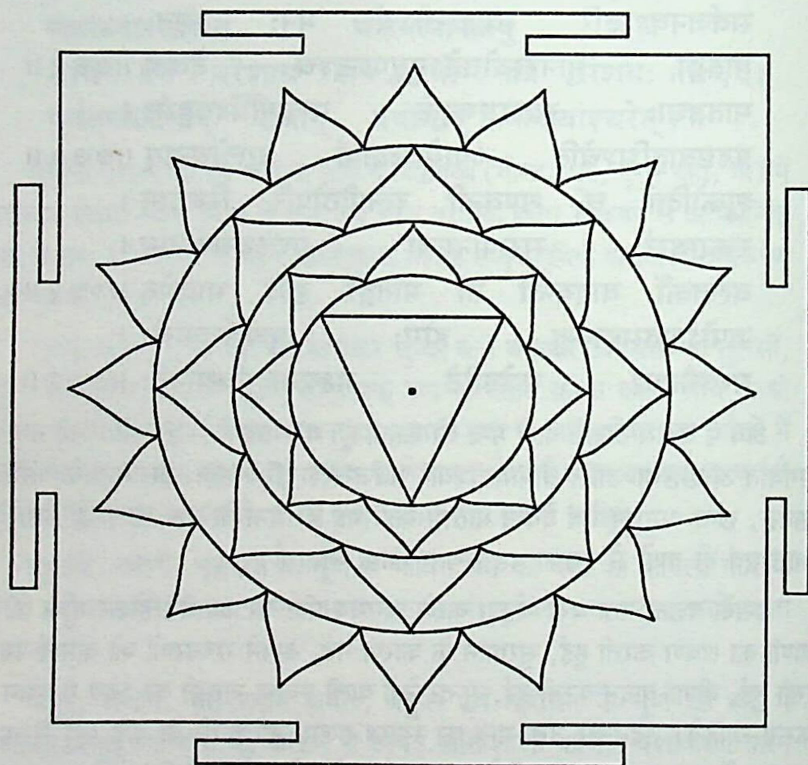
अब मैं बत्तीस अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। वह मन्त्र है—ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नमः भगवति उच्छिष्टचाण्डालि श्रीमातङ्गीश्वरि सर्वजनवशङ्करि स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि मातङ्ग, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता मातङ्गी कही गई हैं। मन्त्र के चार, छः, छः, छः, आठ एवं दो वर्णों से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है।

इसके पश्चात् रक्त वस्त्र धारण करके रत्नमय पीठ पर आसीन होकर शुक की वाणी का श्रवण करती हुई, सुरापान के कारण मत्त, अपने सच्चरणों को कमल पर रखी हुई, वीणा-वादन करती हुई, सुन्दर नेत्रों वाली श्यामा मातङ्गी का हृदय में ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर उक्त मन्त्र का ग्यारह हजार जप करने के बाद मधु-सिक्त मधूकपुष्पों द्वारा हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् आगे कहे जाने वाले विधान के अनुसार पीठ पर अर्चन करना चाहिये।।७६७-७७२।।

त्रिकोणाष्टदलद्वन्द्वं कलारं चतुरस्रकम्।
पीठं कृत्वा यजेत्तस्मिन् पीठशक्तीर्नवेष्टदाः ।।७७३।।

विभूतिरुन्नतिः कान्तिः सृष्टिः कीर्त्तिश्च सन्नतिः ।
व्यूढिरुत्कृष्टिर्र्ऋद्धिश्च मातङ्ग्यन्ता इमाः स्मृताः ॥७७४॥
सर्वशक्तिकमन्त्रान्ते चासनाय हृदन्तकः ।
तारमायावाग्रमाद्यः पीठमन्त्रः कलार्णकः ॥७७५॥
विष्टरासनमेतेन पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।
मूलेन पीठपूजान्ते कुर्यादावरणार्चनम् ॥७७६॥

त्रिकोण, दो अष्टदल, एक षोड़शदल और भूपुर से इसके पूजनपीठ का निर्माण करके उस पर अभीष्ट प्रदान करने वाली नव पीठशक्तियों का यजन करना चाहिये। पूजनयन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—



नव पीठशक्तियाँ इस प्रकार कही गई हैं—विभूतिमातङ्गी, उन्नतिमातङ्गी, कान्तिमातङ्गी, सृष्टिमातङ्गी, कीर्तिमातङ्गी, सन्नतिमातङ्गी, व्यूढ़िमातङ्गी, उत्कृष्टिमातङ्गी और ऋद्धिमातङ्गी। तदनन्तर सोलह वर्णों वाले 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' पीठमन्त्र से

आसन प्रदान करके पाद्य आदि को स्थापित करना चाहिये। फिर मूल मन्त्र से पीठपूजन करने के उपरान्त आवरण-पूजन करना चाहिये।।७७३-७७६।।

त्रिकोणेष्वर्चयेत्तिस्रो रतिप्रीतिमनोभवाः।
केशरेषु षडङ्गानि मातृश्च दलमध्यगाः।।७७७।।
द्वितीयेऽष्टदले पूज्या असिताङ्गादिभैरवाः।
षोडशारे तु वामाख्या ज्येष्ठा रौद्री प्रशान्तिका।।७७८।।
श्रद्धा माहेश्वरी चापि क्रियाशक्तिश्च सप्तमी।
सुलक्ष्मीः सृष्टिमोहिन्यौ प्रथमाचारिणी तथा।।७७९।।
विद्युल्लता च चिच्छक्तिः सुरापा नन्दया सह।
नन्दबुद्धिः षोडशी तु पूजनीयाः प्रयत्नतः।।७८०।।
चतुरस्रचतुर्दिक्षु मातङ्गी सा महादिका।
लक्ष्मीस्तथा महालक्ष्मीः पुनर्वह्न्यादिकोणतः।।७८१।।
ध्रुवादिकं यजेदादौ मातङ्गीं परमं ततः।
सर्वावरणशक्तीनां ङेऽन्तं नाम हृदन्तकम्।।७८२।।
विघ्नेशदुर्गाबटुकक्षेत्रेशा दिक्सुरास्तथा।
वज्राद्याः पूजनीयाः स्युरित्थं सिद्धिर्मनोर्भवेत्।।७८३।।

त्रिकोण में रति, प्रीति, मनोभवा—इन तीन का अर्चन करने के बाद केशरों में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके बाद प्रथम अष्टदल के आठ दलों के मध्य में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का अर्चन करके द्वितीय अष्टदल में असिताङ्गादि अष्टभैरवों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् षोडशदल में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, प्रशान्तिका, श्रद्धा, माहेश्वरी, क्रियाशक्ति, सुलक्ष्मी, सृष्टि, मोहिनी, प्रथमाचारिणी, विद्युल्लता, चिच्छक्ति, सुरापा, नन्दा एवं नन्दबुद्धि—इन सोलह का प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये।

चतुरस्र की चारो दिशाओं में मातङ्गी, महामातङ्गी, लक्ष्मी और महालक्ष्मी का पूजन करने के बाद पुनः अग्न्यादि कोणों में समस्त आवरणशक्तियों का पहले ॐ, फिर चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में नमः लगाकर पूजन करना चाहिये। इसके बाद गणेश, दुर्गा, वटुक एवं क्षेत्रपाल का पूजन करने के उपरान्त भूपुर में दस दिक्पालों और उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार के पूजन से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।७७७-७८३।।

रम्भादण्डैः शुभैर्होमाद्रोगो राज्यन्तु बिल्वकैः।
पत्रैः फलैर्वा वश्या स्याज्जनता ब्रह्मवृक्षजैः।।७८४।।

रोगनाशोऽमृताखण्डैर्निम्बैः श्रीस्तण्डुलैरपि ।
अवृष्टिं लवणैर्विद्यात्तगरैर्वेतसैर्जलम् ॥७८५॥
लवणैर्निम्बतैलाक्तैः शत्रुनाशोऽधिकाशनम् ।
निशाचूर्णयुतैः काशैर्होमात्स्यात्स्तम्भनं द्विषाम् ॥७८६॥
रक्तचन्दनकर्पूरमांसीकुङ्कुमरोचनाः ।
चन्दनागुरुकर्पूरं गन्धाष्टकमुदीरितम् ॥७८७॥
एतद्धोमाज्जगद्वश्यं जायते मन्त्रिणो ध्रुवम् ।
एतत्पिष्ट्वायुतं जप्त्वा तिलकेन जगत्प्रियः ॥७८८॥
कदलीफलहोमेन सर्वेष्टं समवाप्नुयात् ।
किं बहूक्तेन मातङ्गी पूजिता कामदा नृणाम् ॥७८९॥
मध्वष्टलोलरचितां पुत्तलीं दक्षिणार्धतः ।
हूयादष्टोत्तरशतं खादिराग्नौ नरो निशि ॥७९०॥
शालिपिष्टमयीं तां तु भक्षयेत्स्त्री वशीकृते ।
कृष्णभूतनिशि ध्वांक्षोदरे क्षिप्त्वा शुभप्रभाम् ॥७९१॥
नीलसूत्रेण संवेष्ट्य चिताग्नौ प्रजपेदमुम् ।
सहस्रजप्तं तद्वह्निं यस्मै दद्यात्स दासवत् ॥७९२॥

केले के सुन्दर दण्ड़ों से हवन करने पर भोग की प्राप्ति होती है। बेल के पत्र अथवा फल से हवन करने पर राज्य की प्राप्ति होती है। ब्रह्मवृक्ष (पलाश)-पुष्पों के हवन से लोग वशीभूत होते हैं। अमृता (गुरुच)-खण्डों के हवन से रोगनाश होता है। निम्ब एवं तण्डुल के हवन से श्री अर्थात् लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। नमक के हवन से अवर्षण होता है तथा तगर एवं वेंत के हवन से जलवर्षण होता है। निम्बतैल से सिक्त नमक के हवन से शत्रुनाश एवं अधिक भोजन होता है। हल्दी-चूर्ण में काश मिलाकर हवन करने से शत्रुओं का स्तम्भन होता है। रक्तचन्दन, कपूर, जटामासी, कुमकुम, गोरोचन, चन्दन, अगुरु एवं कपूर को गन्धाष्टक कहा गया है। इन सबसे हवन करने पर समस्त संसार मन्त्रज्ञ साधक के वशीभूत होता है। अष्टगन्ध को पीसकर उसे दस हजार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करके तिलक करने से साधक लोकप्रिय होता है। केले के फल से हवन करने पर सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। अधिक कहने से क्या लाभ; पूजित मातङ्गी मनुष्यों के लिये कामदा होती है।

स्त्री को वशीभूत करने के लिये मनुष्य को चाहिये कि वह अष्टमधु द्वारा निर्मित रमणीय पुत्तली को दक्षिणार्द्ध से खण्ड़-खण्ड़ करके रात्रि में खैर की अग्नि में एक

सौ आठ बार हवन करने के बाद शालिपिष्ट से निर्मित पुत्तली का स्वयं भक्षण करे। ऐसा करने से अभीष्ट स्त्री उस मनुष्य के वशीभूत हो जाती है। अँधियारी रात्रि में काले कौवे के पेट में शुभप्रभा (दुर्गा का एक नाम) की छोटी प्रतिमा को छिपाकर उसे नीले धागे से लपेट कर चिता की अग्नि में रखकर मन्त्र का एक हजार जप करने के बाद वह अग्नि (भस्म) जिसे दी जाती है, वह साधक के लिये दास के समान हो जाता है।।७८४-७९२।।

एवं गणेश्वराः प्रोक्ताः पश्चिमाम्नायसंस्थिताः।
मुनिदेव्यादिसेव्यानां काश्यां सङ्ख्या न विद्यते ।।७९३।।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमसापि समन्वितैः।
स्वबीजाख्यैर्वर्णलक्षजपस्तेषामुदाहृतः ।।७९४।।
इक्षुखण्डैस्तिलैर्वापि कमलाद्यैः प्रमोदकैः।
तेषां होमः प्रकर्तव्यो मधुरत्रयसंयुतैः ।।७९५।।
भवन्ति फलदास्ते तु बिन्द्वादिकविनायकाः।
आकर्षाद्याश्च बटुका देवतास्ताः फलप्रदाः ।।७९६।।

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते पश्चिमाम्नाय-गणपतिमन्त्रकथनेमकोनविंशः प्रकाशः ।।१९।।



इस प्रकार पश्चिमाम्नाय में संस्थित गणेश्वरों का विवेचन किया गया। काशी में मुनियों एवं देवियों द्वारा सेवनीय गणेश्वरों की संख्या अगणित है। ॐ के बाद बीजसहित चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में नमः लगाकर मन्त्रयोजना करके सिद्धि-हेतु उस मन्त्र का वर्णलक्ष जप करने के बाद मधुरत्रय से समन्वित गन्ने के टुकड़े, तिल, कमल एवं लड्डु से हवन करना चाहिये। ऐसा करने से वे बिन्दु आदि विनायक फल प्रदान करने वाले हो जाते हैं। आकर्षादि वटुक एवं तत्तत् देवता भी इससे फलप्रद होते हैं।।७९३-७९६।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिव-प्रणीत 'पश्चिमाम्नायगणपतिमन्त्रकथन'-नामक एकोनविंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।



विंशतितमः प्रकाशः

(उत्तराम्नायगणपतिमन्त्रकथनम्)

उत्तराम्नायोक्तगणेशमन्त्रः

श्रीशिव उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि उत्तराम्नायसिद्धिदान्।
वदेद्धस्तिपिशाचीति लिःलिःस्वाहा नवाक्षरः ॥१॥
कङ्कालोऽस्य मुनिश्छन्दो विराडुच्छिष्टनामकः।
गणेशो देवता प्रोक्तस्सर्वसम्पत्प्रदायकः ॥२॥
द्वित्रीन्द्विन्दुद्विभिश्चापि पचाङ्गविधिरीरितः।
ध्यानं पूजा पुरश्चर्यादिकं स्याद्वक्रतुण्डवत्।
नवलक्षोः जपः प्रोक्तः काम्यकर्माण्यथ ब्रुवे ॥३॥
प्रतिमां कारयेद्धीमान्निम्बकाष्ठमयीं शुभाम्।
साध्याङ्गुष्ठप्रमाणां च गणेशस्य महात्मनः ॥४॥
स्पृष्ट्वा तां प्रजपेन्मन्त्रं काम्यसिद्धिस्ततो भवेत्।
षष्ठ्यां चैव चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे च मन्त्रवित् ॥५॥
उच्छिष्टो रात्रिमध्ये तु जपेन्मन्त्रमिमं शुभम्।
वाञ्छितं वशमायाति साधकस्य न संशयः ॥६॥

उत्तराम्नायोक्त गणपति-मन्त्र—शिव जी बोले—अब मैं उत्तराम्नाय में सिद्धि प्रदान करने वाले मन्त्रों को कहता हूँ। नवाक्षर मन्त्र है—हस्तिपिशाचि लिः लिः स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि कंकाल, छन्द विराट् एवं देवता समस्त सम्पत्तियों को प्रदान करने वाले उच्छिष्टगणेश कहे गये हैं। मन्त्र के दो, तीन, एक, एक एवं दो अक्षरों से इसका पञ्चाङ्ग न्यास किया जाता है। इसके ध्यान-पूजन-पुरश्चरण आदि वक्रतुण्डमन्त्र के समान ही होते हैं। इस मन्त्र के नव लाख जप का विधान किया गया है।

अब काम्य कर्मों को कहता हूँ। विद्वान् साधक द्वारा नीम की लकड़ी से साध्य के अंगुष्ठ प्रमाण वाली महात्मा गणेश की सुन्दर प्रतिमा का निर्माण करने के बाद उस प्रतिमा का स्पर्श करके मन्त्रजप करने से काम्य कर्मों में सिद्धि प्राप्त होती है।

मन्त्रज्ञ साधक यदि कृष्ण पक्ष की षष्ठी और चतुर्दशी तिथि की मध्यरात्रि में जूठे मुख इस मन्त्र का जप करता है तो उसका वाञ्छित व्यक्ति उसके वशीभूत हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।१-६।।

भूर्जपत्रे समालिख्य साध्यनाम यथाविधि।
मन्त्रेण वेष्टितं कृत्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
पादेनाक्रम्य तत्पत्रं हस्तकृष्टिरियं मता।।७।।
लिखित्वा पूर्ववत्पत्रं पूजयित्वा विधानतः।
साध्यं स्मृत्वा जमेन्मन्त्रं सर्वलोकं वशं नयेत्।।८।।
धारयेन्मस्तके यन्त्रं जपन्मन्त्रमनन्यधीः।
राजानं राजपत्नीं वा कर्षयेत्तत्क्षणात्सुधीः।।९।।
ताम्बूलपत्रपुष्पाणि वस्त्राण्याभरणानि च।
फलमूलादिवस्तूनि समादाय जपेन्मनुम्।
एकविंशतिवारान् हि दद्यादिष्टाय नान्यथा।।१०।।
वशकृत्सर्वलोकानां प्रयोगोऽयं प्रकीर्तितः।

भोजपत्र पर यथाविधि साध्य का नाम लिखकर उसे इस मन्त्र से वेष्टित करके उस भोपत्र को अपने पैर के नीचे दबाकर एकाग्र चित्त से मन्त्र का जप करने से उस साध्य का आकर्षण होता है।

पूर्ववत् भोजपत्र पर साध्यनाम लिखकर विधिपूर्वक उसका पूजन करके साध्य का स्मरण करते हुये मन्त्रजप करने से सम्पूर्ण लोक साधक के वशीभूत हो जाता है।

उस यन्त्र को शिर पर धारण करके एकाग्र मन से मन्त्रजप करता हुआ विद्वान् साधक राजा अथवा रानी को तत्क्षण ही आकर्षित कर लेता है।

पान का पत्ता, पुष्प, वस्त्र, आभूषण, फल-मूलादि वस्तुओं को लेकर उन्हें मन्त्र के इक्कीस जप से अभिमन्त्रित करके अभीष्ट व्यक्ति को प्रदान करने से वह व्यक्ति साधक के वशीभूत हो जाता है। यह प्रयोग समस्त लोकों को वशीभूत करने वाला कहा गया है।।७-१०।।

श्रीखण्डधूपदानेन राजानं वशमानयेत्।।११।।
समिधो निम्बकाष्ठस्य कटुतैलसमन्विताः।
काकपक्षसमायुक्ता हुत्वा मन्त्री यथाविधि।
चिताग्नौ भूरि शत्रुं स उच्चाटयति नान्यथा।।१२।।

उलूककाकयोः पक्षांस्तद्वसारक्तसंयुतान्।
श्मशानाग्नौ तु जुहुयाद्विद्वेषः स्निग्धयोर्भवेत् ॥१३॥
शत्रुपादरजोयुक्ता चक्रिहस्तमृदं बुधः।
श्मशानभस्मसंयुक्तामुद्वर्त्तनसमन्विताम्।
शत्रोस्तत्पुत्तलीं कुर्यात्सर्वावयवशोभिताम् ॥१४॥
तस्या हृदि लिखेन्नाम मूलमन्त्रेण वेष्टयेत्।
कृत्वा प्राणप्रतिष्ठान्तु विषरक्ताढ्यपात्रके ॥१५॥
स्थापयित्वा जपेन्मन्त्रं सम्यगेकाग्रमानसः।
म्रियतेऽरिर्न सन्देहो देवताभिः सुरक्षितः ॥१६॥

श्रीखण्ड चन्दन का धूप देकर राजा को वश में लाया जा सकता है। सरसो तेल से समन्वित निम्बकाष्ठ की समिधा को काकपंख के साथ मिलाकर विधिपूर्वक चिता की अग्नि में हवन करने वाला साधक अपने शत्रु को उच्चाटित कर देता है। उल्लू एवं कौवे के पंखों को उनकी चर्बी और रक्त से संयुक्त करके श्मशान की अग्नि में हवन करने से दो प्रेमियों में विद्वेष हो जाता है।

शत्रु के पैर की धूलि से संयुक्त कुम्हार के हाथ की मिट्टी को श्मशानभस्म के साथ युक्त करने के बाद सबको उबटन से अच्छी प्रकार मिलाकर समस्त अवयवों से सुशोभित शत्रु की पुत्तली का निर्माण करके उस पुत्तली के हृदय में शत्रु का नाम लिखकर उसे मूल मन्त्र से वेष्टित करने के पश्चात् उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करने के अनन्तर उस प्राणप्रतिष्ठित पुत्तली को विष एवं रक्त से समन्वित पात्र में स्थापित करने के बाद विद्वान् साधक यदि सम्यक् रूप से एकाग्र मन से मन्त्र का जप करता है तो देवताओं द्वारा सुरक्षित शत्रु भी मृत्यु को प्राप्त हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।११-१६।।

चितायां दग्धदम्पत्योर्भस्मादाय यथाविधि।
रोचनाकुङ्कुमाभं च भूर्जे नाम समालिखेत् ॥१७॥
वेष्टितं मूलमन्त्रेण प्राणस्थापनमाचरेत्।
साध्यं स्मृत्वा जपेन्मन्त्रं सम्यगष्टोत्तरं शतम्।
द्विष्टयोर्जनयोः सम्यक्स्नेहो भवति तत्क्षणात् ॥१८॥

चिता में दग्ध पति-पत्नी के भस्म को विधिपूर्वक ग्रहण करके उसमें गोरोचन एवं कुमकुम मिलाकर उससे भोजपत्र पर मूल मन्त्र से वेष्टित साध्यनाम लिखने के बाद उसमें प्राणप्रतिष्ठा करने के उपरान्त साध्य का स्मरण करके मन्त्र का एक सौ आठ

बार सम्यक् रूप से जप करने पर दो विद्वेषी लोगों में तत्क्षण ही परम मित्रता हो जाती है।।१७-१८।।

उच्छिष्टगणेशमन्त्राः

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये चोच्छिष्टस्य गणेशितुः।
ॐ ह्रीं क्लीं ह्रीं समुच्चार्य ह्रीं ह्रीं घें घें तथा च फट् ॥१९॥
स्वाहान्तो भववर्णोऽयं प्राग्वद्ध्यानादिकं मतम्।
मुन्यादयः प्रयोगाश्च वर्णलक्षमितो जपः ॥२०॥

उच्छिष्टगणेश का अन्य मन्त्र—अब उच्छिष्टगणेश के दूसरे मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ ह्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं घें घें फट् स्वाहा। इसमें ग्यारह अक्षर हैं। इस मन्त्र का ध्यान, ऋषि, छन्द आदि एवं प्रयोग भी पूर्व मन्त्र के समान ही हैं। इसका जप वर्णलक्ष अर्थात् ग्यारह लाख किया जाता है।।१९-२०।।

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्येऽहं चोच्छिष्टस्य महामनुम्।
ॐ ह्रीं क्रीं च समुच्चार्य ह्रीं हुं घें घें तथा च फट् ॥२१॥
एकदंष्ट्रायेति हस्तिमुखलम्बोदराय च।
उक्त्वोच्छिष्टात्मने क्रांक्रूंह्रींह्रींघेघेऽग्निगेहिनी ॥२२॥
सप्तविंशतिवर्णोऽयं वक्रतुण्डषडर्णवत्।
चतुर्थ्यन्तं हस्तिमुखपदमात्रं यदोच्चरेत् ॥२३॥
त्रयोविंशतिवर्णस्तु तस्य मन्त्रः प्रकीर्तितः।
मुन्यादिदेवतोच्छिष्टगणनाथः प्रकीर्तितः ॥२४॥
प्राग्वज्ज्ञेयं प्रयोगादि सिद्धिः कलियुगे द्रुतम्।
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं षट्त्रिंशवर्णकम् ॥२५॥
तारो नमो भगवते एकदंष्ट्राय हस्ति च।
मुखलम्बोदरायेति तथोच्छिष्टमहात्मने ॥२६॥
क्रौंक्लौंह्रींहुं ततो घेंघें स्वाहान्तोऽयं मनुर्मतः।
ऋष्यादिकं पुरा प्रोक्तं क्रौंक्लुंहुं च घेद्वयम्।
एतैः षडङ्गं कुर्वीत प्राग्वद्ध्यानं च पूजनम् ॥२७॥

अब उच्छिष्टगणेश के अन्य मन्त्र को कहता हूँ। 'ॐ ह्रीं क्रीं' का उच्चारण करके 'ह्रीं हुं घें घें फट्' के उच्चारण से यह मन्त्र बनता है। सत्ताईस अक्षरों का यह मन्त्र है—एकदंष्ट्राय हस्तिमुखलम्बोदराय उच्छिष्टात्मने क्रां क्रूं ह्रीं ह्रीं घें घें स्वाहा।

उक्त सत्ताईस अक्षर वाले मन्त्र में 'हस्तिमुखलम्बोदराय' के स्थान पर 'हस्तिमुखाय' पद देने पर यही मन्त्र तेईस अक्षरों का हो जाता है। मन्त्र का स्वरूप होता है— एकदंष्ट्राय उच्छिष्टात्मने हस्तिमुखाय कां क्रं ह्रीं ह्रीं घें घें स्वाहा। तीसरे और चौथे मन्त्र के ऋषि, देवता आदि पूर्ववत् उच्छिष्टगणेश के समान ही कहे गये हैं। पुरश्चरण-प्रयोग आदि भी पूर्ववत् ही जानना चाहिये। इन मन्त्रों की कलियुग में शीघ्र सिद्ध होती है।

अब मैं छत्तीस अक्षरों वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ नमो भगवते एकदंष्ट्राय हस्तिमुखलम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने क्रौं क्लौं ह्रौं हुं घें घें स्वाहा। इस मन्त्र के ऋषि आदि पूर्ववत् ही कहे गये हैं। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये— क्रौं हृदयाय नमः, क्लूं शिरसे स्वाहा, ह्रुं शिखायै वषट्, घें कवचाय हुं, घें नेत्रत्रयाय वौषट्, क्रौं क्लूं ह्रौं ह्रूं घें घें अस्त्राय फट्। इसके ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् ही होते हैं।।२१-२७।।

अथान्यमस्य वक्ष्यामि द्वादशार्णं महामनुम्।
ह्रींगं हस्तिपिशाचि लिखेत्स्वाहेति मन्त्रकः ।।२८।।
नवार्णमन्त्रवत्सर्वं ध्यानपूजादिकं मतम्।
पुरश्चर्यार्कलक्षा स्यात्प्रयोगादि च पूर्ववत् ।।२९।।
तारो नमोच्छिष्टगणेशाय दशाक्षरो मनुः।
ध्यानपूजाप्रयोगादि सर्वमस्य दशार्णवत् ।।३०।।
दशाक्षरस्यास्य चान्ते कथितश्चेन्नवाक्षरः।
एकोनविंशवर्णः स्यात्तदा मन्त्रः सुसिद्धिकृत् ।।३१।।
ध्यानपूजादिकं सर्वं विज्ञेयं तु नवार्णवत्।
द्वयगद्वित्रिद्विद्विभिश्च मन्त्रार्णैः स्यात्षडङ्गकम् ।।३२।।
अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि द्वात्रिंशद्वर्णकं मनुम्।
तारं हस्तिमुखेति च ङेऽन्तं लम्बोदरं वदेत् ।।३३।।
उच्छिष्टेति महात्मेति ने आंक्रींह्रीं समुच्चरेत्।
क्लीं ह्रीं हुं घेद्वयं चापि उच्छिष्टायाग्निगेहिनी ।।३४।।
रसेषुसप्तषट्षट्कनेत्रार्णैरङ्गकल्पनम्।

अब मैं गणेश के बारह अक्षरों वाले अन्य मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ ह्रीं गं नमः हस्तिपिशाचि स्वाहा। नवार्ण मन्त्र के समान ही इसका ध्यान-पूजनादि कहा गया है। बारह लाख जप से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है। इसके प्रयोग आदि भी पूर्ववत् ही होते हैं।

गणेश का दशाक्षर मन्त्र है—ॐ नम उच्छिष्टगणेशाय। इसके ध्यान, पूजा, प्रयोग आदि सबकुछ दशार्ण मन्त्र के समान ही होते हैं।

इस दशाक्षर मन्त्र के अन्त में पूर्वोक्त नवाक्षर मन्त्र लगा देने से सुन्दर सिद्धि प्रदान करने वाला उन्नीस अक्षरों का मन्त्र बन जाता है। मन्त्र का स्वरूप होता है—ॐ नम उच्छिष्टगणेशाय हस्तिपिशाचि लिः लिः स्वाहा। इस मन्त्र के ध्यान-पूजन आदि सबकुछ नवार्ण मन्त्र के समान ही जानने चाहिये। मन्त्र के दो, सात, दो, तीन, दो, दो वर्णों से क्रमशः इसका षडङ्गन्यास होता है।

अब मैं दूसरे बत्तीस अक्षरों वाले मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—ॐ हस्तिमुखाय लम्बोदराय उच्छिष्टमहात्मने आं क्रीं ह्रीं क्लीं ह्रीं हुं घें घें उच्छिष्टाय स्वाहा। मन्त्र के छः, पाँच, सात, छः, छः एवं दो वर्णों से क्रमशः इसका षडङ्ग न्यास करना चाहिये।

उच्छिष्टगणनाथस्य मन्त्रेष्वेषु न शोधनम् ।।३५।।
सिद्ध्यादिचक्रमायादौ प्राप्तास्ते सिद्धिदा गुरोः ।
मनवोऽमी सदा गोप्या न प्रकाश्या इतस्ततः ।।३६।।
वाममार्गाराधनं तु विनाऽनेन न सिद्ध्यति ।
जातिभ्रंशो निर्धनत्वं वंशच्छेदोऽन्यथा भवेत् ।।३७।।

उच्छिष्टगणेश के इन उपरोक्त मन्त्रों के सिद्धिचक्रों एवं माया आदि बीजों में किसी प्रकार का शोधन नहीं करना चाहिये। गुरु द्वारा प्राप्त होने पर ये सभी मन्त्र सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं; साथ ही ये सभी मन्त्र सदैव गोपनीय रखने योग्य होते हैं; इनका जहाँ-कहीं भी प्रकाशन नहीं करना चाहिये।

इनके विना वाममार्ग की आराधना कभी भी सिद्धिदायक नहीं होती; अपितु इनके विना वाममार्ग की आराधना करने पर कर्ता को जातिभ्रष्टता, निर्धनता एवं वंशनाश की प्राप्ति होती है।।३५-३७।।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कृतयुक्तास्तु शक्तयः ।
ब्राह्मणेभ्यः सदा गोप्या विशेषाद्वेदकर्मणः ।।३८।।
उच्छिष्टचाण्डलिनीति सुमुखी च महापिशा ।
चिनि ह्रीं वत्रयं बिन्दुविसर्गाभ्यां च संयुतम् ।।३९।।
विंशत्यर्णो मनुः प्रोक्तो भजतामिष्टसिद्धिकृत् ।
यस्य तिष्ठति मन्त्रोऽयं न स विघ्नैस्तु बाध्यते ।।४०।।
शवोपरि समासीनां रक्ताम्बरपरिच्छदाम् ।
रक्तालङ्कारसंयुक्तां गुणहारविराजिताम् ।।४१।।

रक्तां षोडशवर्षां च पीनोन्नतघनस्तनीम् ।
उच्छिष्टेन बलिं दत्त्वा जपेत्तद्गतमानसः ।।४२।।
उच्छिष्टेन प्रकर्त्तव्यो जपोऽस्याः सिद्धिमिच्छता ।
उच्छिष्टं जपतो ह्यस्य जायन्ते सर्वसिद्धयः ।।४३।।

अब मैं इनके साथ रहने वाली शक्तियों को कहता हूँ; इन शाक्तियों को वैदिक कर्मानुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों से बराबर गुप्त रखना चाहिये। 'उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि महापिशाचिनि ह्रीं वं वं वः' यह बीस अक्षरों वाला मन्त्र जप करने मात्र से ही इष्टसिद्धि प्रदान करने वाला कहा गया है। जिसके पास यह मन्त्र रहता है, वह कभी भी विघ्नों से बाधित नहीं होता। शव के ऊपर सम्यक् प्रकार से बैठी हुई, रक्त वस्त्र एवं रक्त अलंकारों से समन्वित, सर्वोत्तम हार धारण की हुई, रक्त वर्ण वाली, षोड़शवर्षीया, स्थूल उन्नत घने स्तनों वाली देवी का ध्यान करना चाहिये।

सिद्धि चाहने वाले को उच्छिष्ट द्रव्य से देवी को बलि प्रदान करके अपने मन को देवी में तल्लीन करके जूठे मुख मन्त्र का जप करना चाहिये। इस मन्त्र का जूठे मुख जप करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।।३८-४३।।

स्थण्डिलं मण्डलं कृत्वा चतुरस्त्रं समाहितः ।
पूजयेन्मण्डलं देव्या मूलमन्त्रेण मन्त्रवित् ।।४४।।
तत्र चाग्निं समाधाय वह्निरूपव्यवस्थिताम् ।
देवीं ध्यात्वा चरेद्धोमं दधिसिद्धार्थतण्डुलैः ।
सहस्त्रैकं विधानेन राजा भवति वश्यगः ।।४५।।
मार्जारस्य तु मांसेन यो देव्यै होममाचरेत् ।
स प्राप्नोति परां विद्यां शस्त्रशास्त्रवशीकृताम् ।।४६।।
कुर्याच्छागस्य मांसेन होमं मधुसमन्वितम् ।
सहस्त्रैकं विधानेन भवन्ति धनसिद्धयः ।।४७।।
विद्याकामश्चरेद्धोमं शर्कराघृतपायसैः ।
मासात्तस्य भवन्त्येव सिद्धा विद्याश्चतुर्दश ।।४८।।
रजस्वलाया वस्त्रेण मधुना पायसेन च ।
होमं कृत्वा महादेवि त्रैलोक्यं वशमानयेत् ।।४९।।
नागवल्ल्या चरेद्धोमं मधुना सह सर्पिषा ।
अयुतैकं विधानेन सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति च ।।५०।।
नरमार्जारमांसेन घृतेन मधुना सह ।
चाण्डालकेशयुक्तेन भवेदाकर्षणं ध्रुवम् ।।५१।।

तथा बकस्य मांसेन मधुना लोलितेन च।
कृत्वा होममवाप्नोति विद्यावित्तवराननाः ॥५२॥

मन्त्रज्ञ साधक को स्थण्डिल पर चतुरस्र मण्डल बनाकर एकाग्र मन से मूल मन्त्र से उस पर देवी का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् उस स्थण्डिल पर सम्यक् रूप से अग्नि को स्थापित करके अग्निरूप व्यवस्थित देवी का ध्यान करके दधि, सरसों और चावल से विधिपूर्वक एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने से राजा साधक के वशीभूत हो जाता है।

जो साधक विड़ाल के मांस से देवी का हवन करता है, वह शस्त्र-शास्त्र को अपने वश में करने वाली पराविद्या को प्राप्त कर लेता है। मधु-समन्वित बकरे के मांस से विधिपूर्वक एक हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये किया गया हवन धन-सिद्धि प्रदान करने वाला होता है। जो साधक विद्या-प्राप्ति की कामना से एक मास-पर्यन्त शक्कर, घृत एवं पायस से हवन करता है, उसे निश्चित ही चौदहों विद्यायें सिद्ध हो जाती हैं।

हे महादेवि! रजस्वला स्त्री के वस्त्र, मधु और पायस से हवन करने पर साधक तीनों लोकों को वशीभूत कर लेता है। पान, मधु एवं गोघृत से विधिपूर्वक दस हजार हवन करने पर साधक को आठो सिद्धियाँ सिद्ध हो जाती हैं। बिलाव के मांस को घृत, मधु एवं चाण्डाल के बाल से युक्त करके हवन करने पर निश्चित ही साध्य का आकर्षण होता है। बगुला के मांस को मधु में लपेटकर हवन करने से विद्या, धन और श्रेष्ठ स्त्री की प्राप्ति होती है।।४४-५२।।

मधुरार्कस्य होमेन चितावह्नौ तु मन्त्रवित्।
कोकिलाकाकपक्षैश्च होमाच्छत्रून् विनाशयेत् ॥५३॥
उच्चाटनाय शत्रूणां होमं कुर्याच्च मन्त्रवित्।
पूर्वोक्तेन विधानेन चिताकाष्ठहुताशने ॥५४॥
उलूककाकपक्षाभ्यां कृत्वा होमं निरन्तरम्।
शत्रून् विद्वेषयेद्द्वेष्टा चान्योन्यकलहाकुलान् ॥५५॥

त्रिमधुराक्त अकवन की समिधा के साथ कोयल और कौवे के पंखों को मिश्रित कर चिता की अग्नि में हवन करने वाला मन्त्रज्ञ साधक शत्रु का विनाश कर देता है। शत्रुओं का उच्चाटन करने के लिये पूर्वोक्त विधान से चिताकाष्ठ की अग्नि में हवन करना चाहिये। उल्लू और कौवे के पंखों से निरन्तर किया गया हवन शत्रुओं में द्वेष उत्पन्न कर देता है और वे आपस में कलह से व्याकुल हो जाते हैं।।५३-५५।।

उलूकपक्षहोमेन गर्भपातो भवेत्स्त्रियाः।
सहस्रैकं विधानेन कुर्याद्धोमं समाहितः ॥५६॥

बिल्वपत्रैः समध्वाज्यैर्मासमेकं निरन्तरम्।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं चिरञ्जीविनमुत्तमम् ॥५७॥
प्रातरुत्थाय यः कश्चित्कुर्याद्धोमं दिने दिने।
जपापुष्पैराज्ययुतैरष्टोत्तरशतं प्रिये।
षण्मासस्य प्रयोगेण भवेदाकर्षणं ध्रुवम् ॥५८॥
देवगन्धर्वकन्याश्च तथा नागादिकन्यकाः।
हठाच्चागत्य कामार्त्ता बलादालिङ्गयन्ति तम् ॥५९॥
विद्यायै क्रियते होमस्तिलैः पायससमिश्रितैः।
स प्राप्नोति महाविद्यां शास्त्रौघदशशालिनीम् ॥६०॥
मधुना रुरुमांसेन होमं कुर्यात्प्रयत्नतः।
विद्यावान् धनवान् वापि सर्वशास्त्रवशङ्करः ॥६१॥
भोजनानन्तरं चास्या बलिं कृत्वा दिने दिने।
शतमष्टोत्तरं मन्त्रमुच्छिष्टेन जपेत्सदा ॥६२॥
उत्कटे वा श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे।
बलिप्रदानतो देवी प्रत्यक्षा भवति ध्रुवम् ॥६३॥
गोपनीयं प्रयत्नेन कथनीयं न कस्यचित्।
गुरुभक्तिश्च कर्त्तव्या कायेन च धनेन च ॥६४॥

उल्लू के पंख से हवन करने पर स्त्रियों का गर्भपात होता है। विधिपूर्वक लगातार एक मास-पर्यन्त मधु एवं गोघृत से प्लुत बिल्वपत्रों से एकाग्रता-पूर्वक प्रतिदिन एक हजार आहुतियों द्वारा हवन करने पर वन्ध्या स्त्री भी श्रेष्ठ एवं दीर्घायु पुत्र को प्राप्त करती है।

हे प्रिये! जो कोई साधक प्रतिदिन प्रातःकाल निद्रात्याग करके गोघृत-सिक्त जपापुष्पों से एक सौ आठ बार हवन करता है, वह छः मास तक इस प्रयोग को करके निश्चित ही किसी का भी आकर्षण करने में समर्थ हो जाता है; कामपीड़ित देवकन्यायें, गन्धर्वकन्यायें एवं नागकन्यायें अकस्मात् ही उसके पास आकर बलपूर्वक उसका आलिङ्गन करती हैं।

विद्या-प्राप्ति के लिये जो साधक पायस-मिश्रित तिल से हवन करता है, वह दस शास्त्रों से समन्वित महाविद्या को प्राप्त करता है। यत्नपूर्वक रुरु मृग के मांस एवं मधु से हवन करने वाला साधक विद्वान् होता है अथवा धनवान् होने के साथ-साथ सभी शास्त्रों को वशीभूत करने वाला हो जाता है।

प्रतिदिन भोजन के पश्चात् इस देवी के लिये अपने उच्छिष्ट से वलि प्रदान करके उच्छिष्टमुख ही मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। विकट स्थान में, श्मशान में, निर्जन स्थान अथवा चौराहे पर बलि प्रदान करने से निश्चित ही देवी प्रत्यक्ष दर्शन देती है। इस विद्या को यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये, किसी से भी इसे नहीं कहना चाहिये; साथ ही शरीर एवं धन से गुरु की भक्ति करनी चाहिये।।५६-६४।।

वामदक्षिणमार्गनिर्णयः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वामदक्षिणनिर्णयम्।
कलौ विष्णुप्रार्थनया सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।।६५।।
मनुष्याः पशवो ज्ञेयाः पशवोऽपि नराः सुराः।
पशवोऽप्यसुराश्चापि भक्ष्यं पानं च मैथुनम्।।६६।।
जानन्ति तुल्यं भेदेन शीतोष्णाद्याः षडूर्मयः।
सर्वानेव हि बाधन्ते ममानन्दवनेमुतः।।६७।।
द्वयोस्तुल्या गतिः प्रोक्ता कामक्रोधादिकामतः।
तत्कथं मनुजाः श्रेष्ठास्तत्र त्वां प्रब्रवीमि च।।६८।।

वाम एवं दक्षिण मार्ग का निर्णय—अब मैं उस वाम एवं दक्षिण मार्ग के निर्णय को कहता हूँ, जिसे विष्णु की प्रार्थना के फलस्वरूप कलियुग में सभी तन्त्रों में गुप्त रखा गया है। मनुष्यों को पशु एवं पशुओं को भी मनुष्य, देवता अथवा असुर जानना चाहिये; क्योंकि ये सभी भोजन, पान एवं मैथुन में एक समान ही होते हैं। मेरे इस आनन्दवन में शीत-ऊष्ण आदि शरीर के छः क्लेशों (भूख-प्यास, लोभ-मोह, सर्दी-गर्मी) से सभी ही बाधित होते हैं। काम-क्रोध आदि की कामना से मनुष्य एवं पशु—दोनों की ही एक समान गति कही गई है; फिर मनुष्य पशुओं से श्रेष्ठ क्यों है, इसे अब मैं तुमसे कहता हूँ।।६५-६८।।

पशुदेहादन्यलोकसाधनं नैव जायते।
नृदेहात्तद्भवेद्यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठा नरा मताः।।६९।।
यो यस्य धर्मो विहितस्तेन धर्मेण यो व्रजेत्।
तस्यैव परलोकोऽस्ति यावत्पुण्यं वसेद्दिवि।।७०।।
पुनराढ्यगृहे जन्म सत्सङ्गश्चोपजायते।
सावधानस्तत्र यदा शास्त्रश्रवणतो भवेत्।
तदायं जायते विप्रः श्रोत्रियाणां कुले सुराः।।७१।।
तत्रापि सावधानश्चेद् ब्राह्मधर्मपरो यदा।
तदा ममानन्दवने दीक्ष्यते स सभान्तरे।।७२।।

पुनः कोऽपि स्वधर्मस्थो ज्ञानाभावाद्वियोनिषु।
जायते धर्मसाहाय्यान्मया काश्यां विमोच्यते।
कालस्यांशोऽधिकस्तत्र जपेच्च बहु जीवति ।।७३।।

पशुशरीर द्वारा अन्य लोकों का साधन नहीं किया जा सकता; जबकि मनुष्यशरीर द्वारा वह सम्भव होता है; इसीलिये मनुष्य को श्रेष्ठ कहा गया है। जो धर्म जिसके लिये विहित है, उसी धर्म के अनुरूप जो आचरण करता है, उसी के लिये परलोक की विद्यमानता है और जबतक उसका पुण्य शेष रहता है तभी तक वह स्वर्गलोक में निवास करता है। पुण्यक्षय के पश्चात् पुनः उसका सम्पन्न कुल में जन्म होता है और सत्संग की प्राप्ति होती है। वहाँ पर वह यदि सतर्कता-पूर्वक शास्त्रश्रवण में तत्पर रहता है तब वह श्रोत्रिय ब्राह्मण के कुल में जन्म ग्रहण कर विप्र होता है। वहाँ भी यदि वह सचेत रहकर ब्राह्मधर्म-परायण रहता है तब वह मेरे आनन्दवन की सभा के मध्य में दीक्षित होता है। फिर भी कोई-कोई मनुष्य अपने धर्म में रत रहते हुये भी ज्ञानाभाव के कारण यदि अन्य योनियों में जन्म-ग्रहण कर लेता है तो वह काशी में धर्म की सहायता से मेरे द्वारा मुक्त कर दिया जाता है। काशी में निवास के लिये काल का एक अंश भी अधिक है और वहाँ रहकर मनुष्य यदि जप करता है तो बहुत दिनों तक जीवित रहता है।।६९-७३।।

उपासना द्विधा प्रोक्ता सकामा कामविच्युता।
मोक्षबीजं तु निष्कामा सकामा भवबीजकम् ।।७४।।
पन्थास्तु दक्षिणः श्रेष्ठो वामः श्रेष्ठतरो मतः।
यस्तु वामं विजानाति स एव परमो गुरुः ।।७५।।
अहं जानामि सम्पूर्णं पादोनं सनकादयः।
अर्धं चापि वशिष्ठाद्याः शक्राद्याः पादसम्मितम् ।।७६।।
जानन्ति नाथाः षष्ठांशं कोट्यंशमितरे जनाः।
जानन्ति कोटयश्चात्र जायन्ते कृमियोनिषु ।।७७।।

कामना-सहित एवं कामना-रहित के भेद से उपासना दो प्रकार की कही गई है। इनमें से निष्काम साधना मोक्ष का कारण है एवं सकाम साधना संसार का हेतु है। मार्गों में यद्यपि दक्षिणमार्ग श्रेष्ठ है तथापि वाममार्ग को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। जो वाममार्ग को जानता है, वही परमगुरु होता है। उस वाममार्ग को मैं पूर्ण रूप से जानता हूँ। सनक आदि महर्षि उसके तीन पाद को, वशिष्ठ आदि ऋषि दो पाद को एवं इन्द्र आदि देवगण मात्र एक पाद को जानते हैं। नाथयोगिगण इसके षष्ठांश को जानते हैं

एवं अन्य लोग कोट्यंश-मात्र को ही जानते हैं। इसीलिये यहाँ पर करोड़ों लोग कृमियोनियों में जन्म ग्रहण करते हैं।।७४-७७।।

यः करोति सुरापानं जीवन्मुक्तः स जायते।
सुरतं यः प्रकुरुते त्रैलोक्यकरणक्षमः ।।७८।।
यो भक्षयति मत्स्यांश्च स शिवो नात्र संशयः।
मुद्रां भक्षयते यस्तु स सिद्धीनां पतिर्भवेत् ।।७९।।
मांसं खादति यो मर्त्यस्तस्य मृत्युभयं कुतः।
एतस्य चार्थत्रितयं सात्त्विको राजसस्तथा ।।८०।।
तामसश्चेति तत्राद्यो वाममार्गो निरूप्यते।
तं मार्गं ये विजानन्ति ते मुक्ता नात्र संशयः ।।८१।।

जो सुरापान करता है, वह जीवन्मुक्त होता है; जो मैथुन करता है, वह तीनों लोकों की रचना में सक्षम होता है एवं जो मछलियों का भक्षण करता है, वह साक्षात् शिवस्वरूप होता है, इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। जो मुद्रा का भक्षण करता है, वह सिद्धियों का स्वामी होता है। जो मनुष्य मांसभक्षण करता है, उसको मृत्युभय नहीं होता। इसके निमित्त तीन हैं—सात्त्विक, राजस एवं तामस। इन तीनों में पहले वाममार्ग का निरूपण किया जा रहा है। उस वाममार्ग को जो विशेष रूप से जानते हैं, वे मुक्त होते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है।।७८-८१।।

श्रीकृष्णो वाममार्गन्तु फाल्गुनायोपदिष्टवान्।
मया चिन्तयता दृष्टस्स मुनिश्च निरूपितः ।।८२।।
चाण्डालो वा तुरुष्को वा ब्रह्महा वाथ मत्सरी।
श्रोत्रियो वा वाममार्गी भुक्तिमुक्त्योः स भाजनम् ।।८३।।
ज्ञातोऽयं शुकदेवेन गर्भस्तम्भेन धीमता।
तं निन्दयति यः पापी विष्ठायां जायते कृमिः ।।८४।।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के लिये वाममार्ग का उपदेश किया था। चिन्तन करते हुये मेरे द्वारा देखा गया वह मुनि के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। चाण्डाल, तुर्क, ब्रह्मघाती, मत्सरी (द्वेषी) अथवा श्रोत्रिय—कोई भी हो, यदि वाममार्गी है तो वह भोग एवं मोक्ष का पात्र होता है। गर्भ को स्तम्भित करने वाले बुद्धिमान शुकदेव को इसका ज्ञान था। उस वाममार्ग की जो निन्दा करता है, वह पापात्मा विष्ठा का कीड़ा होता है।।८२-८५।।

वाममार्गे च तन्त्राणि मया त्रीणि कृतानि तु।
दत्तात्रेयाय चैकन्तु श्रीकृष्णाय तथा परम् ।।८५।।

दैव्यै दत्तं तृतीयन्तु दत्तेन तु युगद्वये ।
बहवो वृष्णिकाद्याश्च वाममार्गेण मोचिताः ॥८६॥
श्रीकृष्णाय तु यद्दत्तं तेन च द्वापरे युगे ।
इह लोकेषु सन्दाय देवलोके प्रवेशिताः ॥८७॥
यत्तन्त्रं तु मया देव्यै दत्तं तेन विमोहिताः ।
पण्डिता अपि संसारे चान्येषां तु कथास्ति का ॥८८॥

वाममार्ग में मैंने तीन तन्त्रों की रचना की है; उनमें से एक रचना दत्तात्रेय को, दूसरी श्रीकृष्ण को एवं तीसरी रचना देवी को प्रदान की है। उनमें से दत्तात्रेय के लिये प्रदत्त तन्त्र के द्वारा कृतयुग एवं त्रेता में वृष्णिवशियों के साथ-साथ अन्य बहुत-से लोग भी वाममार्ग के द्वारा मुक्त किये गये थे। दूसरा श्रीकृष्ण के लिये जो मैंने प्रदान किया था, उसका आश्रयण करके इस लोक में द्वापर युग में बहुत-से लोगों ने देवलोक में प्रवेश किया था। मेरे द्वारा जो तन्त्र देवी को प्रदान किया गया, उससे इस संसार में विद्वान् लोग भी विमोहित हो गये; फिर अन्य लोगों की तो बात क्या है?८५-८८।।

तत्सारं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
कुण्डलीं शक्तिमुत्थाप्य हठयोगेन भोः सुराः ।
कृत्वा बुभुक्षितां तान्तु जीवं तस्यै प्रदर्शयेत् ॥८९॥
सा जीवभक्षणार्थन्तु मुखं व्याकुरुते यदा ।
शिरश्चन्द्रामृतं तस्या मुखं यात्येतदीरितम् ॥९०॥

समस्त तन्त्रों में गुप्त उस तन्त्र के सार को अब मैं कहता हूँ। हे देवताओं! हठयोग के द्वारा कुण्डलिनी को जागृत कर बुभुक्षित बनाकर जीव पर उसका दृष्टिपात कराने पर वह उस जीव का भक्षण करने के लिये जब अपना मुख खोलती है, उस समय उसके शीर्षभाग से पतित चन्द्रामृत का उसके मुख में प्रवेश होता है—ऐसा कहा गया है।।८९-९०।।

जरामृत्युहरं देवाः सुरापानन्तु वामिनाम् ।
पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा देहो भवति काष्ठवत् ॥९१॥
प्राक्कर्मवेगतो देहे नाना कर्माणि भान्ति च ।
जीवः प्राप्यात्मसाम्यत्वं नित्यानन्दमयो भवेत् ।
देहाभिमाने गलिते साधकः स्यान्महेश्वरः ॥९२॥
भ्रामितन्तु कुलालेन चक्रं चरति वेगतः ।
तथास्य देहश्चरति व्यहङ्कारस्तु कर्मतः ॥९३॥

यथा केशनखादीनां निर्गतानां तु कर्तने।
तद्वन्न दुःखं भवति ज्ञानिनां देहताडने ॥९४॥
जीवः सर्वगतः केशनखादीनां यथा भवेत्।
वृद्धिस्तथास्य देहस्य व्यापारः सम्प्रवर्तते ॥९५॥
यथा वृक्षः सजीवोऽपि पीडया नानुभूयते।
तथा चन्द्रसुरामत्तः कामाद्यैर्नानुभूयते ॥९६॥

हे देवताओं! वाममार्गियों का सुरापान जरा एवं मृत्यु का विनाशक होता है। इसका बार-बार पान करने में देह काष्ठ के समान हो जाता है। पूर्वजन्म के कर्मों के वेग से शरीर में नाना प्रकार के कर्मों का आभास-मात्र होता है। जीव आत्मसाम्यत्व को प्राप्त करके नित्यानन्द-स्वरूप हो जाता है। देहाभिमान की समाप्ति होने पर साधक महेश्वर-स्वरूप हो जाता है।

जिस प्रकार कुम्हार द्वारा घुमाने पर चक्र तेजी से चलने लगता है, उसी प्रकार अहंकार-रहित यह शरीर कर्मों से चलता रहता है। जिस प्रकार बढ़े हुये नख, केश आदि को काटने पर कोई कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानियों के शरीर पर ताड़न (प्रहार) करने से उन्हें कोई कष्ट नहीं होता। जैसे केश-नख आदि वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं, वैसे ही सबमें वर्त्तमान जीव शरीर की वृद्धि होने पर व्यापार में प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार सजीव होते हुये भी वृक्ष पीड़ा का अनुभव नहीं करते, उसी प्रकार चन्द्रामृत से मत्त जीव को कामादि की अनुभूति नहीं होती।।९१-९६।।

इडापिङ्गलयोः प्राणान् सुषुम्णायां प्रवर्तयेत्।
सुषुम्णा शक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः।
तयोस्तु सङ्गमो देवाः सुरतं नाम कीर्तितम् ॥९७॥
वीर्यपातस्य समये सुषुम्णासन्नमारुते।
उत्पद्यते तु यत्सौख्यं तस्मात्कोटिगुणं तु तत् ॥९८॥
समाधिस्थास्तु योगीन्द्रास्तेन सौख्येन निर्वृताः।
सहस्त्रयुगकालन्तु मन्यन्ते ते निमेषवत्।
एतदेव रतं प्रोक्तमन्यत्स्याद्रासभं रतम् ॥९९॥
पञ्चक्लेशास्तु मत्स्याः स्युर्विवेकेनैव ताञ्जयेत्।
मत्स्यभक्षणमित्युक्तं मुक्तिमार्गनिदर्शकैः ॥१००॥
क्लेशकर्मविपाकैश्च ह्याशयैः स्यादसङ्गतिः।
तदानीं ह्यानन्दमय आत्मत्वं प्रतिपद्यते ॥१०१॥

इड़ा, पिंगला में चलने वाले प्राण को सुषुम्णा में प्रवृत्त कराना चाहिये। सुषुम्णा को शक्ति एवं इस जीव को परशिव कहा गया है। हे देवताओं! उन दोनों के संयोग को ही 'सुरत' कहा गया है। वीर्यपात के समय जिस सुख की प्राप्ति होती है, उससे करोड़ों गुणा अधिक सुख प्राण के सुषुम्णा में प्रवेश करने पर होता है। समाधि में स्थित श्रेष्ठ योगी उस सुख से रहित होते हैं। वे हजारों युग के समय को भी एक निमेष (आँख झपकने में लगने वाला समय) के बराबर मानते हैं। इस प्रकार की अनुभूति को ही 'रत' कहा गया है, अन्य तो गदहों का सम्भोग-मात्र होता है। पञ्चक्लेश तो मत्स्य के समान हैं, विवेक के द्वारा ही उन पर विजय प्राप्त करना चाहिये। इसे ही मुक्तिमार्ग के प्रतिपादकों ने मत्स्यभक्षण कहा है। क्लेश, कर्म एवं विपाक की आशय (सुख-दुःख के कारणरूप कर्मजन्य संस्कार) से जब असंगति होती है, उसी समय आनन्दमय आत्मतत्त्व की प्रतिपत्ति होती है।।९७-१०१।।

आत्मनो जायते मोदस्ता मुद्राः परिकीर्तिताः।
ता ज्ञेया धारणाध्यानसमाध्याख्यास्तु मोक्षदाः ।।१०२।।
देहबन्धकरं यत्तु तन्मांसं परिकीर्तितम्।
अज्ञानेन यतो जीवो देहपाशेन बध्यते ।।१०३।।
अज्ञानभक्षणं प्रोक्तं तन्मांसस्य च भक्षणम्।
अज्ञाननाशाज्ज्ञानस्योदयान्मोक्षः प्रजायते ।।१०४।।
दत्तात्रेयाय यत्प्रोक्तं सात्त्विकं तन्निरूपितम्।
अनेन वाममार्गेण मोक्षो भवति सर्वथा ।।१०५।।

आत्मा को जिससे आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी को 'मुद्रा' कहा गया है और उसे धारणा, ध्यान, समाधिरूप जानना चाहिये। यह मुद्रा मोक्षदायिनी होती है। जो देह को बन्धन में ड़ालने वाला है, उसे ही 'मांस' कहा गया है। यतः जीव अज्ञान के कारण ही देहपाश से बद्ध होता है; इसलिये अज्ञान-भक्षण को ही मांसभक्षण कहा गया है। अज्ञान का नाश एवं ज्ञान का उदय होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार दत्तात्रेय के लिये जिस सात्त्विक वाममार्ग को मैंने कहा था, उसका यहाँ निरूपण किया गया। इस वाममार्ग का आश्रयण करने से जीव पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता है।

श्रीकृष्णार्पितसारार्थं तन्त्रराजस्य गृह्यताम्।
ददाति यत्तल्लभते हीति शास्त्रेषु निश्चयः ।।१०६।।
न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिश्च महाफला ।।१०७।।

व्यामोहकारकं मद्यं निषिद्धं नरकप्रदम्।
ब्राह्मणो न स्पृशेन्मद्यं वैदिके वर्त्मनि स्थितः ॥१०८॥
यावद्वेदश्च वेदी च कलौ भूमौ प्रवर्तते।
तावन्न ब्राह्मणो मद्यं कलौ सेवेत कर्हिचित्।
यथामृतन्तथा मद्यम्प्रोक्तं काले निषेवितम् ॥१०९॥

अब मेरे द्वारा श्रीकृष्ण के लिये अर्पित तन्त्रराज के सार अर्थ को आप सब ग्रहण करें। 'जो दिया जाता है, वही प्राप्त होता हैं' यही शास्त्रों का निश्चय है। न तो मांसभक्षण में कोई दोष है, न मद्यपान में दोष है और न ही मैथुन में कोई दोष है। इनमें तो प्राणियों की सामान्य प्रवृत्ति होती ही है; इनसे निवृत्ति ही सबसे बड़ा फल है।

मद्य व्यामोह उत्पन्न करने वाला होता है, नरक प्रदान करने वाला होने के कारण यह निषिद्ध है। वैदिक मार्ग में स्थित ब्राह्मण को मद्य का स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। कलियुग में पृथिवी पर जब तक वेद और वेदी की प्रवृत्ति है, तब तक ब्राह्मण को किसी भी दशा में मद्य का सेवन नहीं करना चाहिये। समय पर सेवन करने से मद्य को अमृत के समान कहा गया है।

अमृतेन सहोत्पन्नं स्थाने मद्यं सुधायते।
विषेणापि समुत्पन्नं तेन मद्यं विषायते ॥११०॥
अग्निर्नाम च गायत्री सा प्राप्ता चेद् गुरोर्मुखात्।
कुलद्वयविशुद्धेन वैदिकेनैव वर्त्मना ॥१११॥
अज्ञाते तन्मुखाग्नौ तु सद्यो बिन्दुः पतेद्यदि।
प्रतारको वचोभिर्वा धनबुद्ध्या तथा परम्।
इह लोके स दुःखी स्यात्प्रेत्य राक्षसतां व्रजेत् ॥११२॥

एक ही स्थान पर अमृत के साथ उत्पन्न होने के कारण मद्य भी अमृतस्वरूप होता है एवं विष के साथ उत्पन्न होने के कारण वही मद्य विषस्वरूप भी होता है। दोनों कुलों से पवित्र गुरु के मुख से वैदिक मार्ग द्वारा प्राप्त गायत्री अग्नि कहलाती है। यदि अज्ञानतावश उसकी मुखरूपी अग्नि में अकस्मात् एक बूँद भी मद्य का पात हो जाता है तो वह मद्य उसकी वाणी, धन एवं बुद्धि का प्रतारक हो जाता है। गायत्री-प्राप्त वह मनुष्य इस लोक में तो दुःख प्राप्त करता ही है, मरने के पश्चात् राक्षसयोनि को भी प्राप्त होता है।।११०-११२।।

यदि तन्त्रक्रियायुक्तो गुरुणा संस्कृतो भवेत्।
तदा किञ्चित्सुखं प्राप्य प्रेत्य लक्षाधिपो भवेत् ॥११३॥

विष्णोरप्यर्चनं कुर्यात्तर्पणं सुरया पुनः ।
अविप्रः सौख्यमाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ।
गौडी पैष्टी च माध्वी च सुरा इत्यभिधीयते ॥११४॥
राजन्यवैश्ययोर्नेष्टा ब्राह्मणस्य तु का कथा ।
मन्त्रेण संस्कृतं कृत्वा शक्त्युच्छिष्टं तु यः पिबेत् ।
मद्यं पुनः पुनः स्तन्यं न पिबेत्स पयो नरः ॥११५॥
दैवात्कदाचिद्विप्रोऽपि धूर्त्तमन्त्रैः प्रतारितः ।
दैवेन मद्यपो जातस्तस्योद्धारो मयोच्यते ॥११६॥

वह मद्य यदि तान्त्रिक क्रिया से समन्वित गुरु द्वारा संस्कृत होता है तो उसका पान करने पर साधक इस जन्म में स्वल्प सुख प्राप्त करके मरने के उपरान्त लक्षाधिप (कुबेर) होता है। ब्राह्मणेतर व्यक्ति सुरा से भी विष्णु का अर्चन एवं तर्पण करके इस जन्म में सुख प्राप्त करता है एवं पञ्चत्व-प्राप्ति के पश्चात् ब्रह्म में लीन हो जाता है। सुरा तीन प्रकार की कही गई है—गौडी, पैष्टी एवं माध्वी।

वह सुरा क्षत्रियों एवं वैश्यों के लिये भी जब हितकर नहीं है तो फिर ब्राह्मणों का तो कहना ही क्या है? मन्त्र के द्वारा संस्कृत करके शक्ति के उच्छिष्ट मद्य का जो पान करता है, वह मानों बार-बार स्तनपान करता है; जबकि स्तन के दूध का पान मनुष्य नहीं करता।

दैववशात् कभी-कभी विप्र भी धूर्त्त मन्त्रों के द्वारा प्रतारित होकर दुर्भाग्यवश मद्यपायी हो जाता है; अतः उसके उद्धार के विधान को अब मैं कहता हूँ।

त्यजेत्स वैदिकं कर्म तुलसीं नैव संस्पृशेत् ।
चाण्डालो वा तुरुष्को वा यः कश्चित्कौलमास्थितः ।
तस्यैव सङ्गः कर्तव्यो नान्यविप्रस्य कुत्रचित् ॥११७॥
प्रत्यहं पूजयेद्देवीं शाक्तैः सङ्गस्तथान्वहम् ।
देवताञ्चिन्तयेच्छक्तिं तां पुमान् स्वयमेव हि ॥११८॥
एवम्भावनया युक्तः शाक्तैः सङ्गं समाचरेत् ।
प्राणस्यायमनाद्वापि भेषजान् मन्त्रतस्तथा ॥११९॥
संस्तभ्य शुक्रं प्रजपेद्यावत्स्खलति पीङ्गना ।
शक्त्यग्नौ तद्दशांशेन स्खलनं होम एव तत् ॥१२०॥
पुना रतं समारभ्य स्खलिताभ्यां च तर्पणम् ।
पुना रतान् मार्जनञ्च एतदष्टदिनैश्चरेत् ॥१२१॥

सम्भोज्याः शक्तयः पञ्च नवमे तु दिने तथा।
एवं कृते विधाने च देवता वरदा भवेत् ॥१२२॥

मद्यपान से भ्रष्ट विप्र के उद्धार का उपाय—मद्यपायी विप्र को वैदिक कर्मों का त्याग कर देना चाहिये, उसे तुलसी का स्पर्श नहीं करना चाहिये। कौल मार्गानुयायी चाण्डाल अथवा तुर्क से ही संगति करनी चाहिये, किसी विप्र की संगति कदापि नहीं करनी चाहिये। शाक्तों के साथ प्रतिदिन देवी का पूजन करना चाहिये। उस शक्ति को देवता-स्वरूप एवं स्वयं को पुरुषस्वरूप मानना चाहिये। इस भावना से युक्त होकर शक्ति के साथ समागम करना चाहिये। अथवा प्राण को संयमित करके एवं मन्त्र तथा भेषजों के द्वारा शुक्र को स्तम्भित करके जबतक शक्ति स्खलित न हो जाय तबतक मन्त्रजप करना चाहिये। शक्ति की अग्नि में उसका दशांश स्खलन ही होम होता है। पुन: मैथुन प्रारम्भ करने के बाद दोनों के स्खलन अर्थात् वीर्यपात को तर्पण समझना चाहिये। तत्पश्चात् पुन: मैथुन करने के बाद दोनों के वीर्यपात को मार्जन मानना चाहिये। इसी प्रकार आठ दिनों तक करने के पश्चात् नवें दिन पाँच शक्तियों को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार का विधान करने से देवता वरदायिनी होती है।

रौहितकैस्तु तृप्तिः स्याद्वर्षं मासं च माद्गुरैः।
त्रिरात्रं तिमिभिस्तृप्तिः शृङ्ग्या वापि दिनद्वयम् ॥१२३॥
भागाष्टकं माषपिष्टं षड्भागऽजपलस्य च।
सुरस्य च सुपक्वस्य ग्राह्यं भागचतुष्टयम् ॥१२४॥
भागद्वयं तण्डुलानां मेथिकाहिंगुजीरकम्।
लवणं च तथा योग्यं सुरया मर्दितं दृढम् ॥१२५॥
चक्रीकृतं नागवल्लीदलैश्च परिवेष्टितम्।
जलयन्त्रे विपक्वं तच्छक्तिमुद्रेयमीरिता ॥१२६॥
कालखण्डं कर्करस्य चव्यं यन्त्रविपाचितम्।
माषाढकीमसूरैश्च चणकान्नैः समन्वितम् ॥१२७॥
समभागेन चूर्णेन तच्च हिंग्वादिभिर्युतम्।
वटकाः कटुतैलेन पक्वाः स्यान्मुद्रिका परा ॥१२८॥
सर्वासामेव मुद्राणां करणं तु जले स्थले।
सुरा देयाथ वा मद्यमासवं वा न चेतरत् ॥१२९॥

रोहू मछली से एक वर्ष में एवं मांगुर मछली से एक मास में देवी की तृप्ति होती है। तिमिंगल मछली से देवी तीन रात्रियों में तृप्ति प्राप्त करती है एवं शृङ्गी मछली

से दो दिनों में ही तृप्त हो जाती है। आठ भाग उरद का पिष्ट, छः भाग बकरे का मांस, एक चौथाई भाग पक्व मांस, दो भाग चावल तथा मेथी, हींग, जीरा एवं नमक को आवश्यकतानुसार लेकर सबको सुरा के द्वारा दृढ़ता-पूर्वक मिलाकर चक्राकार बनाकर पान के पत्तों से वेष्टित करके जलयन्त्र में पाक करना ही शक्तिमुद्रा कही गई है।

यन्त्र में पाक किये गये चर्वण-योग्य यकृत् एवं खोपड़ी की हड्डी के टुकड़े को उड़द, अरहर, मसूर एवं चना के समभाग चूर्ण से समन्वित करके उसे हींग आदि से युक्त कर सरसो तेल में वटक (बड़ा) का पाक करना सर्वश्रेष्ठ मुद्रा होती है। सभी मुद्राओं को जल अथवा स्थल में बनाना चाहिये। इसके साथ सुरा, मद्य अथवा आसव प्रदान करना चाहिये; अन्य कुछ नहीं देना चाहिये।।१२३-१२९।।

गोधूमचूर्णं मांसं च पक्वं सम्मेलयेद्दृढम्।
दिनत्रयं जले स्थाप्यं यावदम्लं प्रजायते ।।१३०।।
सूक्ष्मं मत्स्यं माषपिष्टं मसूराणां च चूर्णकम्।
गोधूमशष्कुलीमध्ये दत्त्वाज्ये परिपाचयेत्।
इयं तु परमा मुद्रा शक्तीनामतितृप्तिदा ।।१३१।।
धारिका पूरिका चैव वेष्टनी पूर्णपूरिका।
दक्षमार्गस्थशक्तीनां मुद्रिकाः परिकीर्तिताः ।।१३२।।
सम्यक्सुपक्वं मांसं च तथा मत्स्यभवं पलम्।
स्विन्नेन हरिमन्थानं द्विदलेन च मेलयेत् ।।१३३।।
सम्यक्पिष्ट्वा कटाहे तद्धृतेन परिपाचयेत्।
समं च समितं दत्त्वा मरिचानि च पत्रजम् ।।१३४।।
लवङ्गं चापि क्षुद्रैलां जातीं कङ्कोलकं विधुम्।
यथोचितं तत्र दत्त्वा मोदकान् कारयेद्दृढान्।
वाममार्गगणेशानां मुद्रा परमतोषकृत् ।।१३५।।
माषान् मकुष्ठांश्चणकान् मुद्गाढकपरं समम्।
सम्यक्पिष्ट्वा निबद्धं च दधि दत्त्वा विलोडितम् ।।१३६।।
सूक्ष्मास्य तु वटी बद्धा पङ्क्तिता सितया तथा।
एलादिकसुगन्धैश्चोद्धूलिका मुद्रिका मता ।।१३७।।
सम्यक्स्विन्नस्य मांसस्य राजिकावत्कृतस्य च।
शुष्कस्य भानुकिरणैराज्ये पक्वस्य षड्गुणे ।।१३८।।
दुग्धं दत्त्वा पचेत्सम्यग्यावद्धवति पिण्डितम्।

समिता च समां दत्त्वा कर्पूरादि यथारुचि।
मुद्रेयं गणनाथस्य प्रिया तोषकरी सदा॥१३९॥
सम्यक्तित्तिरिमांसं च जलयन्त्रेण पाचयेत्।
घृतसम्भर्जितं तेन तुल्यं चणकचूर्णकम्॥१४०॥
सम्मेल्य भर्जयित्वा च घृते सम्यग्विपाचयेत्।
सितया मुद्रिका चेयं गणेशानां प्रियङ्करा॥१४१॥
हरिमत्स्यकबिन्दूनां मुद्गानां चूर्णकस्य च।
तथा गोधूमचूर्णानां मुद्गचूर्णस्य लड्डुकाः।
दक्षिणानां गणेशस्य प्रीतिदा मुद्रिका मता॥१४२॥

गेहूँ का आटा और मांस का पाक करके उन्हें दृढ़ता-पूर्वक मिलाकर उसे तीन दिनों तक अथवा जबतक वह खट्टा न हो जाय तबतक जल में रखना चाहिये। छोटी मछली, उडदपिष्ट एवं मसूरचूर्ण को गेहूँ के आटे से बनी शष्कुली (पूड़ी) के मध्य में रखकर गोघृत में पाक करना चाहिये। यह सर्वश्रेष्ठ मुद्रा शक्तियों को अत्यन्त तृप्ति प्रदान करने वाली होती है। भरवाँ कचौड़ी एवं वेष्टनी पूड़ी दक्षिणमार्गस्थ शक्तियों की मुद्रा कही गई है।

सम्यक् रूप से सुपक्व मांस और मछली की लुगदी को मथानी से मथकर दाल में मिलाकर उसे अच्छी तरह पीसकर कड़ाही में घी डालकर पाक करने के उपरान्त समान भाग बेसन मिलाकर उसमें यथोचित मात्रा में मरिच, तेजपात, लवङ्ग, छोटी इलायची, जायफल, कंकोल, कपूर मिलाकर दृढ़ लड्डू का निर्माण करना चाहिये। गणेश की वाममार्गी साधना में यह मुद्रा गणेश को अतिशय सन्तुष्टि प्रदान करने वाली होती है।

उड़द, मोठ, चना, मूंग एवं अरहर को बराबर-बराबर लेकर अच्छी तरह पीसकर उसमें दही मिलाकर अच्छी तरह फेंटकर छोटी-छोटी वटिका बनाकर उसे मिश्री की चासनी में लपेटकर उसमें इलायची आदि सुगन्धित चूर्ण मिलाने से वह श्रेष्ठ मुद्रा होती है।

सम्यक् रूप से स्विन्न मांस को राई के समान बनाकर उसे सूर्य के धूप में सुखाकर छ:गुणे गाय के घी में पाक करने के बाद उसमें दूध डालकर तब तक पाक करना चाहिये, जबतक कि वह पिण्ड़-स्वरूप न हो जाय। तदनन्तर समान भाग आटा मिलाकर यथेच्छ कर्पूरादि मिलाने से बनी यह मुद्रा गणेश को सदैव सन्तुष्टि प्रदान करने वाली होती है।

तित्तिर के मांस को जलयन्त्र में सम्यक् रूप से पाक करने के बाद उसे घृत में भूनकर उसमें बराबर मात्रा में चने का बेसन मिलाकर भूँजने के पश्चात् पुनः घृत में पाक करने के उपरान्त मिश्री मिलाने से बनी मुद्रा गणेश को अत्यन्त प्रिय है।

हरिमत्स्य के छोटे-छोटे टुकड़ों में मूँग एवं गेहूँ का चूर्ण मिलाकर बनाया गया लड्डू दक्षिणमार्गियों के गणेश को अतिशय प्रसन्न करने वाली मुद्रा होती है।

अब्राह्मणनराणान्तु मांसं सर्वोत्तमं मतम्।
मृगाणां च तथा प्रोक्तं तित्तिरादिकपक्षिणाम्।
मांसं तृप्तिकरं ज्ञेयं त्र्यहं कालीयकस्य तु ॥१४३॥
दिनाष्टकं यथान्यायं यस्मिन्देशे तु यद्भवेत्।
खाद्यमांसं दैवतायै सम्यक्तच्च निवेदयेत् ॥१४४॥
पूजायन्त्रं दक्षमार्गे प्रोक्तं गन्धाष्टकेन तत्।
लिखेद्वा केशरहिमरोचनाभिः समालिखेत् ॥१४५॥
वाममार्गी लिखेदाद्यपुष्पेण यदि यन्त्रकम्।
षण्मासपूजनात्तस्य त्वरितं सिद्धिमाप्नुयात् ॥१४६॥
युवत्याश्च प्रसूताया अभावे गृह्यते रजः।
तदभावे तरुण्यास्तु नीरोगाया रजो मतम् ॥१४७॥
तदभावे च कुसुमं ग्राह्यञ्चैवापराजितम्।
तस्योर्ध्वभागे निक्षिप्य घर्षितं रक्तचन्दनम् ॥१४८॥
तदा गणं मूलमार्गात्तेन यन्त्रं समालिखेत्।
तदभावे तु सुरया घृतरक्तकचन्दनैः ॥१४९॥
यथोक्तं संलिखेद्यन्त्रं तुष्टा भवति देवता।
नवमेऽत्र प्रकाशेऽस्ति वाममार्गे सुरोत्तमाः ॥१५०॥

ब्राह्मणेतर व्यक्तियों के लिये मृग एवं तित्तिर आदि पक्षियों का मांस सर्वोत्तम कहा गया है। यह तीन दिनों तक तृप्ति प्रदान करने वाला होता है। क्रौञ्च पक्षी का मांस आठ दिनों तक तृप्ति प्रदान करने वाला होता है। जिस देश में जो भी भक्षणयोग्य मांस होता है, उसे ही देवता को समर्पित करना चाहिये।

दक्षिणमार्ग में पूजनयन्त्र को गन्धाष्टक अथवा केशर एवं गोरोचन से लिखना चाहिये। वाममार्गी कुमारी कन्या के प्रथम रज से यन्त्र का लेखन करके यदि निरन्तर छः मास तक उसका पूजन करता है तो उसे शीघ्र ही सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है।

कुमारी कन्या के प्रथम रज के अभाव में प्रसूता युवती का और उसके भी अभाव

में रोग-रहित तरुणी के रज का यन्त्रलेखन-हेतु ग्रहण करना चाहिये। यदि वह भी उपलब्ध न हो तो अपराजिता पुष्प के ऊपरी भाग (पराग) में घिसा हुआ रक्तचन्दन मिलाकर उसी से गणेश के मूल मार्ग के अनुसार यन्त्र का लेखन करना चाहिये। उसके अभाव में सुरा, घृत और रक्तचन्दन से यथोक्त यन्त्र का लेखन करने से देवी प्रसन्न होती है। हे सुरोत्तमों! इस प्रकार वाममार्ग के नव मुद्राओं को यहाँ निरूपित किया गया है।।१४३-१५०।।

वाममार्गे प्रवृत्तस्तु पूजालोपं करोति चेत्।
नित्यं न कुरुते तस्य देवतातिबुभुक्षिता।
सन्ततिञ्चापि सम्पत्तिं भक्षयेन्नात्र संशयः ।।१५१।।
प्रतिवर्षं पूजनं तु यन्त्रद्रव्योक्तवर्त्मना।
वर्षार्धार्धार्धमासेन देवतातृप्तिकारकम्।
निर्धने नैव कर्तव्यो वाममार्गः क्षयावहः ।।१५२।।
रतिमात्रे वामिनात्र कर्तव्या बुद्धिरीदृशी।
लिङ्गं शिवो भगः शक्तिर्गाङ्गं वारि जलं मतम् ।।१५३।।
इति भावनया वामी रतिं कुर्वन्विमुच्यते।
अन्यथा स्त्रीगमनेन नरके परिपच्यते ।।१५४।।

वाममार्ग में प्रवृत्त साधक यदि पूजा का लोप करता है, प्रतिदिन पूजन नहीं करता तो भूख से अत्यन्त व्याकुल उसकी देवता उसकी सन्तान के साथ-साथ सम्पत्ति का भी भक्षण कर जाती है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।

अपने मार्ग का अनुसरण करते हुये यथोक्त द्रव्यों से यन्त्र-निर्माण करके प्रतिवर्ष वर्ष में एक बार, छः मास में, तीन मास में अथवा डेढ़ मास में की गई पूजा देवता को तृप्त करने वाली होती है। धनहीनों को यह पूजा नहीं करनी चाहिये; उनके लिये वाममार्ग विनाशकारी होता है।

मैथुन के समय वाममार्गी को लिङ्ग में शिवबुद्धि, भग में शक्तिबुद्धि एवं जल में गाङ्ग (गंगाजल) बुद्धि रखनी चाहिये। इस प्रकार की भावना से रति करता हुआ वाममार्गी मुक्त हो जाता है; अन्यथा स्त्री-गमन के फलस्वरूप उसे नरक-भोग करना पड़ता है।।१५१-१५४।।

जीवस्य हनने पापं वामिनां तन्न विद्यते।
यदीदृशी तदा बुद्धिर्नो चेन्निरयमाप्नुयात् ।।१५५।।
अवश्यमेव कर्तव्यं मृत्युरोगागतेन च।
तस्मादस्य पशोः पापक्षयार्थं गमनाय च ।।१५६।।

सुरलोके घातयामि तत्सुखस्यापि सिद्धये।
देवतापरलाभेन तमो हन हनाम्यहम् ॥१५७॥
इत्थं विचार्य यो हन्यात्तस्य तुष्यति देवता।
पूर्वजन्मनि यैर्वामिभिः कृतं यदुपासनम् ॥१५८॥
सिद्ध्यन्ति ते तु पशवो बलियोग्या भवन्ति हि।
देवतासन्निधौ त्यक्त्वा प्राणान्यान्ति सुरालयम् ॥१५९॥

जीव-वध करना पाप है; लेकिन वाममार्गियों को वह पाप नहीं लगता। इस प्रकार की बुद्धि जिसकी नहीं होती, वह नरकगामी होता है। आये हुये मृत्युरूपी रोग वाले का अवश्य ही वध करना चाहिये। इसलिये इस पशु के पापों का नाश करने के लिये एवं देवलोक में जाने के लिये तथा उसे सुख की प्राप्ति कराने के लिये मैं इसका वध करता हूँ; परदेवता की प्राप्ति के लिये मैं अन्धकार का वध करता हूँ—इस प्रकार का विचार करके जो जीववध करता है, उससे देवता प्रसन्न होते हैं।

पूर्वजन्म में वाममार्गी के द्वारा जो उपासना की गई होती है, वही बलिपशु के रूप में उसे प्राप्त होते हैं। वे बलिपशु देवता के सान्निध्य में प्राण का त्याग करके देवलोक को प्रस्थान कर जाते हैं।।१५५-१५९।।

वामिना तु सदा कार्या सर्वासु प्रमदास्वपि।
देवीबुद्धिः कठोरं वाऽप्रियं नैव सुसंवदेत् ॥१६०॥
आत्मजाया तथा नार्यो यक्षिणीप्रमुखाः पराः।
वामिना ताश्च भोक्तव्या एष धर्मः सनातनः ॥१६१॥
उत्तरायां नैव कोऽपि पातं वीर्यस्य कारयेत्।
चाण्डालीनामपि स्त्रीणां स्पर्शदोषं न मानयेत् ॥१६२॥
रजस्वलाभगं दृष्ट्वा कुर्यादेकां पुरस्क्रियाम्।
केवलं सुरया होमस्तत्प्रत्यक्षं समाचरेत् ॥१६३॥
उत्तिष्ठति तदा कुण्डाद्देवतार्धाङ्गदर्शनी।
ब्रूयाद्वरं गृहाणेति मनोऽभीष्टन्तु योऽर्चयेत् ॥१६४॥
श्मशाने वा शून्यगेहे चैत्याधस्ताच्छवोपरि।
मुण्डोपर्यथ वा शौचस्थाने वा शून्यमन्दिरे।
सुरास्थाने प्रकर्तव्यं तत्र तिष्ठन्ति देवताः ॥१६५॥

वाममार्गियों को सभी प्रमदाओं में देवीबुद्धि रखनी चाहिये। उनसे कभी भी कठोर अथवा अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये। अपनी पत्नी हो, दूसरे की स्त्री हो अथवा

श्रेष्ठ यक्षिणियाँ हों; वाममार्गियों को उन सबका भोग करना चाहिये; यही सनातन धर्म है। तीनों उत्तरा नक्षत्रों में किसी को भी वीर्यपात नहीं करना चाहिये। चाण्डालिनी स्त्रियों के स्पर्श को भी दोष नहीं मानना चाहिये।

रजस्वला के भग को देखते हुये एक पुरश्चरण करना चाहिये। उसके पश्चात् केवल सुरा के हवन से वह देवी प्रत्यक्ष होती है। उस समय अर्द्धाङ्ग-दर्शनी देवता कुण्ड से ऊपर उठती है और कहती है कि 'वर माँगो; जिस कामना से अर्चन करते हो, उसे ग्रहण करो'। श्मशान, जनशून्य गृह, मठ के नीचे, शव के ऊपर, मुण्ड के ऊपर, शौचस्थान में, निर्जन देवालय में अथवा सुरास्थान (मदिरालय) में इस क्रिया को करना चाहिये; क्योंकि वहाँ देवता का वास होता है।।१६०-१६५।।

शालग्रामो नार्चनीयस्तुलसीं नैव संस्पृशेत्।
तीर्थयात्रां न कुर्वीत गङ्गास्नानं न चाचरेत्।।१६६।।
स्नानाभावे जपं कुर्यात्प्रथमर्त्तुसमन्वितम्।
आसनाधोऽम्बरं कृत्वा जपन्सिद्धिमवाप्नुयात्।।१६७।।
प्रायशो वाममार्गे तु सिद्धमन्त्रो यदा गुरुः।
तदैव जायते सिद्धिरन्यथा प्रेतवद्भवेत्।।१६८।।

वाममार्गी को शालग्राम का पूजन, तुलसी का स्पर्श, तीर्थयात्रा एवं गंगास्नान नहीं करना चाहिये। विना स्नान किये ही प्रथम बार रजस्वला हुई कन्या को आसन पर नग्नावस्था में बैठाकर जप करता हुआ वाममार्गी साधक सिद्धि प्राप्त करता है। वाममार्ग में प्रायः मन्त्रसिद्ध गुरु के रहने पर ही साधक को सिद्धि की प्राप्ति होती है; अन्यथा साधक प्रेत के समान हो जाता है।।१६६-१६८।।

वाममार्गे द्रुतं सिद्धिः कर्मणा येन जायते।
तदहं ते प्रवक्ष्यामि सूक्ष्मसाधनमद्भुतम्।।१६९।।

वाममार्ग में जिस कर्म के करने पर शीघ्र सिद्धि की प्राप्ति होती है, उस अद्भुत सूक्ष्म साधन को अब मैं तुमसे कहता हूँ।।१६९।।

अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां कृष्णायां भौमवासरे।
गृहीत्वा नृकपालन्तु मद्यं मांसं तथौदनम्।
कुल्माषोन्मिश्रितं कृत्वा गच्छेदश्वत्थभूमिकाम्।।१७०।।
एकान्ते निर्जने तस्य तले संलिप्य भूमिकाम्।
दण्डमात्रानष्टदिक्षु कीलान्मूलेन पूरयेत्।।१७१।।

अष्टोत्तरसहस्रेण सप्ततन्तुकदोरकम्।
निबध्नीयात्तत्र पूजां देवतायाः समाचरेत् ॥१७२॥
देवीं तु हृदि संस्थाप्य तस्मिन् स्थाने तु दीपकम्।
कुर्य्याच्चैरण्डतैलेनाभावे कापिलहव्यकैः ॥१७३॥
तदभावे तु तैलेन कुडवप्रमितेन च।
दीपं कुर्यादष्टशतसूत्राणां वर्त्तिका मता ॥१७४॥

कृष्णपक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी को यदि मंगलवार हो तो वाममार्गी साधक को नरकपाल के साथ-साथ मद्य, मांस, भात एवं उड़द के मिश्रण को लेकर एकान्त एवं निर्जन स्थान में अश्वत्थ (पीपल) के पास जाकर उसके नीचे की भूमि को अच्छी तरह लीपकर उसकी आठो दिशाओं में चार-चार हाथ लम्बे कीलों को मूल मन्त्र के द्वारा गाड़ने के बाद सात तन्तुओं वाले रस्सी को मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके उक्त आठो कीलों में बाँधने के पश्चात् देवता की पूजा आरम्भ करनी चाहिये।

एतदर्थ अपने हृदय में देवी को स्थापित करने के बाद उस स्थान पर एक कुड़व के बराबर एरण्ड (रेड़ी) के तेल से, उसके न मिलने पर कपिला गाय के घृत से और उसके भी उपलब्ध न होने पर सरसो तेल से दीपक जलाना चाहिये। उस दीपक की बत्ती अष्टगुणित सूत्र से निर्मित होनी चाहिये।।१७०-१७४।।

तस्योपरि कपालं तत्कज्जलार्थं निवेशयेत्।
दीपं दृष्ट्वा जपेन्मन्त्रं नान्यतस्तु विलोकयेत् ॥१७५॥
अर्धे प्रज्वलिते तैले भूतप्रेतपिशाचकाः।
नानारूपा भिन्नशब्दाः साधकं भीषयन्ति ते ॥१७६॥
न भेतव्यं तदन्नं तुं वामहस्तेन निःक्षिपेत्।
तेषामग्रे नान्यदृष्टिः प्रपश्येद्दीपमेव हि ॥१७७॥
किञ्चिच्छेषे दीपतैले देवी सा वरदा भवेत्।
तस्यै तं च बलिन्दत्त्वा स्तुत्वा संयाचयेद्वरम् ॥१७८॥
पूर्वकर्मविपाकेन यदि नायाति देवता।
दीपान्ते कज्जलं ग्राह्यं तत्र देवीं प्रपूज्य च ॥१७९॥
आनयेत्तद्गृहे सिद्धं दत्त्वाक्ष्णोः स्याज्जगद्वशम्।
दत्त्वाक्ष्णोः कज्जलं तच्च प्रयोगानाचरेत्ततः ॥१८०॥
सर्व एव प्रसिद्ध्यन्ति लोलुपेतिगुरौ सति।
रक्षयेदञ्जनं सम्यङ् नो चेद्भवति भैरवः ॥१८१॥

उस दीपक के ऊपर काजल बनाने के लिये नरकपाल को रखने के बाद दीपक के ऊपर दृष्टि को स्थिर करके मन्त्रजप करना चाहिये। मन्त्रजप के समय किसी दूसरी ओर नहीं देखना चाहिये। उस दीपक के आधे तेल के जल जाने पर नाना प्रकार के शब्द करते हुये भूत, प्रेत, पिशाच वहाँ आकर साधक को भयभीत करते हैं। उस समय साधक को भयभीत नहीं होना चाहिये; अपितु दृष्टि को दीपक पर लगाये हुये ही अपने साथ लाये हुये मिश्रित अन्न को बाँयें हाथ से उनके आगे छिड़क देना चाहिये। दीपक में स्वल्प मात्रा में तेल शेष रहने पर वह देवी प्रत्यक्ष होकर वर प्रदान करने-हेतु उद्यत होती है। तब उसे बलि प्रदान करने के उपरान्त स्तुति करके उससे वर की याचना करनी चाहिये। पूर्वजन्म के कर्मविपाक (कर्मफल) के कारण यदि देवता प्रकट नहीं होती, तो उस स्थिति में दीपक के बुझ जाने पर काजल को निकालकर वहीं पर देवी का पूजन करने के पश्चात् उस काजल को घर ले आना चाहिये। उस सिद्ध काजल को आँखों में लगाने से सम्पूर्ण संसार वशीभूत हो जाता है। उस सिद्ध काजल को आँखों में लगाकर प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये। उस काजल से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। गुरु के उस काजल के प्रति लुब्ध होने पर उस अञ्जन की सम्यक् रूप से रक्षा करनी चाहिये; नहीं तो साधक भैरव-सदृश हो जाता है।।१७५-१८१।।

इत्येतद्वो निगदितं गणेशचरितं महत्।
तद्ब्रुवन्तु सुराः सर्वे वक्तव्यं किमतः परम्॥१८२॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते उत्तराम्नायगण-पतिमन्त्रकथनं नाम विंशतितमः प्रकाशः॥२०॥

●

इस प्रकार महान् गणेशचरित को मैंने आप सबसे कहा। इसलिये हे देवताओं! आप सब बतायें कि इसके बाद क्या कहा जाय।।१८२।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत 'उत्तराम्नायगणपतिमन्त्रकथन'-नामक विंशतितम प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

एकविंशतितमः प्रकाशः

(सूर्यमन्त्रकथनम्)

दक्षिणाम्नायोक्तभास्करमन्त्रः

श्रीदेव्युवाच

भगवन्देवदेवेश गणेशस्य मया श्रुताः ।
सरहस्या महामन्त्राः कलौ सिद्धिप्रदायकाः ॥१॥
अतः परं देववरः कथं पूज्यो दिवाकरः ।
ब्रूहि तस्य च के मन्त्राः केष्वाम्नायेषु कीर्तिताः ॥२॥

दक्षिणाम्नाय में कथित सूर्यमन्त्र—श्रीदेवी ने कहा कि हे भगवन्! हे देवदेवेश! कलियुग में सिद्धि प्रदान करने वाले गणेश के सर्वश्रेष्ठ मन्त्रों का रहस्य-सहित मैंने श्रवण किया। अब इसके बाद देवों में श्रेष्ठ दिवाकर किस प्रकार पूज्य हैं और उनके कौन मन्त्र किस आम्नाय में पठित हैं, इसे आप कहिये।।१-२।।

श्रीशिव उवाच

एक एवास्य चाम्नायो दक्षिणः परिकीर्तितः ।
यथायं पावनं विप्रं स्वयमेव करैः स्पृशेत् ॥३॥
उपासना तथैतस्य स्वधर्माचारपूर्विका ।
चतुर्युगेषु प्रत्यक्षो देवोऽयं सर्वसम्मतः ॥४॥
सर्वेषामेव देवानां नेत्रभूतो जगत्पतिः ।
तस्य मन्त्रान् प्रवक्ष्यामि सावधाना भवाम्बिके ॥५॥
ॐ घृणिः सूर्य आदित्यो मन्त्रश्चाष्टाक्षरो मतः ।
देवभागो मुनिश्छन्दो गायत्री देवता रविः ॥६॥

श्रीशिवजी ने कहा—एकमात्र दक्षिणाम्नाय ही इस सूर्यदेव का आम्नाय कहा गया है। जिस प्रकार ये सूर्यदेव स्वयं अपनी किरणों से पवित्र विप्र का स्पर्श करते हैं, उसी प्रकार इनकी उपासना भी अपने धर्म एवं आचारपूर्वक करनी चाहिये। यह सर्वसम्मत तथ्य है कि ये देवता चारो युगों में प्रत्यक्ष रहते हैं। संसार के स्वामी सूर्यदेव सभी

देवताओं के चक्षुस्वरूप हैं। हे अम्बिके! सावधान हो जाओ; अब उनके मन्त्रों को कहता हूँ। 'ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः' यह आठ अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। इसके ऋषि देवभाग, छन्द गायत्री और देवता सूर्य कहे गये हैं।।३-६।।

तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहेति च दशाक्षरः।
हृन्मन्त्रः सत्यपूर्वोऽयं ब्रह्मपूर्वः शिरोमनुः ॥७॥
विष्णुपूर्वः शिखामन्त्रो वर्म्माणू रुद्रपूर्वकः।
अग्निपूर्वो नेत्रमनुरस्त्रं सर्वपदैर्भवेत् ॥८॥
विधायैवं षडङ्गानि न्यसेन्मूर्तीर्यथाक्रमम्।
मस्तकाननहृद्गुह्यपाददेशेषु देशिकः ॥९॥
पञ्चह्रस्वैः सहादित्यो रविर्भानुश्च भास्करः।
सूर्यस्ततश्च मन्त्रार्णान् प्रणवाद्यान्यसेद् बुधः ॥१०॥

'तेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा' यह दश अक्षरों वाला सूर्यमन्त्र है। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—सत्यतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा हृदयाय नमः, ब्रह्मतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिरसे स्वाहा, विष्णुतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा शिखायै वषट्, रुद्रतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा कवचाय हुम्, अग्नितेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, सर्वतेजोज्वालामणे हुं फट् स्वाहा अस्त्राय फट्।

इस प्रकार षडङ्गन्यास करके विद्वान् साधक को मस्तक, मुख, हृदय, गुह्य एवं पादद्वय में क्रमशः आदित्य, रवि, भानु, भास्कर एवं सूर्य का आदि में प्रणव एवं अन्त में नमः लगाकर इस प्रकार मूर्तिन्यास करना चाहिये—ॐ आदित्याय नमः मस्तके एं रवये नमः मुखे, उं भानवे नमः हृदये, इं भास्कराय नमः लिङ्गे, ॐ अं सूर्याय नमः पादयोः। तत्पश्चात् इस प्रकार मन्त्रवर्णन्यास करना चाहिये—ॐ घृ नमः शीर्षेणि, ॐ णिः नमः मुखे, ॐ सू नमः कण्ठे, ॐ र्य्यः नमः हृदये, ॐ आ नमः कुक्षौ, ॐ दि नमः लिङ्गे, ॐ त्यः नमः पादयोः।।७-१०।।

ध्यायेत्ततः कुण्डलिनं शतपत्रलसत्करम्।
पद्मे चैव समासीनं वरकेयूरभूषणम् ॥११॥
त्रिनेत्रं रक्तवर्णञ्च सुप्रसन्नं दिवाकरम्।
पूजयित्वा योगपीठं तत्पीठे चार्चयेद्रविम् ॥१२॥

तदनन्तर कुण्डल धारण किये हुये, शतपत्र से सुशोभित हाथों वाले, कमल पर आसीन, श्रेष्ठ केयूररूपी आभूषण धारण किये हुये, तीन नेत्रों वाले, रक्त वर्ण वाले, परम प्रसन्न दिवाकर का ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् योगपीठ का पूजन करने के उपरान्त उसी पर सूर्य का पूजन करना चाहिये।।११-१२।।

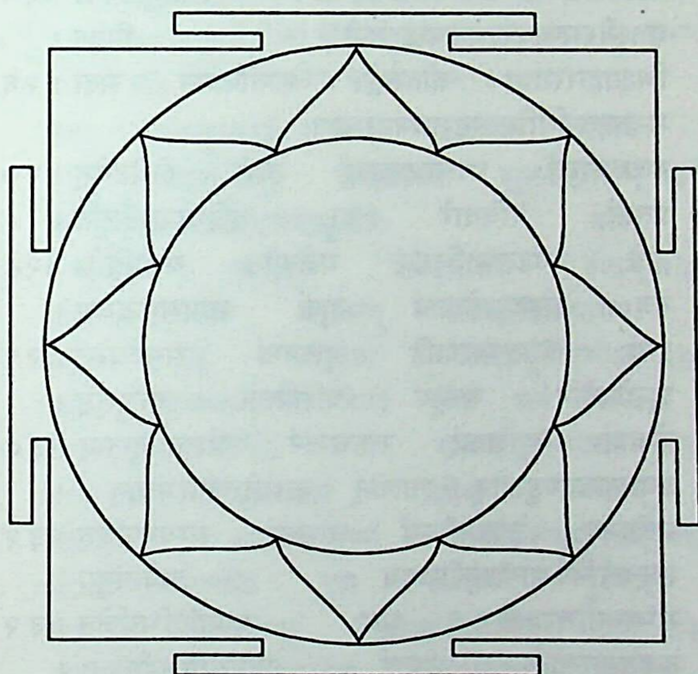
धर्मादीनां स्थले तत्र यजेत्कोणचतुष्टये।
ईशानान्मध्यपर्यन्तं समाराध्यं प्रभूतकम् ॥१३॥
विमलञ्च तथा सारं परमं सुखमेव च।
तद्बाह्येऽष्टदलं कृत्वा दलमूलेषु चार्चयेत् ॥१४॥
पूर्वादिषु तथा मध्ये दीप्ता सूक्ष्मा जया तथा।
भद्रा विभूतिर्विमला ह्यमोघा विद्युता तथा ॥१५॥
सर्वतोमुखिका चैता अग्निवर्णाः सुभूषिताः।
आसां बीजानि रांरींरूंरैंरोंरौं तु क्रमेण च ॥१६॥
रंरश्च नवपीठाणुर्ब्रह्मविष्णुशिवात्मने।
सौराय योगपीठाय हृदन्तोऽष्टादशाक्षरः ॥१७॥

पीठ के चारो कोणों में धर्मादि के स्थान में ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य और मध्य में क्रमशः प्रभूतक, विमल, सार, परम और सुख का पूजन करने के बाद उसके बाहर अष्टदल बनाकर पूर्व से प्रारम्भ करके मध्य तक नौ पीठशक्तियों का पूजन करना चाहिये। ये शक्तियाँ हैं—दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी। अग्नि के समान वर्ण वाली ये सभी शक्तियाँ सम्यक् रूप से आभूषणों से विभूषित हैं। इन शक्तियों के बीज क्रमशः इस प्रकार हैं—रां रीं रूं रैं रों रौं रं और रः। अठारह अक्षरों का इनका पीठपूजन मन्त्र है—ब्रह्मविष्णुशिवात्मने सौराय योगपीठाय नमः।।१३-१७।।

अनेन पीठं सम्पूज्य खखोल्कायाग्निगेहिनीम्।
मूर्तिं च कल्पयामीति चोक्त्वा मूर्तिं प्रकल्पयेत् ॥१८॥
तस्यामावाह्य देवेशं तत्र सूर्यं समर्चयेत्।
तद्बाह्येऽष्टदलं कृत्वा दिग्दलेषु यजेदिमान् ॥१९॥
आदित्यञ्च रविं भानुं भास्करं सूर्यमेव च।
आद्यार्णबीजा ह्न्ङेऽन्ता विदिक्पत्रे यजेदिमाः ॥२०॥
उषां प्रज्ञां प्रभां सन्ध्यां ब्राह्म्यादींश्च दलाग्रतः।
सूर्यस्याग्रेऽरुणः पूज्योऽप्यथ विध्वादयो ग्रहाः ॥२१॥
तद्बाह्ये भूपुरे पूज्या लोकपालास्तदग्रतः।
तदस्त्राणि च तद्बाह्ये भास्करार्चनमीरितम् ॥२२॥
अष्टलक्षं जपित्वान्ते दुग्धवृक्षसमिद्वरैः।
जुहुयात्तत्सहस्राणि दुग्धाक्तैः साधकोत्तमः ॥२३॥

तर्पयेच्छुद्धसलिलैश्चन्द्रचन्दनवासितैः ।
स्वाभिषेकं ततः कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥२४॥
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ।

इस मन्त्र से पीठपूजन करने के बाद यन्त्र के मध्य में 'खखोल्कायाग्निगेहिनीं मूर्तिं कल्पयामि' कहकर मूर्ति की कल्पना करके उस मूर्ति में आवाहन करके देवेश सूर्य का पूजन करने के पश्चात् उसके बाहर अष्टदल कमल बनाकर पूर्वदल में आदित्य, दक्षिणदल में भानु, पश्चिमदल में भास्कर एवं उत्तरदल में सूर्य का उनके चतुर्थ्यन्त नाम के पूर्व प्रणव-सहित वर्णबीज एवं अन्त में नमः लगाकर इस प्रकार पूजन करना चाहिये—ॐ आं आदित्याय नमः आदित्यश्रीपादुकां पूजयामि, ॐ भां भानवे नमः भानुश्रीपादुकां पूजयामि, ॐ भां भास्कराय नमः भास्करश्रीपादुकां पूजयामि, ॐ सूं सूर्याय नमः सूर्यश्रीपादुकां पूजयामि।



अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य, ईशान कोण में क्रमशः उषा, प्रज्ञा, प्रभा, सन्ध्या का अर्चन करना चाहिये। इनका पूजन मन्त्र क्रमशः इस प्रकार होता है—ॐ उषायै नमः

उषाश्रीपादुकां पूजयामि, ॐ प्रज्ञायै नमः प्रज्ञाश्रीपादुकां पूजयामि, ॐ प्रभायै नमः प्रभाश्रीपादुकां पूजयामि, ॐ सन्ध्यायै नमः सन्ध्याश्रीपादुकां पूजयामि। इन आठों की पूजा दलमूल में करनी चाहिये। दलाग्र में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का यजन करना चाहिये। सूर्य के आगे मध्य में अरुण का एवं उसके आठो दिशाओं में चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु—इन आठ ग्रहों का पूजन करना चाहिये। उसके बाहर भूपुर में दश दिक्पालों तथा उनके आगे वज्रादि अस्त्रों का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् साधकश्रेष्ठ को इस मन्त्र का आठ लाख जप करने के बाद दुग्धाक्त दुग्धवृक्ष की श्रेष्ठ समिधाओं से आठ हजार हवने के उपरान्त कपूर और चन्दन से सुगन्धित शुद्ध जल द्वारा तर्पण करना चाहिये। इसके बाद स्वयं का अभिषेक (मार्जन) करने के बाद ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्रज्ञ साधक प्रयोगों को करने के योग्य हो जाता है।।१८-२४।।

रक्ताम्बरधरो रक्तमाल्यो रक्तानुलेपनः ।।२५।।
घृतक्षीरसमायुक्तगुडभक्ताशनो निशि ।
भिक्षाहारस्तथा वीतसङ्गः सन्तोषवान् सदा ।।२६।।
मन्त्रमावर्त्तयेन्नित्यमाराधनपरायणः ।
रथमभ्यर्च्य भास्वन्तञ्चार्घ्यं तस्मै निवेदयेत् ।।२७।।
प्रत्यहं रविवारे वा तद्विधानमुदीर्यते ।
अग्रे मण्डलमालिख्य यजेत्पीठं यथाविधि ।।२८।।
तत्र संस्थापयेत्पात्रं शुद्धं ताम्रसमुद्भवम् ।
रम्यं प्रस्थजलग्राहि मूलमन्त्रं समुच्चरेत् ।।२९।।
शुद्धोदकेन सम्पूर्य प्रक्षिपेत्तत्र कुङ्कुमम् ।
रोचनां राजिकां रक्तचन्दनं वंशतण्डुलान् ।।३०।।
श्यामाकतण्डुलान् शालीन् करवीरजपाभवान् ।
सञ्चिन्त्य देवतात्मैक्यं भास्करं सम्यगर्चयेत् ।।३१।।
उपचारैर्निवेद्यान्तैस्तत्पिधाय जपेन्मनुम् ।
सम्यगष्टोत्तरशतं भूयः पुष्पादिभिर्यजेत् ।।३२।।
उद्धृत्यामस्तकं पात्रं जानुस्पृष्टमहीतलः ।
दृष्टिं निधाय व्योम्न्यर्कं साङ्गं सावरणं स्मरेत् ।।३३।।

मन्त्रसिद्ध साधक को रक्त वस्त्र, रक्त माला एवं रक्त अनुलेप धारण करके दिन में दुग्ध एवं घृत-मिश्रित गुड़-भात का भोजन एवं रात्रि में भिक्षान्न का भोजन करना

चाहिये। राग-द्वेष से परे उसे सदैव सन्तुष्ट रहना चाहिये। प्रतिदिन सूर्य-पूजा में निरत रहते हुये मन्त्रजप करना चाहिये। दीप्यमान रथ का अर्चन करके सूर्यदेव के लिये अर्घ्य निवेदित करना चाहिये।

प्रतिदिन अथवा रविवार को अपने सामने मण्डल बनाकर उस पर विधिपूर्वक पीठपूजन करने के उपरान्त वहीं पर मूल मन्त्र का उच्चारण करते हुये एक किलो जल धारण करने लायक ताम्बे से निर्मित रमणीय शुद्ध पात्र को स्थापित करने के बाद उस पात्र को शुद्ध जल से पूरित करके उसमें कुमकुम, गोरोचन, राई, रक्तचन्दन, वंशलोचन, साँवाँ चावल, शालि चावल, लाल कनैल और अड़हुल का पुष्प डालना चाहिये। तत्पश्चात् देवता और स्वयं में ऐक्य का चिन्तन करते हुये सम्यक् रूप से सूर्य का पूजन करना चाहिये।

उपचारों को निवेदन करने के बाद पात्र के मुख को ढकने के बाद मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करके पुन: पुष्प आदि से पूजन करके पात्र को उठाकर मस्तक पर रखकर घुटनों के बल खड़े होकर दृष्टि को एकाग्र करके अंग एवं आवरण-सहित आकाश-स्थित सूर्य का स्मरण करना चाहिये।।२५-३३।।

ततो जपन्मूलमनुं धिया दद्याच्च भानवे।
अर्घ्यं प्रसन्नचेताः सन्दद्याच्च सुमनोञ्जलिम्।।३४।।
पुनर्नियतधीस्तावद्यावद्भानुर्निजैः करैः।
अर्घादिकं समादत्ते जपेदष्टोत्तरं शतम्।।३५।।
ततः प्रसन्नो भगवान् प्रयच्छेदिष्टमात्मनः।
अनेन तु प्रयोगेण भवेदायुर्निरुग्णता।।३६।।
वृद्धिः पुत्रकलत्राणां तेजो वीर्यं धनं यशः।
तन्मन्त्रसहिताम्भोभिः सप्तधाञ्जलिसेचनम्।।३७।।
पापान्धकारदारिद्र्यनाशनं श्रीकरं परम्।
स्थण्डिले स्थापयेत्कुम्भं तीर्थोदकसुपूरितम्।।३८।।
हिरण्यरत्नगन्धादि तत्र निक्षिप्य पूरयेत्।
देवं सपरिवारन्तु प्रागुक्तविधिना ततः।।३९।।
स्थण्डिलेऽग्निं समारोप्य कपिलापयसा चरुम्।
पचेत्तेनैव जुहुयाद् द्रव्याज्यसहितेन च।।४०।।
सहस्त्रं कृतसम्पातं शुद्धपात्रे तु कारयेत्।
ऋतुस्नातां सुनियतां पूर्वाङ्गसमुपोषिताम्।।४१।।

अष्टमे दिवसे तां तु सहस्रमभिमन्त्रितैः ।
अभिषिञ्चेत्कुम्भजलैर्दद्यात्तस्यै तु मन्त्रवित् ॥४२॥
सहस्रमन्त्रितं होमसम्पातान्तं ततो निशि ।
नरोऽपि सूर्य एवाहमिति ध्यात्वा तया सह ॥४३॥
सम्भोगमाचरेत्तेन सुपुत्रो गुणवान् भवेत् ।

इसके बाद मूल मन्त्र का जप करते हुये प्रसन्नचित्त सूर्य के लिये मनसा अर्घ्य एवं पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिये। तत्पश्चात् जबतक सूर्य अपनी किरणों से अर्घ्य को ग्रहण करें अर्थात् मध्याह्न के पूर्व तक मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। ऐसा करने से परम प्रसन्न भगवान् सूर्यदेव साधक की इच्छा को पूर्ण करते हैं। इस प्रयोग से साधक को रोगरहित आयु की प्राप्ति होने के साथ-साथ उसके पुत्र-कलत्र, तेज, बल, धन एवं यश की भी वृद्धि होती है।

प्रतिदिन उक्त सूर्यमन्त्र के सात जप से अभिमन्त्रित एक अञ्जलि जल से अभिषेक करने से पाप, अन्धकार एवं दारिद्र्य का नाश होता है तथा श्रेष्ठ लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

स्थण्डिल पर तीर्थजल से पूरित कुम्भ को स्थापित करके उसमें सोना, रत्न, गन्ध आदि का निक्षेप करने के उपरान्त पूर्वोक्त विधि से सपरिवार सूर्यदेव का ।वाहन करने के बाद स्थण्डिल पर अग्नि को आरोपण करके उसी अग्नि पर कपिला गाय के दूध में चरु का पाक करने के पश्चात् उसमें गाय का घी मिलाकर हवन करना चाहिये एवं शुद्ध पात्र में एक हजार बार घृतसम्पात करना चाहिये।

मन्त्रज्ञ साधक ऋतुस्नान के बाद पवित्र एवं निराहार स्त्री का आठवें दिन एक हजार मन्त्रजप से अभिमन्त्रित उस कुम्भजल से अभिषेक करके सम्पात घृत वाला वह पात्र उस स्त्री को प्रदान कर देना चाहिये। तदनन्तर रात्रि में सहस्र जप से अभिमन्त्रित सम्पातघृत का भक्षण की हुई उस स्त्री के साथ 'मैं सूर्य ही हूँ' इस प्रकार अपने को सूर्यस्वरूप मानकर पुरुष को सम्भोग करना चाहिये। ऐसा करने पर उन दोनों को गुणवान पुत्र की प्राप्ति होती है।।३४-४३।।

भास्करमन्त्रान्तरकथनम्

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये दिनेशस्य षडक्षरम् ॥४४॥
हंखंखः खोल्कायेति तथान्ते चाग्निगेहिनी ।
मुनिर्ब्रह्मा च गायत्रं छन्दः सवितृदैवतम् ॥४५॥
सूक्ष्मरूपायाग्निवधूर्मन्त्रेण हृदयं मतम् ।
सूक्ष्माकारायाग्निवधूरिति मन्त्रेण शीर्षकम् ॥४६॥

सूक्ष्मबालाय स्वाहेति कवचञ्च सनेत्रकम्।
सूक्ष्माकाराय हुंफडित्येवं शस्त्रं प्रकीर्तितम् ॥४७॥
मन्त्रवर्णैः षडङ्गं स्याद्ध्यानमस्योच्यतेऽधुना।
रक्तपद्मद्वयं हस्तैर्बिभ्रतञ्च वराभये ॥४८॥
बन्धूकाभं त्रिनेत्रञ्च रविं ध्यायेत्सुभूषितम्।

अन्य भास्करमन्त्र—अब सूर्य के छः अक्षरों वाले दूसरे मन्त्र को कहता हूँ। मन्त्र है—हं खं खः खोल्काय। इस षडक्षर मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' लगाने से यही मन्त्र आठ अक्षरों का हो जाता है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता सविता कहे गये हैं। इसका षडङ्ग न्यास इस प्रकार करना चाहिये—सूक्ष्मरूपाय स्वाहा हृदयाय नमः, सूक्ष्माकाराय स्वाहा शिरसे स्वाहा, सूक्ष्माकाराय स्वाहा शिखायै वषट्, सूक्ष्मबालाय स्वाहा कवचाय हुम्, सूक्ष्मबालाय स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट्, सूक्ष्माकाराय हुं फट् अस्त्राय फट्। इसके बाद मन्त्र के प्रत्येक वर्णों से भी षडङ्गन्यास करना चाहिये। अब इनका ध्यान कहता हूँ। हाथों में दो रक्तकमल, वर एवं अभय धारण किये हुये, वन्धूकपुष्प के समान कान्तिमान, तीन नेत्रों वाले, सुन्दर आभूषणों से विभूषित रवि का ध्यान करना चाहिये।।४४-४८।।

पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे देवमावाह्य मन्त्रवित् ॥४९॥
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं नियतात्मा जितेन्द्रियः।
जुहुयात्तद्दशांशेन बिल्वैरथ पलाशजैः ॥५०॥
उदुम्बरसमद्भूतैस्त्रिमध्वक्तैः समिद्वरैः ॥५१॥
तर्पणादि ततः कुर्यात्प्राक्प्रोक्तविधिना सुधीः।
अर्घादिकं च कुर्वीत पूर्ववद्वाञ्छिताप्तये ॥५२॥
एतत्संसेवनान्नृणां खेचरीसिद्धिरीरिता।
न भास्करसमः कश्चिद् भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥५३॥

मन्त्रज्ञ साधक को पूर्वोक्त पीठ पर देवता का आवाहन करके पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् व्रती जितेन्द्रिय साधक को मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त त्रिमधु-सिक्त बेल, पलाश एवं गूलर की समिधाओं से कृत जप का दशांश (दस हजार) हवन करना चाहिये। तदनन्तर विद्वान् साधक को पूर्वोक्त विधि से तर्पण आदि करना चाहिये; साथ ही अभीष्ट-प्राप्ति के लिये पूर्ववत् सूर्य को अर्घ्य आदि प्रदान करना चाहिये (अर्घ्य में जल, दुग्ध, कुशाग्र, दधि, गोघृत, चावल, सरसों एवं यव—इन आठ द्रव्यों का ग्रहण किया जाता है)।

इस मन्त्र का सेवन करने से मनुष्य को खेचरी-सिद्धि की प्राप्ति होती है। सूर्य के समान भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला अन्य कोई देवता नहीं है।।४९-५३।।

प्रणवश्च खखोल्काय मन्त्रः पञ्चाक्षरोऽस्य च।
न्यासो ध्यानं च पूजा च प्राग्वदेव समीरिता ।।५४।।
खम्बीजादिक एषोऽस्ति षडर्णः सप्तवर्णकः।
भवेत्तन्न्यासपूजादि ध्यानाद्यङ्गं षडर्णवत् ।।५५।।

सूर्य का एक और पञ्चाक्षर मन्त्र है—ॐ खखोल्काय। इस मन्त्र का भी न्यास, ध्यान और पूजन पूर्ववत् ही कहा गया है। पूर्व में 'खं' बीज लगा देने से यही मन्त्र (ॐ खं खखोल्काय) छः अक्षरों वाला तथा 'खं खः' लगा देने से (ॐ खं खः खखोल्काय) सात अक्षरों वाला हो जाता है। इन दोनों ही मन्त्रों के न्यास-पूजन-ध्यान आदि षडर्णवत् ही होते हैं।।५४-५५।।

सप्ततुरङ्गाय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि।
तन्नो रविः प्रचोदयात् ।।५६।।
इयन्तु सूर्यगायत्री जपतामिष्टदायिनी।
भग्नत्रानां राजपुत्राणां क्षत्रतेजोविधायिनी ।।५७।।
यत्पृष्ठं नारिभिर्दृष्टं स्पृष्टं नैव कदाचन।
परस्त्रीभिर्यच्छरीरं पुरश्चर्याचतुष्टयम् ।।५८।।
जातिमात्रं राजपुत्रः पुरश्चर्याप्रभावतः।
सार्वभौमत्वमाप्नोति ब्राह्मणान् प्रतिपालयेत् ।।५९।।

'सप्ततुरङ्गाय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि तन्नो रविः प्रचोदयात्' यह सूर्यगायत्री जपमात्र से ही इष्ट प्रदान करने वाली है। यह सूर्यगायत्री कवचविहीन राजपुत्रों को क्षात्र तेज प्रदान करने वाली होती है।

स्त्रियों द्वारा जिसके पृष्ठभाग का ही केवल अवलोकन किया गया हो, कभी भी दूसरी स्त्रियों के द्वारा जिसके शरीर का स्पर्श न किया गया हो, उसे इस सूर्यगायत्री का चार पुरश्चरण करना चाहिये। मात्र जाति से ही राजपुत्र कहलाने वाला मनुष्य भी इस पुरश्चरण के प्रभाव से सार्वभौमत्व प्राप्त करता है अर्थात् चक्रवर्ती राजा होता है एवं ब्राह्मणों का प्रतिपालन करता है।।५६-५९।।

ॐ ह्रींहंसश्चतुर्वर्णो मन्त्रः प्रोक्तो दिनेशितुः।
ऋषिर्ब्रह्मा च गायत्री छन्दः सूर्यश्च देवता ।।६०।।

तारादाया षडङ्गानि षड्दीर्घान्वितमायया।
देदीप्यमानरत्नौघमुकुटेन विराजितम् ॥६१॥
पाशाङ्कुशवराभीतिकरं रक्तं भजे रविम्।
नवशक्तिसमायुक्ते पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥६२॥

चार अक्षरों का सूर्यमन्त्र—'ॐ ह्रीं हें सः' यह चार अक्षरों का सूर्य का मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता सूर्य कहे गये हैं। ॐ ह्रां, ॐ ह्रीं, ॐ ह्रूं, ॐ ह्रैं, ॐ ह्रौं, ॐ ह्रः मन्त्र से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—देदीप्यमान रत्न-निर्मित मुकुट से सुशोभित तथा हाथों में पाश, अंकुश, वर एवं अभय धारण किये हुये रक्तवर्ण रवि को मैं नमन करता हूँ। ध्यान के पश्चात् पूर्वोक्त नव शक्ति-समन्वित पीठ पर देव का अर्चन करना चाहिये।।६०-६२।।

प्रकल्प्य मूर्त्तिं मूलेन तत्रावाह्य दिवाकरम्।
सम्पूज्य तस्यावरणान्यर्चयेत् क्रमशः सुधीः॥६३॥
हृल्लेखा गगना रक्ता कराली च चतुर्थिका।
महोच्छुष्मा पञ्चमी च मध्यात्पूर्वादिके यजेत् ॥६४॥
अङ्गे द्वितीयावरणं मातृकाभिस्तृतीयकम्।
सोमज्ञगुरुशुक्राश्च दिक्ष्वारशनिराहवः।
केतुर्विदिक्षु पूज्याश्च चतुर्थावरणं रवेः ॥६५॥
स्वनामाद्यक्षरं बिन्दुभूषितं प्रथमं वदेत्।
ङेऽन्तं हृदन्तं खेटस्य नामपूजामनुर्मतः ॥६६॥
पञ्चमी लोकपालैः स्यात्षष्ठी चापि तदायुधैः।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः।
ब्रह्मवृक्षसमुद्भूतैः पुष्पैस्त्रिमधुरप्लुतैः ॥६७॥
सरोजैर्वा तदा देवं तर्पयेदभिषेचयेत्।
ब्राह्मणाराधनं कुर्यात्ततः सिद्धो भवेन्मनुः।
एवं साधितमन्त्रस्तु काम्यकर्माणि साधयेत् ॥६८॥
जपेदेवं प्रतिदिनं रविवारेऽथवा सुधीः।
दद्यादर्घद्वयमपि भवेत्तस्योदितं फलम् ॥६९॥

तदनन्तर विद्वान् साधक को मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पत करना उसमें दिवाकर का आवाहन करके पूजन करने के बाद क्रमशः आवरण-पूजन करना चाहिये। प्रथम

आवरण में पूर्व से प्रारम्भ करके चारो दिशाओं में हल्लेखा, गगना, रक्ता एवं कराली का तथा मध्य में महोच्छुष्मा का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् द्वितीय आवरण में षडङ्गों का एवं तृतीय आवरण में ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का पूजन करना चाहिये। चतुर्थ आवरण में दिशाओं में चन्द्र, बुध, गुरु एवं शुक्र का तथा विदिशाओं में रवि, शनि, राहु एवं केतु का पूजन करना चाहिये। इनका पूजन मन्त्र इस प्रकार होता है— ॐ सों सोमाय नमः, ॐ मं मंगलाय नमः, ॐ बुं बुधाय नमः, ॐ गुं गुरवे नमः, ॐ शुं शुक्राय नमः, ॐ शं शनैश्चराय नमः, ॐ रां राहवे नमः, ॐ कें केतवे नमः। पञ्चम आवरण में लोकपालों का एवं षष्ठ आवरण में उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर मन्त्र का चार लाख जप करने के बाद त्रिमधु-सिक्त पलाशपुष्पों अथवा कमलपुष्पों से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। इसके बाद देवता का तर्पण एवं मार्जन करने के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार के सिद्ध मन्त्र से काम्य कर्मों का साधन करना चाहिये। अथवा जो विद्वान् साधक प्रतिदिन मन्त्र का जप करता है एवं रविवार को दो भगवान भास्कर को अर्घ्य प्रदान करता है, उसे पूर्वोक्त फल प्राप्त होते हैं।।६३-६९।।

अथ श्रेयो जनानां तु येनाऽसौ वक्ष्यते मनुः।
त्र्यक्षरोऽस्य तु ह्रांह्रींसः प्रोक्तः सर्वार्थदायकः ।।७०।।
अजोऽस्य मुनिरुद्दिष्टो गायत्री छन्द उच्यते।
देवतास्य मनोः प्रोक्तः सविता सुरपूजितः ।।७१।।
गुह्यात्पादतले यावद्गलादेर्गुह्यकं ततः।
मूर्धादिकण्ठपर्यन्तं मन्त्रार्णान् विन्यसेत्सुधीः ।।७२।।
मायाबीजेन षड्दीर्घभाजाङ्गानि प्रविन्यसेत्।
स्थितः पद्मेऽरुणे त्र्यक्षोऽरुणवर्णसुभूषणः ।।७३।।
पद्मद्वयवराभीतिहस्तश्चारुणसेवितः।
पूर्वोदिते यजेत्पीठे नवशक्तिसमन्विते ।।७४।।
षडङ्गावरणं चाद्यं प्राग्वच्चैव द्वितीयकम्।
दिक्पालैश्च तृतीयं स्याच्चतुर्थन्तु तदायुधैः ।।७५।।
ततश्च तेजश्चण्डाय निर्माल्यं विनिवेदयेत्।
जपेद् द्वादशलक्षं च तत्सहस्त्रं हुनेत्तिलैः।
घृताक्तमधुराक्तैश्च यवान्नैश्चैव तादृशैः ।।७६।।

तर्पणादि ततः कुर्यात्प्रयोगान् साधयेदथ।
दद्यात्पूर्वोदितं चार्घ्यं दिनेशाय सुसाधकः ।।७७।।
सोऽप्यस्य धनधान्यादिपुत्रपौत्रविवर्धनम्।
करोति रत्नवस्त्रादिभूषणानि विवर्धयेत् ।।७८।।

अब मनुष्यों का जिससे कल्याण होता है, उस मन्त्र को मैं कहता हूँ। भगवान् भास्कर का तीन अक्षरों का वह सर्वार्थदायक मन्त्र है—ह्रां ह्रीं सः। इस मन्त्र के ऋषि अज, छन्द गायत्री एवं देवता देववन्दित सविता कहे गये हैं। विद्वान् साधक को गुह्यस्थान से पादान्त तक 'ह्रां' का, गला से गुह्य तक 'ह्रीं' का एवं मूर्धा से कण्ठ तक 'सः' का न्यास करना चाहिये।

मायाबीज (ह्रीं) के छः दीर्घ स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से षडङ्गन्यास करने के उपरान्त रक्तपद्म पर विराजमान, तीन नेत्रों वाले, रक्त वर्ण वाले, सुन्दर आभूषणों से विभूषित, हाथों में दो कमल वर एवं अभय धारण करने वाले, रक्तवर्ण वाले आभूषणों से भूषित सूर्यदेव का ध्यान करने के बाद पूर्वोक्त नवशक्ति-समन्वित पीठ पर उनका पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर प्रथम आवरण में षडङ्ग पूजन करने के बाद द्वितीय आवरण में पूर्ववत् ब्राह्मी आदि अष्टमातृकाओं का, तृतीय आवरण में दिक्पालों का एवं चतुर्थ आवरण में उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भगवान् भास्कर के लिये निर्माल्य समर्पित करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र का बारह लाख जप करके घृताक्त तिल अथवा घृत एवं त्रिमधुराक्त यवान्न से बारह हजार हवन करना चाहिये। तदनन्ता तर्पण आदि करने के उपरान्त प्रयोगों का साधन करना चाहिये।

श्रेष्ठ साधक को प्रयोगारम्भ के पूर्व पूर्वोक्त द्रव्यों से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। ऐसा करने से साधक के धन-धान्य, पुत्र-पौत्र, रत्न, वस्त्र, आभूषण आदि की वृद्धि होती है।।७०-७८।।

अष्टपत्राम्बुजं कुर्यात्तत्र कुम्भान्नव न्यसेत्।
पत्रमध्ये कर्णिकायां तांश्च तोयेन पूरयेत् ।।७९।।
नवग्रहान् समावाह्य तेषु कुम्भेषु मन्त्रवित्।
कर्णिकाकलशं मूलमन्त्रेणैव सहस्रकम्।
प्रजप्यान्येषु तन्मन्त्राञ्छतकृत्वो जपेत्सुधीः ।।८०।।
तज्जलैरभिषिञ्चेत्तु साधको मन्त्रवित्तमः।
मुच्यते नात्र सन्देहः साधको ग्रहदोषतः ।।८१।।

रोगा नश्यन्ति सततं लक्ष्मीश्चापि स्थिरा भवेत्।
ग्रहहोमः प्रकर्तव्यो ग्रहाणां वै कृते तथा ॥८२॥
चन्द्रभान्वोश्चोपरागे निजर्क्षे वाथ मन्त्रवित्।
विग्रहादौ भये चापि घोररूपे महागदे ॥८३॥
पूर्वं मण्डलकं कृत्वा ग्रहान् सम्पूज्य तत्र च।
स्वदिक्षु चाग्नीन् संस्थाप्य जुहुयाच्च समिद्वरैः ॥८४॥
अर्कद्विजद्रुमापूराश्वत्थोदुम्बरखादिरैः।
शमीदूर्वाकुशोद्भूतैः क्रमाद्धोमः समीरितः ॥८५॥
अष्टाधिकं सहस्रञ्च हुत्वा सूर्यस्य चाहुतीः।
अन्ते चान्यव्याहृतिभिर्हुत्वा होमं समापयेत् ॥८६॥
गुरुं सन्तोष्य ऋत्विग्भ्यो यथाशक्त्या च दक्षिणाम्।
दद्याच्च भोजयेद्विप्रान् संग्रामे विजयी भवेत् ॥८७॥
रोगाः शान्तिं व्रजन्त्याशु दीर्घमायुश्च विन्दति।
कृत्याद्रोहारिकाणाञ्च शान्तिरेवाशु जायते ॥८८॥
सर्वेषाञ्च ग्रहाणाञ्च होममेकत्र भावयेत्।
धनधान्यैश्वर्यपूर्ण आयुर्दीर्घं स विन्दति।

अष्टदल कमल बनाकर उसके आठ दलों पर एक-एक और मध्य में एक—इस प्रकार कुल नव कलशों का स्थापन करके उनमें जल भरने के बाद मन्त्रज्ञ साधक को उन कलशों में नव ग्रहों का आवाहन करना चाहिये। तदनन्तर कर्णिका में स्थित कलश पर मूल मन्त्र का एक हजार जप करने के पश्चात् शेष कलशों पर भी अवशिष्ट आठ ग्रहों के मन्त्रों का एक-एक सौ जप करना चाहिये।

तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक द्वारा उन कलशों के जल से स्वयं का अभिषेक करने से वह साधक ग्रहदोषों से मुक्त हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। साथ ही साधक के समस्त रोगों का नाश होता है एवं स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। अशुभ ग्रहों की शान्ति के लिये उनका हवन भी करना चाहिये।

मन्त्रज्ञ साधक को चन्द्र-सूर्यग्रहण, अपना जन्मदिन, विवादभय और महान् रोग की स्थिति उपस्थित होने पर सर्वप्रथम मण्डल का निर्माण करके उस पर ग्रहों का पूजन करने के बाद अपनी दिशा में अग्नि स्थापित करके श्रेष्ठ समिधाओं से हवन करना चाहिये। यह हवन क्रमशः अकवन, पलाश, खैर, चिड़चिड़ा, पीपल, गूलर, शमी, दूर्वा एवं कुश से करना चाहिये।

एक हजार आठ आहुतियाँ सूर्य को प्रदान करने के बाद अन्त में व्याहृतियों (भू: भुव: स्व:) से आहुति प्रदान करके हवन का समापन करना चाहिये। इसके बाद गुरु को सर्वतोभावेन सन्तुष्ट करके ऋत्विजों को यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करने के पश्चात् विप्रों को भोजन कराने से साधक युद्ध में विजयी होता है। उसके रोगों का शीघ्र शमन होता है एवं दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। साथ ही कृत्या आदि दोषों की भी शीघ्र शान्ति होती है। समस्त ग्रहों का एकत्र हवन करने वाला साधक धन, धान्य एवं ऐश्वर्य से पूर्ण होकर दीर्घ आयु को प्राप्त करता है।।७९-८८।।

अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि संग्रामविजयाभिधम् ।।८९।।
मन्त्रं सूर्यस्य रां हुं च द्व्यक्षरोऽयं महामनुः।
ऋषिश्छन्दो देवताश्च ह्यजगायत्रभानवः।
सर्वं पूजादिकञ्चास्य श्रेयोजनकमन्त्रवत् ।।९०।।

अब संग्रामविजय-नामक अन्य मन्त्र को कहता हूँ; यह दो अक्षरों वाला सूर्य का महामन्त्र है—रां हुं। इस मन्त्र के ऋषि अज, छन्द गायत्री और देवता सूर्य कहे गये हैं। इसका पूजन आदि सबकुछ कल्याणदायक मन्त्र के समान कहे गये हैं।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हंसोऽयं द्व्यक्षरो मनुः।
ब्रह्मा मुनिः समुद्दिष्टो गायत्रं छन्द उच्यते ।।९१।।
देवी पूर्वं देवतास्य परमात्मा समीरितः।
षड्दीर्घेण सकारेण हंपूर्वेण षडङ्गकम् ।।९२।।
रक्ताब्जकाञ्चननिभं गुणं टङ्कवराभयम्।
करैर्दधानं पद्मस्थं हरं गौर्यङ्कगम्भजे ।।९३।।
पूर्वोदिते यजेत्पीठे दिक्कालादिप्रकल्पिते।
तत्र देवं यजेन्मूर्तिं मूलेनाकल्प्य मन्त्रवित् ।।९४।।
पूर्वमङ्गैर्यजेन्मन्त्री दलेषु च प्रपूजयेत्।
ऋतुं वसुं नरञ्चापि परञ्च विदिशासु च ।।९५।।
अब्जां गोजाञ्च ऋतजामद्रिजाञ्च प्रपूजयेत्।
ततो लोकेश्वरांश्चापि तदग्रे चायुधान्यपि ।।९६।।
जपेद्द्वादशलक्षञ्च तद्दशांशं तथा हुनेत्।
सर्पिरक्तेन हविषा तर्पणादि ततश्चरेत्।
पूर्वोदितेन विधिना सूर्यायार्घं निवेदयेत् ।।९७।।

अब मैं दो अक्षरों वाले 'हंस:' मन्त्र को कहता हूँ। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता परमात्मा कहे गये हैं। हं-पूर्वक छ: दीर्घ सकार से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके बाद इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—रक्तकमल एवं सुवर्ण-सदृश, हाथों में गुण टङ्क वर एवं अभय धारण करने वाले, कमल पर विराजमान, अपने अङ्क में गौरी को लिये हुये हर का मैं स्मरण करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान करने के उपरान्त मन्त्रज्ञ साधक को दिक्कालादि से प्रकल्पित पूर्वोक्त पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके देवता का यजन करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक को सर्वप्रथम यन्त्र के मध्य बिन्दु में षडङ्ग-पूजन करना चाहिये। इसके पश्चात् आठ दलों में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर, हेमन्त, वसु और नर का पूजन करने के बाद विदिशाओं में अब्जा, गोजा, ऋतजा और अद्रिजा का पूजन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आगे उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर मन्त्र का बारह लाख जप करने के बाद गोघृत एवं रक्तवर्ण वाली हवनसामग्री से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। इसके बाद तर्पण आदि करके पूर्वोक्त विधि से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।।९१-९७।।

गोमयेनोपलिप्तायां भूमावष्टदलं लिखेत्।
सूर्याष्टगन्धैरथ वा चन्दनाभ्यां मनुन्त्विमम् ।।९८।।
लिखेत्तत्कर्णिकायान्तु तस्योर्ध्वं स्थापयेद्धटम्।
तीर्थादिजलसम्पूर्णं तस्योर्ध्वं स्थापयेत्करम् ।।९९।।
दक्षिणं वामहस्तेन मूलमष्टोत्तरं शतम्।
जपेत्सुधामयन्तञ्च कलशं हृदि भावयेत् ।।१००।।
तेनाभिषिञ्चेत्साध्यन्तु जायते गतभीस्त्वसौ।
गतरोगो दीर्घजीवी विपद्बाधापरिच्युतः ।।१०१।।

गोबर से लिप्त भूमि कर सूर्याष्टक अथवा रक्त-श्वेत चन्दन से अष्टदल का निर्माण करके उसकी कर्णिका में इस मन्त्र को लिखकर उसके ऊपर तीर्थ आदि के जल से पूरित कलश को स्थापित करने के उपरान्त उस कलश पर अपना दाहिना हाथ रखकर बाँयें हाथ से मूल मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करते हुये हृदय में यह भावना करनी चाहिये कि वह कलश अमृतमय हो गया है। उस कलशजल से साध्य का अभिषेक करने पर वह साध्य भयरहित, रोगरहित, दीर्घजीवी एवं विपत्तिरूपी बाधा से रहित हो जाता है।।९८-१०१।।

चेत्स्त्री वै नित्यसौभाग्या मन्त्रयेद्दक्षिणङ्करम्।
आदौ तेन विधातव्यः करेण करकः शुभः ॥१०२॥
अष्टोत्तरसहस्त्रञ्च मन्त्रयेत्करकं पुनः।
भावयित्वा जलं तच्चामृतं तेनाभिषेचयेत्।
विषिणं निर्विषो भूयात्स्थावराज्जङ्गमादपि ॥१०३॥
महासर्पेण दष्टश्चेन्मनुना मन्त्रयेत्करम्।
विन्यस्येद्दंशिनो मूर्ध्नि मन्त्रयित्वा विषं हरेत् ॥१०४॥

साध्य यदि अक्षत सौभाग्यवती स्त्री हो तो दाहिने हाथ से मन्त्रजप करना चाहिये। सर्वप्रथम दाहिने हाथ से जलपूरित कमण्डलु को ग्रहण करके मन्त्र के एक हजार आठ जप से उसे अभिमन्त्रित करने के बाद उस कमण्डलुजल को अमृत मानकर उससे साध्य स्त्री का अभिषेक करना चाहिये।

इस अभिषेक से स्थावर अथवा जंगम विषपान किया हुआ साध्य विषरहित हो जाता है। साध्य यदि सर्पराज द्वारा डँसा गया हो तो इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से उसकी मूर्धा पर छींटा मारने से विष का प्रभाव समाप्त हो जाता है।।१०२-१०४।।

मन्त्रं सुधाकरकरशुद्धधाराप्लुतं स्मरेत्।
प्लुतञ्चामृतधाराभिर्भावयित्वा मनुञ्जपेत् ॥१०५॥
गदिनं मार्जयेत्पश्चात्क्षुद्रामयविनाशनम्।
अपस्मृतिं त्रिदोषोत्थान् रोगान् हन्यान्न संशयः ॥१०६॥
शीर्षस्थचन्द्रबिम्बं च स्मरेद्धंसमुरूपकम्।
सञ्चिन्त्य प्रजपेन्नित्यं क्षेपयेत्पलितञ्जराम् ॥१०७॥
ध्यायेन्मन्त्रादिमं वर्णं सुधाधारापरिप्लुतम्।
द्वितीयञ्चन्द्रधाराभिर्मार्जयेत्तेन मन्त्रवित् ॥१०८॥

चन्द्रमा निःसृत पवित्र अमृतधारा से अपने हाथ को प्लुत समझते हुये मन्त्र को भी उसी अमृतधारा से प्लुत जानते हुये जप करने के बाद उस अभिमन्त्रित जल से रोगी का मार्जन करना चाहिये; इससे उस रोगी की छोटी-मोटी बीमारियाँ नष्ट हो जाती हैं। यह मार्जन त्रिदोष से उत्पन्न रोगों को भी नष्ट कर देता है; इसमें कोई संशय नहीं है।

शीर्षस्थ चन्द्रबिम्ब को शिवस्वरूप जानकर प्रतिदिन मन्त्र का जप करने से जरा-पलित (बुढ़ापा) का नाश हो जाता है। मन्त्रज्ञ साधक को इस मन्त्र के प्रथम वर्ण को अमृत की धारा से परिप्लुत एवं द्वितीय वर्ण को चन्द्रधारा से आप्लावित समझते हुये उससे मार्जन करना चाहिये।।१०५-१०८।।

मार्त्तण्डभैरवस्याथ मन्त्रं वक्ष्यामि सिद्धिदम्।
हकारो रेफसंयुक्तः पकारेण समन्वितः ॥१०९॥
औकारस्वरसंयुक्तस्तलेऽब्जाकारसंयुतः।
बिन्दुयुक्तं कूटमुक्तं मार्तण्डस्य त्रिवर्णकम् ॥११०॥
पुटितं बिम्बबीजेन सर्वकामफलप्रदम्।
बिम्बबीजं दक्षमार्गे भजतां सिद्धिदायकम्।
वाममार्गेण भजतामादेश्यं किमिदं बुधैः ॥१११॥
ब्रह्मा मुनिर्निवृच्छन्दो मार्त्तण्डाख्यस्तु भैरवः।
देवतोक्तोऽथ हं बीजं बिन्दुः शक्तिः प्रकीर्तिता ॥११२॥
मूर्तयः पञ्च चोद्दिष्टाः सूर्यभास्करभानवः।
रविर्दिवाकरश्चापि न्यस्तव्या ह्यङ्गुलीषु ताः ॥११३॥
पञ्चह्रस्वाद्यबीजेन पञ्चदीर्घान्वितेन च।
शिरोवदनहृद्गुह्यपाददेशेषु ता न्यसेत् ॥११४॥

अब मार्तण्डभैरव के सिद्धि-प्रदायक मन्त्र को कहता हूँ। र् से युक्त ह् (ह्र) को औकार स्वर से युक्त प् से समन्वित करने के बाद उसे बिन्दु से युक्त करने पर मार्त्तण्डभैरव का तीन अक्षरों का कूट 'ह्रपौं' होता है। इस कूट को बिम्बबीज (ठ्रीं) से पुटित करने पर यह मन्त्र सर्वकामफलप्रद हो जाता हैं। दक्षिणमार्ग में विम्बबीज लगा कर जप करने से मन्त्र सिद्धि-प्रदायक होता है। वाममार्ग से इसकी उपासना नहीं करनी चाहिये।

इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द निवृत् एवं देवता मार्तण्डभैरव कहे गये हैं। इसका बीज 'हं' एवं शक्ति बिन्दु कहा गया है। सूर्य, भास्कर, भानु, रवि एवं दिवाकर— इन पाँच मूर्तियों का पाँचों अँगुलियों में न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् हं हां का शिर में, हिं हीं का मुख में, हुं हूं का हृदय में, हें हैं का गुह्य में एवं हों हौं का पैरों में न्यास करना चाहिये।।१०९-११४।।

ततः षडङ्गनेत्रान्तं कुर्याद्दीर्घयुताणुना।
अस्त्रन्यासानन्तरन्तु नेत्रन्यासः प्रकीर्तितः।
व्यापकं मूलबीजेन कुर्वीत तदनन्तरम् ॥११५॥
जपाकुसुमसङ्काशमष्टबाहुं चतुर्मुखम्।
मुखे मुखे त्रिनयनं मणिवन्मुकुटान्वितम् ॥११६॥
खट्वाङ्गपद्मचक्राणि शङ्खं पाशं तथा सृणिम्।
अक्षमालां कपालं च दधतं करपङ्कजैः ॥११७॥

अर्धाङ्गस्थितया शक्त्यालिङ्गितं हारशोभितम्।
पद्मस्थितं हास्यमुखं मार्तण्डं द्युमणिं भजे ॥११८॥

तदनन्तर इसी प्रकार ह्रस्व और दीर्घ बीजमन्त्र से हृदय से नेत्र तक षडङ्गन्यास करने के बाद मूल बीज (हं) से व्यापक न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् जपापुष्प के समान, आठ भुजाओं एवं चार मुखों वाले, प्रत्येक मुख पर तीन नेत्रों वाले, करकमलों में खट्वाङ्ग पद्म चक्र शंख पाश सृणि अक्षमाला एवं कपाल धारण किये हुये, अपने अर्धाङ्ग में स्थित शक्ति द्वारा आलिङ्गित, हार से सुशोभित, कमल पर आसीन, प्रसन्नमुख मार्त्तण्ड सूर्य का ध्यान करना चाहिये।

पीठे दीप्तादिभिर्युक्ते प्राग्वद्देवं प्रपूजयेत्।
आदावङ्गानि सम्पूज्य कर्णिकायामुषादिकाः ॥११९॥
पूर्वादिदिक्षु सूर्यादीन् विदिक्षु परिपूजयेत्।
नेत्रमीशानकोणे च तद्वाह्ये खेचरानपि ॥१२०॥
दिगीशानायुधानीत्थं मार्तण्डार्चनमीरितम्।
लक्षाणां त्रितयं मन्त्री जपेद्बीजं च बिम्बयोः।
दशांशं कमलैः फुल्लैर्जुहुयान्मधुरोक्षितैः ॥१२१॥
प्राग्वत् कुर्यादर्घ्यदानं प्रयोगानाचरेत्ततः।

तदनन्तर दीप्तादि से समन्वित पीठ पर पूर्ववत् सूर्यदेव का पूजन करना चाहिये। सर्वप्रथम बिन्दु में षडङ्ग पूजन करने के पश्चात् कर्णिका में उषा आदि का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पूर्व आदि दिशाओं एवं विदिशाओं में सूर्य आदि का और उसके बाहर आकाशचारी दिक्पालों एवं उनके आयुधों का पूजन करने से मार्तण्ड का अर्चन पूर्ण होता है।

इसके बाद बिम्ब के सहित बीजमन्त्र का तीन लाख की संख्या में जप करने के पश्चात् त्रिमधु-सिक्त कमलपुष्पों से कृत जप का दशांश (तीस हजार) हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्ववत् अर्घ्यदान करने के बाद विविध प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।

चतुरङ्गुलसम्भूतैः सुमनोभिः श्रियं लभेत् ॥१२२॥
लक्षं हुत्वा च शाल्याज्यतिलबिल्वैर्विधानतः।
राजानं वशयेच्छीघ्रं जपाकुसुमहोमतः।
जुहुयान्मातुलुङ्गैश्च लभतेऽर्थं सुवाञ्छितम् ॥१२३॥
एवं यः साधयेन्मन्त्री तस्य विद्या यशो बलम्।
पुत्रो लक्ष्मीश्च सौभाग्यं सर्वदा विजयो भवेत् ॥१२४॥

चार अंगुल वाले पुष्पों द्वारा हवन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। शालि

चावल, गोघृत, तिल एवं बेल से विधिवत् एक लाख आहुतियों द्वारा हवन करने पर भी लक्ष्मी-प्राप्ति होती है। जपाकुसुम के होम से शीघ्र ही राजा वशीभूत होते हैं। मातुलुङ्ग के हवन से वाञ्छित धन की प्राप्ति होती है।

जो मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार साधना करता है, उसे विद्या, यश, बल, पुत्र, लक्ष्मी एवं सौभाग्य की प्राप्ति होती है तथा वह सर्वदा विजयी होता है।।१२२-१२४।।

पूर्वोक्ताष्टाक्षरे तारादग्रे ह्लींबीजमुच्चरेत्।
श्रीं मन्त्रोऽयं दशार्णस्तु पञ्चाम्नायेषु कीर्तितः ॥१२५॥
ओं ह्लीं ह्लीं ह्लौं सबिन्दुः ससूर्यायेत्यग्निगोहिनी।
दशाक्षरस्तु जप्तोऽयं द्वादशायुतसङ्ख्यया।
दुष्टग्रहास्तु सौम्याः स्यू राजमान्यः स जायते ॥१२६॥

पाँचो आम्नायों में पूर्वोक्त अष्टाक्षर (ॐ घृणिः सूर्य आदित्य) मन्त्र में ॐ के बाद ह्लीं एवं श्रीं लगाकर यही मन्त्र दशाक्षर कहा गया है। ॐ ह्लीं ह्लीं ह्लौं सः सूर्याय स्वाहा—इस दशाक्षर मन्त्र का एक लाख बीस हजार की संख्या में जप करने से साधक के समस्त अशुभ ग्रह शुभ हो जाते हैं और वह राजा का प्रिय हो जाता है।।१२५-१२६।।

उपास्यस्तु कृते विष्णुस्त्रेतायां तु महेश्वरः।
इन्द्रयज्ञौ द्वापरे तु कलौ चण्डीविनायकौ।
भास्करः सर्वतुल्यस्तु सर्वेषां फलदायकः ॥१२७॥
यद्यत्तेजोमयं तत्तज्ज्ञेयं सूर्यस्वरूपकम्।
इत्येतत्तुभ्यमाख्यातं किं वाच्यमथ तद्वद ॥१२८॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
सूर्य्यमन्त्रप्रकाश एकविंशः।।२१।।



कृतयुग (सत्ययुग) में विष्णु, त्रेता में महेश्वर, द्वापर में इन्द्र और यज्ञ तथा कलियुग में चण्डी एवं विनायक की उपासना करनी चाहिये; लेकिन सूर्य उन सबके बराबर होते हुये उन सबके समस्त फलों को देने वाले होते हैं। इस जगत् में जो भी तेजःस्वरूप है, उसे सूर्यस्वरूप समझना चाहिये। इस प्रकार इसे आपलोगों से मैंने कहा; अब आगे क्या कहना चाहिये, उसे आपलोग कहें।।१२७-१२८।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में
शिवप्रणीत 'सूर्यमन्त्रकथन' - नामक एकविंश
प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।



द्वाविंशतितमः प्रकाशः

(नवग्रहमन्त्रकथनम्)

श्रीदेव्युवाच

सूर्यमन्त्राः श्रुता देव तदंशानां खचारिणाम्।
श्रोतुमिच्छामि च मनून् सप्रयोगांश्च तान्वद ॥१॥

श्रीदेवी ने कहा कि हे देव! मैंने सूर्यमन्त्रों का श्रवण किया। अब उनके अंशभूत आकाशचारी अन्य ग्रहों के मन्त्रों को प्रयोग-सहित सुनना चाहती हूँ; अत: उन्हें आप कहें।।१।।

श्रीशिव उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि त्रैलोक्यस्योपकारकम्।
कालेन कथितं मह्यं तन्मया कीर्त्यतेऽधुना ॥२॥
मायया मम रूपं च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
तत्त्वतो नैव जानन्ति किम्पुनः शक्तितो जनाः ॥३॥
अप्रत्यक्षं महाविष्णोस्तद् ब्रह्माह्वयमुच्यते।
तथा मम ग्रहा रूपं तव मायेति कीर्त्तितम् ॥४॥
ग्रहास्तुष्टास्तदा देवा भूपालाश्चाखिलं जगत्।
तुष्टं भवति रुष्टेषु शत्रुत्वमुपजायते ॥५॥
कदाचिद् ब्रह्मलिखितं मिथ्या दैवाद्भविष्यति।
न तु ग्रहकृतं दुःखं सौख्यं मिथ्या प्रजायते ॥६॥

श्रीशिवजी ने कहा कि हे देवि! आपने अत्यन्त सुन्दर प्रश्न किया है। आपका यह प्रश्न तीनों लोकों का उपकार करने वाला है। महाकाल ने पूर्व में जो मुझसे कहा था, उसे मैं इस समय कहता हूँ। माया और मेरे रूप को तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तत्त्वत: नहीं जानते; फिर शक्ति से उद्भूत लोग कैसे जान सकते हैं? महाविष्णु का जो अप्रत्यक्ष रूप है, उसी को ब्रह्मा कहा जाता है। उसी प्रकार मेरी और तुम्हारी माया को ग्रहरूप कहा गया है। ग्रहों के तुष्ट होने पर सभी देवता, भूपतिगण एवं सारा संसार तुष्ट होता है तथा ग्रहों के रुष्ट होने पर देवों, भूपतियों के साथ-साथ समस्त

संसार में भी शत्रुता की उत्पत्ति हो जाती है। कदाचित् ब्रह्मा का लेख मिथ्या हो सकता है; किन्तु ग्रहकृत दुःख-सुख मिथ्या नहीं होते।।२-६।।

चन्द्रबीजजपादिविधिः

सौमित्येकाक्षरं बीजं चन्द्रस्य परिकीर्त्तितम्।
पंक्तिश्छन्दो देवता च चन्द्रमा भार्गवो मुनिः।
सदीर्घनिजबीजेन षडङ्गानि समाचरेत्।।७।।
श्वेताब्जसंस्थं रजतकान्तिहारविराजितम्।
नीलकेशं च कुमुदं वामे दक्षकरे वरम्।
दधानं भावयेदेवं मृगाङ्कं मणिमौलिकम्।।८।।
पीठे धर्मादिसंयुक्ते गगनं परिपूज्य च।
चन्द्रमण्डलपर्यन्तं ततः सम्पूजयेद्विधुम्।।९।।
राज्ञी कुमुद्वती भद्रा सुधा सञ्जीविनी क्षमा।
आप्यायिनी चन्द्रिका च ह्लादिनी नव शक्तयः।।१०।।
पूर्वादिक्रमतो मन्त्री मध्यान्ताः पूजयेदिमाः।
अमृता तारका ज्योत्स्ना विमला व्यापिनी तथा।
चित्रा च कृत्तिका कान्तिः श्रवणा पीठशक्तयः।।११।।

चन्द्रबीज-जपादि विधि—चन्द्रमा का एकाक्षर बीज 'सौं' कहा गया है। इसके ऋषि भार्गव, छन्द पंक्ति और देवता चन्द्रमा कहे गये हैं। सां सीं सूं सैं सौं सः—इन दीर्घ बीजों से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।

श्वेत कमल पर विराजमान, चाँदी के सदृश कान्तिमान हार से सुशोभित, नीले केश वाले, बाँयें हाथ में कुमुद एवं दाहिने में वर धारण करने वाले, मणि से सुशोभित मौलि वाले मृगाङ्क (चन्द्रमा) का ध्यान करना चाहिये। इसके बाद धर्मादि से समन्वित पीठ पर सर्वप्रथम आकाश का पूजन करने के अनन्तर चन्द्रमण्डल-पर्यन्त चन्द्रमा का पूजन करना चाहिये।

इसके बाद राज्ञी, कुमुद्वती, भद्रा, सुधा, संजीविनी, क्षमा, आप्यायिनी, चन्द्रिका एवं ह्लादिनी—इन नव शक्तियों का पीठ पर पूर्व दिशा से आरम्भ कर मध्य तक पूजन करना चाहिये।

इसी प्रकार पूर्व से आरम्भ कर मध्यान्त तक अमृता, तारका, ज्योत्स्ना, विमला, व्यापिनी, चित्रा, कृत्तिका, कान्ति और श्रवणा—इन नव पीठशक्तियों का पूजन करना चाहिये।।७-११।।

अमृतान्ते कलात्मने संवित्पीठाय वै नमः ।
अनेन पीठं सम्पूज्य नाममन्त्रैश्च शक्तयः ॥१२॥
किञ्जल्केषु षडङ्गानि तच्छक्तीः पत्रगा यजेत् ।
रोहिणी कृत्तिका चैव रेवती भरणी तथा ।
रात्रिरार्द्रा तथा ज्योत्स्ना कला ध्यानमथोच्यते ॥१३॥
सुसिताः श्वेतवसनाः श्वेतमाल्यानुलेपनाः ।
मुक्ताहारालङ्कृताङ्ग्यः पाण्यञ्जलिपुटाः शुभाः ॥१४॥
आपीनोन्नतवक्षोजहाराक्रान्तावलग्नकाः ।
मन्दं मदनगामिन्यः प्राणनाथाक्तमानसाः ।
प्रसन्नचन्द्रवदनाः फुल्लेन्दीवरलोचनाः ॥१५॥

तत्पश्चात् 'अमृतकलात्मने संवित्पीठाय नमः' मन्त्र से पीठपूजन करने के उपरान्त नाममन्त्र से शक्तियों का पूजन करना चाहिये। अनन्तर केन्द्र में षडङ्ग-पूजन करने के बाद पत्रों में शक्तियों का पूजन करना चाहिये। ये शक्तियाँ हैं—रोहिणी, कृत्तिका, रेवती, भरणी, रात्रि, आर्द्रा, ज्योत्स्ना और कला। अब इन शक्तियों का ध्यान कहा जा रहा है।

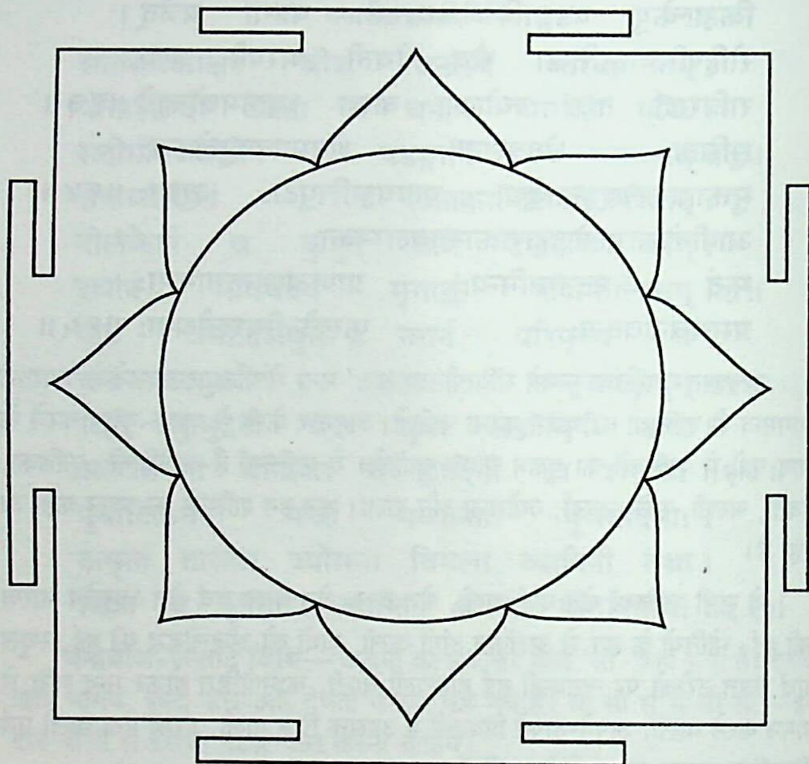
ये सभी शक्तियाँ श्वेत वर्ण वाली, श्वेत वस्त्र, श्वेत माला एवं श्वेत अनुलेप धारण की हुई, मोतियों के हार से अलंकृत अंगों वाली, हाथों को अंजलीबद्ध की हुई, स्थूल एवं उन्नत उरोजों पर लटकती हुई हारावली वाली, कामपीडित होकर मन्द गति से गमन करने वाली, अपने-अपने प्रियतमों में आसक्त चित्त वाली, प्रसन्न मुख वाली एवं विकसित कमल-सदृश नेत्रों वाली हैं।।१२-१५।।

ग्रहानष्टौ कलाग्रेषु लोकेशाश्च ततो यजेत् ।
वज्रादीनि ततो बाह्येऽप्येवं पूजा समीरिता ॥१६॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तत्सहस्रकम् ।
हविषा घृतसिक्तेन तर्पणादि ततश्चरेत् ।
ततः सिद्धो भवेन्मन्त्रः प्रयोगानाचरेत्ततः ॥१७॥

तदनन्तर आठ ग्रहों का पत्रों के अग्रभाग में पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों का एवं उसके बाहर उनके वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार सम्यक् रूप से पूजन करने के बाद मन्त्र का वर्णलक्ष अर्थात् एक लाख की संख्या में जप करने के पश्चात् घृतसिक्त हविष्य से एक हजार हवन करना

चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्ध हो जाने के पश्चात् प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।।१६-१७।।



चन्द्रं शिरसि सञ्चिन्त्य जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
त्रिसहस्रं तेन लभते राज्यैश्वर्यमकिञ्चनः ।।१८।।
लघुमिष्टहविष्याशी जलस्थो विजितेन्द्रियः।
वेदलक्षमितं मन्त्रं प्रजपेद्यतमानसः।
धरागतं निधानं स ध्रुवं प्राप्नोति तत्क्षणात् ।।१९।।
घोरे ज्वरे महाक्लेशे शिरोरोगे च दारुणे।
शत्रूत्पादितकृत्यासु कामलाद्यामयेषु च।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं यच्छान्तिरचिराद्भवेत् ।।२०।।
पूर्णिमायां जपेन्मन्त्रं यथाशक्ति जितेन्द्रियः।
सौभाग्यारोग्यसम्पत्तिभाजनं मनुजो भवेत् ।।२१।।

अपने शिर पर चन्द्रमा का चिन्तन करते हुये एकाग्र चित्त से मन्त्र का तीन हजार की संख्या में जप करने से अकिञ्चन (नितान्त निर्धन) मनुष्य भी राज्यरूपी ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है।

जो जितेन्द्रिय साधक मधुर हविष्य का स्वल्पाहार करके जल में खड़े होकर संयत मन से मन्त्र का चार लाख जप करता है, वह तत्क्षण ही पृथ्वी के गर्भ में अवस्थित निधि (खजाना) को प्राप्त कर लेता है।

भयंकर ज्वर, महान् कष्ट, दारुण शिरोरोग, शत्रु द्वारा प्रेषित कृत्या, कामला आदि रोगों से आक्रान्त होने पर मन्त्र का दश हजार जप करने से अतिशीघ्र ही उक्त समस्त उपद्रवों की शान्ति हो जाती है।

जितेन्द्रिय मनुष्य यदि पूर्णिमा की रात्रि में मन्त्र का यथाशक्ति जप करता है तो वह सौभाग्य, आरोग्य एवं सम्पत्ति का भाजन होता है।।१८-२१।।

मैत्रवारुणविस्तीर्णमण्डलानां त्रयं बुधः।
लिप्ते भूमण्डले कृत्वा निषीदेत्पश्चिमे ततः ॥२२॥
मध्यस्थे मण्डले न्यस्य पूजोपकरणानि च।
अग्रस्थमण्डले पद्मसंयुते पूर्ववद्यजेत् ॥२३॥
विधुं ततो रौप्यजातं पात्रं संस्थाप्य पूरयेत्।
शुद्धगोपयसा मन्त्री स्पृशन्पात्रं मनुं जपेत् ॥२४॥
अष्टाधिकशतं पश्चाद्राकायामुदये विधोः।
चन्द्राय विद्यामनुना दद्यादर्घं यथाविधि।
कान्तिं यथेप्सितां कन्यां सत्कीर्तिं लभते ध्रुवम् ॥२५॥
विद्ये विद्यामालिनीयुक् चन्द्रिन्यन्ते च चन्द्रयुक्।
मुखि शिरोऽन्तस्ताराद्यो विद्यामनुरयं स्मृतः ॥२६॥

लिपी हुई भूमि पर दो हाथ लम्बा-चौड़ा तीन मण्डल बनाकर उनके पश्चिम दिशा में बैठकर मध्यवर्ती मण्डल में पूजा के उपकरणों को रखने के उपरान्त अष्टदल कमल से समन्वित अपने आगे वाले मण्डल में पूर्ववत् चन्द्रमा का पूजन करने के बाद चाँदी का पात्र रखकर उसे गाय के दूध से पूर्ण करने के पश्चात् उस पात्र को स्पर्श करते हुये मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के बाद रात्रि में चन्द्रोदय होने पर विद्यामन्त्र से चन्द्रमा को यथाविधि अर्घ्य प्रदान करने से साधक निश्चित ही कान्ति, अभीप्सित कन्या एवं सत्कीर्ति प्राप्त करता है। विद्यामन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ विद्ये विद्यामालिनि चन्द्रिनि चन्द्रमुखि स्वाहा।।२२-२६।।

वंसंवमिति चन्द्रस्य त्र्यर्णो मन्त्रोऽस्य देवता।
सोमः श्रीश्छन्द उद्दिष्टमेकतत्त्वो मुनिर्मतः ॥२७॥
आकारः शक्तिरुद्दिष्टो रुं बीजं परिकीर्तितम्।
बीजेनैव षडङ्गानि ध्यानपूजादिपूर्ववत् ॥२८॥
चन्द्रस्य मण्डलास्यान्तु ह्युकारं पुटितं स्मरेत्।
अमृतं निस्सृतं तेन प्लावितं सकलं वपुः ॥२९॥
एवं भावनया तोयं मन्त्रयेत्तिथिवारकम्।
समस्तविषरोगाद्यकालमृत्युविनाशनम् ॥३०॥
इत्थं सूर्योदयात्पूर्वं जलपानं तु यश्चरेत्।
पापक्षयायुर्वृद्धी च वलीपलितनाशनम् ॥३१॥
ओंश्रींश्रींश्रूं सबिन्दुः स सों सोमायेत्यग्निगेहिनी।
दशाक्षरश्चन्द्रमन्त्रो जप्यश्चाग्रे दयायुतैः ॥३२॥
होमादिकप्रयोगांश्च सर्वं पूर्ववदाचरेत्।
एते प्रोक्ताश्चन्द्रमन्त्रा सर्वकल्याणदायकाः ॥३३॥

'वं सं वं' यह चन्द्रमा का त्र्यक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि एकतत्त्व, छन्द श्री, देवता सोम, बीज रुं एवं शक्ति आं कहा गया है। रां रीं रूं रैं रौं रः से ही इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। ध्यान-पूजन आदि पूर्ववत् ही किये जाते हैं। ॐकार से पुटित चन्द्रमण्डल का स्मरण करके उस चन्द्रमण्डल से झर रहे अमृत के द्वारा अपने सम्पूर्ण शरीर को सराबोर होने की भावना करते हुये जिस जल को उक्त मन्त्र के पन्द्रह जप से अभिमन्त्रित कर दिया जाता है, वह जल समस्त प्रकार के विष एवं रोग आदि से होने वाले अकालमृत्यु का नाश करने वाला हो जाता है। जो साधक सूर्योदय के पूर्व इस प्रकार से जल का पान करता है, उसके पापों का क्षय होता है एवं आयु की वृद्धि होती है; साथ ही उसके बुढ़ापे का भी विनाश हो जाता है।

श्रीं श्रीं श्रूं सः सों सोमाय स्वाहा—यह चन्द्रमा का दशाक्षर मन्त्र है। चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा के सामने मुख करके दया से युक्त होकर इसका जप करना चाहिये। इसके होम आदि एवं प्रयोग सबकुछ पूर्ववत् ही करना चाहिये। इस प्रकार समस्त प्रकार से कल्याण करने वाले चन्द्रमन्त्रों का कथन किया गया।।२७-३३।।

भौमबीजमन्त्रजपादिविधिः

अथ भौममनुं वक्ष्ये सर्वरोगनिवारणम्।
अं च अङ्गारको ङेऽन्तो हृदन्तश्चाष्टवर्णकः ॥३४॥

ऋष्याद्या ब्रह्मगायत्रीभूमिपुत्राः प्रकीर्तिताः ।
अङ्गषट्कन्त्वस्य मनोरादिबीजेन सम्मतम् ॥३५॥
नमाम्यङ्गारकं रक्तं रक्ताम्बरविभूषणम् ।
जानुस्थवामहस्ताढ्यं भाजनेतरपाणिकम् ॥३६॥
लक्षाष्टको जपः प्रोक्तः खादिरैरिन्धनैर्हुनेत् ॥३७॥
साज्यैः सन्तर्पणं रक्तचन्दनाद्यैः समाचरेत् ।
एवं कृते प्रयोगेऽस्य समरे न पराजयः ।
अनुग्रहात्तस्य लोकस्त्वनृणी व्याधिविच्युतः ॥३८॥

भौममन्त्र के जप आदि की विधि—अब समस्त रोगों का निवारण करने वाले भौममन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का मन्त्र है—अं अङ्गारकाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता भूमिपुत्र मङ्गल कहे गये हैं। इसके आदिबीज अं के छः दीर्घ स्वरूपों (आं ईं ऊं ऐं औं अः) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। इनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—रक्त वर्ण वाले, रक्त वस्त्र से विभूषित, बाँयें हाथ को घुटने पर एवं दाहिने हाथ को आधार पर रखे हुये अङ्गारक (मंगल) को मैं प्रणाम करता हूँ।

इस मन्त्र का जप आठ लाख कहा गया है। गोघृतसहित हविष्य से खैर काष्ठ की अग्नि में इसका हवन एवं रक्त चन्दन-मिश्रित जल से तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार पुरश्चरण करने के बाद इस मन्त्र का प्रयोग करने वाला युद्ध में बराबर विजयी होता है। मंगल की कृपा से मनुष्य ऋण से मुक्त एवं व्याधि से रहित हो जाता है।

ओंश्रींक्लीं मनुमुच्चार्य ङेऽन्तो भौमो हृदन्तकः ।
दशाक्षरो मनुः प्रोक्तो विरूपाक्षो मुनिर्मतः ॥३९॥
गायत्री छन्द उद्दिष्टं देवता मङ्गलो भवेत् ।
ह्रींबीजं श्रीश्च शक्तिः स्यात्कीलकं क्लीं प्रकीर्तितम् ॥४०॥
कालादिकं समुच्चार्य नियोगे ऋणनाशने ।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन अङ्गुल्यादिषडङ्गकम् ॥४१॥
ब्रह्मरन्ध्रे कर्णयोश्च अक्ष्णोर्नासिकयोर्मुखे ।
लिङ्गे गुदे च मन्त्रस्य दशवर्णान् क्रमान्न्यसेत् ॥४२॥

ॐ श्रीं क्लीं मनुभौमाय नमः—यह दशाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र के ऋषि विरूपाक्ष, छन्द गायत्री, देवता मङ्गल, बीज ह्रीं, शक्ति श्रीं एवं कीलक क्लीं कहा गया है। देश-काल आदि का उच्चारण करके ऋणमुक्ति-हेतु इसका विनियोग किया जाता है। बीज (ह्रीं) के छः दीर्घ स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसका करन्यास एवं

षडङ्गन्यास किया जाता है। मन्त्र के दस वर्णों का क्रमश: ब्रह्मरन्ध्र, दोनों कान, दोनों आँख, दोनों नासाछिद्र, मुख, लिङ्ग एवं गुदा में न्यास करना चाहिये।।३९-४२।।

मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्त्ता धनप्रदः।
स्थिरासनो महाकायः सर्वकर्मावरोधकः ।।४३।।
लोहितो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः।
धरात्मजः कुजो भौमो भूमिदो भूमिनन्दनः ।।४४।।
अङ्गारको यमश्चैव सर्वरोगापहारकः।
वृष्टिकर्त्ताऽपहर्ता च सर्वकर्मफलप्रदः ।।४५।।
शिखायां मूर्ध्नि भाले च नेत्रयोः कर्णयोर्नसोः।
मुखे च चिबुके कण्ठे स्कन्धयोर्भुजयोस्तथा ।।४६।।
पाण्योर्हृद्युदरे नाभौ कट्यां लिङ्गे स्फिचोस्तथा।
जान्वोश्च जङ्घयोरङ्घ्र्योः क्रमान्नामानि विन्यसेत् ।।४७।।
चतुर्थ्यन्तहृदन्तानि संविद्यादक्षराणि च।
ततो ध्यायेद्रक्तवर्णं रक्तमाल्यांशुकावृतम् ।।४८।।
कण्ठे कमलमालाढ्यङ्करयोः शक्तिशूलके।
मङ्गलानां मङ्गलञ्च सर्वकामफलप्रदम् ।।४९।।
एवं ध्यात्वा जपेल्लक्षं जुहुयात्करवीरजैः।
जपाप्रसूनैः पुरुभिर्मधुरत्रितयान्वितैः ।।५०।।

इनके इक्कीस नाम इस प्रकार कहे गये हैं—मंगल, भूमिपुत्र, ऋणहर्त्ता, धनप्रद, स्थिरासन, महाकाय, सर्वकर्मावरोधक, लोहित, लोहिताक्ष, सामगानां कृपाकर, धरात्मज, कुज, भौम, भूमिद, भूमिनन्दन, अङ्गारक, यम, सर्वरोगापहारक, वृष्टिकर्त्ता, वृष्ट्यपहर्त्ता एवं सर्वकर्मफलप्रद। इन इक्कीस नामों के आदि में नाम के प्रथम अक्षर, तत्पश्चात् चतुर्थ्यन्त नाम एवं अन्त में नमः लगाते हुये मन्त्र बनाकर उनका क्रमश: शिखा, मूर्धा, ललाट, नेत्रद्वय, कर्णद्वय, नासिकाद्वय, मुख, चिबुक (ठोढ़ी), कण्ठ, स्कन्धद्वय, भुजद्वय, हस्तद्वय, हृदय, उदर, नाभि, कटि (कमर), लिङ्ग, स्फिचद्वय (दोनों कूल्हा), जानुद्वय (दोनों घुटना), जंघाद्वय एवं पादद्वय में न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर रक्त वर्ण वाले, रक्त माला एवं रक्त वस्त्र धारण करने वाले, कमलों की माला से सुशोभित कण्ठ वाले, हाथों में शक्ति एवं शूल धारण किये हुये, मंगलों के भी मंगलस्वरूप एवं समस्त कामनाओं का फल प्रदान करने वाले देव का ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करके मन्त्र का एक लाख जप करने के उपरान्त त्रिमधुराक्त जपापुष्प के परागों से हवन करना चाहिये।।४३-५०।।

रक्तचन्दनगन्धाद्यैर्यजेदरुणभूषणम् ।
विधिना भूमितनयं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।।५१।।
अङ्गान्यभ्यर्च्य पूर्वन्तु मङ्गलाद्यांस्ततोऽर्चयेत् ।
एकविंशतिकोष्ठेषु ततो चाष्टौ ग्रहान्न्यसेत् ।।५२।।
भैरव्यष्टकमर्च्यन्तु ब्राह्मी नारायणी तथा ।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ।।५३।।
वाराही नारसिंही च ततोऽष्टौ भैरवा अपि ।
पूज्या विधानतः सर्वे मन्त्रिणैभिर्मनूत्तमैः ।।५४।।
असिताङ्गं रुरुं चण्डं क्रोधमुन्मत्तसञ्ज्ञकम् ।
कपालिनं भीषणं च तथा संहारभैरवम् ।।५५।।
इन्द्रादिलोकपालांश्च तद्बाह्ये चायुधानि च ।
पूजयेद्भैरवानेतान् क्रमात्पूर्वोक्तवर्त्मना ।

रक्तचन्दन, रक्तगन्ध आदि के द्वारा समस्त अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाले, रक्त आभूषण धारण करने वाले भूमिपुत्र का यन्त्र पर विधिपूर्वक यजन करना चाहिये। तदनन्तर प्रथमतः षडङ्गपूजन करने के बाद इक्कीस कोष्ठों में मंगल आदि का अर्चन करना चाहिये। तत्पश्चात् आठ ग्रहों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वोक्त रीति से ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कौमारी, अपराजिता, वाराही एवं नारसिंही—इन आठ भैरवियों का पूजन करने के उपरान्त असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण एवं संहार—इन आठ भैरवों का भी विधानपूर्वक उनके नाममन्त्रों से पूजन करना चाहिये। इसके बाद इन्द्रादि दस दिक्पालों का पूजन करने के बाद उसके बाहर उन दिक्पालों के वज्रादि आयुधों का पूजन करना चाहिये। पूजन इस प्रकार किया जाता है—

प्रथम आवरण में—

१. ॐ ह्रां भौमाय हृदयाय नमः हृदय श्रीपादुकां पूजयामि।
२. ॐ ह्रीं भौमाय शिरसे स्वाहा शिरःश्रीपादुकां पूजयामि।
३. ॐ ह्रूं भौमाय शिखायै वषट् शिखाश्रीपादुकां पूजयामि।
४. ॐ ह्रैं भौमाय कवचाय हुं कवचश्रीपादुकां पूजयामि।
५. ॐ ह्रौं भौमाय नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रत्रयश्रीपादुकां पूजयामि।
६. ॐ ह्रः भौमाय अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

द्वितीय आवरण में—

१. ॐ मङ्गलाय नमः मङ्गलश्रीपादुकां पूजयामि।
२. ॐ भूमिपुत्राय नमः भूमिपुत्रश्रीपादुकां पूजयामि।
३. ॐ ऋणहर्त्रे नमः ऋणहर्ताश्रीपादुकां पूजयामि।
४. ॐ धनप्रदाय नमः धनप्रदश्रीपादुकां पूजयामि।
५. ॐ स्थिरासनाय नमः स्थिरासनश्रीपादुकां पूजयामि।
६. ॐ महाकायाय नमः महाकायश्रीपादुकां पूजयामि।
७. ॐ सर्वकर्मावरोधकाय नमः सर्वकर्मावरोधकश्रीपादुकां पूजयामि।
८. ॐ लोहिताय नमः लोहितश्रीपादुकां पूजयामि।
९. ॐ लोहिताक्षाय नमः लोहिताक्षश्रीपादुकां पूजयामि।
१०. ॐ सामगानां कृपाकराय नमः सामगानां कृपाकरश्रीपादुकां पूजयामि।
११. ॐ धरात्मजाय नमः धरात्मजश्रीपादुकां पूजयामि।
१२. ॐ कुजाय नमः कुजश्रीपादुकां पूजयामि।
१३. ॐ भौमाय नमः भौमश्रीपादुकां पूजयामि।
१४. ॐ भूमिदाय नमः भूमिदश्रीपादुकां पूजयामि।
१५. ॐ भूमिनन्दनाय नमः भूमिनन्दनश्रीपादुकां पूजयामि।
१६. ॐ अङ्गारकाय नमः अङ्गारक श्रीपादुकां पूजयामि।
१७. ॐ यमाय नमः यम श्रीपादुकां पूजयामि।
१८. ॐ सर्वरोगापहारकाय नमः सर्वरोगपहारकश्रीपादुकां पूजयामि।
१९. ॐ वृष्टिकर्त्रे नमः वृष्टिकर्ताश्रीपादुकां पूजयामि।
२०. ॐ वृष्टिहर्त्रे नमः वृष्टिहर्ताश्रीपादुकां पूजयामि।
२१. ॐ सर्वकर्मफलप्रदाय नमः सर्वकर्मफलप्रदश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

तृतीय आवरण में (यन्त्र के बाहर पूर्वादि आठ दिशाओं में)—

१. ॐ सूर्याय नमः सूर्यश्रीपादुकां पूजयामि।
२. ॐ सोमाय नमः सोमश्रीपादुकां पूजयामि।
३. ॐ बुधाय नमः बुधश्रीपादुकां पूजयामि।
४. ॐ मुरवे नमः गुरुश्रीपादुकां पूजयामि।
५. ॐ शुक्राय नमः शुक्रश्रीपादुकां पूजयामि।
६. ॐ शंनये नमः शनिश्रीपादुकां पूजयामि।

७. ॐ राहवे नम: राहुश्रीपादुकां पूजयामि।
८. ॐ केतवे नम: केतुश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

चतुर्थ आवरण में—

१. ॐ ब्राह्म्यै नम: ब्राह्मीश्रीपादुकां पूजयामि।
२. ॐ माहेश्वर्यै नम: माहेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि।
३. ॐ कौमार्यै नम: कौमारीश्रीपादुकां पूजयामि।
४. ॐ वैष्णव्यै नम: वैष्णवीश्रीपादुकां पूजयामि।
५. ॐ वाराह्यै नम: वाराहीश्रीपादुकां पूजयामि।
६. ॐ नारसिंह्यै नम: नारसिंहीश्रीपादुकां पूजयामि।
७. ॐ अपराजितायै नम: अपराजिताश्रीपादुकां पूजयामि।
८. ॐ चामुण्डायै नम: चामुण्डाश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तुरीयावरणार्चनम्।।

पञ्चम आवरण में—

१. ॐ असिताङ्गभैरवाय नम: असिताङ्गभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।
२. ॐ रुरुभैरवाय नम: रुरुभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।
३. ॐ चण्डभैरवाय नम: चण्डभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।
४. ॐ क्रोधभैरवाय नम: क्रोधभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।
५. ॐ उन्मत्तभैरवाय नम: उन्मत्तभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।
६. ॐ कपालीभैरवाय नम: कपालीभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।
७. ॐ भीषणभैरवाय नम: भीषणभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।
८. ॐ संहारभैरवाय नम: संहारभैरवश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्।।

षष्ठ आवरण में—

१. ॐ लं इन्द्राय नम: इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि।
२. ॐ वं अग्नये नम: अग्निश्रीपादुकां पूजयामि।

३. ॐ मं यमाय नमः यमश्रीपादुकां पूजयामि।
४. ॐ क्षं निर्ऋतये नमः निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि।
५. ॐ वं वरुणाय नमः वरुणश्रीपादुकां पूजयामि।
६. ॐ यं वायवे नमः वायुश्रीपादुकां पूजयामि।
७. ॐ कुं कुबेराय नमः कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि।
८. ॐ हं ईशानाय नमः ईशानश्रीपादुकां पूजयामि।
९. ॐ आं ब्रह्मणे नमः ब्रह्माश्रीपादुकां पूजयामि।
१०. ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम्।।

सप्तम आवरण में—

१. ॐ वं वज्राय नमः वज्रश्रीपादुकां पूजयामि।
२. ॐ शं शक्तये नमः शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि।
३. ॐ दं दण्डाय नमः दण्डश्रीपादुकां पूजयामि।
४. ॐ खं खड्गाय नमः खड्गश्रीपादुकां पूजयामि।
५. ॐ पं पाशाय नमः पाशश्रीपादुकां पूजयामि।
६. ॐ अं अङ्कुशाय नमः अङ्कुशश्रीपादुकां पूजयामि।
७. ॐ गं गदायै नमः गदाश्रीपादुकां पूजयामि।
८. ॐ त्रिं त्रिशूलाय नमः त्रिशूलश्रीपादुकां पूजयामि।
९. ॐ पं पद्माय नमः पद्मश्रीपादुकां पूजयामि।
१०. ॐ चं चक्राय नमः चक्रश्रीपादुकां पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्।।५१-५५।।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति ।।५६।।
पूजोत्तरं भौमवारेऽङ्गारकेण त्रिरेखिकाम् ।
स्वागतो वामपादेन प्रव्रज्याष्टोत्तरं शतम् ।।५७।।
जपेद्दशांशं होमस्य तर्पणं पयसा चरेत् ।
ब्राह्मणं भोजयेदेकं गुडप्रचुरवस्तुभिः ।।५८।।
स्तुत्वा नत्वाऽर्चयेद्देवं साधकः स्थिरमानसः ।

अनेन क्रमयोगेन निहत्य ऋणमादरात्।
लभते महतीं लक्ष्मीं वत्सरेण न संशय: ॥५९॥
विशेषान्मङ्गले वारे देवमेनं समर्चयेत्।
जुहुयात्तर्पयेन्मन्त्री प्राप्नुयान्निजवाञ्छितम् ॥६०॥

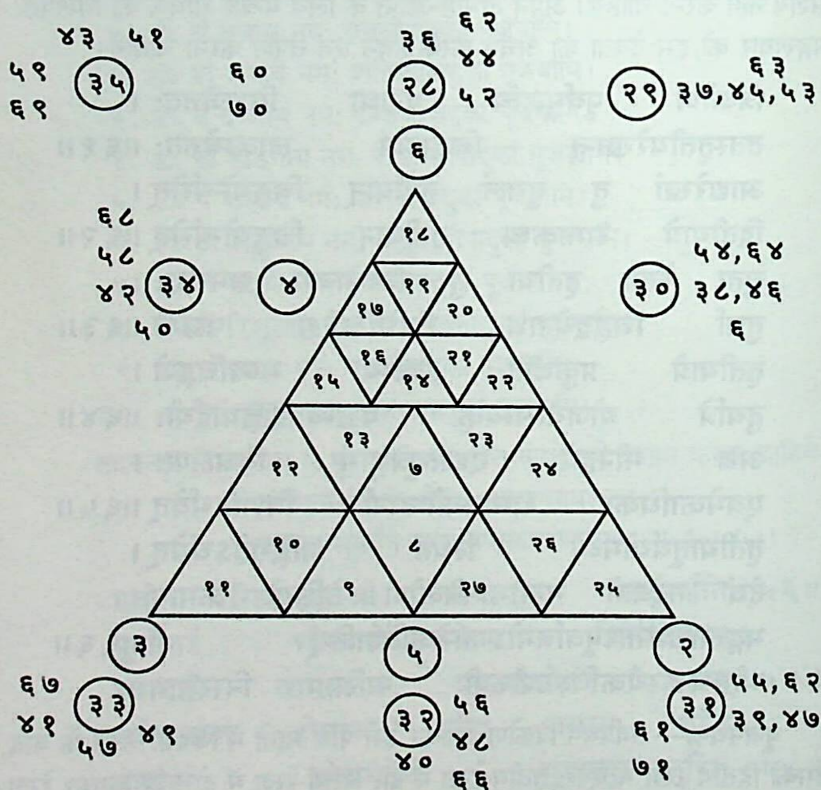
इस प्रकार सिद्ध किये गये मन्त्र से मन्त्रज्ञ साधक को प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये। पूजा के बाद प्रत्येक भौमवार को तीन रेखाओं में मङ्गल का स्वागत करके बाँयें पैर से उसे लाँघकर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के उपरान्त कृत जप का दशांश हवन एवं दुग्ध से तर्पण करना चाहिये। तत्पश्चात् प्रचुर गुड़ से बने भोज्य सामग्रियों से एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये।

साधक द्वारा अपने मन को एकाग्र करके देवता की स्तुति करने के बाद प्रणाम करके उनका अर्चन करना चाहिये। इस प्रकार के क्रम का आश्रयण करने से साधक एक वर्ष के भीतर ही ऋण से मुक्त होकर प्रचुर धन को प्राप्त करता है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। अपने अभीष्ट-प्राप्ति के लिये मन्त्रज्ञ साधक को विशेषत: मङ्गलवार को इस देवता का अर्चन करके हवन एवं तर्पण करना चाहिये।

त्रिकोणं पूर्वमुद्धृत्य पञ्चधा विभजेत्तत:।
ततस्तृतीयरेखान्तु चिह्नाभ्यां लाञ्छयेत्तत: ॥६१॥
आद्यरेखां तु युगलं तृतीयान् चिह्नयोर्न्यसेत्।
द्वितीयाग्रे समाकृष्य तृतीयान् चिह्नयोर्न्यसेत् ॥६२॥
युता रेखा तृतीया तु समभाज्या समन्तत:।
तुर्या चिह्नद्वयेनाथ त्रिभिश्चिह्नैश्च पञ्चमी ॥६३॥
तृतीयाग्रे प्रकुर्वीत पञ्चम्या मध्यचिह्नजे।
तुर्याग्रे योजयेत्सम्यक् पञ्चम्याश्चिह्नयोर्द्वयो: ॥६४॥
अथ मीनद्वये दद्यात्सूत्रयुग्मं विचक्षण:।
एवमेकाधिका सम्यक्कोष्ठानां विंशतिर्भवेत् ॥६५॥
तृतीयातूर्ययोर्मध्ये स्थितं वह्निगृहेऽर्चयेत्।
देवं तदग्रतो मन्त्री त्रिकोणे दक्षिणे क्रमात्।
मङ्गलाद्यांस्तारपूर्वान्नमोऽन्तानेकविंशतिम् ॥६६॥
भौमभक्तस्यैकविंशत्पौरुषी नास्ति निस्स्वता।

पूजनयन्त्र—सर्वप्रथम त्रिकोण बनाकर उसे पाँच भागों में विभक्त करने के बाद उसकी द्वितीय रेखा में एक, तृतीय रेखा में दो, चतुर्थ रेखा में दो और आधार रेखा

में तीन चिह्न लगाकर द्वितीय रेखा के मध्य बिन्दु से दो रेखाओं को खींचकर पहली रेखा के दोनों छोरों को मिला देने से पहली रेखा के ऊपर एक त्रिकोण एवं दूसरी रेखा पर तीन त्रिकोण बन जाता है। पुन: तृतीय रेखा के दोनों चिह्नों से रेखा खींचकर दूसरी रेखा के बीच वाले चिह्न में मिलाकर दूसरी रेखा के छोरों को तीसरी रेखा के दोनों बिन्दुओं से मिलाने से तीसरी रेखा पर पाँच त्रिकोण बनते हैं। इसी प्रकार चौथी रेखा के दोनों चिह्नों से रेखा खींचकर तीसरी रेखा के दोनों चिह्नों के बीच में और दोनों छोरों को मिलाने से चौथी रेखा पर भी पाँच त्रिकोण बनते हैं। पाँचवीं आधाररेखा के तीन चिह्नों से रेखा खींचकर चौथी रेखा के दोनों चिह्नों और दोनों छोरों को मिलाने से पाँचवीं आधाररेखा पर सात त्रिकोण बनते हैं। इस प्रकार कुल इक्कीस त्रिकोणों वाला मङ्गल यन्त्र बन जाता है। तृतीय एवं चतुर्थ रेखा के मध्य में स्थित अग्निकोण में देवता का अर्चन करने के पश्चात् उनके आगे से आरम्भ कर दक्षिणावर्त क्रम से मंगल आदि इक्कीस देवताओं का अर्चन उनके चतुर्थ्यन्त नाम के पूर्व ॐ एवं अन्त में नम: लगाते हुये नाममन्त्रों से करना चाहिये। इन इक्कीस भौमों के भक्त का पौरुष कभी भी क्षीण नहीं होता।



अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये भूमिजस्य महाद्भुतम् ॥६७॥
तारं मायां रमां म्लां च मं मङ्गलपदं वहेत्।
ङेऽन्तं हृदन्तं रुद्रार्णैः प्रोक्तो भौमप्रियो मनुः ॥६८॥
प्राग्वत्पूजादिकं सर्वं चावाहनमनुस्त्वयम्।
भगवन् देवदेवेश एह्येहि त्वं महाप्रभो ॥६९॥
ऐश्वर्यं वशमायातु भूतलेषु समाश्रितम्।
एकविंशतिभिः पुष्पै रक्तैः प्रत्येकमर्चयेत्।
रक्तगन्धादिवस्त्रैश्च नैवेद्यं च गुडौदनम् ॥७०॥
कृत्वा तु त्रिगुणं भूमावेकविंशतिरोटिकाः।
गोधूमचूर्णजास्तत्र स्थापयित्वा प्रभक्षयेत् ॥७१॥
सगुडाः प्रत्यहं जप्यमष्टोत्तरसहस्रकम्।
भौमस्तोत्रपुराणादिचर्चया तु दिनं नयेत् ॥७२॥
एकविंशद्दिनं प्रोक्तं यस्य कस्यापि चाग्रतः।
याचनीयं योग्यवस्तु सत्वरञ्च प्रयच्छति ॥७३॥

अब मंगल के अत्यन्त अद्भुत अन्य मन्त्र को कहता हूँ। ॐ ह्रीं श्रीं म्लां मं मङ्गलाय नमः—यह ग्यारह अक्षरों वाला मन्त्र मंगल को अतिशय प्रिय है। इसका पूजन आदि सबकुछ पूर्ववत् ही किया जाता है। आवाहन मन्त्र इस प्रकार है—

भगवन् देवदेवेश एह्येहि त्वं महाप्रभो।
ऐश्वर्यं वशमायातु भूतलेषु समाश्रितम्।।

इक्कीस रक्तपुष्पों से प्रत्येक का अर्चन करके सभी को रक्त वस्त्र प्रदान करना चाहिये एवं नैवेद्य में गेहूँ तथा चावल के आटे (चौरेठा) में दोनों के बराबर गुड़ मिलाकर इक्कीस रोटिका (ठेंकुआँ) बनाकर प्रत्येक नाम से एक-एक समर्पित करने के पश्चात् प्रसादरूप में ग्रहण कर उसका भक्षण करना चाहिये।

इक्कीस दिनों तक प्रतिदिन उक्त इक्कीस देवों में से किसी के भी आगे गुड़ समर्पित करके मन्त्र का एक हजार आठ बार जप, मङ्गलस्तोत्र का पाठ एवं पुराण आदि की कथावार्त्ता करते हुये दिन व्यतीत करना चाहिये। ऐसा करने से वह देवता माँगने योग्य वस्तु शीघ्र ही साधक को प्रदान कर देता है।।६७-७३।।

अथ मन्त्रान्तरं वक्ष्ये भूमिपुत्रस्य सिद्धिदम्।
ॐहांहंसः खड्ग इति मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः ॥७४॥
मुनिर्विरूपो गायत्री छन्दो देवो धरात्मजः।
षड्भिर्वर्णैः षडङ्गानि मनोः कुर्वीत साधकः ॥७५॥

जपाकुसुमसङ्काशं शक्तिशूलगदाधरम्।
मेषसंस्थं रक्तवस्त्रं तं वन्देऽहं धरात्मजम् ॥७६॥
रसलक्षं जपेद्धोमः समिद्भिः खदिरस्य च।
शैवपीठे यजेद्भौमं प्रागङ्गानि तु पूजयेत् ॥७७॥
एकविंशतिकोष्ठेषु मङ्गलादीन् प्रपूजयेत्।
तद्बहिः ककुभां नाथान् कुलिशादींस्ततोऽर्चयेत्।
इत्थं सुसिद्धं मन्त्रेशं स्वेष्टसिद्ध्यै प्रयोजयेत् ॥७८॥

अब मङ्गल के अन्य सिद्धिप्रद मन्त्र को कहता हूँ। ॐ हां हंसः खं खः—यह छः अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र के ऋषि विरूप, छन्द गायत्री और देवता धरात्मज कहे गये हैं। इस मन्त्र के छः अक्षरों से साधक को षडङ्गन्यास करना चाहिये।

मंगल का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—जपापुष्प के समान वर्ण वाले, हाथों में शक्ति त्रिशूल एवं गदा धारण किये हुये, मेष पर आरूढ़ रक्त वस्त्रधारी मंगल को मैं प्रणाम करता हूँ।

इस मन्त्र का छः लाख जप करके खैर की समिधा से हवन करना चाहिये। शैव पीठ पर मंगल का पूजन करना चाहिये। सर्वप्रथम षडङ्गपूजन करने के बाद इक्कीस कोष्ठों वाले यन्त्र में इक्कीस नामों से मंगल का पूजन सम्पन्न करके उसके बाहर इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध मन्त्र का प्रयोग अपनी इष्टसिद्धि के लिये करना चाहिये।।७४-७८।।

नारी पुत्रमभीप्सन्ती मङ्गलव्रतमाचरेत्।
मार्गशीर्षेऽथ वैशाखे तस्यारम्भः प्रशस्यते।
लभते नात्र सन्देहः पुत्रं सर्वगुणान्वितम् ॥७९॥
अरुणोदयवेलायामुत्थाय शुचिविग्रहा।
दन्तान्धावेद्बेदमार्गसमिधा मौनसेविता ॥८०॥
नद्यादिसलिले स्नात्वा धारयेद्रक्तवाससी।
नैवेद्यकुसुमालेपादिकान् सम्पाद्य संयता।
विधिज्ञं विप्रमाहूय भौममर्चेत्तदाज्ञया ॥८१॥
रक्तगोगोमयालिप्तदेशे पीठं निवेशयेत्।
मङ्गलादीनि नामानि स्वप्रतीकेषु विन्यसेत् ॥८२॥
अङ्घ्र्योश्च जानुनोरूर्वोः कटौ गुह्ये तथोरसि।
वामबाहौ दक्षबाहौ गले च वदने नसोः ॥८३॥

अक्ष्णोर्भाले भ्रुवोर्मध्ये के शिखायां कलेवरे।
बाहुद्वयेऽथ मूर्द्धादिपादपर्यन्तविग्रहे ॥८४॥
पादतो मूर्द्धपर्यन्तं तथा दिक्षु प्रविन्यसेत्।
आरं वक्रं भूमिजं च नाभौ वक्षसि मूर्द्धनि।
एवं न्यस्तशरीरोऽसौ ध्यायेद्धरणिनन्दनम् ॥८५॥
अर्घ्यं संस्थाप्य विधिवत्पूजयेदुपचारकैः।
एकविंशतिकोष्ठाढ्ये त्रिकोणे ताम्रपात्रके ॥८६॥
आवाह्य धरणीपुत्रं स्वर्णपुष्पैश्च चन्दनैः।

पुत्र-प्राप्ति की कामना वाली स्त्री को मङ्गल का व्रत करना चाहिये। इस व्रत का प्रारम्भ मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा वैशाख मास से करना श्रेयस्कर होता है। इस व्रत का अनुष्ठान करने से स्त्री सर्वगुण-सम्पन्न पुत्र प्राप्त करती है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये।

अरुणोदय वेला में उठकर शरीर को पवित्र करके मौन का आश्रयण करके वैदिक मार्ग से दातौन से दाँतों को साफ करना चाहिये। तदनन्तर नदी आदि के जल में स्नान करने के बाद रक्त वस्त्र धारण करके सावधानी-पूर्वक नैवेद्य, पुष्प, लेप आदि एकत्रित करके विधानज्ञ ब्राह्मण को बुलाकर उसकी आज्ञा के अनुसार मंगल का अर्चन करना चाहिये।

लाल गाय के गोबर से लिप्त भूमि पर पीठ का निर्माण करने के उपरान्त मंगल आदि इक्कीस नामों को अपने शरीर के दोनों पैर, दोनों घुटनों, दोनों जंघा, कमर, गुह्य, वक्ष:स्थल, वाम बाहु, दक्ष बाहु, गला, मुख, दोनों नासाछिद्र, दोनों नेत्र, ललाट, भ्रूमध्य, शिर, शिखा, कलेवर, बाहुद्वय, मूर्धा से पाद-पर्यन्त, पाद से मूर्धा-पर्यन्त एवं दशो दिशाओं में न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर आर (मंगल), वक्र (मंगल) एवं भूमिज का क्रमश: नाभि हृदय एवं मूर्धा में न्यास करने के पश्चात् धरणीपुत्र का ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् अर्घ्य स्थापित करके ताम्रपत्र पर अंकित इक्कीस कोष्ठों वाले यन्त्र पर धरणीपुत्र (मंगल) का आवाहन करके स्वर्णपुष्प, चन्दन आदि विविध उपचारों से सविधि पूजन करना चाहिये।।७९-८६।।

अङ्गानि पूजयेत्प्राग्वदेकविंशतिकोष्ठतः ॥८७॥
मङ्गलादींस्त्रिकोणेषु वक्रमारं च भूमिजम्।
ब्राह्म्याद्या मातृका बाह्ये शक्रादीनायुधान्यपि ॥८८॥

धूपदीपौ निधायाथ गोधूमान्नं निवेदयेत्।
जलपूर्णे ताम्रपात्रे धूपदीपाक्षतान्विते।
फलं निधाय मन्त्राभ्यां भौमायार्घ्यं निवेदयेत्॥८९॥
भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्भव पिनाकिनः।
सुतार्थिनी त्वां प्रपन्ना गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥९०॥
एकविंशतिकृत्वोऽथ प्रणमेत्पूर्वनामभिः।
प्रदक्षिणा विधातव्या तावद्भिर्नगपात्मजे॥९१॥
खादिराङ्गारकेणाथ कुर्याद्रेखात्रयं समम्।
वामपादेन मन्त्राभ्यामेताभ्यां तत्प्रमार्जयेत्॥९२॥
दुःखदौर्भाग्यनाशाय पुत्रसन्तानहेतवे।
कृतरेखात्रयं वामपादेनैव प्रमार्ज्म्यहम्॥९३॥
ऋणदुःखविनाशाय मनोभीष्टार्थसिद्धये।
मार्जयाम्यसिता रेखास्तिस्रो जन्मत्रयोद्भवाः॥९४॥

तदनन्तर पूर्ववत् षडङ्गपूजन करने के उपरान्त इक्कीस कोष्ठों में मङ्गलादि इक्कीस का पूजन करना चाहिये। त्रिकोणों में वक्र, आर एवं भूमिज का पूजन करना चाहिये। फिर उसके बाहर ब्राह्मी आदि आठ मातृकाओं का पूजन करके उनके बाहर इन्द्रादि दस दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् धूप-दीप दिखाकर गेहूँ के आटे से बने पक्वान्न निवेदित करने के बाद ताँबे के पात्र में धूप, दीप, अक्षत एवं फल रखकर 'भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्भव पिनाकिनः। सुतार्थिनी त्वां प्रपन्ना गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते' (अत्यन्त तेजस्वी, स्वेद से उत्पन्न, धनुष धारण करने वाले हे भूमिपुत्र! पुत्र को चाहने वाली तुम्हारी शरण में आई है, इस अर्घ्य को आप ग्रहण करें; आपको नमस्कार है) मन्त्र से इक्कीस नामों का उच्चारण करते हुये इक्कीस बार भौम को अर्घ्य प्रदान करने के उपरान्त इक्कीस बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये। फिर खैर की हुत समिधा के भस्म से तीन बराबर रेखायें खींचकर मूलोक्त 'दुःखदौर्भाग्यनाशाय पुत्रसन्तानहेतवे। कृतरेखात्रयं वामपादेनैव प्रमार्ज्म्यहम्। ऋणदुःखविनाशाय मनोऽभीष्टार्थसिद्धये। मार्जयाम्यसिता रेखास्तिस्रो जन्मत्रयोद्भवाः' (दुःख एवं दुर्भाग्य के विनाश तथा पुत्ररूपी सन्तति की प्राप्ति के लिये बनायी गई तीन रेखाओं को मैं अपने बाँयें पैर से मिटा रही हूँ। ऋणरूपी दुःख के विनाश एवं अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिये तीन जन्मों से उद्भूत तीन काली रेखाओं को मैं मिटा रहा हूँ) मन्त्र का उच्चारण करते हुये अपने बाँयें पैर से उन तीनों रेखाओं को मिटा देना चाहिये।।८७-९३।।

ततः पुष्पाञ्जलिं कृत्वा स्तुवीत धरणीसुतम्।
ध्यायन्ती चरणाम्भोजं पूजासाङ्गत्वसिद्धये ॥९५॥
धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्तेजःसमप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तं च मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ॥९६॥
ऋणहन्त्रे नमस्तुभ्यं दुःखदारिद्र्यनाशिने।
नमो विद्योतमानाय सर्वकल्याणकारिणे ॥९७॥
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगाः।
सुखं यान्ति यतस्तस्मै नमो धरणिसूनवे ॥९८॥
यो वक्रगतिमापन्नो नृणां दुःखं प्रयच्छति।
पूजितः सुखसौभाग्ये तस्मै क्ष्मासूनवे नमः ॥९९॥
प्रसादं कुरु मे नाथ मङ्गलप्रद मङ्गल।
मेषवाहन रुद्रात्मन् पुत्रं देहि धनं यशः ॥१००॥

इसके बाद पुष्पाञ्जलि प्रदान करके कृत पूजा की साङ्गता-सिद्धि के लिये धरणीपुत्र मङ्गल के चरणकमलों का ध्यान करते हुये उनकी इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये— पृथिवी के गर्भ से उद्भूत, विद्युत् के तेज के समान दीप्तिमान, हाथ में शक्ति लिये हुये बालस्वरूप वाले मंगल को मैं प्रणाम करता हूँ। ऋण का नाश करने वाले एवं दुःख तथा दरिद्रता का विनाश करने वाले को नमस्कार है। प्रकाश करने वाले के लिये नमस्कार है। सबका कल्याण करने वाले को प्रणाम है। जिसके प्रभाववश देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस एवं सर्पगण सुख प्राप्त करते हैं, उन भूमिपुत्र को प्रणाम है। जो वक्रगामी होकर मनुष्यों को दुःख प्रदान करते है एवं पूजित होने पर सुख-सौभाग्य प्रदान करते हैं, उन भूमिज को प्रणाम है। मंगल प्रदान करने वाले स्वयं मंगलस्वरूप हे नाथ! आप मेरे ऊपर कृपा करें। मेषरूपी वाहन वाले हे रुद्रात्मन्! आप मुझे पुत्र, धन एवं यश प्रदान करें।।९५-१००।।

एवं सम्पूज्य सम्भूय गृह्णीयाद् ब्राह्मणाशिषः।
गुरवे दक्षिणां दत्त्वा भुञ्जीतान्नं निवेदितम् ॥१०१॥
प्रतिभौमदिनं कुर्यादेवं संवत्सरावधि।
तिलैर्विधाय होमं च शतार्धं भोजयेद् द्विजान् ॥१०२॥
माहेयमूर्तिं सौवर्णीमाचार्याय निवेदयेत्।
मण्डलस्थे घटेऽभ्यर्च्य सुतसौभाग्यसिद्धये ॥१०३॥
अङ्गारकाय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि।
तन्नो भौमः प्रचोदयात् ॥१०४॥

एषाङ्गारकगायत्री जपिताभीष्टदायिनी ।
एतस्यास्तु जपादेव प्रसीदति धरासुतः ॥१०५॥
ॐक्रांक्रींक्रौं सबिन्दुः सकुजायेत्यग्निगेहिनी ।
दशाक्षरो भौममन्त्रो जप्यश्चायं नवायुतम् ॥१०६॥

इस प्रकार पूजन करने के उपरान्त ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिये। इसके बाद गुरु को दक्षिणा प्रदान करके देवता को निवेदित अन्न का भक्षण करना चाहिये। एक वर्ष तक प्रत्येक मङ्गलवार को इसी प्रकार पूजन करने के बाद तिलों की चौवन आहुतियों द्वारा हवन करके ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये।

तत्पश्चात् आचार्य को सुवर्ण-निर्मित मंगल की मूर्ति प्रदान करनी चाहिये। पुत्र एवं सौभाग्य की प्राप्ति के लिये मण्डलस्थ कलश का अर्चन करना चाहिये। 'अङ्गारकाय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि तन्नो भौमः प्रचोदयात्' यह अङ्गारक (मङ्गल) का गायत्री मन्त्र है, जो कि जप करने-मात्र से ही अभीष्ट प्रदान करने वाला है। इसके जपमात्र से ही भूमिपुत्र मंगल प्रसन्न हो जाते हैं। 'ॐ क्रां क्रीं क्रौं सः कुजाय स्वाहा'—इस दशाक्षर भौममन्त्र का नब्बे हजार जप करना चाहिये।।१०१-१०६।।

बुधबीजमन्त्रविधानम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि बुधमन्त्रं महाद्भुतम् ।
बुं ङेऽन्तो बुधशब्दश्च हृदयान्तः षडर्णकः ॥१०७॥
बुधमन्त्रोऽस्य मुन्याद्या ब्रह्मपंक्तिबुधा मताः ।
षडङ्गानि स्वबीजेन विन्यस्यैवं विचिन्तयेत् ॥१०८॥
वन्दे बुधं सदा देवं पीताम्बरसुभूषणम् ।
जानुस्थवामहस्ताब्जं साभयेतरपाणिकम् ॥१०९॥
प्रजपेद्वर्णसाहस्रं दशांशं जुहुयाद् घृतैः ।
अर्चनं त्वङ्गखेटाशापतिभिस्त्र्यावृतं स्मृतम् ॥११०॥
ॐब्रांब्रींब्रूं सबिन्दुः स बुधायेत्यग्निगेहिनी ।
दशाक्षरः सौम्यमन्त्रो जपो लक्षैकसङ्ख्यया ॥१११॥

बुधमन्त्र के जप आदि की विधि—अब मैं अत्यन्त अद्भुत बुधमन्त्र को कहता हूँ। बुध का छः अक्षरों का मन्त्र है—बुं बुधाय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द पंक्ति और देवता बुध कहे गये हैं। बीजमन्त्र से इसका षडङ्गन्यास करने के पश्चात् इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—पीत वस्त्र एवं सुन्दर आभूषण धारण किये हुये, बाँयें हाथ को घुटने पर रखे हुये तथा दाहिने हाथ से अभय प्रदान करते हुये बुधदेव को मैं सदा प्रणाम करता हूँ।

इस मन्त्र का छः हजार जप करके घृत से कृत जप का दशांश (छः सौ) हवन करना चाहिये। षडङ्ग अर्चन करने के पश्चात् चारो ओर आठ ग्रहों का अर्चन करना चाहिये। तत्पश्चात् दिक्पालों और उनके आयुधों का भी अर्चन करना चाहिये।

बुध का अन्य दशाक्षर मन्त्र है—ॐ ब्रां वीं ब्रूं सः बुधाय स्वाहा। इसका एक लाख जप कहा गया है।।१०७-१११।।

गुरुबीजमन्त्रजपादिविधिः

ॐजाञ्जीञ्जूं सबिन्दुः स चतुर्थ्यन्तो बृहस्पतिः।
वह्निस्त्रीविश्ववर्णोऽयं जप्यः पञ्चदशायुतम्।।११२।।

गुरु के बीजमन्त्र की जपादि विधि—ॐ जां जीं जूं सः बृहस्पतये स्वाहा—इस बारह अक्षरों वाले बृहस्पतिमन्त्र का एक लाख पचास हजार जप करना चाहिये।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गुरुमन्त्रं गुरुत्वकृत्।
बृं बृहस्पतये हृच्च मन्त्रश्चाष्टाक्षरो मतः।
छन्दोऽनुष्टुप् मुनिर्ब्रह्मा देवः प्रोक्तो बृहस्पतिः।।११३।।
बृं बीजं तेन कुर्वीत बीजेनैवाङ्गकल्पनम्।
सुवर्णाभं पीतवस्त्रं रत्नस्वर्णाम्बरादिकम्।।११४।।
किरन्तं दक्षहस्तेन रत्नादीन् वामपाणिना।
स्पृशन्तं सम्यगपरं वृषणौ कनकादिकम्।।११५।।
नानालङ्कारशोभाढ्यं विद्यासागरपारगम्।
जपित्वाऽशीतिसाहस्त्रं हुत्वा तेन घृतेन वा।।११६।।
धर्मी धर्मादिपीठे तं पूजयेदङ्गदिक्सुरैः।
सिद्धे मनौ प्रकुर्वीत प्रयोगानिष्टसिद्धये।।११७।।
हरिद्राकुङ्कुमैर्हुत्वा घृताक्तैर्दिवसत्रयम्।
सप्तविंशच्छतान्मन्त्री वासांसि लभते मणीन्।।११८।।
शत्रुरोगादिपीडासु कलहे स्वजनोद्भवे।
जुहुयात्पिप्पलोत्थाभिः समिद्भिस्तन्निवृत्तये।।११९।।
गुरोरुपासकानां तु जायन्ते सर्वसम्पदः।

अब मैं गुरुत्वकृत् गुरुमन्त्र को कहता हूँ। आठ अक्षरों का मन्त्र है—बृं बृहस्पतये नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता बृहस्पति कहे गये हैं। इसका बीज बृं है और इसी से अङ्गन्यास आदि करना चाहिये। तत्पश्चात् सुवर्ण-सदृश

कान्तिमान, पीत वस्त्र धारण करने वाले, रत्न स्वर्ण वस्त्र आदि को विखेरते हुये, दाहिने हाथ से रत्न आदि का स्पर्श करते तथा बाँयें हाथ में सुवर्ण आदि के गोले को लिये हुये, अनेक प्रकार के अलंकारों से सुशोभित, समस्त विद्याओं के पारगामी बृहस्पति का ध्यान करके इस मन्त्र का अस्सी हजार जप करने के बाद घृत से कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। तदनन्तर धर्मात्मा साधक को धर्मादि पीठ पर बृहस्पति का, छः अंगों का एवं दिक्पालों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर अभीष्ट-सिद्धि के लिये प्रयोगों का सम्पादन करना चाहिये।

तीन दिनों तक प्रतिदिन घृताक्त हल्दीचूर्ण और कुमकुम से नव सौ अर्थात् कुल सत्ताईस सौ हवन करने पर साधक को विविध प्रकार के वस्त्र एवं मणियों की प्राप्ति होती है।

शत्रु-रोग आदि से कष्ट उपस्थित होने पर अथवा स्वजनों में कलह उत्पन्न होने पर उनकी निवृत्ति के लिये पीपल की समिधाओं से हवन करना चाहिये। गुरु के उपासकों को समस्त सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं।।११३-११९।।

शुक्रबीजमन्त्रविधानम्

वस्त्रं मे देहि शुक्राय हृदयान्तः शुमादिकः ॥१२०॥
एकादशाक्षरो मन्त्रो विराट् छन्द उदाहृतम् ।
ब्रह्मा मुनिर्देवता तु शुक्रो दैत्यातिपूजितः ॥१२१॥
षड्भिः पदैः षडङ्गानि ततो देवं विचिन्तयेत् ।
शुक्रं नमाम्यासनस्थं मुक्ताभरणभूषितम् ॥१२२॥
स्वर्णवासोरत्नधाराचिन्मुद्रात्तकरद्वयम् ।
अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं सहस्रं जुहुयाद् घृतैः ।
अङ्गग्रहाशेशहेतिचतुरावरणं मनोः ॥१२३॥
शुक्रस्योपासको यस्तु तस्य म्लेच्छादयो वशाः ।
भवन्ति मन्त्रमाहात्म्यान्नश्यन्ते च क्षयादयः ॥१२४॥

शुक्रमन्त्र के जप आदि की विधि—ग्यारह अक्षरों का शुक्र का मन्त्र है—वस्त्रं मे देहि शुं शुक्राय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द विराट् एवं देवता दैत्यों द्वारा विशेष रूप से पूजित शुक्र कहे गये हैं। मन्त्र के छः पदों से इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिये—वस्त्रं हृदयाय नमः मे शिरसे स्वाहा, देहि शिखायै वषट्, शुं कवचाय हुं, शुक्राय नेत्रत्रयाय वौषट्, नमः अस्त्राय फट्। उसके बाद इस प्रकार देवता का ध्यान करना चाहिये—आसन पर विराजमान, मोतियों के आभूषणों से विभूषित, दोनों हाथों

से स्वर्णवस्त्र रत्नधारा एवं चिन्मुद्रा धारण किये हुये शुक्र को मैं प्रणाम करता हूँ।

तत्पश्चात् उक्त मन्त्र का दश हजार जप करने के बाद घृत से एक हजार हवन करना चाहिये। इसके बाद भूपुर से समन्वित अष्टदल वाले यन्त्र पर षडङ्ग, शेष ग्रह, दश दिक्पाल एवं उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये।

शुक्र के उपासक जहाँ रहते हैं, वहाँ पर रहने वाले म्लेच्छ आदि उसके वशीभूत रहते हैं। इस मन्त्र के माहात्म्य से क्षय आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।।१२०-१२४।।

मन्त्रान्तरं तु ताराद्यं स्वाहान्तं स्याद्धवार्णकः।
बीजं तारोऽग्निभार्या तु शक्तिर्मुन्यादि पूर्ववत्।
अङ्गेन्द्राद्यायुधैः पूजा त्रिरावृत्यास्य कीर्तिता ।।१२५।।
सुगन्धैः श्वेतकुसुमैर्जुहुयाच्छुक्रवासरे।
एकविंशतिवारान्यो लभते सांशुकं मणिम्।
एतन्मन्त्रोपासकानां प्रभुत्वमुपजायते ।।१२६।।

पूर्व मन्त्र के आदि में तार (ॐ) एवं अन्त में स्वाहा लगाने से शुक्र का द्वादश अक्षरों का दूसरा मन्त्र होता है। मन्त्र का स्वरूप होता है—ॐ वस्त्र मे देहि शुं शुक्राय स्वाहा। इस मन्त्र का बीज ॐ एवं शक्ति स्वाहा है; शेष ऋषि आदि पूर्ववत् ही होते हैं। षडङ्ग, दिक्पाल एवं आयुध-पूजन के रूप में तीन आवरणों में इसकी पूजा कही गई है।

शुक्रवार को सुगन्धित श्वेतपुष्पों से जो इक्कीस बार हवन करता है, वह वस्त्र-सहित मणि प्राप्त करता है। इन मन्त्रों के उपासकों को प्रभुत्व की प्राप्ति होती है।।१२५-१२६।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सबिन्दुः सशुक्रायेत्यग्निगेहिनी।
दशाक्षरः शुक्रमन्त्रो जप्योऽयं द्वादशायुतम् ।।१२७।।
उदुम्बरसमिद्भिश्च जुहुयात् सकलापदः।
भूपैः कृता विनश्यन्ति स्त्रीसौख्यमुपजायते ।।१२८।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः शुक्राय स्वाहा—इस दशाक्षर शुक्रमन्त्र का एक लाख बीस हजार की संख्या में जप करके गूलर की समिधा से हवन करने पर राजकृत समस्त आपदाओं का विनाश होता है एवं स्त्रीसौख्य की प्राप्ति होती है।।१२७-१२८।।

शनैश्चरबीजमन्त्रविधानम्

शनैश्चराय हृदयं समाद्यश्चाष्टवर्णकः।

मुन्याद्या ब्रह्मगायत्रीशनैश्चरसमाह्वयाः ।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गानि समाचरेत् ॥१२९॥
वन्दे शनैश्चरं वक्रदंष्ट्रं नीलविभूषणम् ।
वामजानुस्थितं वामकरं दक्षे वरं दधत् ॥१३०॥
जपेदक्षरसाहस्रं तद्दशांशं हुनेद् घृतैः ।
षडङ्गग्रहदिक्पालसायुधैः परिपूजनम् ।
शनैश्चरस्य भक्तानामापदो न दरिद्रता ॥१३१॥

शनिमन्त्र-विधान—शनि का आठ अक्षरों का मन्त्र है—शं शनैश्चराय नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री और देवता शनैश्चर कहे गये हैं। बीजमन्त्र के छः दीर्घ स्वरूपों (शां शीं शूं शैं शौं शः) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—वक्र दाढ़ वाले, नीलमणि से विभूषित, बाँयें घुटने पर बाँयाँ हाथ रखे हुये तथा दाहिने हाथ में वर धारण किये हुये शनैश्चर को मैं प्रणाम करता हूँ।

शनिमन्त्र का आठ हजार जप करने के बाद घृत से कृत जप का दशांश (आठ सौ) हवन करना चाहिये। चार आवरणों के पूजन में षडङ्ग-पूजन, अष्टग्रहों का पूजन, दश दिक्पालों का पूजन एवं दिक्पालों के आयुधों का पूजन किया जाता है। शनैश्चर के भक्तों को न तो आपत्तियाँ ग्रसित करती हैं और न ही उनके पास कभी भी दरिद्रता आती है।।१२९-१३१।।

ॐप्रांप्रींप्रौंस इत्युक्त्वा शनैश्चरपदं वदेत् ।
ङेऽन्तं स्वाहा द्वादशार्णो जपः प्रयुतसम्मितः ॥१३२॥
हुनेच्छमीसमिद्भिश्च क्लीबाः सर्वेऽस्य वश्यगाः ।
क्लीबानत्रानयेत्युक्तं साधकोऽस्य प्रभावतः ॥१३३॥

शनि का बारह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः शनैश्चराय स्वाहा। इसका एक लाख जप करना चाहिये। तत्पश्चात् शमी की समिधाओं से हवन करने पर समस्त क्लीब (नपुंसक अथवा दुर्बल) लोग साधक के प्रभाववश 'क्लीबों को यहाँ ले आओ' यह कहते ही उसके वशीभूत हो जाते हैं।।१३२-१३३।।

राहुबीजमन्त्रजपादिविधिः

अपरं तु मनुं वक्ष्ये राहवे नम उच्चरेत् ।
एं पूर्वकः षडर्णोऽयं वर्णैरिवाङ्गकल्पनम् ।
मुन्याद्या ब्रह्मगायत्रीराहवः परिकीर्तिताः ॥१३४॥

वन्दे राहुं धूम्रवर्णं सर्पकार्यं कृताञ्जलिम्।
विकृतास्यं रक्तनेत्रं धूम्रालङ्कारमन्वहम् ॥१३५॥
जपेद्वर्णसहस्रं तु होमयेद् गोघृतेन च।
ग्रहाशाधिपशस्त्रैश्च पूजावृत्तिरुदीरिता।
राहोरुपासको भूपः संग्रामे विजयी भवेत् ॥१३६॥

राहु-मन्त्र—अब राहु के मन्त्र को कहता हूँ। राहु का छः अक्षरों का मन्त्र है—एं राहवे नमः। इस मन्त्र के छः वर्णों से ही षडङ्गन्यास किया जाता है। इसके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री एवं देवता राहु कहे गये हैं। राहु का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—धूम्र वर्ण वाले, सर्प का कार्य करने वाले, सदा हाथ जोड़े हुये, विकृत मुख एवं रक्तवर्ण नेत्र वाले, धूम्ररूपी अलंकार से आच्छादित राहु को मैं प्रणाम करता हूँ।

राहुमन्त्र का छः हजार जप करने के पश्चात् गोघृत से हवन करना चाहिये। ग्रहपूजन, दिक्पालपूजन एवं दिक्पालास्त्र-पूजन—इस प्रकार तीन आवरणों में इनका पूजन कहा गया है। राहु का उपासक संग्राम में विजय प्राप्त करने वाला होता है।।१३४-१३६।।

ॐसांसींसौं सबिन्दुः सराहवे चाग्निगेहिनी।
दक्षाक्षरो राहुमन्त्रो जप्यश्चायं दशायुतम् ॥१३७॥
दूर्वाभिर्होमयित्वा च द्विजान् सन्तर्प्य सिद्ध्यति।
यात्रासिद्धिश्च संग्रामे नियतं विजयो भवेत्।

'ॐ सां सीं सौं सं राहवे स्वाहा' राहु के इस दशाक्षर मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद दूर्वा से हवन और ब्राह्मणों को भोजनादि द्वारा सम्यक् रूप से तृप्त करने से यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इस मन्त्र के प्रभाव से यात्रा सिद्धिदायक होती है एवं संग्राम में निश्चित विजय की प्राप्ति होती है।।१३७-१३८।।

केतुबीजमन्त्रजपादिविधिः

कं केतवे हृदित्येवं केतुमन्त्रः षडर्णकः ॥१३८॥
ब्रह्मामुनिर्मतश्छन्दः पङ्क्तिः केतुश्च देवता।
कं बीजं केतुशक्तिश्च बीजेनैव षडङ्गकम् ॥१३९॥
वन्दे केतुं कृष्णवर्णं कृष्णवस्त्रविभूषितम्।
वामोरुन्यस्तसद्धस्तं साभयेतरपाणिकम् ॥१४०॥
अङ्गैर्ग्रहैश्च दिक्पालैः पूजवृत्तित्रयात्मिका।
अत्र तु ग्रहपूजायां पूज्यं मध्ये निवेशयेत् ॥१४१॥

तदग्रिमं चोत्तरस्यामीशानादि तदग्रतः ।

केतुबीज मन्त्र-जपविधि—केतु का छ: अक्षरों का मन्त्र है—कं केतवे नमः। इस मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द पंक्ति और देवता केतु कहे गये हैं। इसका बीज कं एवं शक्ति केतु है। बीजमन्त्र (कं) के छ: दीर्घ स्वरूपों (कां कीं कूं कैं कौं कः) से ही इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। केतु का ध्यान इस प्रकार किया जाता है—कृष्ण वस्त्र से विभूषित कृष्ण वर्ण वाले, बाँयीं जंघा पर बाँयाँ हाथ रखे हुये एवं दाँयें हाथ से अभय प्रदान करने वाले केतु को मैं प्रणाम करता हूँ।

तीन आवरणों के पूजन में षडङ्ग-पूजन, ग्रह-पूजन एवं दिक्पालों का पूजन किया जाता है। यहाँ पर ग्रहपूजन में मध्य में पूज्य (केतु) की पूजा की जाती है। केतु के आगे से प्रारम्भ करके उत्तर, वायु, पश्चिम, नैर्ऋत्य, दक्षिण, अग्नि, पूर्व और ईशान में ग्रहों का पूजन करना चाहिये।।१३८-१४१।।

ॐ प्रांप्रींप्रौं सबिन्दुः सकेतवे वह्निगोहिनी ।।१४२।।
दशाक्षरः केतुमन्त्रो जप्तोऽयं द्वादशायुतम् ।।१४३।।
होमः कुशैः प्रकर्तव्यो घृताक्तैस्तर्पणादि च ।
उपासकानामेतस्य केतवोऽग्रे चलन्ति हि ।।१४४।।

केतु का अन्य मन्त्र है—ॐ प्रां प्रीं प्रौं सः केतवे स्वाहा। इस दस अक्षरों वाले केतुमन्त्र का एक लाख बीस हजार जप करना चाहिये। घृताक्त कुशों से हवन करन के उपरान्त तर्पण आदि करना चाहिये। इस मन्त्र के उपासकों के आगे-आगे निश्चित रूप से केतु चलते रहते हैं।।१४२-१४४।।

ग्रहमातृसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ग्रहमातृसुसाधनम् ।
ग्रहमातरि तुष्टायां किं ग्रहैर्दुस्स्थितैरपि ।
ग्रहमातरि रुष्टायां सुग्रहैः किं प्रयोजनम् ।।१४५।।
मङ्गला पिङ्गला धान्या भ्रामरी भद्रिका तथा ।
उल्का सिद्धा सङ्कटा च विकटा गर्भपालिका ।।१४६।।
रुद्रनेत्रान्विताश्चाष्टौ जन्मर्क्षाच्च क्रमाद्दशाः ।
फलं नामनि रूपं स्यादेकोपचयता द्वयोः ।।१४७।।

ग्रहमातृ-साधना—अब मैं ग्रहों के माताओं की उत्तम साधना को कहता हूँ। ग्रहमाताओं के तुष्ट रहने पर पापस्थान में स्थित ग्रह भी मनुष्य का भला क्या अनिष्ट

कर सकते हैं और ग्रहमाताओं के रुष्ट रहने पर शुभस्थान में स्थित ग्रहों का भी क्या प्रयोजन है?

नवग्रहों का गर्भ में पालन करने वाली मंगला, पिंगला, धान्या, भ्रामरी, भद्रिका, उल्का, सिद्धा, संकटा एवं विकटा-नाम्नी ग्रहमातायें तीन नेत्रों वाली हैं। जन्मनक्षत्र से ही क्रमशः इनकी दशा प्रारम्भ होती है। नाम के अनुरूप ही अन्तर्दशा आने पर इनका फल प्राप्त होता है।।१४५-१४७।।

सूर्यमातृपिङ्गलासाधनम्

पिङ्गला सूर्यजननी महाधिव्याधिकारिका।
तुष्टा चेच्छत्रुवर्गस्य रुष्टा कुर्यात्तु साधके ।।१४८।।
क्षें बीजन्तु समुच्चार्य पिङ्गले वैरिवारणि।
प्रसीद फडिति प्रोच्याणुस्त्रयोदशवर्णकः।
दीर्घषट्कयुजा पूर्वबीजेनैव षडङ्गकम् ।।१४९।।
पिङ्गवर्णां पिङ्गकेशीं पिङ्गनेत्रां धनुःशरान्।
हस्ताभ्यां दधतीं पद्मयुगलं तां भजाम्यहम् ।।१५०।।
अथ पूजाविधिं वक्ष्ये सर्वासामेव तन्त्रतः।
जपापुष्पाणि शस्तानि धूपो गुग्गुलसम्भवः ।।१५१।।
घृतप्रदीपो मधुरा नैवेद्याः पायसादयः।
अलङ्कारस्तथा रक्तास्तथा वस्त्राणि चन्दनम् ।।१५२।।
स्वर्णालङ्करणैश्चापि सद्रव्यैर्बहुचम्पकैः।
तर्पयेत्परमेशानीं तत्तन्मन्त्रैः सहस्रधा ।।१५३।।
सुवर्णपात्रे निश्छिद्रे हस्तायामे मनोरमे।
कृत्वा यन्त्रं यथोक्तन्तु योगिनीं तत्र पूजयेत् ।।१५४।।
तत्तन्मन्त्रं जपित्वा तु विघ्नशान्त्यै सहस्रशः।
सप्ताहेन प्रजायेत त्रिविधोत्पातवारणम् ।।१५५।।
ततश्च कुण्डं विधिवत्कृत्वा च चतुरस्रकम्।
अथ वा स्थण्डिले शुद्धे सुलिप्ते गोमयाम्बुभिः ।।१५६।।
चतुर्हस्तप्रमाणेन योजयेत्स्थिरमानसः।
योगिन्यग्निन्तु संस्थाप्य कृत्वा पूर्वोदिताः क्रियाः।
अन्यासां दशवारांस्तु विरुद्धायाः सहस्रधा ।।१५७।।
बिल्वपत्रैस्तत्फलैश्च कमलैर्नागकेशरैः।

जुहुयात्पायसान्नेन तथैव कुलवस्तुना ।
सहस्रमयुतं वापि लक्षं वा कामनाक्रमात् ।।१५८।।

सूर्यमाता पिङ्गला का साधन—सूर्य की माता पिंगला प्रसन्न होने पर शत्रुओं के लिये एवं रुष्ट होने पर साधक के लिये महान् आधि-व्याधि को उत्पन्न करने वाली होती है। तेरह अक्षरों का पिङ्गला का मन्त्र है—क्षें पिङ्गले वैरिवारणि प्रसीद फट्। छः दीर्घ बीजमन्त्रों (क्षां क्षी क्षूं क्षैं क्षौं क्ष:) से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् इस प्रकार पिङ्गला का ध्यान करना चाहिये—पिङ्गल वर्ण, पिङ्गल केश एवं पिङ्गल नेत्र वाली, हाथों में धनुष-बाण एवं दो कमल धारण की हुई पिङ्गला का मैं स्मरण करता हूँ।

अब सर्वतन्त्रसम्मत पूजा-विधि को कहता हूँ। अड़हुल के पुष्प, गुग्गुलयुक्त धूप, घी का दीपक, मधुर पायस (खीर) आदि का नैवेद्य, आभूषण, लाल वस्त्र, चन्दन, सोने के गहने, दक्षिणा-सहित प्रचुर चम्पापुष्प आदि से पूजन करने के बाद तत्तत् मन्त्रों से देवी के लिये एक हजार तर्पण करना चाहिये।

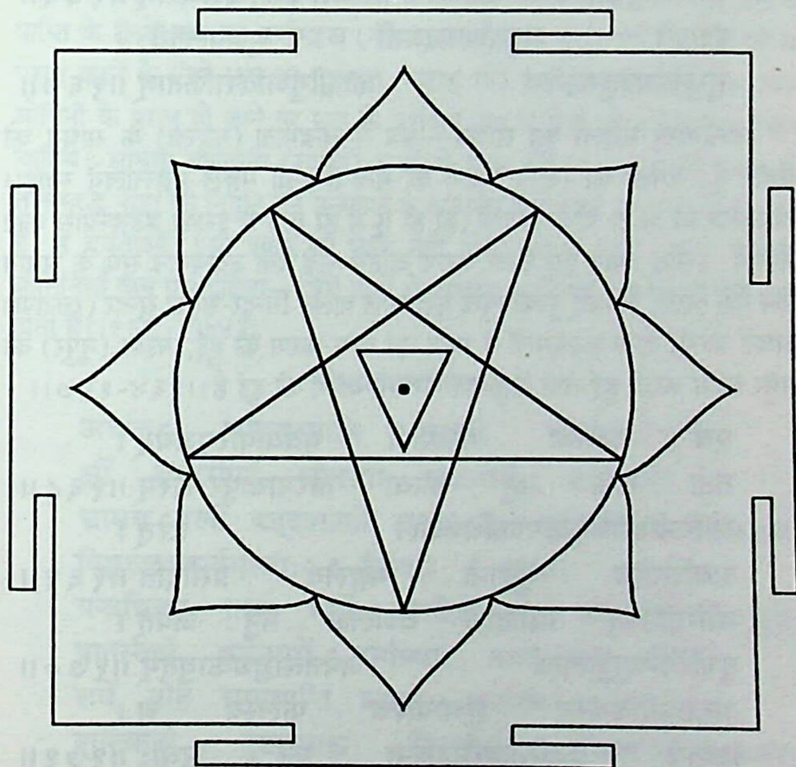
निश्छिद्र सोने के पात्र में एक हाथ लम्बा-चौड़ा मनोरम यथोक्त यन्त्र बनाकर उसमें योगिनी का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् विघ्न-शान्ति के लिये तत्तत् मन्त्रों का एक हजार जप करना चाहिये। इस प्रकार एक सप्ताह तक करने से आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों प्रकार के उत्पातों का निवारण हो जाता है।

तदनन्तर विधिवत् चतुरस्र कुण्ड का निर्माण करके अथवा गोबर से लिप्त शुद्ध भूमि पर चार हाथ लम्बे-चौड़े स्थण्डिल का निर्माण करके स्थिर मन से उसमें योगिनियों को स्थापित करने के उपरान्त पूर्ववर्णित क्रियायें सम्पन्न करके अन्य योगिनियों को दश-दश आहुतियाँ एवं विरुद्धा योगिनी को एक हजार आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। कामनानुरूप बिल्वपत्र, बिल्वफल, कमल, नागकेसर, खीर और कुलवस्तुओं से एक हजार, दस हजार अथवा एक लाख आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये।।१४८-१५८।।

अथ पूजां प्रवक्ष्यामि मध्ये देवीं प्रपूजयेत् ।
इच्छां ज्ञानं क्रियाशक्तिं त्रिषु कोणेषु पूजयेत् ।।१५९।।
मन्मथान् पञ्च तदधः पञ्चकोणेषु पूजयेत् ।
षडङ्गं पूजयेत् पश्चादष्टपत्रेऽन्ययोगिनीः ।
तद्बाह्ये भूपुरे लोकपालानस्त्राणि पूजयेत् ।।१६०।।
पूजाप्रकारो होमश्च सर्वासामयमेव हि ।
विशेषः पुनरत्रास्ति शत्रूच्छेदाभिचारकैः ।।१६१।।

खड्गचर्मधरामुग्रां ध्यायेत् षड्भुजधारिणीम् ।
गरुडासनमासीनां वैरीनिग्रहकारिणीम् ॥१६२॥
लक्षमेकं प्रजप्यादौ जपेल्लक्षं हि तर्पयेत् ।
सर्वशत्रुविनाशः स्याद्दुःखं नाप्नोति कुत्रचित् ॥१६३॥

अब पूजा का वर्णन करता हूँ। पूजन-यन्त्र के मध्य में देवी पिङ्गला का पूजन करने के पश्चात् त्रिकोण के तीनों कोणों में इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया का पूजन करने के बाद उसके नीचे पञ्चकोण के पाँचों कोणों में मन्मथ, कामदेव, कन्दर्प, मकरध्वज और मीनकेतु का पूजन करना चाहिये। फिर पञ्चकोण के बाहर षडङ्ग-पूजन करने के बाद अष्टपत्रों में आठ योगिनियों का पूजन करके उसके बाहर भूपुर में इन्द्रादि दश दिक्पालों और उनके आयुधों का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार छः आवरणों में इनका पूजन किया जाता है। समस्त योगिनियों की पूजा एवं हवन की यही विधि कही गई है।



शत्रुमारण आदि आभिचारिक कर्मों के अनुष्ठान-हेतु यहाँ विशेष विधान कहा गया है। आभिचारिक कर्मों में खड्ग एवं चर्म धारण करने वाली, छः भुजाओं वाली,

गरुड़ासन पर विराजमान, शत्रुओं का निग्रह करने वाली पिङ्गला के उग्र स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर सर्वप्रथम मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद एक ही लाख तर्पण भी करना चाहिये। ऐसा करने से साधक के समस्त शत्रुओं का विनाश हो जाता है और उसे कहीं भी दुःख नहीं प्राप्त होता।।१५९-१६३।।

चन्द्रमातुर्मङ्गलायाः साधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चन्द्रमातुश्च साधनम्।
मायाद्यो वह्निजायान्तो मङ्गले मङ्गलालये ।।१६४।।
एकादशाक्षरो मन्त्रो मङ्गलायाः प्रकीर्तितः।
कृत्वाद्येन षडङ्गानि दीर्घषट्कयुजा तथा ।।१६५।।
ध्यायेदेनां त्रिनयनामुद्यदादित्यसन्निभाम्।
दरस्मेरमुखाम्भोजां सिन्दूरसुन्दराधराम् ।।१६६।।
पद्मद्वये धनुर्बाणान्दधतीं भुजपल्लवैः।
सुगुञ्जन्मञ्जुमञ्जीरां काञ्चीगुणविराजिताम् ।।१६७।।

चन्द्रमाता मंगला का साधन—अब मैं चन्द्रमाता (मङ्गला) के साधन को कहता हूँ। मंगला का ग्यारह अक्षरों का मन्त्र है—ह्रीं मङ्गले मङ्गलालये स्वाहा। आद्यबीज ह्रीं के छः दीर्घ स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—वे देवी उदीयमान सूर्य के समान तीन नेत्रों वाली, किञ्चित् मुस्कानयुक्त मुखकमल वाली, सिन्दूर-सदृश सुन्दर (रक्तवर्ण) अधरों वाली, दोनों करकमलों में धनुष एवं बाण धारण की हुई, मञ्जीर (नूपुर) की मधुर ध्वनि करती हुई तथा त्रिगुणित करधनी धारण की हुई हैं।।१६४-१६७।।

एवं ध्यात्वा महेशानीं पूर्ववत्परिपूजयेत्।
ततो लक्षं मनुं जप्त्वा तारमायापुरःसरम् ।।१६८।।
योगिनीक्षेत्रबटुकगणाधिपबलिं हरेत्।
सर्वासामेव पूजान्ते मङ्गलैवं प्रसीदति ।।१६९।।
योगिन्यास्तु प्रसादार्थं वर्णलक्षं मनुं जपेत्।
दुर्योगिन्यनुकूलार्थं जपेत्तत्सङ्ख्यकायुतम् ।।१७०।।
अदृष्टप्रतिबद्धस्तु शुभायाश्च फलस्य च।
प्राप्तये प्रजपेत्तावत्सहस्रन्तु मनुं सुधीः ।।१७१।।
प्रकर्तव्यो वर्णशतं यावत्तुष्टास्ति योगिनी।
तुष्टाया वर्णशतकै रोगिणं चाभिमन्त्रयेत् ।।१७२।।

वर्णतुल्येन मन्त्रेण यस्याः सेवापरो भवेत्।
तस्याः पीडानिवृत्तिः स्याद्वर्णाभ्यन्तर्गतैर्जपैः ॥१७३॥
एवंविधिर्नवानां तु विज्ञेयः सुरसत्तमाः।
योगिनी तुल्यफलदा वामे मार्गे च दक्षिणे ॥१७४॥

इस प्रकार देवी महेशानी का ध्यान करके पूर्ववत् पूजन करने के उपरान्त मन्त्र का एक लाख जप करके तार (ॐ) एवं माया (ह्रीं) से समन्वित मन्त्र द्वारा योगिनी, क्षेत्रपाल, बटुक और गणेश को बलि प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार सबकी पूजा करने के पश्चात् मंगला प्रसन्न हो जाती है।

योगिनियों की प्रसन्नता के लिये मन्त्र का वर्णलक्ष (ग्यारह लाख) जप करना चाहिये। अशुभ योगिनियों को अनुकूल बनाने के लिये उनके मन्त्र का एक लाख ग्यारह हजार जप करना चाहिये। अदृष्ट से प्रतिबद्ध विद्वान् साधक को शुभ फल की प्राप्ति के लिये मन्त्र का वर्णसहस्र (ग्यारह हजार) जप करना चाहिये। योगिनी को प्रसन्न करने के लिये मन्त्र का वर्णशत (ग्यारह सौ) जप करना चाहिये। इस प्रकार योगिनी के प्रसन्न हो जाने पर मन्त्र के वर्णशत जप से रोगी को अभिमन्त्रित करना चाहिये। साधक वर्णतुल्य (ग्यारह) मन्त्रों से जिस योगिनी का सेवन करता है, तत्सम्बद्ध पीड़ा की निवृत्ति उन मन्त्रवर्णों के अन्तर्गत किये जाने वाले जप से हो जाती है। हे देवताओं! इसी प्रकार की विधि नवों योगिनियों के लिये जाननी चाहिये। योगिनियाँ वाम एवं दक्षिण—दोनों मार्गों से उपासना करने पर समान फल देने वाली होती हैं।।१६८-१७४।।

भौममातृभ्रामरीसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भ्रामरीं भौममातरम्।
क्षीं भ्रामरीपदं चोक्त्वा सपत्नान्मे अधीश्वरि।
भ्रामय क्लीं षड्दशार्णो मन्त्रोऽस्याः परिकीर्तितः ॥१७५॥
पिङ्गलावत्सर्वमस्याः सिद्धये शर्करा दश।
मन्त्रयित्वा तथा मार्गे दशदिक्षु च सन्त्यजेत् ॥१७६॥
प्रातस्ततो व्रजेन्मार्गे मार्गस्थाः सर्व एव हि।
सर्वे मोहं समायान्ति व्याघ्राः सर्पाश्च तस्कराः।
शुल्किनो दुष्टभूपाश्च नित्यमेवं समाचरेत् ॥१७७॥
उपानत्के तले यस्य लिखित्वा नाम च व्रजेत्।
योजनैकं जपन्मन्त्रं स भ्रमेच्च वसुन्धराम् ॥१७८॥

भौममाता भ्रामरी का साधन—अब मैं भौममाता भ्रामरी के साधन को सम्यक् रूप से कहता हूँ। इसका सोलह अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—क्षीं भ्रामरि सपत्नान्मे अधीश्वरि भ्रामय क्लीं। सिद्धि-प्राप्ति हेतु इसके यन्त्र-पूजन-जप आदि सभी विधान पिङ्गला के समान करणीय होते हैं।

गुड़ के दस टुकड़ों को मन्त्रजप से अभिमन्त्रित करके दशो दिशाओं में रास्ते पर रात्रि में फेकने के बाद दूसरे दिन प्रातःकाल उस मार्ग पर गमन करने पर मार्ग में स्थित व्याघ्र, सर्प, तस्कर (चोर), शुल्क वसूलने वाले, दुष्ट राजा आदि सभी मोहित हो जाते हैं। प्रतिदिन इसी प्रकार यात्रा करनी चाहिये।

साधक द्वारा उपानह (जूता) के तल में जिसका नाम लिखकर मन्त्र का जप करते हुये एक योजन-पर्यन्त (बारह किलोमीटर तक) गमन किया जाता है, वह व्यक्ति पृथिवी पर घूमने लगता है।।१७५-१७८।।

बुधमातृभद्रिकासाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भद्रिकां बुधमातरम्।
ब्लं बीजं तोयभूयोगाज्जातमादौ समुच्चरेत्।।१७९।।
भद्रिके मे मम भद्रं देहीत्येवं पदं वदेत्।
पुनश्च परभद्राणि नाशयद्वितयं ततः।।१८०।।
स्वाहान्तो जिनवर्णोऽयं भद्रिकाया मनुर्मतः।
षड्दीर्घयुक्तबीजेन षडङ्गविधिरीरितः।।१८१।।
मङ्गलावच्छुभानां स्याद्ध्यानन्तु फलदायिनाम्।
पिङ्गलावत्समुद्दिष्टं जपाद्यं प्रोक्तवर्त्मना।।१८२।।

बुधमाता भद्रिका का साधन—अब मैं बुधमाता भद्रिका के साधन को सम्यक् रूप से कहता हूँ। भद्रिका का चौबीस अक्षरों का मन्त्र है—ब्लं भद्रिके मे मम भद्रं देहि परभद्राणि नाशय नाशय स्वाहा। बीजमन्त्र ब्लं के छः दीर्घ स्वरूपों (ब्लां ब्लीं ब्लूं ब्लैं ब्लौं ब्लः) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है।

मङ्गला के समान ही ध्यान-पूजन आदि करने से यह देवी फलदायिनी होती है। इसका जप आदि पिङ्गला के समान कथित मार्ग से करना चाहिये।।१७९-१८२।।

धान्याख्यगुरुमातृसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धान्याख्यां गुरुमातरम्।
श्रीं धनदे समुच्चार्य धान्ये स्वाहाष्टवर्णकः।।१८३।।
षड्दीर्घाढ्याद्यबीजेन षडङ्गविधिरीरितः।
नास्ति धान्यासमा काचिदिह लोके धनप्रदा।।१८४।।

पुरश्चर्यात्रयं कृत्वा प्राग्जन्मार्जितपातकम्।
दहेत्तु धान्या ददते धन्यत्वं साधकाय च ॥१८५॥
बृहस्पतीश्वरात्पश्चात्काश्यां धान्यां विलोकयेत्।
पुरश्चर्यां तत्र कृत्वा यशोधन्यः प्रजायते ॥१८६॥

गुरुमाता धान्या का साधन—अव धान्या-नामिका गुरुमाता के साधन को कहता हूँ। आठ अक्षरों का धान्या का मन्त्र है—श्रीं धनदे धान्ये स्वाहा। बीजमन्त्र श्रीं के छ: दीर्घ स्वरूपों (श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्र:) से इसका षडङ्गन्यास कहा गया है। इस लोक में धान्या के समान धन प्रदान करने वाली अन्य कोई देवी नहीं है।

इसके मन्त्र का तीन पुरश्चरण सम्पन्न करने से पूर्वजन्मार्जित पापों का विनाश हो जाता है। धान्या साधक को धन्यत्व प्रदान करती है। काशी में बृहस्पतीश्वर के पश्चात् धान्या का अवलोकन करके वहीं पर पुरश्चरण करने वाला साधक यश का भागी होता है।।१८३-१८६।।

सिद्धाख्यशुक्रमातृकसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सिद्धां शुक्रस्य मातरम्।
ह्रीं सिद्धिदे सर्वं मम समुक्त्वा साधयद्वयम् ॥१८७॥
हृदन्तोऽयं षोडशार्णः सिद्धः सिद्धामनुर्मतः।
बीजनैव षडङ्गानि जपाद्यं पूर्ववच्चरेत्।
नास्ति सिद्धोपासकानां कर्मासिद्धिस्तु कुत्रचित् ॥१८८॥
उपासकाय सिद्धाय येनाम्नायेन जायते।
तेनाम्नायेन देवानां पाके स्यात्सर्वमेव हि।
सिध्येत् षट्कर्म मर्त्यस्य मनोराराधनं विना ॥१८९॥

शुक्रमाता सिद्धा का साधन—अब शुक्र की माता सिद्धा के साधन को सम्यक् रूप से कहता हूँ। सोलह अक्षरों का सिद्धा का मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ह्रीं सिद्धिदे सर्वं मम साधय साधय नमः। बीजमन्त्र ह्रीं के छ: दीर्घ स्वरूपों (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) से इसका षडङ्गन्यास किया जाता है। इसका जप आदि पूर्ववत् करना चाहिये। सिद्धा के उपासकों को किसी भी कर्म में असिद्धि नहीं प्राप्त होती अर्थात् सिद्धोपासकों के समस्त कर्म सिद्ध होते हैं। सिद्धा का उपासक जिस आम्नाय का आश्रय ग्रहण करता है, उसी आम्नाय के देवताओं द्वारा समस्त फलों की प्राप्ति करता है। सिद्धोपासक मनुष्यों के छहो कर्म विना मन्त्राराधन के ही सिद्ध हो जाते हैं।

उल्काख्यशनिमातृसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चोल्कां मन्दस्य मातरम्।
ऐं ह्रीमुल्कापदं पश्चाद्देव्यै हृच्चाष्टवर्णकः।
मन्त्रः प्रोक्तः प्रजप्तोऽयं धनारोग्यप्रदो मतः ॥१९०॥
ॐ मम सर्वरोगान्नाशय भञ्जयैकादशाक्षरः।
सर्वरोगापहो मन्त्रो मार्जनात्सम्प्रपद्यते ॥१९१॥
उल्कामन्त्रो यस्य सिद्धो न गदास्तस्य मन्दिरे।
शीतलाया महामार्या महिषं लक्षणान्वितम् ॥१९२॥
उल्काप्रीत्यै समुत्सृज्य नगरे भ्रामयेत्पुनः।
नानावाद्यैः परिवृतं वस्त्रादिभिरलङ्कृतम्।
उत्सृजेत्तं यमाशायामुपद्रवशमो भवेत् ॥१९३॥

शनिमाता उल्का का साधन—अब मैं शनि की माता उल्का के साधन को सम्यक् रूप से कहता हूँ। जप करने पर धन एवं आरोग्य प्रदान करने वाला आठ अक्षरों का उल्का का मन्त्र इस प्रकार है—ऐं ह्रीं उल्कादेव्यै नमः। उल्का का दूसरा मन्त्र है—ॐ मम सर्वरोगान्नाशय भञ्जय। यह मन्त्र तेरह अक्षरों वाला होता है। इस मन्त्र द्वारा मार्जन करने से समस्त रोगों का विनाश हो जाता है।

जिस साधक को उल्का का मन्त्र सिद्ध हो जाता है, उसके घर में कोई रोग नहीं होता। नगर में शीतला की महामारी होने पर उल्का की प्रीति के लिये शीतला के लक्षणों से युक्त भैंसे को वस्त्र आदि से अलंकृत कर नाना प्रकार के वाद्यों का वादन करते हुये नगर में घुमाकर दक्षिण दिशा में छोड़ देने से उपद्रवों का शमन हो जाता है।।१९०-१९३।।

सङ्कटाख्यराहुमातृसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सङ्कटां राहुमातरम्।
ह्रीं सङ्कटे च रोगं मे परमं नाशयद्वयम् ॥१९४॥
षोडशार्णस्तु मन्त्रोऽयं सर्वदुःखापहो मतः।
कारागृहे जपेल्लक्षं बन्धमोक्षः प्रजायते ॥१९५॥
वीरेश्वरादुदक्काश्यां सङ्कटा यत्र संस्थिता।
तत्र षोडशलक्षाणि जप्त्वा होमस्तु दूर्वया ॥१९६॥
तस्य सिद्धो भवेन्मन्त्रस्तन्मुखाद्यदि निस्सरेत्।
अमुकस्यामुकं कष्टं गतं तद्गतमेव हि ॥१९७॥

राहुमाता सङ्कटा का साधन—अब राहुमाता संकटा के साधन को कहता हूँ। मन्त्र है—ह्रीं संकटे रोगं मे परमं नाशय नाशय। सोलह अक्षरों वाला यह मन्त्र समस्त दुःखों को दूर करने वाला कहा गया है। कारागृह में इस मन्त्र का एक लाख जप करने से मनुष्य कारागार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

काशी में वीरेश्वर के उत्तर में जिस स्थान पर देवी संकटा विराजमान हैं, उसी स्थान पर संकटा-मन्त्र का सोलह लाख जप करके दूर्वा से हवन करने पर सिद्ध मन्त्र वाले साधक के मुख से यदि वचन निकल जाय कि 'अमुक व्यक्ति का अमुक कष्ट दूर हो जाय' तो उसका कष्ट अवश्य ही दूर हो जाता है।।१९४-१९७।।

विकटाख्यकेतुमातृसाधनम्

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि विकटां केतुमातरम्।
तारो नमो भगवति विकटे वीरपालिके ॥१९८॥
प्रसीदयुगलं मन्त्रः प्रकृत्त्यर्णः प्रकीर्तितः।
काश्यां वीरेश्वरासन्ना पश्चिमे विकटा स्थिता ॥१९९॥
तत्र मन्त्रमिमं जप्त्वा ग्रहतप्ताश्च बालकाः।
उदरं चापि वन्ध्यायाः प्रजावत्यास्तथा शिरः ॥२००॥
पित्रादित्यक्तबालाश्च तथा मातृविवर्जिताः।
साधकस्य करस्पृष्टा नीरोगाश्चिरजीविनः ॥२०१॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
नवग्रहप्रकाशो द्वाविंशः ॥२२॥

●

केतुमाता विकटा का साधन—अब मैं केतुमाता विकटा के साधन को सम्यक् रूप से कहता हूँ। इक्कीस अक्षरों का विकटा-मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—ॐ नमो भगवति विकटे वीरपालिके प्रसीद प्रसीद।

काशी में वीरेश्वर से निकट पश्चिम में देवी विकटा की अवस्थिति है, उसी स्थान पर इस मन्त्र का जप करके साधक के हाथों द्वारा स्पर्श किये गये ग्रहपीड़ित बालक, वन्ध्या के उदर, पुत्रवती का शिर और पिता-माता से त्यक्त बालिकायें—सभी नीरोग एवं चिरजीवी हो जाते हैं।।१९८-२०१।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र
में शिवप्रणीत 'नवग्रहमन्त्रकथन'-नामक
द्वाविंश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

Translated & Written by
Giri Ratna Mishra

Sri Kali Tantra
&
Sri Rudra Chandi

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An acme assortment of various mantras, variegated worship rituals and tantric practices of Sri Dakshin Kali, along with glory saga and worship ritual of Sri Rudra Chandi.



Bhootdaamar Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An authoritative Tantra of Sri Krodha Bhairava along with his; mantras, variegated mandal worship, rituals and accomplishment rituals of Bhootinis, Yakshinis, snake-girls etc.



Uddish Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An authoritative work on various exorcisms, Yakshini accomplishment, Bhootini accomplishment and black magic like Indrajaal compiled by Lankesh Ravan.



Sri Matrika Cakra Viveka

Text with English
Commentary & Introduction

•••••

An acme Sri Vidya mantra Shastra of Kashmir, correlating the creation and liberation of this world with Sri Yantra while describing the meaning of Sanskrit alphabets called Matrikas using Sri Yantra.



Sri Bagala Tatva Prakashika

•••••

A detailed study on philosophical and worship aspects of Sri Bagalamukhi as mentioned in Vedas, Upanishads, Puranas, Sri Durga Saptashati and Tantra.

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन



वाराणसी-221001
chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
www.chaukhamba.co.in
@chaukhambabooks @chaukhambabooks





₹ 5000 set in 5 vols.